औरंगज़ेब

(१६१८–१७०७ ई०)

लेखक
सर यदुनाथ सरकार, सी० आई० ई०
एम्० ए०, डी० लिट्० (आनररी),
आनररी एम्० आर० ए० एस्० (लण्डन),
एफ्० आर० ए० एस्० (बंगाल),
कारस्पान्डिंग मेम्बर—रायल हिस्टारिकल सोसाइटी (इंगलंण्ड)

प्रकाशक
हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
बम्बई • दिल्ली

प्रकाशक ·
यशोधर मोदी, मैनेजिंग डायरेक्टर
हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड
हीराबाग, पो० बॉ० ३६२२
बम्बई–४

नया संस्करण १९७०

AURANZEB
By Sir yadunath Sarkar
(HISTORY)

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस
भेलूपुर, वाराणसी–१

प्रकाशकका वक्तव्य

इतिहासाचार्य सर यदुनाथ सरकार कृत 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब' का यह संशोधित संक्षिप्त हिन्दी संस्करण हिन्दी संसारको भेंट करते हुए हमें विशेष हर्ष होता है। औरंगजेबकी जीवनी तथा उसके शासन-कालके भारतीय इतिहासका सविस्तार अध्ययन करनेमें इस अस्सी-वर्षीय तपस्वीने पूरे पच्चीस वर्ष (१९००-१९२४ ई०) तक अथक परिश्रम किया था। तदर्थ अत्यावश्यक आधार-ग्रन्थों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्रीको एकत्र करनेमें उन्होंने कोई बात नहीं उठा रखी थी। यही कारण था कि मोटी-मोटी पांच जिल्दोंमें प्रकाशित उनका लिखा हुआ औरंगजेबका इतिहास तबसे ही एक प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ मान लिया गया है। इधर इन पिछले पच्चीस वर्षोंमें औरंगजेब या उसके शासन-काल सम्बन्धी जो भी नई सामग्री यदा-कदा प्राप्त होती रही है उसका भी समुचित उपयोग कर वे समय-समयपर अपने ग्रन्थमें आवश्यक सुधार भी करते रहे हैं। पुन इस हिन्दी संस्करणको तैयार करवाते समय उन्होंने आज तककी सारी पिछली खोजोंका सारांश भी उसमें सम्मिलित कर उसे सर्वथा प्रामाणिक और आधुनिकतम बना दिया है। यों औरंगजेब सम्बन्धी उनकी इन पिछले साठ वर्षोंकी समस्त सूक्ष्मतम खोजों, गहरे अध्ययन तथा गम्भीर चिन्तनका परिणाम हमें इस हिन्दी ग्रन्थ-रत्नमें एकत्र देखनेको मिलता है।

सर यदुनाथके इतिहास-ग्रन्थ सर्वथा प्रामाणिक तथा घटनाओंसे परिपूर्ण होते हैं, तथापि उनमें कहीं नीरसता नहीं आने पाई है। उनकी लेखन-शैली इतनी रोचक है कि उनके ग्रन्थोंमें उपन्यासकी-सी सरसता मिलती है और पाठक बिना रुके प्रारम्भ से अन्त तक उन्हें बराबर पढ़ता ही जाता है। अपने प्रमुख नायककी जीवनीका इतना सजीव वर्णन लिखने पर भी सर यदुनाथके विवरण तथा विवेचन में उसके प्रति या विरुद्ध किसी प्रकारका पक्षपात या कोई असंतुलित भावना देखनेको नहीं मिलती है। जिस स्पष्टताके साथ वे उसके गुणों तथा सफलताओंका उल्लेख करते हैं, उसी तत्परता और विस्तारके साथ उसकी त्रुटियों और भूलोंको भी वे अपने पाठकोंके सम्मुख खोलकर रख देते हैं। अपने शासन-कालके अन्तिम वर्षोंमें अदृष्ट कठोर नियतिके साथ अन्त तक लगातार दृढतापूर्वक जूझते हुए

[illegible] एक पतनोन्मुख [illegible] शासन करते हुए केवल [illegible] परन्तु किया है, [illegible] है।

औरंगजेबका [illegible] भी एक तरहसे बहुत-कुछ भारतका ही [illegible] है। [illegible] शताब्दीके सारे उत्तरार्द्ध-मे [illegible] शासन-काल (१६५८-१७०७) पडता है। हमारे देशके इतिहासमें [illegible] ही महत्त्वपूर्ण थी। औरंगजेबके समयमें मुगल साम्राज्य [illegible] सीमाको पहुंच गया। मुसलमानी सत्ताने भारतमें अन्तिम बार अपना आधिपत्य ही नही बढाया था, किन्तु धार्मिक दृष्टिसे उसका [illegible] पूर्ण उत्कट स्वरूप भी तब देख पडा। औरगजेब स्वय प्रकाण्ड विद्वान्, सुयोग्य जागरूक कर्मठ शासक और चरित्र-वान् सदाचारी धर्मपरायण व्यक्ति था। यह निर्भीक योद्धा एक बहुत ही चतुर सुकुशल सेनापति भी था। उसकी बुद्धिमत्ता और गूढ कूटनीतिका लोहा उसके शत्रु भी मानते थे। इतना सब होते हुए भी इस अनुभवी सम्राट्के इस दीर्घकालीन शासनका अन्तिम परिणाम सर्वथा विपरीत ही हुआ। अद्वितीय विस्तारवाले इस महान् साम्राज्यके निकट भविष्यमे होने-वाले घोर पतन और पूर्ण विश्रृंखलनके चिन्ह भी औरगजेबकी मृत्युसे पहिले ही स्पष्टतया देख पडने लगे थे। तब तक साम्राज्यका विगत गौरव बहुत-कुछ मिट चुका था, उसका सारा वैभव विलीन होने लगा था, आर्थिक स्थिति बिगडकर उसका दिवाला निकल चुका था, शासन-सगठन छिन्न-भिन्न हो गया था और उस लम्बे चौडे साम्राज्यमे सुव्यवस्था तथा शक्ति बनाए रखना भी सम्राट् और उसके अधिकारियोके लिए बिलकुल ही एक असम्भव बात हो गई थी।

हमारे देशके इतिहासमें अब एक सर्वथा नए युगका प्रारम्भ हुआ है। हमारे अग्रेज विजेता यहाँसे विदा लेकर हमे स्वाधीन कर गए हैं। धर्मके आधारपर भारतका बटवारा हो जानेसे हमारे सम्मुख कई एक नई अन-पेक्षित समस्याएँ उठ खडी हुई है। आर्थिक कठिनाइयाँ और भुखमरीकी भयकर उलझनें हमारी राहमे बाधक बन रही है। सारे देशमे भ्रष्टाचार और असन्तोष साथ ही साथ निरन्तर बढते जा रहे है। किन्तु फिर भी देश और समाजके नव-निर्माणका कार्य नही रोका जा सकता। अपने विगत

पतनकी पुनरावृत्ति नही होने देनेके लिए हमे अपने उस भूतकालीन जातीय जीवनका ठीक-ठीक अध्ययन कर उसकी त्रुटियो और कमजोरियोको जानने तथा अब उन्हे दूर करनेका प्रबल प्रयत्न करना होगा। किन-किन कारणो-से मुगल साम्राज्य विफल हुआ तथा तब समूचे भारतमे राजनैतिक एकता स्थापित होनेपर भी क्यो यहाँ एक सुसगठित पूर्णतया समन्वित भारतीय राष्ट्रका निर्माण नही हो सका था, इन महत्त्वपूर्ण विचारणीय प्रश्नोका सही उत्तर जानकर भविष्यमे उनकी ओर विशेष ध्यान देना होगा। इन सब बातोको ठीक तरह समझने-बूझनेके लिए औरगज़ेबके शासन-कालका गहरा अध्ययन अत्यावश्यक है। इस ग्रन्थके उन्नीसवें अध्यायमे सर यदु-नाथने इन्ही सब प्रश्नोकी सविस्तार विवेचना की है, जो बहुत ही महत्त्व-पूर्ण तथा विचारोत्पादक है। कई एक समस्याएँ, जो औरगज़ेबके समयमे भारतीय राष्ट्रके सम्मुख थी और तब किसी प्रकार सुलझाई नही जा सकी, आज भी बहुत-कुछ उसी रूपमे हमारे सामने खड़ी हैं। अतएव हमे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दीमे प्रकाशित औरंगजेबका यह सक्षिप्त इतिहास ज्ञान-वर्द्धनके साथ ही हमारे राष्ट्र के नव-निर्माणमे भी बहुत सहायक हो सकेगा।

ग्यारह वर्ष पहिले हमने सर यदुनाथ कृत 'शिवाजी'का सक्षिप्त हिन्दी सस्करण प्रकाशित किया था। उसका हिन्दी ससारमे बहुत आदर हुआ है, और दो वर्ष पहिले हमे उसका द्वितीय संशोधित सस्करण निकालना पड़ा। उससे प्रोत्साहित होकर अब सर यदुनाथ कृत 'औरगज़ेब'का यह संक्षिप्त हिन्दी सस्करण प्रकाशित कर रहे हैं। जहाँ तक हमे ज्ञात है हिन्दीमे अब तक औरंगज़ेबका ऐसा सच्चा और प्रामाणिक जीवन-चरित्र प्रकाशित नही हुआ, यो यह ग्रन्थ हिन्दीके ऐतिहासिक साहित्यकी एक बहुत बड़ी कमी पूरी करता है। आशा है कि हिन्दी भाषा-भाषी इस ग्रन्थका हृदयसे स्वागत करेंगे।

हम सर यदुनाथके बहुत ही कृतज्ञ हैं कि उन्होने ऐसे महत्त्वपूर्ण ऐति-हासिक ग्रन्थ-रत्नको प्रकाशित करनेका हमे सुअवसर दिया। सीतामऊ (मालवाके) कर्मठ साहित्य-प्रेमी महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंहके भी हम बहुत ही अनुगृहीत हैं। अपने इतिहास-गुरु सर यदुनाथके मूल अंग्रेजी ग्रन्थका यह हिन्दी सस्करण तैयार करवानेमे उन्हे स्वय अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा है। इस हिन्दी अनुवादकी भाषामे सर यदुनाथकी मनचाही

सरलता, सरसता और प्रवाह लाना कोई आसान बात नही थी। परन्तु एक इतिहासकार होनेके साथ ही महाराजकुमार एक उच्चकोटिके सफल गद्य-लेखक भी है, अतएव उन्हे इस प्रयत्नमे पूर्ण सफलता मिली। इस हिन्दी सस्करणकी भाषामे सारे अत्यावश्यक सशोधन कर उन्होने उसे ऐसी अच्छी तरह सँवार दिया है कि एक अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थ सर्वथा मौलिक हिन्दी रचना ही जान पडती है। सर यदुनाथके समान हमे भी "दृढ विश्वास है कि हिन्दी साहित्यकी उनकी इस अमूल्य सेवाके लिए हिन्दी भाषा-भाषी उनके चिर-ऋणी रहेगे।"

नाथूराम प्रेमी

भूमिका

समकालीन मौलिक ऐतिहासिक उपादानोके आधारपर लिखकर मैंने पांच जिल्दोमे अपने अग्रेजी इतिहास-ग्रन्थ "हिस्ट्री आफ औरंगजेब"को सन् १९२५ मे पूरा किया था। उस ग्रन्थकी रचना करते समय मैंने उस कालके इतिहास-विषयक छपे हुए सारे आधार-ग्रन्थोके सिवाय फारसी, मराठी, अग्रेजी, फ्रेंच और पुर्तगाली भाषाओमे प्राप्य हस्तलिखित इतिहास-ग्रन्थो, समकालीन लेख-सग्रहो, शाही दरबारके अखबार, आदि सारे उपादानोका भी पूरे पच्चीस वर्ष तक लगातार अध्ययन किया था। उस कालके इतिहासके लिए मेरा यह अंग्रेजी ग्रन्थ पूरी तरह प्रामाणिक मान लिया गया है। अपनी उच्चतम परीक्षाओमे मुगल-कालीन भारतीय इतिहास पढानेके लिए सब ही भारतीय विश्व-विद्यालयोने इस ग्रन्थको अपनी पाठ्य-पुस्तक बनाया। किन्तु उसकी उन पांचो जिल्दोकी पृष्ठ-सख्या कुल मिलाकर कोई दो हजारसे भी अधिक हो जाती है, एव विश्व-विद्यालयोके विद्यार्थियोकी सुविधा तथा उपयोगके लिए उस विस्तृत इतिहासको सक्षिप्त कर कोई पांच सौ पृष्ठोंके एक सुसम्बद्ध ग्रन्थके रूपमे "ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब"के नामसे प्रकाशित किया था। इस सक्षिप्त इतिहासमे मैंने कई एक विवेचनात्मक नए महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड दिए थे। किन्तु अग्रेजी भाषा न जाननेवालोंके लिए तो औरगजेबके शासन-काल सम्बन्धी मेरी सारी खोजें एव ये ग्रन्थ अब तक बिलकुल ही अज्ञात रहे हैं।

किसी भी अन्य भारतीय भाषामें अपने इस ग्रन्थका अनुवाद करवानेसे पहिले उसको हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीमें ही इस प्रस्तुत पुस्तकके रूपमे प्रकाशित करना अधिक उचित जान पड़ा। मेरे सुयोग्य प्रिय शिष्य सीता-मऊ (मालवाके) महाराजकुमार डाक्टर रघुबीरसिंहकी निष्ठापूर्ण साधना तथा हिन्दी साहित्यकी उन्नतिके लिए हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर ग्रन्थमालाके सुप्रसिद्ध सस्थापक श्री प्रेमीजीके उत्साहपूर्ण उद्योगके फलस्वरूप ही अपने ग्रन्थका यह सशोधित हिन्दी संस्करण प्रकाशित कर सकनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मैं उन दोनोका अनुगृहीत हूँ। उसमेंसे कुछ नगण्य विवरणो तथा कई एक वर्णनात्मक अशोको छोड़कर इस अनुवाद के लिए मैंने अपने उक्त अग्रेजी ग्रन्थ "ए शार्ट हिस्ट्री आफ

औरगजेब" को और भी सक्षिप्त कर दिया है। किन्तु अंग्रेजीके उस मूल ग्रन्थकी सारी सारभूत बातो तथा महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विवेचनोका यहाँ पूराका-पूरा ही अनुवाद किया गया है। इस हिन्दी अनुवादको तैयार करनेमे कौन-कौन-सी विशेष बातोका ध्यान रखा जावे, इसकी भाषा कैसी हो, आदि प्रश्नो सम्बन्धी अनुवादके लिए सारे आवश्यक निर्देश महाराजकुमारके साथ बैठकर उनकी सलाहसे मैने सविस्तार तय किए थे। हिन्दी अनुवादका काम इतिहासके एक प्राध्यापकको सौपा गया था। उन्होने बडी मिहनतसे यह कार्य पूरा किया, परन्तु वह अनुवाद मेरी रुचिके अनुसार नही बन पाया था, एव महाराजकुमारने स्वय ही उस अनुवादमे सारे आवश्यक सशोधन कर उसे यह वर्तमान स्वरूप दिया। इस सशोधित अनुवादको ध्यानपूर्वक पढने तथा उसमे यत्र-तत्र उचित सुधार करनेके बाद ही छपनेके लिए उसे प्रेसमे देनेकी मैंने अनुमति दी। मेरे सक्षिप्त अग्रेजी इतिहासके प्रकाशित होनेके बाद जो बीस वर्ष बीत चुके हैं उनमे कई एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक खोजें हुई हैं। इस हिन्दी सस्करणमे उन नवीनतम खोजोके परिणामोका भी मैने समावेश कर दिया है, जिससे इस सशोधित हिन्दी सस्करणका महत्त्व बहुत बढ गया है। अपने ढगके ऐसे एकमात्र महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थको तैयार कर उसे हिन्दीमे प्रकाशित करवानेके लिए महाराजकुमार रघुबीरसिहने जो प्रयत्न किए हैं, तदर्थ मै उनका अभिनन्दन करता हूँ, और मुझे दृढ विश्वास है कि हिन्दी साहित्यकी उनकी इस अमूल्य सेवाके लिए हिन्दी भाषा-भाषी उनके चिरऋणी रहेगे।

बहुत चाहनेपर भी इस ग्रन्थकी भाषा मेरे हिन्दी ग्रन्थ 'शिवाजी' की-सी सरल नही हो सकी, जिसे ८-१० वर्षीय बालक भी आसानीसे समझ सकता है। मुगल साम्राज्यके इस ध्वसक सम्राट्के पचास-वर्षीय शासनकालका विवरण लिखते हुए कई एक राजनैतिक वाद-विवादो तथा दार्शनिक समस्याओकी विवेचना करना अनिवार्य हो जाता है, जिन्हे शिवाजी (हिन्दी) की-सी सरल शैलीमे ठीक तरहसे लिख सकना सम्भव नही था, क्योंकि तत्सम्बन्धी विभिन्न अग्रेजी शब्दोके लिए उपयुक्त सरल सुज्ञात हिन्दी पारिभाषिक शब्दोका अब तक बहुत-कुछ अभाव ही है।

हमारी मातृ-भूमिके जीवनमे एक नये महत्त्वपूर्ण युगका प्रारम्भ हुआ है, एव हमारे लिए तो औरगजेब-कालीन इतिहास बहुत ही दिलचस्प,

उपयोगी और उपदेशप्रद है। औरगज़ेबके समकालीन इतिहासकारोंमे मुसलमानोकी संख्या ही अधिक थी। औरगज़ेबके इस पचास-वर्षीय शासन-कालका उन्होने जो पूरा सविस्तार विवरण लिखा है, उससे भी यह बात बिलकुल ही स्पष्ट हो जाती है कि मुसल्मान उलेमाओ (धार्मिक विद्वानो) द्वारा निश्चित विधिसे सगठित धर्म-प्रधान शासन किस प्रकार एक बडे शक्तिशाली साम्राज्यको भी सब तरहसे बरबाद कर सकता है, और तब क्योकर वहांकी जनता, मुसलमान और हिन्दू दोनोको ही भयकर दुर्दशा, पूर्ण दारिद्र्य, नैतिक पतन तथा विदेशियोके हाथो पराजय और उनके आधिपत्य तकका सामना करना पडता है। अपने गुण-लाभ सिद्ध करनेके लिए इस धर्म-मूलक शासन-पद्धतिको औरगज़ेबके पचास-वर्षीय लम्बे शासन-कालमे सबसे अच्छा अवसर मिला था। औरगजेबकी विद्वत्ता अगाध थी, वह बहुत ही सदाचारी और कर्मठ शासक था, व्यक्तिगत व्यसन या भोग-लिप्सा उसे छू भी नही गए थे, और अपने नब्बे वर्षके लम्बे जीवन भर वह लगातार एक साधारण मजदूरकी ही तरह कडी मिहनत करता रहा। उस दृढ-प्रतिज्ञ कर्मनिष्ठ सम्राट्के कोपमे उसके पूर्वजोका सचित अटूट धन भरा हुआ था और साथ ही भारतके-से धन-धान्यपूर्ण सुसमृद्ध उपजाऊ महादेशकी वार्षिक आय भी वहां बराबर पहुँचती रहती थी। उसकी प्रजा ईमानदार, चतुर और प्रारम्भमे तो स्वामिभक्त भी थी। किन्तु अपने जीवन-कालका अन्त होते-होते उसने उन्हे विद्रोही और दरिद्री भी बना दिया था। धर्म-मूलक कट्टर मुसलमानी राज्यका यही अन्त है।

सुशिक्षित ससारमे यह कथन सुविख्यात है कि 'भूतकालका विवेचन कर वर्तमानको शिक्षा देना ही इतिहासका प्रधान कार्य है, जिससे भावी पीढियोको पूरा-पूरा लाभ पहुँच सके।' अतएव उसके समकालीनोके आंखो-देखे विवरणोके आधारपर लिखा गया औरगजेबका प्रामाणिक इतिहास भारतीय शासन एव सस्कृतिके नेताओके लिए स्थायी महत्त्वका एक बहुत ही हितकर उदाहरण है।

यदुनाथ सरकार

भाग 1

अध्याय १

आदि जीवन-काल : १६१८-१६५८ ई०

१. उसके शासन-कालका महत्त्व

औरंगजेबका जीवन-चरित्र कोई ६० वर्षका भारतवर्षका इतिहास ही हो जाता है। १७ वी शताब्दीके पिछले पचास वर्षों तक (१६५८-१७०७) वह शासन करता रहा। उसका शासन-काल अपने इस देशके इतिहासमे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसके आधिपत्यमे मुगल-साम्राज्यकी सीमाएँ अपनी अंतिम हद तक पहुँच गई थी। प्रारम्भिक कालसे लेकर अंग्रेजी राज्य की स्थापना होने तक भारतमे ऐसे विशाल साम्राज्यकी स्थापना कभी नही हुई थी। गजनी से लेकर चटगाँव तक और काश्मीरसे लेकर कर्नाटक तक भारतीय महादेश एक ही शासकके आधीन था। इस्लामने भारतमे अपना आखिरी कदम इसी शासन-कालमे बढाया। विस्तार मे अभूतपूर्व होते हुए भी इस विशाल-साम्राज्यकी राजनैतिक एकता अक्षुण्ण थी। इस साम्राज्यके विभिन्न प्रांतोका प्रबंध छोटे राजाओंके हाथमे न रह कर सीधे बादशाह द्वारा नियुक्त कर्मचारियो द्वारा ही होता था। इसी विशेषताके कारण औरंगजेबका भारतीय साम्राज्य अशोक, समुद्रगुप्त या हर्षके साम्राज्यसे कही अधिक विशाल तथा परिपूर्ण था।

किंतु जिस शासन-कालमे इतना विशाल भारतीय साम्राज्य स्थापित हुआ जितना अंग्रेजोंके आधिपत्यसे पहले कभी नही हुआ था, इसी समयमे इस साम्राज्यके पतन व छिन्न-भिन्न होनेके लक्षण

भी स्पष्ट दिखाई देने लगे। फारसके नादिरशाह व अफगानिस्तानके अहमदशाह ने मुगल बादशाहतका खोखलापन व उसकी राजधानी दिल्लीकी महत्त्वहीनता सिद्ध कर दी थी। मराठोने दिल्लीके साम्राज्यमे अपना एकाधिपत्य स्थापित कर मुगल सम्राटोको तिरस्कृत किया था। किंतु इन सबसे बहुत पहले, औरगजेबकी आँखे बद होनेसे भी पूर्व, मुगल साम्राज्यके खजाने और गौरवका दिवाला निकल चुका था, उसकी शासन-व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी, और मुगल-राजसत्ताने देश मे शाति व राज्यकी एकता बनाये रखनेमे अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली थी।

औरगजेबका शासनकाल दो और बातोके लिए भी उल्लेखनीय है। इन्ही दिनो अल्पकालीन मराठा-राजवशके भग्नावशेषोमे से मराठा जातीयताका (Nationality) उद्भव हुआ, और सिख सम्प्रदायने भी इसी शासन-कालमे सैनिकरूप धारण करके मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध तलवार उठाई। अतएव ईसाकी १८ वी तथा प्रारम्भिक १९ वी शताब्दियोकी प्रमुख ऐतिहासिक धाराओका प्रारभ औरगजेबके शासन-कालमे उसकी नीतिके कारण ही हुआ।

मुगल-साम्राज्य दूजके चाँदके समान बढता हुआ अपने पूर्णत्वको पहुँचा और उसके बाद ही पुन स्पष्ट रूपसे घटने लगा, तब तो उसी शासन-कालमे एक नये युगके प्रभातकी झलक राजनैतिक आकाशमे दिखाई दी। भारतके भावी शासकोने अपने पैर अच्छी तरह जमा लिये थे। ईस्ट इडिया कम्पनीने १६५३ ई० मे मद्रास प्रात व १६८७ई० मे बबई प्रातकी स्थापना की थी। १६९० ई०मे कलकत्ताकी नीव पडी। इस प्रकार युरोपवासियोके हाथमे आये हुए इन आश्रय-स्थानोने एक साम्राज्यके भीतर दूसरे ही स्वाधीन राज्यका रूप धारण कर लिया।

१७वी शताब्दीके आखिर तक मुगल-साम्राज्यकी जड भीतर ही भीतर खोखली हो गई थी। खजाना खाली पडा था। मुगल-सेना दुश्मनो के हाथो पराजित व अपमानित हो चुकी थी, देशमे अलग-

अलग खड-राज्य स्थापित होने लगे और मुगल-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होनेको ही था। साम्राज्यका नैतिक पतन भौतिक पतनसे भी अधिक भयकर था। लोगोकी निगाहमे मुगल-साम्राज्यके प्रति आदरका भाव नाम-मात्रको भी नही रह गया था, सरकारी कर्मचारी ईमानदारी व कार्य-कुशलता सर्वथा खो चुके थे, मन्त्रियो और राजाओ दोनोमे ही शासन-पटुताकी पूरी-पूरी कमी थी, सेना विलकुल निस्तेज तथा वलहीन हो चुकी थी।

इस सर्वव्यापी पतनका कारण क्या था ? सम्राट न तो व्यसनी था और न बुद्धिहीन या आलसी ही। उसकी मानसिक सतर्कता प्रसिद्ध थी। वह राजकाजमे उसी लगनसे काम करता था जो अधिकतर मनुष्य विषय-भोगोमे दिखाते हैं। धार्मिक पुस्तको या आचार विचारसवधी ग्रथोमे सगृहीत मानवीय ज्ञान तथा विद्याके भडारपर उसने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। साथ ही अपने पिताके शासन-कालमे उसे युद्ध तथा कूटनीतिकी पूरी-पूरी शिक्षा भी प्राप्त हो चुकी थी।

फिर भी ऐसे सम्राटके ५० वर्षके शासनका परिणाम निकला पूर्ण असफलता और घोर अशाति। यही राजनैतिक विषमता उसके शासन-कालको राजनीति और भारतीय इतिहासके विद्यार्थीके लिए वहुत ही शिक्षाप्रद तथा चित्ताकर्षक वना देती है।

२. औरंगजेवके जीवनकी दु:खांत कहानीका विकास

औरगजेवका जीवन एक लम्वी दु खात कहानी थी, वह एक ऐसे मनुष्यकी कहानी थी, जो जीवन-भर अदृश्य परतु निष्ठुर कठोर भाग्यके साथ असफलतापूर्वक लडता ही रहा और जिसने यह दिखा दिया कि किस प्रकार कठिनसे कठिन पुरुषार्थ भी समयके चक्रके सामने विफल ही होता है। ५० वर्षके कठिन शासनका अत घोर असफलतामे ही हुआ, तथापि बुद्धि, चरित्र और साहसमे औरगजेव-का स्थान एशियाके वडेसे वडे शासकोमे है। इतिहासके इस दु खात

भी स्पष्ट दिखाई देने लगे। फारसके नादिरशाह व अफगानिस्तानके अहमदशाह ने मुगल बादशाहतका खोखलापन व उसकी राजधानी दिल्लीकी महत्त्वहीनता सिद्ध कर दी थी। मराठोने दिल्लीके साम्राज्यमे अपना एकाधिपत्य स्थापित कर मुगल सम्राटोको तिरस्कृत किया था। किंतु इन सबसे बहुत पहले, औरंगजेबकी आँखे बद होनेसे भी पूर्व, मुगल साम्राज्यके खजाने और गौरवका दिवाला निकल चुका था, उसकी शासन-व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी, और मुगल-राजसत्ताने देश मे शाति व राज्यकी एकता बनाये रखनेमे अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली थी।

औरंगजेबका शासनकाल दो और बातोके लिए भी उल्लेखनीय है। इन्ही दिनो अल्पकालीन मराठा-राजवशके भग्नावशेषोमे से मराठा जातीयताका (Nationality) उद्भव हुआ, और सिख सम्प्रदायने भी इसी शासन-कालमे सैनिकरूप धारण करके मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध तलवार उठाई। अतएव ईसाकी १८ वी तथा प्रारम्भिक १९ वी शताब्दियोकी प्रमुख ऐतिहासिक धाराओका प्रारभ औरंगज़ेबके शासन-कालमे उसकी नीतिके कारण ही हुआ।

मुगल-साम्राज्य दूजके चाँदके समान बढता हुआ अपने पूर्णत्वको पहुँचा और उसके बाद ही पुन स्पष्ट रूपसे घटने लगा, तब तो उसी शासन-कालमे एक नये युगके प्रभातकी झलक राजनैतिक आकाशमे दिखाई दी। भारतके भावी शासकोने अपने पैर अच्छी तरह जमा लिये थे। ईस्ट इडिया कम्पनीने १६५३ ई० मे मद्रास प्रात व १६-८७ई० मे बबई प्रातकी स्थापना की थी। १६९० ई०मे कलकत्ताकी नीव पडी। इस प्रकार युरोपवासियोके हाथमे आये हुए इन आश्रय-स्थानोने एक साम्राज्यके भीतर दूसरे ही स्वाधीन राज्यका रूप धारण कर लिया।

१७वी शताब्दीके आखिर तक मुगल-साम्राज्यकी जड भीतर ही भीतर खोखली हो गई थी। खजाना खाली पडा था। मुगल-सेना दुश्मनो के हाथो पराजित व अपमानित हो चुकी थी, देशमे अलग-

अलग खड-राज्य स्थापित होने लगे और मुगल-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होनेको ही था। साम्राज्यका नैतिक पतन भौतिक पतनसे भी अधिक भयकर था। लोगोकी निगाहमे मुगल-साम्राज्यके प्रति आदरका भाव नाम-मात्रको भी नही रह गया था, सरकारी कर्मचारी ईमानदारी व कार्य-कुशलता सर्वथा खो चुके थे, मत्रियो और राजाओ दोनोमें ही शासन-पटुताकी पूरी-पूरी कमी थी, सेना विलकुल निस्तेज तथा वलहीन हो चुकी थी।

इस सर्वव्यापी पतनका कारण क्या था ? सम्राट न तो व्यसनी था और न बुद्धिहीन या आलसी ही। उसकी मानसिक सतर्कता प्रसिद्ध थी। वह राजकाजमे उसी लगनसे काम करता था जो अधिकतर मनुष्य विषय-भोगोमे दिखाते हैं। धार्मिक पुस्तको या आचार विचारसवधी ग्रंथोमे सगृहीत मानवीय ज्ञान तथा विद्याके भडारपर उसने पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। साथ ही अपने पिताके शासन-कालमे उसे युद्ध तथा कूटनीतिकी पूरी-पूरी शिक्षा भी प्राप्त हो चुकी थी।

फिर भी ऐसे सम्राटके ५० वर्षके शासनका परिणाम निकला पूर्ण असफलता और घोर अशांति। यही राजनैतिक विषमता उसके शासन-कालको राजनीति और भारतीय इतिहासके विद्यार्थीके लिए वहुत ही शिक्षाप्रद तथा चित्ताकर्षक वना देती है।

२. औरंगजेबके जीवनकी दुःखांत कहानीका विकास

औरगजेबका जीवन एक लम्बी दु खात कहानी थी, वह एक ऐसे मनुष्यकी कहानी थी, जो जीवन-भर अदृश्य परतु निष्ठुर कठोर भाग्यके साथ असफलतापूर्वक लडता ही रहा और जिसने यह दिखा दिया कि किस प्रकार कठिनसे कठिन पुरुषार्थ भी समयके चक्रके सामने विफल ही होता है। ५० वर्षके कठिन शासनका अत घोर असफलतामे ही हुआ, तथापि बुद्धि, चरित्र और साहसमे औरगजेबका स्थान एशियाके वड़ेसे वडे शासकोंमे है। इतिहासके इस दु खात

कथानकका विकास आश्चर्यजनक पूर्णताके साथ एक पूरे नाटकके परपरागत क्रमानुसार ही घटित हुआ ।

औरगजेबके जीवनके प्रारभिक ४० वर्ष राज्यके इस उच्चतम पदके उपयुक्त बननेकी तैयारीमे, लगातार कठिन आत्म-शिक्षणमे ही व्यतीत हुए (मेरे बडे ग्रथका खड १) । इस प्रारभिक कालके बाद एक वर्ष सिंहासनके लिए कठिन युद्धमे बीता (खड २)। इस युद्धमे उसकी सारी शक्तियोकी पूरी-पूरी परीक्षा हुई, जिनके परिणाम—स्वरूप उसकी वीरता, साहस व बुद्धिमत्ताने दिल्लीका सुनहला छत्र पारितोपिकके रूपमे उसे दिया । शासन-कालके पहले २३ वर्ष शाति व समृद्धिपूर्ण थे, तब वह उत्तरी भारतकी राजधानियोमे स्थायी रूप से रहा (खड ३) । उसके मार्गसे सब शत्रु हट चुके थे । भारतका विशाल साम्राज्य उसकी आज्ञाओको सिरमाथे चढाता था, और उसके दृढ व सतर्क शासनके परिणामस्वरूप धन व सस्कृति बढ रहे थे । तब औरगज़ेब सासारिक सुख और यशकी सर्वोच्च चोटीपर पहुँच गया-सा जान पडने लगा था । उसके जीवन-नाटकका यह तीसरा अक था । इसके पश्चात उसका पतन प्रारभ हुआ । निर्दयी विधाताने यूनानी दुखात कथानक (Greek Tragedy) के समान उसके कुल-मे ही उसका शत्रु पैदा कर दिया । शाहजहाँका विद्रोही पुत्र बहुत दिनो तक अपनी जीतका आनन्द न ले सका, उसका प्यारा पुत्र मुहम्मद अकबर १६८१ ई० मे अपने पिता औरगज़ेबके ही विरुद्ध विद्रोही बन बैठा ।

इस पराजित विद्रोही शाहजादेने मराठा राजाके यहाँ शरण ली और साथ ही वह औरगजेबको भी दक्षिण खीच ले गया, औरग-जेबके अन्तिम २६ वर्ष प्रवासमे वही बीते । साम्राज्यका कोप, उसकी सेना व सगठित शासन-पद्धति और स्वय सम्राट का स्वास्थ्य भी लगातार असफल युद्धमे नष्ट हुए । परन्तु प्रारभमे उसके इन प्रयत्नो-की विफलता और उसके जीवनके आगामी दुखपूर्ण अन्तको भाग्य-चक्रने औरगजेब व उसके समसामयिकोकी आखोसे छिपा रक्खा था ।

उसके जीवनके चौथे भागमे (जो इस इतिहासके चौथे खडमे वर्णित है) ऊपरी दृष्टिसे सब कुछ ठीक ही मालूम होता था। बीजापुर व गोलकुण्डाके राज्य साम्राज्यमे मिला लिए गए थे, सगरका बेरड़ सामन्त अधीनता स्वीकार करने पर विवश हो गया था, मराठा राजा मार डाला गया था, उसकी राजधानी जीत ली गई थी, और उसका सारा कुटुम्ब भी सन् १६८९ ई०मे बन्दी बनाया जा चुका था। यो तब औरंगजेबकी विजयकी सम्पूर्णतामे कोई त्रुटि नही दिखाई देती थी। इस समय साम्राज्यकी चमक-दमकसे चकाचौध होकर अधिकतर लोग उसके भविष्यके बारेमे कुछ भी सोच न पाते थे, तथापि कुछ विचारशील पुरुषोको आगामी पतनके अशुभ लक्षणोकी झलक इधर उधर स्पष्ट देख पड़ने लगी थी। अपने जीवनके तीसरे भागमे जो बीज औरंगज़ेबने फलकी ओर ध्यान दिये बिना अनजाने ही बोये थे, चौथे भागमे वे उगने लगे और पाँचवें अर्थात् अन्तिम भागमे उनकी विनाश-कारिणी फसल उसे ही काटनी पडी।

औरंगज़ेबके जीवनकी यह दु खान्त कथा उसके इन अन्तिम १८ वर्षमे (१६८९-१७०७) घटित हुई जिसका विवरण पांचवे भागमे किया गया है। धीरे धीरे किन्तु साथ ही अधिकाधिक स्पष्टताके साथ यह दु खपूर्ण कथानक विकसित होता है, और अन्तमे औरंगज़ेबने अपने विरुद्ध इकट्ठी हुई इन शक्तियोका असली स्वरूप व समयकी सच्ची विरोधी गतिको पहचान लिया, फिर भी उसने सघर्षसे मुंह नही मोडा। इस सघर्षकी यह पूर्ण असफलता उसको व उसके अधिका-रियोको पूरी तरह ज्ञात हो गई, तथापि उसकी कोशिश पूर्ववत् चलती ही रही। उसने नये साधनो तथा उपचारोका प्रयोग किया और राज-नैतिक परिस्थितिमे परिवर्तन और शत्रु-सेनाके सचालन आदिकी नूतन पद्धतिके साथ ही वह भी अपनी चाले बदलता रहा। प्रारम्भमें वह अपने सेनाध्यक्षोको युद्धमे भेजता था और स्वय केन्द्रसे उनका सचालन करता था। उनके कुछ सेनापति अपने कार्यमे असफल होते रहे। तब ८२ वर्षका यह वयोवृद्ध सम्राट् स्वय युद्धस्थलमे उतर पड़ा

श्रौर ६ वर्ष (१६९९-१७०५) तक उसने स्वय युद्ध सचालन किया। जब मृत्युका प्रथम सन्देश उसके पास पहुँचा तभी जाकर वह अहमदनगरको लौटा। तभी बडे दु खके साथ उसने साफ-साफ देखा कि अहमदनगरमे ही उसके जीवन-नाटकका अन्तिम दृश्य खेला जावेगा, यही उसकी जिन्दगीर सफरका खात्मा होना वदा था।

३ उसके इतिहासकी आधार-सामग्री

सौभाग्यवश मुगल-कालीन भारतकी साहित्यिक भाषा फारसीमे लिखी हुई औरगजेवकी जीवनसम्वन्धी सामग्री वहुत अधिक मिलती है। सवसे पहिले हमारे सामने 'पादशाह नामा' आता है, जिसमे तीन विभिन्न लेखकोने वारी बारीसे शाहजहाँके राज्य-कालका सरकारी वृत्तान्त तीन अलग अलग भागोमे लिखा है। 'आलमगीर नामे' मे औरजेगवके राज्य शासनके पहिले १० वर्षोंका वर्णन है। उसके राज्य-कालके पिछले ४० वर्षोका वर्णन उसकी मृत्युके वाद सरकारी कागज-पत्रोके आधार पर सक्षेपमे लिखी गई पुस्तक 'मासीर-इ-आलमगीरी' मे मिलता है।

इनके वाद अन्य गैर सरकारी इतिहासोमे मासूम, वगालके रोजवानी सैनिक काव्यकार, आकिलखाँ, और खफीख़ाँके ग्रथ उल्लेखनीय है। इन ग्रथो की रचना सरकारी कर्मचारियोने की थी, किन्तु वे वादशाहके सामने जानेवाले न थे। यही कारण है कि राज्याधिकारियोके इन वर्णनोमे सरकारी इतिहासोमे न पाई जानेवाली अनेक गुप्त वातोका हाल मिलता है, परन्तु उनकी तारीखो व नामोमे कई वार गलतियाँ भी पाई जाती है, तथा उनके वहुत-से वर्णान वहुत ही सक्षिप्त तथा अधूरे ही होते है।

दो हिन्दुओने भी फारसी भाषामे औरगजेवके राज्यकालका इतिहास लिखा है। एक 'नुस्खा-इ-दिलकश' है। इसे औरगजेवके सेनानायक दलपतराव वुँदेलाके उत्साही कर्मचारी भीमसेन बुरहानपुरीने लिखा था। वह वहुत ही उद्योगी और तीव्र बुद्धिवाला यात्री था।

भौगोलिक विशेपताओंकी ओर उसकी दृष्टि विशेप तौर पर जाती थी मथुरासे मलावार तक जो कुछ भी उसने देखा उसका पूरा-पूरा विवरण उसने लिखा है। वाल्यकालसे लेकर उसने प्राय अपना सारा जीवन दक्षिणमे ही वताया था जिससे वहाँकी घटनाओ सम्वन्धी इतिहासके-लिए उसका यह ग्रथ वडा ही उपयोगी है। इसी प्रकार गुजरातके पाटण नगरमे जीवन भर रह कर शेख-उल्-इस्लामकी सेवा करनेवाले कर्मचारी, ईश्वरदास नागर रचित 'फतूहात-इ-आलमगीरी' ग्रन्थ है, जिसमे राजपूतो सम्वन्धी ऐतिहासिक विवरण वहुत महत्त्वपूर्ण है।

इन साधारण इतिहासोके अतिरिक्त हमे उस समयकी विशिष्ट घटनाओपर खास तौरपर प्रकाश डालनेवाली अनेक पुस्तिकाएँ भी मिलती है। इनमे तत्कालीन महान् व्यक्तियो और घटनाओके विशेप वर्णन है, जैसे नियामत खाँ अलीकृत गोलकुण्डाके घेरेका वर्णन, शहावुद्दीन तलीशकी कुचविहार, आसाम और चिटगाँवकी विजयसम्वन्धी डायरी, व औरगजेवके शासनके अन्तिम समयसे प्रारम्भ होने वाले कालपर प्रकाश डालनेवाले इरादत खाँ, आदि वहादुरशाह प्रथमके कुछ कर्मचारियोके सस्मरण। गोलकुण्डा और वीजापुरके दोनो दक्षिणी राज्योके इतिहासोमे भी उन राज्योंके प्रति किए गए मुगलोके व्यवहारपर प्रकाश पडता है। आसामसम्वन्धी इतिहासके लिए हमे वहुत ही महत्त्वपूर्ण तद्देशीय 'वुरजी' ग्रन्थ मिलते है।

औरगजेवके राज्य-कालके अनेकानेक विशिष्ट कालोपर अधिक एव नया प्रकाश डालनेवाले वहुत-से मौलिक साधन प्रथम वार मुझे मिले है, जिनमे दिया हुआ विवरण उपयुक्त सरकारी वृत्तान्तोंसे भी कही अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनमे सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण है शाही दरवारकी घटनाओ का तत्कालीन हस्तलिखित दैनिक विवरण (अखवार-इ—दरवार—इ—मुअल्ला), जो जयपुर राज्यके मुहाफिजखाने और रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दनके पुस्तकालयमे सुरक्षित है। साथ ही साथ ईसायी १७वी

शताब्दीमे भारतके ऐतिहासिक रगमचके अभिनेताओ, तत्कालीन महत्त्वपूर्ण पुरुषोके निजी पत्रोको भी भूला नही जा सकता है। मेरे निजी सग्रहमे औरगजेबके शासन-कालके ऐसे कोई छ हजार पत्र हैं, जिनमेसे एक हजारसे अधिक अकेले औरगजेबने ही लिखे थे। इन पत्रोमे हमे उस समयकी घटनाओका ज्यो-का-त्यो वर्णन मिलता है। अपनी निजी उद्देश्य-पूर्तिके लिए इतिहासकारो द्वारा की गई कोई भी आवश्यक काट-छाँट हम उनमे नही पाते हैं। तत्कालीन भारतीय इतिहासके निर्माताओकी आशाओ तथा आशकाओ, योजनाओ और उनके व्यक्तिगत मतोका सच्चा चित्रण हमे उनमे मिलता है।

औरगज़ेबके समयमे आनेवाले विभिन्न यूरोपियन यात्री, टेवरनियर, बरनियर, करेरी, मनुची, आदिने भी उसके राज्य एव शासनका विस्तृत विवरण लिखा है। इनकी रचनाओमे उस समयकी सामाजिक स्थिति, व्यापार तथा उद्योग-धन्धो और भारतमे ईसाई धर्मके प्रचारके इतिहासका पूरा-पूरा उल्लेख है। इन सब बातोके लिए यह रचनाएँ नि सन्देह बहुत ही उपयोगी हे।

४. जन्म और शिक्षा

मुहीउद्दीन मुहम्मद औरगजेब, शाहजहाँ और मुमताज़ महलकी सातवी सन्तान था। इसका जन्म दोहद* मे १५ ज़ीकाद, सन् हिजरी १०२७ (२४ अक्तूबर, १६१८ ई०) के दिन हुआ था। यही औरगजेब बादमे आलमगीर प्रथमके नामसे दिल्लीके राज्यसिहासन पर बैठा। उसकी तीव बुद्धि और स्वाभाविक विलक्षण स्मृतिके विवरणपर हमे सहज ही विश्वास हो जाता है। कुरानका ज्ञान तथा मुहम्मद पैगम्बरके (हदीस) परम्परागत कथनोसम्बन्धी उसका

* दोहद (२२° ५० उ०, ७४° २० पू०) बम्बई सूबेके पचमहाल जिलेमे इसी नामके तालुकेका प्रधान शहर है। यह शहर पश्चिमी रेलवेके दोहद नामक स्टेशनसे दक्षिणमे बसा है।

अध्ययन गम्भीर और सम्पूर्ण था, यह बात उसके पत्रोमे स्पष्टतया झलकती है। हर समय वह उनके उपयुक्त उदाहरण देने को तैयार रहता था। अरबी व फारसी भाषाओपर उसका पूरा पूरा अधिकार था, तथा उन भाषाओके पडितकी तरह उन्हे लिख और बोल सकता था। उस समय तक मुगल-दरबारके घरेलू जीवनमे हिन्दुस्थानीका प्रयोग होने लगा था, यही उसकी मातृभाषा भी थी। उसे हिन्दीका भी साधारण ज्ञान था। साधारण बातचीतमे वह हिन्दीकी लोक-प्रिय कहावतो को भी काममे लाता था।

निरर्थक-काव्य साहित्यकी औरंगजेब उपेक्षा करता था। प्रशसात्मक काव्यसे उसे घृणा थी। उपदेशात्मक, सुसम्मत कविता उसे पसन्द थी। धार्मिक ग्रन्थ और विवेचनाएँ, कुरानकी टीकाएँ, मुहम्मदके जीवनसम्बन्धी वृतान्त, इमाम मुहम्मद गजलीकी कृतियां मुनीर-निवासी शेख शर्फ याहिया और शेख जेनुद्दीन कुतुब मुही शीराजीके चुने हुए पत्र तथा इसी प्रकारके अन्य लेखकोकी रचनाएँ वह बडे प्रेमसे पढता था।

चित्रकारी उसे कभी भी पसन्द न रही थी। और अपने राज्य-कालके दस वर्षकी पूर्तिके उपलक्षमे होनेवाले उत्सवके समय उसने गायन विद्याको अपने राज-दरबारसे निकाल बाहर किया था। चीनी मिट्टीके सुन्दर बर्तन उसे बहुत ही प्रिय थे। अपने पिताके समान स्थापत्य कलासे उसे कोई प्रेम न था। अपने राज्य-कालमे उसने कोई भी उल्लेखनीय सुन्दर मसजिद,* सुविशाल भवन या

---

* दिल्लीके लाल किलेकी मोती मस्जिदमे हमे एक उल्लेखनीय अपवाद अवश्य मिलता है। १० दिसम्बर, १६५७ ई० को इसकी नीव डाली गई और पाच वर्षमे बनकर पूरी हुई। इसके बनानेमे एक लाख साठ हजार रुपये खर्च हुए थे (आ० ना०, पृ० ४६८)। लाहौरमे औरंगजेबकी बनवाई मसजिद उस शहरमे सर्व-सुन्दर नहीं है। अपनी बेगम दिलरस बानूकी मजार औरंगाबादमें उसने जो मकबरा बनवाया था, वही उसके शासन-कालकी सर्व-श्रेष्ठ इमारत है।

मकबरा नही बनवाया। उसकी विजय-सूचक साधारण मसजिदे और दक्षिण व पश्चिमके राज-पथोपर पाई जाने वाली सराये आदि अवश्य पाई जाती है।

५. हाथीसे मुठभेड

वाल्यकालकी एक घटनाने औरगजेवकी ख्याति सारे भारत-वर्प मे फैला दी थी। २८ मई, १६३३ के दिन शाहजहॉने आगरामे जमनाके समतल तटपर सुधाकर और सूरत-सुन्दर नामक दो हाथियोकी लडाईका आयोजन किया। कुछ दूर तक दौडनेके वाद वे दोनो हाथी किलेके उस झरोखेके नीचे, जहॉ सुवहमे वादशाह दर्शन देता था, आपसमे भिड गये। हाथियोकी यह लडाई देखनेको उत्सुक शाहजहॉ शीघ्रतासे वहॉ पहुँचा। उसके तीनो वडे पुत्र उससे कुछ कदम आगे घोडेपर सवार चल रहे थे। युद्ध देखनेके अभिप्रायसे औरगज़ेव हाथियोके वहुत ही निकट पहुँच गया।

कुछ समय वाद दोनो हाथी एक दूसरेको छोडकर पीछे हटे। अपने प्रतिद्वन्द्वीको पास न पाकर सुधाकरने वही खडे औरगज़ेबपर हमला कर दिया। यह चौदह-वर्पीय शाहजादा अपने घोडेको सम्हाले वही डटा रहा और नि शक होकर उसने आक्रमण करते हुए हाथीके सिरपर भाला फेका। चारो ओर आतक छा गया और लोग भागने लगे। हाथीको डरानेके लिए पटाखे आदि छोडे गए पर सव प्रयत्न व्यर्थ हुए। हाथी वढा चला आया, और अपने वडे-वडे दॉतोकी टक्कर मारकर उसने औरगज़ेवके घोडेको धरतीपर गिरा दिया। परन्तु वह वहादुर शाहजादा फुर्तीसे उठ खडा हुआ और उसने खडे खडे ही तलवारसे उस क्रुद्ध हाथीका सामना किया। उसी समय उसका वडा भाई शुजा घोडा दौडा कर वहॉ जा पहुँचा और अपने भालेसे उस हाथीको घायल किया। राजा जयसिंह भी वहॉ आ गया और उसने भी हाथीपर वार किया। सूरत-सुन्दर हाथी भी तव तक फिरसे युद्धके लिए उस ओर आया। भालोकी चोटो और पटाखोकी

आवाजसे त्रस्त सुधाकर चिघाडता हुआ भागा और सूरत-सुन्दरने उसका पीछा किया। इस प्रकार औरगजेब बच गया। शाहजहाँने उसे छातीसे लगाया और 'बहादुर' की पदवी देकर उसकी वीरताकी प्रशसा की। दरबारियोंने भी मुक्तकठसे समर्थन करते हुए कहा कि पुत्र भी पिताके समान पूरा साहसी था, और यो उन्होंने स्मरण दिलाया कि अपनी जवानीमे किस प्रकार केवल तलवार हाथमे लिए हुए शाहजहाँने भी जहाँगीरके सामने एक जगली शेरका सामना किया था।

जब शाहजहाँने इस अविवेकी साहसके लिए प्यारपूर्वक उसे डाँटा, तब औरगजेबने उत्तर दिया कि इस 'युद्धमे यदि मै मारा भी जाता तो लज्जाकी बात न होती। मृत्यु तो बादशाहोपर भी अपना पर्दा डालती है, इसमे अपमान क्योकर होता है।' १३ दिसम्बर १६३४के दिन औरगजेबको १० हजार घोडोका शाही मनसब मिला।

६. बुन्देला युद्ध, १६३५

ओरछानरेश वीरसिंह देवने जहाँगीरके आदेशसे अबुल फजलका वध किया और और इसी प्रकार उनका कृपापात्र बनकर बहुत धनी तथा शक्तिशाली हो गया। सन् १६२७ ई० मे उसका पुत्र जुझार-सिंह गद्दीपर बैठा और शाहजहाँके राज्य-कालमे विद्रोही हो गया। उसने गोडोकी पुरानी राजधानी चोरागढको घेरकर वहाँके राजा प्रेमनारायणको मार डाला। वहाँ दस लाखका खजाना भी उसके हाथ लगा। मृत राजाके पुत्रने शाहजहाँकी शरण ली (१६३५ ई०)।

शाहजहाँने बुंदेलखण्डपर आक्रमण करनेके लिए तीन सेनाएँ भेजी। बुन्देलोकी एक दूसरी शाखाके वशज देवीसिहको राजसिंहा-सनपर बैठानेका वचन दिया, जिसपर उसने इन सेनाओकी पूरी पूरी सहायता की। औरगजेब इन तीनो सेनाओका सर्वोच्च नायक बनाया गया था, परन्तु उसे ये अधिकार नाम-मात्रको ही दिये गए थे। सेनाके पिछले हिस्सेमे ही उसे रहना पडता था, तथापि उसकी

सलाह लिए विना सेनापति कुछ भी नही कर सकते थे।

२ अक्तूबर, १६३५ ई० को ओरछाके निकट देवीसिहने एक पहाडीपर धावा बोल दिया और ४ अक्तूबरको मुगलोने ओरछापर अधिकार कर लिया। जुझार हिम्मत हारकर धामोनी भाग गया और वहाँसे नर्मदा पार कर चौरागढ चला गया। मुगलोने १८ अक्तूबरको धामोनीपर कब्जा करनेके बाद उसका पीछा किया और चाँदा तथा देवगढके गोड राज्यो तकमे उसे जा खदेडा। अन्तमे जुझार जगलके बीच सोता हुआ गोडो द्वारा मार डाला गया। ओरछामे वीरसिहके बनाए हुए श्रेष्ठ मन्दिरको तोड कर उसके स्थान पर मसजिद बनाई गई। इस चढाईमे एक करोडका लूटका माल मुगलोके हाथ लगा, जिसमे वीरसिहका गुप्त कोप भी सम्मिलित था।

७. औरगजेबकी दक्षिण की प्रथम सूबेदारी

मलिक अम्बरकी मृत्युके कुछ समय बाद सन् १६२७ मे जब शाहजहाँ गद्दीपर बैठा, तब उसने प्रारम्भसे ही दक्षिणमे आक्रमण-पूर्ण नीति बरतनी शुरु की। अहमदनगरके निजामशाही राज्यकी नई राजधानी दौलताबादपर उसने अपना अधिकार जमा लिया, और साथ ही उस राज्यके अन्तिम सुलतान हुसेनशाहको भी कैद कर लिया। किन्तु उसी समय एक नई उलझन पैदा हो गई। बीजापुर (आदिलशाही) और गोलकुण्डाके (कुतुबशाही) सुलतानोने अपने अपने राज्यसे लगे हुए अहमदनगरके नष्ट-भ्रष्ट राज्यके बाकी रहे प्रदेशोपर अधिकार करनेकी चेष्टा की। सुविख्यात मराठा राजा शिवाजीके पिता शाहजीने बीजापुर राज्यको सहायतासे एक नए निजामशाह सुलतानको अहमदनगर राज्यके सिहासन पर बैठाया, जो उनके हाथकी कठपुतली ही था, और तब उसके नामसे अहमदनगर राज्यके बाकी रहे प्रदेशोपर शासन करना आरम्भ किया।

शाहजहाँने वहाँ अपना अधिपत्य जमानेके भरसक प्रयत्न किये। सुव्यवस्थित शासन कार्यके लिए दौलताबाद और अहमदनगरको खानदेश सूबेसे अलग कर, उन्हे अलग ही सूबेदारके सिपुर्द किया (नवम्बर, १६३४)। युद्ध-सचालनके लिए फरवरी, १६३६ ई० मे सम्राट स्वय दक्षिण आया। ५० हजार सैनिकोकी तीन मुगल सेनाएँ बीजापुर और गोलकुण्डापर आक्रमण करनेके लिए तैयार की गई और ८००० सैनिकोकी एक और चौथी सेनाने महाराष्ट्रपर आक्रमण किया, तब तो कुतुबशाह डर गया। उसने मुगलोका अधिपत्य स्वीकार करके प्रति वर्ष दो लाख हूण (दक्षिणी भारतका सिक्का) देना स्वीकार किया।

स्वतन्त्र बने रहनेके लिए बीजापुर सुलतान तो मुगलोका सामना करनेको तत्पर हुआ। तब मुगलोकी तीनो सेनाओने बीजापुर राज्यमे घुसकर वहाँके गाँवो व खेतोको उजाडा और वहाँकी प्रजाको वे गुलाम बनाने लगी। अन्तमे मई १६३६ ई०मे समझौता हो गया। इस सधिसे अहमदनगरका सारा निजामशाही राज्य दो भागोमे बाँटा गया। बीजापुर सुलतानको भीमा और सीना नदियोके बीचवाला सोलापुर और वाँगीका, उत्तरपूर्व ओर भालकी और चिडगुपका, पूना जिला, और उत्तरी कोकणके प्रदेश मिले, जिनकी कुल आय २० लाख हूण की (८० लाख रुपये) होती थी। अहमदनगरका बाकी रहा सारा राज्य मुगल साम्राज्यके अधीन कर दिया गया। इसके अतिरिक्त आदिलशाहने मुगल सम्राट का आधिपत्य भी स्वीकार कर लिया और अपने ही समान मुगलोकी अधीनतामे रहने वाले पडोसी, गोलकुण्डा राज्यके सुलतानने मेल रखनेका वादा किया। गोलकुण्डा राज्य की सीमा मजेरा नदी तक मान ली गई। इस युद्धकी हानि-पूर्तिके लिए २० लाख रुपये भी देने स्वीकार किये। परन्तु आदिलशाह पर कोई कर नही लगाया गया।

इस प्रकार दक्षिणका मामला तय करके शाहजहाँने दक्षिणमे मुगल राज्यकी दक्षिणी सीमा निर्धारित कर दी, जिसे दक्षिणके सब

राज्योने स्वीकार कर लिया । सम्राट उत्तरी भारत को लौट गया । जाते समय औरंगजेबको दक्षिणी सूबोका सूबेदार बनाया (१४ जुलाई १६३६), और अब औरंगाबाद उसकी राजधानी बनी । खिडकी नामक गाँवके स्थानपर मलिक अम्बरने यह शहर बसाया था और अपने तीसरे लडकेके नामपर इसका नाम 'औरंगाबाद' रखनेकी आज्ञा शाहजहाँने भी दी थी ।

८. औरंगज़ेबका परिवार

औरंगजेबके चार पत्नियाँ थी —

(१) दिलरस बानू—फारसके शाह इस्माइल सफावीके छोटे पुत्रके प्रपौत्र शाह नवाजखाँकी वह पुत्री थी । इसका विवाह ८ मई १६३७ को आगरामे बडी धूमधामसे औरंगज़ेबसे हुआ था । मुहम्मद अकबरके जन्मके समय प्रसूति मे ही इसकी मृत्यु ८ अक्तूबर, १६५७ को औरंगाबादमे हुई थी । उसे औरंगाबादमे ही दफना दिया गया । मृत्युके बाद वह 'रबिया-उद्-दौरानी' याने 'आधुनिक-पवित्रात्मा-रबिया' नामसे कहलाई । उसका मकबरा दक्षिणी ताजमहलके नाम से प्रसिद्ध है । अपने पिताकी आज्ञासे औरंगजेबके पुत्र आज़मने उसकी मरम्मत करवाई थी। प्रतीत होता है, कि वह बहुत ही उद्धत स्त्री थी और फारसके राजवंशीय होनेका उसे बडा गर्व था। औरंगजेब भी उससे डरता था। ('ऐनेकडोट्स आफ औरंगजेब' स० २७) ।

(२) रहमत-उन्निसा—प्रचलित नाम 'नवाब बाई'—कश्मीरके अन्तर्गत 'राजौरी' राज्यके राजा राजूकी वह पुत्री थी । पहाडी राजपूत घरानेमे उसका जन्म हुआ था। उसके पुत्र बहादुरशाहने स्वयं सिंहासनपर बैठनेके बाद उसकी झूठी वंशावली तैयार कराई थी कि उसके आधारपर बहादुरशाह स्वयको सैयद घोषित कर सके । उसने घाटीके तले फरदापुरमे एक सराय बनवाई और औरंगाबाद शहर के पास ही बाईजीपुरा उपनगर बसाया । उसके पुत्र मुहम्मद सुलतान और मुअज्ज़मने कुसंगतिमे पडकर बादशाहकी आज्ञाओका उल्लंघन

किया, जिसके कारण उसके जीवनके अन्तिम दिन दुखमय ही रहे। उसके उपदेशोका मुअज्जमपर कोई भी असर नही हुआ और अन्तमे वह कैद कर लिया गया। अपने पति व पुत्रोके कई वर्षोके वियोगके वाद दिल्लीमे ही उसने अपनी जीवन-लीला समाप्त की (१६९१ई०)।

(३) औरगावादी महल—औरगावादमे शाहजादेके हरममे प्रवेश करनेके कारण ही उसकी इस तीसरी पत्नीको यह नाम दिया गया था। इसकी मृत्यु वीजापुरमे प्लेगके कारण १६८८ई०मे हुई थी।

(४) उदयपुरी महल—यह कामवख्शकी मॉं थी। वेनिसके समकालीन यात्री मनुचीके कथनानुसार वह दाराशिकोहके हरममे रहने वाली जार्जिया देशकी दासी थी। दाराकी हारके वाद वह अपने नए स्वामीकी उपपत्नी वन गई। इस समय उसकी अवस्था किशोर थी। वृद्धावस्था तक सम्राट उससे प्रेम करता रहा और सम्राट की मृत्यु तक उसपर वह अपना प्रभुत्व और सौन्दर्य-प्रभाव वनाए रही। उसकी सुन्दरताके प्रभावके कारण ही उसकी मद्यपानकी आदतपर औरगजेवने कभी ध्यान नही दिया और उसके पुत्र कामवख्शके अनेको अपराध क्षमा किए। औरगजेवके समान पाक मुसलमानको अपनी इस दुर्वलताके लिए अवश्य ही कभी-कभी आत्म-ग्लानि हुई होगी।

इसके अतिरिक्त वादशाहके जीवनमे एक और प्रेम-लीलाका विवरण मिलता है। प्रेमिकाकी चचलता, निपुणता, सगीत और सौन्दर्य ही इसके कारण थे। यह स्त्री थी हीरावाई, जो जैनावादी नामसे प्रसिद्ध हुई। मीर खलील नामक व्यक्तिके साथ औरगजेवकी मॉंकी वहिनका विवाह हुआ था। यह नवयुवा दासी उसीकी उपपत्नी थी। दक्षिणकी सूवेदारी के दिनोमे एक वार औरगजेव अपनी मौसीके घर वुरहानपुर गया। तव वहॉं ताप्तीके तटपर वागमे टहलते समय मौसी की अन्य दासियोके साथ उसने हीरावाईको एक वार विना घूंघटके देखा। शाहजादेकी उपस्थितिकी उपेक्षा कर फलो से लदे हुए आमके वृक्षपरसे हीरावाईने वडी चचलता पूर्वक रगमय भावसे एक आम तोडा। इस घटनामे औरगजेवपर उनके अद्वितीय सौन्दर्यका प्रभाव

पडा और वह उसपर मोहित हो गया। वडी अनुनय-विनय करके उसे वह अपनी मौसीके यहाँमे ले आया और जी-जानसे उसपर निछा-वर हो गया। औरजवकी सारी प्रार्थनाओको अनसुनी करके हीरा-वाईने उसे एक दिन मद्यपानके लिए वाध्य किया। निराश होकर अन्त मे जव औरगजेवने प्याला ओठोसे लगाना चाहा त्योही हीरावाईने उसके हाथसे मदिराका वह प्याला छीन लिया और वोली—मेरा आशय केवल तुम्हारा प्रेम परखना था न कि तुम्हे पापके गढेमे गिरानेका। इस प्रेमिका की जीवन-लीला उसके यौवन-कालमे ही समाप्त हो गई। इसकी मृत्युका शाहजादेको वडा ही दु ख रहा। औरगावादमे एक सरोवरके पास उसे दफनाया गया।

औरगजेवके अनेक सन्ताने थी। उसकी प्रधान वेगम दिलरस वानूके ही पाँच वच्चे हुए—

(१) जेबुन्निसा—यह पुत्री १५ फरवरी १६३८ ई०को दौलता-वादमे पैदा हुई। इसकी मृत्यु २६मई १७०२ को हुई। दिल्लीमे कावुल-दरवाजेके पास 'तीस हजार वृक्षवाले' वागमे इसे दफनाया गया था। रेलवे वनानेके लिए इसका मकवरा तुडवा दिया गया। अपने पिताकी-सी तीव्र बुद्धि और साहित्य-प्रियता उसमे भी थी। इसका निजी पुस्तकालय भी वहुत वडा था। अनेको विद्वान् उसके आदेशानुसार नए-नए ग्रन्थ लिखने और हस्तलिखित पुस्तकोकी नकल करनेके लिए नियुक्त थे, जिनको वह अपने निजी खर्चसे ही पर्याप्त वेतन देती थी। वह स्वय कविता भी करती थी। औरगजेव कवितासे घृणा करता था, एव कवियोको आश्रय देकर वह शाही दरवारसे न प्राप्त होनेवाली इस वडी कमीको पूरा करती थी। 'मखफी' (अज्ञात) उपनामसे उसने अनेको गीत फारसीमे लिखे। परन्तु 'दीवाने मखफी' नामक जो ग्रथ आजकल प्राप्त है, वह उसका लिखा नही है।

(२) जीनत-उन्निसा—वादमे वह 'पादिशाह वेगम' नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका जन्म भी ५ अक्तूबर १६४३ ई० को औरगावादमे हुआ था। अपने वृद्ध पिताकी मृत्यु-पर्यन्त कोई २५ वर्ष तक दक्षिणमे वह

शाही राजघरानेका सारा काम-धन्धा देखती रही। अपने पिताके बाद भी वह कई वर्षों तक जीवित रही, और औरगज़ेबके उत्तराधिकारी उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे, वह एक महान-कालकी पवित्र स्मृति समझी जाती थी। इतिहास-लेखकोंने उसकी पवित्रता और दान-शीलताकी बडी प्रशसा की है। इसकी मृत्यु ७ मई १७२१ ई० को दिल्ली मे हुई और 'जीनत-उल्-मसजिद' नामक आलीशान मसजिदमें उसे दफनाया गया।

(३) जुबदत्-उन्निसा — इसका जन्म २ सितम्बर १६५१ ई० को मुलतानमे हुआ था। इसका विवाह अपने सगे चचेरे भाई भाग्य-हीन दाराशिकोहके दूसरे पुत्र सिपरशिकोहके साथ ३० जनवरी १६७३ ई० को हुआ और फरवरी १७०७मे उसकी मृत्यु हुई।

(४) मुहम्मद आज़म—इसका जन्म २८ जून १६५३ ई० को बुरहानपुरमे हुआ। पिताकी मृत्युके बाद वह उत्तराधिकार के लिए युद्ध करता हुआ सन् १७०७ ई० की जून मे जाजवमे मारा गया।

(५) मुहम्मद अकबर—इसका जन्म ११ सितम्बर १६५७ ई० को औरगाबादमे हुआ। भारत छोडकर वह फारस चला गया और वही नवम्बर १७०४ मे मर गया। उसे मशहदमें दफनाया गया।

नवाबबाईसे बादशाहके तीन सन्ताने हुई :—

(६) मुहम्मद सुलतान—इसका जन्म १९ दिसम्बर १६३९ई० को मथुरामे हुआ। वह कैदखानेमे ही ३ दिसम्बर १६७६के दिन मरा। ख्वाजा कुतबुद्दीनकी कब्रके घेरेमे उसे दफनाया गया।

(७) मुहम्मद मुअज्जम— इसका जन्म ४ अक्तूबर १६४३ ई० को बुरहानपुरमें हुआ। उसकी मृत्यु १८ फरवरी १७१२मे हुई। इसका उपनाम शाह आलम था और यही बहादुरशाह प्रथमके नाम से अपने पिताके बाद गद्दीपर बैठा।

(८) बदरुन्निसा—जन्म ७ नवम्बर १६४७ ई०, मृत्यु ९ अप्रैल १६७० ई०।

(९) औरंगाबादी महलसे बादशाहको केवल एक ही लडकी, मेहर्-उन्निसा, १८ सितम्बर १६६१ को हुई। इसका विवाह उसके सगे चचेरे भाई मृत मुरादबख़्शके पुत्र इजीदबख़्शके साथ २७ नवम्बर १६७२ को हुआ, और उसकी मृत्यु जून १७०६मे हुई।

(१०) मुहम्मद कामबख़्श—वह उदयपुरी महलका पुत्र था। इसका जन्म २४ फरवरी १६६७ ई० को दिल्लीमे हुआ। उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए युद्ध करता हुआ वह ३ जनवरी १७०९ ई० को हैदराबादमे मारा गया।

६ औरंगजेबका बल्ख-युद्ध १६४७

दो वर्ष तक गुजरातकी सूबेदारी करनेके बाद औरंगजेब बल्ख और बदख़्शाँका सूबेदार तथा प्रधान सेनापति नियत किया गया (२१ जनवरी १६४७ ई०)। बल्ख़ और बदख़्शाँके ये प्रान्त हिन्दुकुश पर्वतके उस पार, काबुलके ठीक उत्तरमे बुख़ारा राज्यके आश्रित थे। वहाँका सुलतान नजर मुहम्मदख़ाँ एक कमजोर और अयोग्य शासक था। अनेक अधिकारियोको अपने पदसे अलग करनेके कारण सन् १६४५ मे उसके विस्तृत राज्यके कई भागोमे विद्रोह हो गया। ये दोनो प्रान्त तैमूरकी राजधानी समरकन्दकी राहमे थे और एक समय बाबरके पूर्वजोका उनपर अधिकार रहा था। शाहजहाँने उनपर अपना अधिकार जमानेके लिए सेनाएँ भेजी।

शाहजादे मुरादबख़्शने बडी सरलतासे जून, १६७४ मे इनपर अधिकार कर लिया था। परन्तु मुराद मध्य एशियामे रहना नही चाहता था और उजबेगोका सामना करनेसे हिचकता था, एव अपनी पिताकी इच्छाके विरुद्ध दो माह बाद ही वह बल्ख छोडकर चला आया। शाही सेना पीछे बिना नायकके रह गई। वहाँकी परिस्थिति सम्हालनेके लिये तब औरंगजेब भेजा गया। अलीमर्दानख़ाँ उसका प्रधान सहायक था। पग-पग पर उन्हे उजबेग सैनिक-दलोका सामना करना पडा। उन्हे हराता हुआ औरंगज़ेब आगे बढा और ७ अप्रैल १६४७

ई०को वह बल्ख शहर तक जा पहुँचा।

नजर मुहम्मदका ज्येष्ठ पुत्र अब्दुल अज़ीज़खाँ एक योग्य तथा शूरवीर सेनापति था। उसने बुखारा राज्यकी रक्षा का भार उठाया। उसकी आज्ञासे उजबेग योद्धाओके बडे-बडे दल बल्ख प्रान्तके विभिन्न स्थानोपर एकत्रित होकर मुगल सैनिकोको यत्र-तत्र घेर लेनेका प्रयत्न करने लगे। बल्खसे ४० मील वायव्यमे अकचासे शत्रुओको भगाने लिए जब औरगज़ेब बल्ख शहरसे चला तब उसे नित्य-प्रति उज़बेगो का सामना करना पडा। इसी समय उज़बेगोकी एक और सेना बुखारासे भी आ पहुँची। यह समाचार पाकर औरंगज़ेबको बल्ख शहर लौट जाना पडा। कभी न थकने वाले चपल शत्रुओसे मुगलो को निरन्तर युद्ध करना पड रहा था। साथ ही शाही सेनामे खाने-पीनेके सामानकी कमी थी। एक-एक रोटीका मूल्य अब दो रुपया तक हो गया था और पानी भी ऐसे ही मँहगे दामो मिलने लगा था। फिर भी पर्याप्त मात्रामे इनका मिलना कठिन था। परन्तु इतने कष्ट और कठिनाइयोके होते हुए भी औरगज़ेबके धीरज, दृढता और नियन्त्रणने फौजमे किसी प्रकारकी अव्यवस्था या शिथिलता नही आने दी।

अपनी दृढ-निष्ठासे औरगज़ेब अपने उद्देश्यमे सफल हुआ। अन्त मे अब्दुल अज़ीज़ने सन्धि कर लेनेकी इच्छा प्रगट की। औरगज़ेबको हराकर पस्त कर देनेकी उसकी आशाएँ विफल हुई। औरगज़ेबके धैर्य व दृढतासे वह बहुत ही प्रभावित हुआ था। एक दिन जब घमासान युद्ध चल रहा था तब सन्ध्याकी नमाज़का समय हो जानेपर औरगजेबने युद्ध-क्षेत्रमे ही चादर बिछाई और नमाज़ पढनेके लिए बडी ही निःशंकतापूर्वक घुटने टेककर बैठ गया। उस समय आसपास जो भयकर युद्ध हो रहा था उसकी ओर औरंगज़ेबने कोई ध्यान नही दिया। उस समय उसके पास ढाल,तलवार, आदि कोई भी शस्त्र नही थे। बुखाराकी सेना यह दृश्य देखकर आश्चर्यमे पड गई और अब्दुल अजीजके दिलमे आदर और श्रद्धा उमड आई और वह बोल उठा "युद्ध बन्द कर दो, ऐसे मनुष्यसे लड़ना, अपने सर्वनाश को ही

बुलावा देना है।"

सन्धिका प्रस्ताव करते हुए अब्दुल अज़ीज़ने प्रार्थना की कि बलख प्रान्त उसके छोटे भाई सुभान कुलीको दे दिया जावे। औरगज़ेबने यह प्रस्ताव बादशाहकी स्वीकृतिके लिए भेजा। शाहजहाँने यह निश्चय किया कि शाही सम्मान बनाने रखनेके हेतु, यदि नज़र मुहम्मद बादशाहसे क्षमा-याचना करे तो यह जीता हुआ सारा देश उसे वापिस दे दिया जावे। नज़र मुहम्मदके माफी माँग लेनेपर बलख का किला पहली अक्तूबरको नज़र मुहम्मदके प्रतिनिधियोको सौप दिया और तब मुगल सेना काबुलको लौट पडी। हिन्दुकुशकी घाटियाँ पार करते समय मुगल सेनाको सामने और पीछेसे उजबेगो और हज़ाराओ के आक्रमणोका निरन्तर सामना करना पडा, जिससे धन-जनकी बहुत हानि हुई। इस युद्धके फलस्वरूप एक इच भी नई जमीन मुगलोके हाथ नही आई, फिर भी इसपर लगभग चार करोड रुपयो का खर्च उठाया गया।

बलखकी इस चढाईके बाद मार्च १६४८से जुलाई १६५२ तक औरगज़ेब मुलतान और सिधका सूबेदार रहा। इस बीच वह ईरा-नियोसे कन्धार छीन लेनेके लिए दो बार वहाँ भेजा गया (जनवरी-से दिसम्बर १६४९ और मार्चसे जुलाई १६५२ ई०)। मुलतान और सिधके प्रान्तोमे बसनेवाली अफगान और बलूच जातियाँ बहुत ही जगली और पिछडी हुई थी। मुगल साम्राज्यके इन सीमान्त प्रदेश-वासियोको औरगजेब नाम-मात्रके लिए मुगल साम्राज्यके अधीन कर सका। इन प्रान्तोके व्यापारको फिरसे बढानेके उद्देश्यसे औरगजेबने वहाँ बहुत-सी सुविधाएँ दी। इसी हेतु समुद्रीय व्यापारके लिए सिन्धु नदीके निचले भागमे एक नया बन्दरगाह स्थापित किया और वहाँ नावो आदिके ठहरनेके स्थान भी बनवाए।

१०. औरगजेबका कधारके घेरे डालना, १६४९-५२

भारतवर्षमे पश्चिमी दिशासे आनेवाले मार्गके मुख-द्वारपर स्थित

तथा दक्षिणसे काबुलको जाने वाली राहको रोकनेवाला कंधारका यह किला, इन दो महत्वपूर्ण मार्गोंकी निगाहबानी करता है। कंधारसे आगे पूरे ३६० मील तक समतल मैदान चला गया है और उस मैदानके पश्चिमी छोरपर हेरातका सुप्रसिद्ध किला स्थित है। हेरातके पास ही हिन्दूकुशकी पर्वत-श्रेणीकी ऊँचाई कम होने लगती है जिससे कि मध्य एशिया और फारससे भारतपर आक्रमण करने-वालो को यहां हिन्दूकुश पार करनेमे कोई कठिनाई नही होती थी। हेरातसे भारतको आनेवाली इसी राहपर स्थित होनेके कारण कंधारका किला सैनिक दृष्टिसे बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिस समय काबुलका सूबा दिल्ली साम्राज्यमे सम्मिलित था, उन दिनो भारतकी सुरक्षाके लिए अत्यावश्यक मोर्चोंकी श्रेणीमे कन्धार प्रधान और सबसे अधिक महत्व-पूर्ण माना जाता था।

ईसाकी सत्रहवी शताब्दीमे हिन्द-महासागरपर पुर्तगालियोंकी जल-सेनाका एकाधिपत्य बना हुआ था, जिसके कारण भारतसे फारसकी खाडी तकके जल-मार्ग प्रायः बन्द-से ही थे। ऐसे समय कन्धारका व्यापारिक महत्व उसके फौजी महत्वसे किसी भी भाँति कम न था। भारतवर्ष और मसाले उत्पन्न करनेवाले द्वीपोंसे पश्चिमी देशोमे जानेवाला सारा व्यापारी सामान थल-मार्ग द्वारा मुलतान, पिशन और कन्धारकी राह ही फारस और यूरोप जाता था। सन् १६१५ ई० के लगभग प्रति वर्ष विभिन्न मालसे लदे हुए कोई १४ हजार ऊँट इस मार्गसे फारस जाते थे। इसी कारण कुछ ही समयमे कन्धार शहर वस्तुओंके आदान-प्रदानका एक बहुत बड़ा व्यापारिक और धनपूर्ण केन्द्र बन गया।

अपनी इस भौगोलिक स्थितिके कारण कन्धारका किला भारत-वर्ष और फारसके शासकोंके बीच कशमकशका एक प्रधान कारण बन गया था। जहांगीरकी वृद्धावस्थामे शाह अब्बासने ४५ दिन तक उसका घेरा डाले रहनेके बाद उसपर अधिकार कर लिया था (१६२२ ई०)सन् १६३८ ई०मे वहांके ईरानी सूबेदार अलीमर्दानखांने

अपने स्वामीकी अप्रसन्नता से डरकर यह किला शाहजहाँको चुपचाप सौंप दिया। पर ईरानी चुपचाप बैठनेवाले नही थे। केवल ५७ दिनके घेरेके बाद (फरवरी, १६४९ ई० मे) उन्होने यह किला मुगलोसे सदा के लिए छीन लिया। किलेकी मुगल सेनाको सहायता भेजनेमे शाहजहाने बहुत देरी कर दी थी।

पर मुगल-साम्राज्यकी मान-रक्षाके लिए इस किलेको ईरानियोसे वापिस छीन लेना अत्यावश्यक था। इसके लिए शाहजहाँके पुत्रोने कन्धारके तीन घेरे डाले, जिनमे हर बार बहुत सा द्रव्य व्यय हुआ तथापि एक भी घेरा सफल नही हुआ। कधारका पहला घेरा १४ मई १६४९ को औरगजेब और वज़ीर् सादुल्लाख़ाँके सेनापतित्वमे ५० हज़ार सैनिकोने डाला था। पर किला मुगलोकी छोटी तोपोकी मारसे परे था। भारी तोपोके अभावके कारण उस किलेकी दीवारो-को तोडकर उस पर आक्रमण करना असम्भव था। शाहजहाँके शासन-कालके सरकारी इतिहासकारको भी स्पष्ट रूपसे स्वीकार करना पडा था कि—"तुर्कोके विरुद्ध निरन्तर काम पडनेके कारण लम्बे समय तक चलनेवाले युद्धो और किलोके बचाव तथा उनपर आक्रमण करनेकी कलामे ईरानी बहुत ही निपुण हो गए थे। शस्त्र-विद्यामे निपुण होकर उन्होने कन्धारके किलेको भारी तोपो तथा। सुशिक्षित तोपचियोसे इस प्रकार सुसज्जित किया था कि शाही सेनाके सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए"। ५ सितम्बरको औरगजेब कन्धारसे लौटनेके लिए रवाना हुआ। कन्धारसे २० मील उत्तरपश्चिममे अरगधव नदीके तीरपर मुगल सेनापति कलीचख़ाँ और रुस्तमख़ाँ दक्खिनीका ईरानी सेनासे डटकर मुकाबिला हुआ जिसमे उन्होने ईरानियोको बुरी तरह हराकर कुश्क-इ-नखुदमे आगे तक पीछा किया।

दूसरी बार कन्धारको वापिस लेनेकी तैयारियाँ और भी बडे पैमानेपरकी गई। २ मई १६५२ ई० को फिरसे औरगज़ेब और सादुल्लाख़ाँने किलेको जा घेरा। दीवारोको तोडनेके लिए तोपे दागी गई और उसकी खाइयो तक खन्दके खोदी गई। खाइयोका पानी सुखाने

का भी पूरा-पूरा प्रयत्न किया गया। रात्रिमे 'चेहल जीना' (चालीस-सीढीवाले) बुर्जके पीछेवाली पहाडीके सिरेपर धावा किया। परन्तु ये सब प्रयत्न विफल हुए क्योकि युद्ध-विद्यामे ईरानी सेना जितनी निपुण थी मुगल सेना उतनी ही अयोग्य थी। मुगलोके तोपचियोके निशाने तक ठीक नही लगते थे, जिससे किलेपर उनकी गोलाबारीका कोई भी असर नही हो सका।

एक माहके भीतर ही आक्रमण-सम्बन्धी सामानकी कमीके कारण खाइयोंके पानी को सुखाने और सुरग लगानेका कार्य बन्द करना पडा। दो माहकी गोलदाजीके बाद भी किलेकी दीवारोमे कही भी जरा-सी दरारे न पड सकी। अन्तमे शाहजहांकी आज्ञा पाकर घेरा उठा लिया गया और ९ जुलाईको मुग़लसेना पीछे भारतके लिए लौट पडी।

शाहजहां औरगजेबकी इस असफलतापर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और औरगजेबकी अयोग्यताको ही इस विफलताका कारण बताता रहा। पर वास्तवमे इस युद्धके सचालनका कार्य काबुलसे स्वय बादशाह ही सादुल्लाखांके द्वारा करता था और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण कार्यको आरम्भ करनेसे पहिले उसकी अनुमति लेनी पडती थी।

औरगजेबपर लगाए गए अयोग्यता-सम्बन्धी इस दोषका प्रतिकार अगले वर्ष ही होगया, जब उससे भी अधिक द्रव्य व्यय कर और पूरी तैयारीके बाद भी कन्धारके हमलेमे बुरी तरह हार खाकर दाराशिकोहको विफल मनोरथ लौटना पडा। फारसका शाह गर्वपूर्वक कहा करता था कि दिल्लीके बादशाह सोना देकर ही किला चुराना जानते है, भुजाओके बलसे युद्धमे किले जीतना उन्हे नहीं आता। मुगलोंके विरुद्ध उनकी इन सफलताओसे ईरानी सेनाका यश बढना स्वाभाविक ही था। कई वर्षो तक ईरानियोंके आक्रमणों का यह आतक भारतके पश्चिमी सीमा प्रान्तोपर निरन्तर बनी रही। फारसके उस योद्धा शाहकी मृत्युके बाद ही औरगजेब और उसके सधीने शान्तिसे सांस ली।

अध्याय २

दूसरी बार दक्षिणकी सूबेदारी

(१६५२–१६५८ ई०)

१. मुगलोंके दक्षिणी सूबोंकी दुर्दशा एव दुर्गति : वहाँकी आर्थिक कठिनाइयां

कन्धारसे काबुल लौट आनेपर औरगजेब दूसरी बार दक्षिणका सूबेदार बनाया गगा (१६५२ ई०)। औरगजेबने मई १६४४ मे जब दक्षिण की सूबेदारी छोडी थी, तबसे वहाँकी शासन व्यवस्थामे कोई उन्नति नही हुई। निस्सन्देह उन सूबोमे असाधारण शान्ति बनी रही थी, किन्तु इन बरसोमे बहुत-सी जोती हुई उपजाऊ जमीन पुन पडत रहकर जगलोमे बदल गई थी। किसानो की सख्या भी घट गई तथा उनकी आर्थिक स्थिति बिगड गई और साधन भी पहिलेसे न रहे, जिनसे इन सूबोकी आय बहुत कम हो गई। इस दुर्दशाका कारण शीघ्रातिशीघ्र सूबेदारोकी बदला-बदली होते रहना और उनमेसे कईका सर्वथा अयोग्य होना ही था।

दक्षिणी सूबोपर शाही कोपका अत्यधिक धन व्यय होता रहा था। वहाँ की भी पूरी पूरी वसूली नही हुई। दक्षिणमे मुगलोके आधीन सारा प्रदेश सूबोमे बँटा हुआ था, जिनकी वार्पिक आय तीन करोड ६२ लाख रुपये थी। परन्तु १६५२ ई० मे इसकी एक तिहाईसेकम केवल १ करोड रुपये ही वसूली हो पाए थे। इस

प्रकार इन सूबोकी आय खर्चसे भी कम होनेके कारण इन प्रान्तोमे सुप्रबन्ध बनाए रखने के लिए इस कमीकी पूर्ति साम्राज्यके अन्य समृद्धिशाली प्रान्तोकी आयमे की जाती थी ।

दक्षिण पहुँचकर औरंगजेबको इस कठिन आर्थिक परिस्थितिका सामना करना पडा । जागीरोकी निर्धारित आयका एक अंश-मात्र ही वास्तवमे वसूल हो पाता था । औरंगजेबको दक्षिणमे नियुक्त करते समय शाहजहाँने वहाँ खेती-बाडी सुधारने, उसे बढाने और किसानोकी दशा सुसमृद्ध बनानेकी ओर विशेष ध्यान देनेपर खास तौरसे जोर दिया था । औरंगजेबने भी उसकी इन आज्ञाओंके पालनका वचन दिया था । अतएव इन सब बातोके लिए पर्याप्त समय, धन और आवश्यक सहायकोंके लिए उसने बादशाहसे प्रार्थना की थी । निरन्तर युद्धोके कारण फैली हुई अराजकता, तथा उसी कारणसे उजडे हुए प्रदेशोमे दस वर्षोंके अव्यवस्थित शासन-प्रबन्धको केवल दो या तीन ही वर्षो मे सुधारना सभव नही था । वहाँ जाकर औरंगजेबने जमीनका जो बन्दोबस्त किया उसने उसकी यह सूबेदारी दक्षिणी भारतकी मालगुजारी-व्यवस्थाके इतिहासमे चिर-स्मरणीय हो गई ।

२. मुर्शिदकुलीखां—उसका चरित्र और उसका मालगुजारी बन्दोबस्त

खुरासान-निवासी मुर्शिदकुलीखाँ कन्धारसे भागे हुए ईरानी सूबेदार अलीमर्दानखाँके साथ ही आकर भारतमे बस गया था । एक वीर योद्धाके गुणोके साथ ही उसमे शासन-व्यवस्थाकी भी अपूर्व योग्यता विद्यमान थी । औरंगजेबके दीवानकी हैसियतसे इन दक्षिणी सूबोकी मालगुजारी प्रथामे उसने अनेकानेक महत्त्वपूर्ण सुधार किए । उसकी अपनी यह नई योजना बहुत ही सफल हुई ।

इससे पहिले दक्षिणमे मालगुजारीकी कोई भी स्थायी व्यवस्था नही थी । जमीनको अलग-अलग विभागोमे बाँट कर उनकी सीमाएँ निश्चित करना, खेतोका क्षेत्रफल मापना, प्रति बीघाके हिसाबसे माल-

गुजारी-कर निर्धारित करना, अथवा मालगुजार और किसानोके वीच कुल उपजके वटवारे आदिके उचित तरीकोको निश्चित करना, आदि बाते पहिले दक्षिणमे कभी प्रचलित नही रही। वहॉका किसान एक जोडी बैल और एक हलसे ही मनचाही जमीन जोत लेता था, चाहे जो फसल वह बो सकता था, तथाप्रति हलके हिसावसे राज्यको थोडा-सा कर देकर छुटकारा पा लेता था। मालगुजारीकी दर भी हर स्थानमे अलग-अलग थी, जो अधिकतर शासकोकी इच्छानुसार ही निर्धारित की जाती थी। छोटे-छोटे हाकिम किसानो पर मनचाहा अत्याचार और अपनी धुनके अनुसार पैसा वसूल करते थे। वरसो तक लगातार वर्षाके अभावके कारण तथा मुगलोके साथ होनेवाले निरन्तर युद्धोके फल स्वरूप वे पूरी तरह बर्बाद हो चुके थे। अत्याचार-पीडित किसान घर छोड-छोडकर भाग गए, आवाद गॉव उजड गए और खेत पडत रहकर जगलोमे बदल गए।

इस नये दीवानने टोडरमलकी सुप्रसिद्ध व्यवस्थाको दक्षिणमे भी प्रचलित कर वहाँ सुधारका आयोजन किया। योग्य हाकिमोकी सुव्यवस्थित देख-रेखमे कठिन परिश्रम करके किसानोको वहॉ फिरसे वसाया। प्रत्येक गाँवमे आवश्यक लोगोको आवाद कर वहॉ के जरूरी-गरूरी कार्यकर्ताओका ठीक-ठीक प्रवन्ध कर उन गॉवोकी ऐसी सुव्यवस्था की कि उनका काम सरलतापूर्वक चल सके। सव जगह चतुर बुद्धिमान् अमीनो और ईमानदार पैमायश करनेवाले, जमीन नापने, खेतोके रकबे, आदि का ठीक लेखा रखने और खेतीके योग्य जमीनको पहाडी भूमि तथा नदी-नालोसे पृथक निश्चित करनेके लिए उपयुक्त कार्यकर्ता नियुक्त किए गए। जिस गॉवका मुकद्दम (मुखिया) मर जाता था, तव उसी गॉवसे चुनकर ऐसे योग्य और चरित्रवान् व्यक्तिको ही वहॉका मुकद्दम वना देते, जो खेतीकी देखभाल और गॉवकी तरक्की के लिए प्रयत्न कर सके। गरीव प्रजाको शाही खजाने से पशु, बीज और खेतीके लिए अन्य आवश्यक चीजे खरीदनेके लिए तकावी दी जाती थी, जिसे फसलके समय किश्तोके रूपमे सुविधानुसार

वसूल करते थे ।

स्थानीय परिस्थितिके अनुसार अपनी सूझ-बूझसे ही वह प्रत्येक जगहकी व्यवस्थामे आवश्यक हेर-फेर कर देता था । जहाँके किसान पिछडे हुए थे, आबादी कम थी और जहाँ सारा देश उजडा पडा था वहाँ उसने प्रति हलकी दरसे मालगुजारी निश्चित करनेकी प्रथा ही कायम रखी । दूसरे कई स्थानोमे खेतोंसे उत्पन्न पैदावारको बाँटनेकी प्रथा आरम्भ की ।

मालगुजारी सम्बन्धी उसके बन्दोबस्तका तीसरा तरीका उत्तरी हिन्दुस्तानकी तरह बहुत ही लम्बा-चौडा और पेचीदा था । इस प्रथा-के अनुसार कुल उपजका एक चौथाई भाग सरकार वसूल करती थी, चाहे वह उपज अनाजकी हो या कन्द-मूल, फल या बीज, आदि किसी भी दूसरे प्रकारकी वस्तु ही क्यो न हो । बीज बोनेसे लेकर काटने तकका समय, फसलकी हालत, उसकी उपज, बोई गई जमीन का रकबा, बाजार-भाव आदिको देखकर ही प्रति बीघेके हिसाबसे माल-गुजारी की रकमका स्थायी मान रुपयोकी निश्चित रकमके रूपमे तय किया जाता था । यो यह प्रथा दक्षिणके मुगल सूबोमे प्रथम बार प्रचलित की गई, जो बादमे भी कई शताब्दियो तक 'मुर्शिदकुलीखाँ की धारा' के नामसे कहलाई । उसकी निरन्तर सावधानीपूर्वक निजी देखरेखके कारण ही इस उत्तम प्रबन्धसे कृषिमे शीघ्र ही उन्नति हुई और राज्यकी वार्षिक आय बढ गई ।

३. दक्षिणमें औरंगजेबके शासन-सुधार

औरंगजेबने सूबेदारी सम्हालते ही राज्य-शासनको सुव्यवस्थित करनेके लिए बूढे और अयोग्य अधिकारियोको हटाकर महत्वपूर्ण पदोपर विश्वसनीय तथा परखी हुई योग्यतावाले व्यक्तियोंको नियुक्त किया । सेनाकी उच्चतम योग्यता बनाए रखनेके लिए उसने विपुल धनकी आवश्यकता को समझकर उसका भी उचित प्रबन्ध किया ।

सैनिक-संगठन मे जो-जो दुर्बलताएँ तथा कमजोरियाँ घुस गई थी,

उन्हे दूर करनेके लिए उसने एक अनुभवी सेना-नायकको नियुक्त किया, जिसने बडी ही तत्परता और चतुराई से सेनाकी प्रवन्ध—व्यवस्थामे उचित सुधार किए। उसने प्रत्येक किलेमे जा-जाकर वहाँ की सारी विभिन्न छोटी-मोटी वस्तुओ, शस्त्रागारो और अन्न-भडारो का स्वय निरीक्षण किया, और जो-जो कमियाँ उसे देख पडी उन्हे तत्काल ही पूरा किया। जो-जो वृद्ध और निकम्मे सैनिक तोपचियो-के कामपर नियुक्त किए गए थे, उन्हे वाध्य किया कि वे तोप चलाने की विद्या पूरी तरह सीख ले। ऐसे तोपची जो निशानेबाजीमे विलकुल ही असफल रहते थे वे अपने पदसे अलग कर दिए जाते थे। अपाहिज और वूढे सैनिकोको, उनकी सेवाका खयाल करके, पेन्शने दे दी गई। इस अफसरने फौजकी योग्यता बढानेके साथ ही साथ लगभग ५०,००० रु० की सालाना बचत भी की।

४. गोलकुडा राज्यकी सम्पत्ति:
मुगलोके साथ उसके विरोधके कारण

गोलकुण्डा वहुत ही उपजाऊ और सिचाईके साधनोसे पूरी तरह सुसज्जित देश था। वहाँकी जनसख्या वहुत अधिक और वहाँके निवासी वडे ही परिश्रमी थे। इस राज्यकी राजधानी हैदरावाद, केवल एशिया ही नही, सारे ससारमे हीरोके व्यापारका प्रधान केन्द्र था। कई उद्योग-धन्धोके लिए प्रसिद्ध होनेके कारण यहाँपर वहुत-से विदेशी व्यापारी भी एकत्रित रहते थे। वगालकी खाडीमे मछलीपट्टम शहर इस राज्यका प्रधान तथा ही वहुत सुविधापूर्ण वन्दरगाह था।

यहाँके जगलोमे हाथियोके वडे-वडे झुड मिलते थे, जिनसे राज्य की सम्पत्तिमे वृद्धि ही होती थी। तम्वाकू और ताड यहाँ वहुत अधिक मात्रामे होते थे, जिससे तम्वाकू और ताडीपर लगाए करोसे राज्यको काफी आमदनी हो जाती थी।

गोलकुण्डाके सुलतानसे लडनेके लिए औरगजेवके पास अनेक कारण थे। दो लाख हूणका वार्पिक कर सदैव उसपर वकाया ही

रहता था। प्रत्येक तकाजेके उज्रके जवाबमें मुगल सूबेदारको वह कुछ कारण बताकर अधिक समयकी ही मांग किया करता था।

५. मीरजुमला—उसकी जीवनी और पद

सन् १६३६ ई० की सन्धिके समय मुगल साम्राज्य और दोनो दक्षिणी राज्योकी सीमाएँ स्पष्ट रूपसे निर्धारित कर दी गई थी। कृष्णा नदीसे कावेरी पार तंजोर तक कर्णाटिक प्रदेश था, जिसमें विजयनगर राज्यके भग्नावशेष छोटे-छोटे हिन्दू राज्य सर्वत्र फैले हुए थे। उन राज्योपर अब एकाएक मुसलमान शासकोका आधिपत्य होने लगा। चिलका झीलसे पेनार नदी तकके प्रदेशोको जीतती हुई गोल-कुण्डाकी सेनाओंने उस राज्य की सीमाओंको बगालकी खाडी तक फैला दिया।

दक्षिणी ओर बढते हुए जिंजी और तंजोरके किनारेको वशमें कर बीजापुर राज्य अब पूर्वकी ओर बढने लगा। विजयनगरके अन्तिम अवशेषोको संगठित करते ही चन्द्रगिरी राज्यकी स्थापना की गई थी। पूर्वमें नेलोरसे पांडिचेरी तक और पश्चिममें मैसूरकी सीमा तक यह राज्य फैला हुआ था। उत्तर और दक्षिण दोनो दिशाओंमें इन दोनो मुसलमानी राज्योंके बीचमें यह राज्य अब घिर गया। इसे हडप लेने के लिए गोलकुण्डा और बीजापुर राज्योंके बीच अब एक कशमकश शुरू हुई। इस राज्यको जीतनेमें गोलकुण्डाके वजीर मीर-जुमलाका बहुत बडा हाथ था।

मुहम्मद सैयद, जो इतिहासमें मीरजुमलाके नामसे प्रसिद्ध है, फारस देशके आर्दिस्तान प्रान्तका रहनेवाला सैयद था। वह इस्फहान-में रहनेवाले तेलके व्यापारीका पुत्र था। युवावस्थामें ही अपनी जन्मभूमि छोडकर वह दक्षिणी भारतके सुलतानोंके दरबारमें भाग्य-परीक्षाके लिए चला आया (१६३० ई०)। हीरे-जवाहरातका व्यापारी बनकर वह अत्यधिक धनवान् हो गया। उसके आश्चर्यजनक गुणोंसे बहुत प्रसन्न होकर अब्दुल्ला कुतुबशाहने उसे अपना प्रधान मन्त्री बना

उन्हे दूर करनेके लिए उसने एक अनुभवी सेना-नायकको नियुक्त किया, जिसने बडी ही तत्परता और चतुराई से सेनाकी प्रवन्ध—व्यवस्थामे उचित सुधार किए। उसने प्रत्येक किलेमे जा-जाकर वहाँ की सारी विभिन्न छोटी-मोटी वस्तुओ, शस्त्रागारो और अन्न-भडारो का स्वय निरीक्षण किया, और जो-जो कमियाँ उसे देख पडी उन्हे तत्काल ही पूरा किया। जो-जो वृद्ध और निकम्मे सैनिक तोपचियो-के कामपर नियुक्त किए गए थे, उन्हे वाध्य किया कि वे तोप चलाने की विद्या पूरी तरह सीख ले। ऐसे तोपची जो निशानेवाजीमे विलकुल ही असफल रहते थे वे अपने पदसे अलग कर दिए जाते थे। अपाहिज और वूढे सैनिकोको, उनकी सेवाका खयाल करके, पेन्शने दे दी गई। इस अफसरने फौजकी योग्यता वढानेके साथ ही साथ लगभग ५०,००० रु० की सालाना वचत भी की।

४. गोलकुडा राज्यकी सम्पत्तिः मुगलोके साथ उसके विरोधके कारण

गोलकुण्डा वहुत ही उपजाऊ और सिचाईके साधनोसे पूरी तरह सुसज्जित देश था। वहाँकी जनसख्या वहुत अधिक और वहाँके निवासी वडे ही परिश्रमी थे। इस राज्यकी राजधानी हैदरावाद, केवल एशिया ही नही, सारे ससारमे हीरोके व्यापारका प्रधान केन्द्र था। कई उद्योग-धन्धोके लिए प्रसिद्ध होनेके कारण यहाँपर वहुत-से विदेशी व्यापारी भी एकत्रित रहते थे। वगालकी खाडीमे मछलीपट्टम शहर इस राज्यका प्रधान तथा ही वहुत सुविधापूर्ण वन्दरगाह था।

यहाँके जगलोमे हाथियोके वडे-वडे झुड मिलते थे, जिनसे राज्य की सम्पत्तिमे वृद्धि ही होती थी। तम्वाकू और ताड यहाँ वहुत अधिक मात्रामे होते थे, जिससे तम्वाकू और ताडीपर लगाए करोसे राज्यको काफी आमदनी हो जाती थी।

गोलकुण्डाके सुलतानसे लडनेके लिए औरगजेवके पास अनेक कारण थे। दो लाख हूणका वार्षिक कर सदैव उसपर वकाया ही

रहता था। प्रत्येक तकाजेके उज़्रके जवाबमे मुगल सूबेदारको वह कुछ कारण बताकर अधिक समयकी ही माँग किया करता था।

५. मीरजुमला–उसकी जीवनी और पद

सन् १६३६ ई० की सधिके समय मुगल साम्राज्य और दोनो दक्षिणी राज्योकी सीमाएँ स्पष्ट रूपसे निर्धारित कर दी गई थी। कृष्णा नदीसे कावेरी पार तजोर तक कर्णाटक प्रदेश था, जिसमे विजयनगर राज्यके भग्नावशेष छोटे-छोटे हिन्दू राज्य सर्वत्र फैले हुए थे। इन राज्योपर अब एकाएक मुसलमान शासकोका आधिपत्य होने लगा। चिलका झीलसे पेनार नदी तकके प्रदेशोको जीतती हुई गोलकुण्डाकी सेनाओंने उस राज्य की सीमाओको बगालकी खाडी तक फैला दिया।

दक्षिणी ओर बढते हुए जिजी और तजोरके किनारेको वशमे कर बीजापुर राज्य अब पूर्वकी ओर बढने लगा। विजयनगरके अन्तिम अवशेषोको सगठित करते ही चन्द्रगिरी राज्यकी स्थापना की गई थी। पूर्वमे नेलोरसे पाँडिचेरी तक और पश्चिममे मैसूरकी सीमा तक यह राज्य फैला हुआ था। उत्तर और दक्षिण दोनो दिशाओंमे इन दोनो मुसलमानी राज्योंके बीचमे यह राज्य अब घिर गया। इसे हडप लेने के लिए गोलकुण्डा और बीजापुर राज्योंके बीच अब एक कशमकश शुरू हुई। इस राज्यको जीतनेमे गोलकुण्डाके वज़ीर मीर-जुमलाका बहुत बडा हाथ था।

मुहम्मद सैयद, जो इतिहासमे मीरजुमलाके नामसे प्रसिद्ध है, फारस देशके आर्दिस्तान प्रान्तका रहनेवाला सैयद था। वह इस्फहान-मे रहनेवाले तेलके व्यापारीका पुत्र था। युवावस्थामे ही अपनी जन्मभूमि छोडकर वह दक्षिणी भारतके सुलतानोके दरबारमे भाग्य-परीक्षाके लिए चला आया (१६३० ई०)। हीरे-जवाहरातका व्यापारी बनकर वह अत्यधिक धनवान् हो गया। उसके आश्चर्यजनक गुणोसे बहुत प्रसन्न होकर अब्दुल्ला कुतुबशाहने उसे अपना प्रधान मन्त्री बना

लिया। अपनी उद्योगशीलता, व्यापार-चातुर्य्य, शासन-क्षमता, युद्ध-कुशलता और जन्मजात नेतृत्व शक्तिके कारण मीरजुमलाको अपने प्रत्येक कार्यमे सर्वथा निश्चित सफलता मिलती रही। राज्य-शासन और युद्धक्षेत्र, दोनोमे ही अपूर्व योग्यताके कारण वह शीघ्रही गोल-कुण्डाका वास्तविक शासक बन गया। अपने स्वामीकी आज्ञानुसार कर्णाटक पहुँचकर मीरजुमलाने बहुतसे यूरोपियन गोलन्दाजो तथा तोपे ढालनेवालोको अपनी सेनामे भरती कर लिया, और यो उसने अपनी सेना अधिक शक्तिशाली, रणदक्ष और सुनियन्त्रित बना ली, तथा शीघ्र ही कडप्पा जिलेपर अधिकार कर लिया, और अब तक दुर्गम समझे जानेवाले गडीकोटाके पहाडी किलेको जीत लिया। कडप्पाके पूर्वमे स्थित सिधौतको* जीतते हुए उसके सेनापति अर्काट जिलेके उत्तरमे स्थित तिरुपति और चन्द्रगिरी तक बढते चले गए। गडे हुए खजानेकी खोज कर-करके उन्हे लूटा, जिससे मीर-जुमलाको अटूट सम्पत्ति प्राप्त हो गई। इन विजयो द्वारा उसने अपनी कर्णाटक-की जागीरको एक राज्यमे परिणत कर लिया। इस प्रकार वह अपने स्वामीसे पूर्णतया स्वतन्त्र होकर सचमुच ही कर्णाटकका वास्तविक राजा बन बैठा। अतमे ईर्ष्यालु दरबारियोके उकसानेपर कुतुबशाह ने आज्ञापालन न करनेवाले अपने इस कर्मचारीको दबानेका खुल्लम-खुल्ला बीडा उठाया।

६ कुतुबशाहकी मूगलोसे अनबन, १६५५

अब मीरजुमला अपने लिए एक उपयुक्त रक्षकको खोजने लगा। उसने बीजापुरके अधीन रहकर उस राज्यकी सेवा करनेका प्रस्ताव किया, तथा साथ ही वह मुगलोसे भी दोस्ती गाठनेका प्रयत्न करने लगा। औरगजेब मीरजुमलाके समान सुयोग्य सहायक और सलाह-कारको मुगल साम्राज्यका प्रधान मन्त्री बनानेके लिए बडा ही उत्सुक

* कडप्पा शहर से सिधौत ९ मील पूर्वमे और गडीकोटा ४२ मील उत्तर-पश्चिम मे है। दोनो ही शहर पेनार नदी के किनारे स्थित है।

था। गोलकुण्डामे स्थित मुगल दूतके द्वारा औरगज़ेबने मीरजुमलासे गुप्त पत्र-व्यवहार आरम्भ किया,और मुगलोकी नौकरी स्वीकार करने पर बादशाहसे अनेक उपहार दिलानेका उसे वचन दिया। पर औरगज़ेबके प्रस्तावको स्वीकार करनेकी मीरजुमलाको कोई जल्दी न थी, एव उसने एक वर्षके बाद उत्तर देनेकी इच्छा प्रकट की।

इसी समय वजीर मीरजुमलाके पुत्र मुहम्मद अमीनने कुतुबशाह के प्रति अपने बर्तावसे गोलकुण्डामे एक सकटपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। इधर कई वर्षोसे गोलकुण्डाके दरबारमे मीरजुमलाका प्रतिनिधि बनकर वह राज्य-शासन का कार्य करता था। वह खुले-आम दरबारमे भी सुलतानका बहुत ही कम अदब करता था। एक दिन वह नशेमे लडखडाता हुआ दरबारमे आया, और खुद सुलतान की गद्दीपर जा लेटा और कै करके उसने गद्दीको खराब कर दिया। उसके व्यवहारोसे तग हुए सुलतानसे अब रहा न गया, उसने मुहम्मद अमीन को सकुटुम्ब कैदखानेमे बन्द कर दिया और सारी जायदाद जब्त कर ली (२१ नवम्बर १६५५ई०)। दीर्घ कालसे औरगजेब इसी अवसरकी प्रतीक्षा कर रहा था।

१८ दिसम्बरके दिन औरगज़ेबको बादशाहके पत्र मिले जिनमे मीरजुमला और उसके पुत्रकी मुगलोकी शाही सेवा मे नियुक्तिकी सूचना थी, साथ ही कुतुबशाहको आज्ञा दी गई थी कि वह इन दोनो को शाही दरबारमे जानेमे न रोके, तथा उनकी जायदादपर कोई प्रतिबन्ध न लगावे। औरगज़ेबने यह आज्ञा-पत्र तुरन्त ही कुतुबशाह के पास भेज दिया और उसके न मानने या उसके पालन करनेमे देरी होनेपर युद्धकी धमकी दी। साथ ही साथ उसने अपनी सेना गोलकुण्डा की सीमाकी ओर बढाई। किन्तु कुतुबशाहने मुगलोके इन शाही फरमानोकी कोई परवाह न की।

मुहम्मद अमीनके कैद होने की खबर सुनकर २४ दिसम्बरको शाहजहाँने कुतुबशाहको एक पत्र लिखकर आदेश दिया कि मीर-जुमलाके कुटुम्बको मुक्त कर दे। साथ ही औरगज़ेबको सतुष्ट

करनेके लिए, मुहम्मद अमीनके न छोडे जानेपर ही गोलकुण्डापर आक्रमण करनेकी उसे आज्ञा दे दी (२९ दिसम्बर)। औरगजेबने अब गोलकुण्डाको नष्ट करनेके लिए पूरी चतुराईसे काम लिया। शाहजहाँ को २४ दिसम्बरवाले जिस पत्रमे साफ तौरपर कैदियोको छोड देनेकी आज्ञा दी गई थी, उसे पाकर उसके अनुसार कार्य करानेके लिग औरगजेबने कुतुबशाहको कुछ भी अवसर नही दिया। उसने घोषित कर दिया कि कुतुबशाहका कैदियोको न छोडना ही शाही आज्ञा-भगका स्पष्ट उदाहरण है। गोलकुण्डापर आक्रमण करनेके लिए इसी एकमात्र कारणकी आवश्यकता थी।

९. गोलकुण्डा राज्यपर औरंगजेबकी चढ़ाई, १६५६

औरगजेबकी आज्ञानुसार उसके ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुलतानने नान्देरके पास गोलकुण्डाकी सीमा पार की (१० जनवरी १६५६), और अपनी सेना लेकर एकदम हैदराबाद चढ दौडा। उसी माहकी २० तारीखको स्वय औरगजेब भी अपने पुत्रकी सहायताके लिए औरगाबादसे चल पडा।

मुहम्मद सुलतान गोलकुण्डा राज्यमे प्रवेश कर चुका था, उसके बाद ही अब्दुल्लाको शाहजहाँका २४ दिसम्बरवाला कडा पत्र मिला। शाहजहाँकी आज्ञानुसार अब्दुल्लाने मुहम्मद अमीनको उनके कुटुम्ब और नौकरो सहित औरगजेबके पास तत्काल भेज दिया और साथ ही क्षमा-याचनाका एक पत्र भी शाहजहाँको लिखा। परन्तु औरगजेबने ऐसा षड्यत्र रचा था कि उसकी क्षमा-याचनाका यह पत्र ठीक समयपर न पहुँच सके और अब्दुल्लाका बचाव किसी भी प्रकारसे न होने पावे। हैदराबादसे २४ मीलकी दूरीपर मुहम्मद अमीन आकर औरगजेबसे (सभवत २१ जनवरीको) मिला, परन्तु औरगज़ेबने युद्ध बन्द करना अस्वीकार कर दिया, और इसी बहाने कि अभी तक अब्दुल्लाने कैदियोकी जायदाद वापिस नही की, वह हैदराबादकी ओर बढता ही गया। कुतुबशाहकी अन्तिम आशाएँ भी नष्ट होगईं।

मुगल सवारोंके दल इतनी तेज़ीसे हैदराबाद तक जा पहुँचे कि वह आश्चर्यचकित ताकता ही रह गया। अब उसे अपना सम्पूर्ण सर्व-नाश निश्चित देख पड़ा, तब तो वह २२ जनवरीको रात्रिको अपनी राजधानी हैदराबाद छोड़कर गोलकुण्डाके किलेमें जा पहुँचा।

इस प्रकार भाग जानेसे उसके प्राण बच गए। औरंगजेबने मुहम्मद सुलतानको जो आदेश दिए थे, उनसे अब्दुल्लाके प्रति औरंग-जेबका प्राणघातक विरोध बहुत ही स्पष्ट हो जाता है। उसने लिखा था "कुतुब-उल्-मुल्क बहुत ही कायर है और सम्भवतः वह बिलकुल ही सामना न करेगा। इस समाचारके मिलते ही उसपर जोरोंसे धावा बोल दो और यदि तुमसे हो सके तो उसके शरीरको उसके सिरके भारसे हलका कर दो। इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए चतुराई, फुर्ती और हाथकी सफाई ही सफल साधन है।"

२३ जनवरीको आक्रमणकारी हैदराबादसे २ मील उत्तरमें स्थित हुसैन-सागर नामक तालाबपर पहुँच गए। गोलकुण्डाके राज-दरबारमें सर्वत्र घबड़ाहट मची हुई थी। दूसरे दिन शाहज़ादा मुह-म्मद हैदराबादमें दाखिल हुआ। कुतुब-उल्-मुल्ककी बहुतसी सामग्री और अनेकों भंडार, जिनमें अगणनीय बहुमूल्य वस्तुएँ और अनेकों अप्राप्य ग्रन्थ थे, मुहम्मद सुलतानने लूट लिये।

दूसरे दिन गोलकुण्डाका घेरा डाला गया। मुगलोंने उसे तीन ओरसे घेर लिया, केवल पश्चिमकी ओर कोई भी सेना न थी। गोल-कुण्डाका घेरा ७ फरवरीसे ३० मार्च तक चलता रहा। इसका सञ्चालन बड़ी ही शिथिलतासे हुआ, क्योंकि मुगल शाहज़ादेके पास जो भी युद्ध-सामग्री थी उससे उस दुर्गम गढ़को किसी भी प्रकार हानि पहुँचाना सम्भव न था।

इसी समय अब्दुल्लाके दिल्लीमें रहनेवाले प्रतिनिधिने दारा-शिकोह और शाहज़ादी जहाँनारासे जिन्हें बादशाहने मेल कर लिया। इनके द्वारा उसने बादशाहके सामने औरंगजेबके सारे षड्-यन्त्रोंका सच्चा हाल रख दिया। जिस प्रकार अब्दुल्लाको धोखा

देकर उसे मारनेके लिए भरसक प्रयत्न किए गए, किस प्रकार बादशाहकी आज्ञा-पालनका उसे समुचित अवसर तक नही दिया गया, किस प्रकार बादशाहके फरमान राहमे ही रोक लिए गए, और किस प्रकार उसके प्रति शाहजहाँकी कृपा-दृष्टिकी अवहेलना की गई, आदि बाते दूतने स्पष्ट कर दी। इस पर विवेकशील शाहजहाँ भी क्रोधसे उबल पडा। उसने एक कडा पत्र औरंगजेबको लिखा और उसे गोलकुण्डाका घेरा उठाकर तत्काल उस राज्यकी सीमासे बाहर चले आनेका हुक्म दिया।

बादशाहका यह अन्तिम आदेश पाते ही तदनुसार ३० मार्चको घेरा उठाकर औरगजेब गोलकुण्डासे चल पडा। चार दिन बाद एक प्रतिनिधिके जरिये मुहम्मद सुलतानका विवाह अब्दुल्ला कुतुबशाहकी लडकीसे कर दिया गया। गोलकुण्डाके सुलतानको युद्ध-हानि और शेष करके रूपमे लगभग एक करोड रुपयोके साथ ही साथ रामगिरका जिला (वर्तमान माणिकद्रुग और चिन्नर जिले) मुगलोको देना पडा। २१ अप्रेलको मुगल सेना पीछे लौट पडी।

गोलकुण्डाके पडावमे २० मार्चको मीरजुमला औरवजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ। उसका ठाट-बाट एक शाहजादेका-सा था, वह एक साधारण अमीर-सा नही देख पडता था। उसके साथ थे—६ हजार घुडसवार, १५,००० पैदल, १५० हाथी और बहुत ही सुशिक्षित कई एक तोपखाने। तुरन्त ही उसे शाही दरबारमे बुलवाया गया और ७ जुलाईको वह दिल्ली पहुँचा। उसने बादशाहको १५ लाखकी वस्तुएँ उपहारमे भेट की, जिनमे २१६ रत्ती वजनवाला एक बडा हीरा भी था। उसे तुरन्त ही ६ हजारीका मनसब दिया गया। कुछ ही समय पहिले सादुल्लाखाँकी मृत्यु हो जानेसे प्रधान मन्त्रीका पद खाली हो गया था, अब मीरजुमला उस पदपर नियुक्त किया गया।

८. औरंगजेबका बीजापुरपर आक्रमण १६५७

बीजापुरके राजघरानेका ७वाँ सुलतान मुहम्मद आदिलशाह ४ नवम्बर

१६५६ को मर गया। उसके प्रधान मन्त्री खान मुहम्मद और उसकी बेगम बडी साहिबाके प्रयत्नोंसे इसे मृत सुलतानके एक १८वर्षीय पुत्र, अली आदिलशाह द्वितीयको सिंहासनपर बैठाया गया। औरंगजेबने तत्काल शाहजहांको लिखा कि "अली वास्तवमें मृत सुलतानका पुत्र नहीं है, वह तो एक अनाथ बालक है जिसे मुहम्मद आदिलशाहने हरममें रखकर पाला था।" इसलिए औरंगजेबने शीघ्र ही बीजापुर-पर आक्रमण करनेकी आज्ञा चाही। आदिलशाहकी मृत्युके साथ ही कर्णाटकमें बहुत ही गडबडी मच गई, जमींदारोंने पहिलेसे अधिक अपने अधिकारमें कर ली। राजधानीकी अवस्था इससे भी बुरी थी। बीजापुरी सरदार एक दूसरेसे और शासन-सत्तासे हाथ बटानेके लिए प्रधान मन्त्री खान मुहम्मदसे लड रहे थे। इस अस्त-व्यस्त दुर्दशाको और भी उलझानेके लिए उन सरदारोंने मिलकर औरंगजेब षड्यन्त्र भी करने लगा। बीजापुरराज दरबारके अनेक प्रमुख व्यक्ति अपनी सेना सहित मुगल राज्यमें आकर शाही सेवा स्वीकार करनेको उत्सुक थे। सहायताका वचन देकर उन्हें अपनी ओर मिलानेमें औरंगजेब सफल हुआ। मीरजुमलाकी सहायतासे दूसरोंको भी बहका लेनेकी उसे पूर्ण आशा थी।

२६ नवम्बरको शाहजहांने आक्रमणकी आज्ञा देते हुए बीजा-पुरके मामलेको अपनी इच्छानुसार तयकर डालनेकी औरंगजेबको पूरी स्वतन्त्रता दे दी। कुछ दरबारसे और कुछ जागीरोंसे एकत्रित करके अनेक अफसरों सहित कोई २०,००० सैनिक स्वयं मीरजुमलाके साथ औरंगजेबकी सहायताके लिए भेजे गए। इस प्रकारके युद्धकी आज्ञा देना बीजापुरके प्रति सर्वथा अन्याय था। बीजापुर कोई आश्रित राज्य नहीं था, वह तो एक स्वतन्त्र राज्य था जो मुगलोंका सहायक मित्र था। बादशाहको बीजापुरके उत्तरा-धिकारके विषयमें कोई आज्ञा देने या उसे अस्वीकार कर उसमें हेरफार करनेका उसे कोई न्यायपूर्ण अधिकार नहीं था। मीरजुमला १८ जनवरीको औरंगाबाद पहुंचा और उसी दिन ज्योतिषियों द्वारा

बताये हुए शुभ मुहुर्तमे उसके साथ औरंगजेब वीजापुरआक्रमणके लिए चल पडा। २८ फरवरीको वे वीदरकी सीमापर पहुँचे और २ मार्चको वहाँके किलेका घेरा डाला। सिद्दी मरजानने डटकर सामना किया। उसने अनेक वार आक्रमण किए और खाइयोपर आक्रमण कर मुगलोको आगे वढनेसे रोकने का भी उसने सतत् प्रयत्न किया। पर अन्तमे मुगलोकी वहुत वडी सेनाके आगे एक न चली। मीर-जुमलाके सुशिक्षित तोपचियो ने किलेकी दीवारोको वडा नुकसान पहुँचाया। किलेके दो वुर्ज गिर गए तथा नीचेकी दीवालकी मुँडेर और उसके वाहरी भाग भी भग हो गए।

खाईके यो भर जानेसे २९ मार्चको मुगल सेनाने आक्रमण किया। मुगलो द्वारा चलाए हुए गोलेकी एक चिनगारी वुर्जके पीछे रखे वारूद और गोलेके रखनेके मकानमे गिरी। एक भयकर धडाका हुआ। अपने दो पुत्रो और अनेको साथियो सहित मरजान बुरी तरह घायल हुआ। विजयी मुगल अपनी खाइयोसे निकल कर दौड पडे और शहरमे जा घुसे। भयकर मार-काटके साथ वचे हुए शत्रु सैनि-कोको खदेड दिया गया। सिद्दी मरजानने मृत्यु-शय्यापर पडे-पडे अपने सात पुत्रोको किलेकी चावी देकर औरंगजेवके पास भेजा। इस प्रकार वीदरका दुर्गम किला केवल २७ दिनके घेरेके वाद ही जीत लिया गया। वीदरमे जो सामग्री हाथ आई उसमे नकद १२ लाख रुपये, ८लाख की कीमतकी वारूद, गोलियाँ, अनाज तथा अन्य वस्तुओके अतिरिक्त २३० तोपे भी थीं।

इसके वाद औरंगजेवने महावतखाँके साथ १५ हजार अच्छे घोडोवाले अनुभवी घुडसवार भेजे कि आगे जाकर शत्रुसैनिकोके एकत्रित दलोको मार भगावे और पश्चिममे कल्याणी तक तथा दक्षिणमे गुलवर्गा तकके सारे वीजापुर राज्यमे लूट-मार कर उसे उजाड दे। मुगलोकी इस सेनाने १२ अप्रेलको शत्रुओका सामना किया। लगभग वीस हजार वीजापुरी सैनिक अपने मुख्य सेनापति खान मुहम्मद, अफजलखाँ, और रणदुल्ला तथा रैहानाके पुत्रोके

नेतृत्वमें मुगलोंपर आक्रमण करने लगे। शत्रुसे घिर जानेपर तथा शत्रुओंके घबरा देनेवाले आक्रमणोंके समय भी योग्य सेनापतिके अनुरूप महाबतने अपने सवारोंको पूरी तरह नियन्त्रणमें रखा। अन्तमें उचित अवसर देखकर उसने भी बीजापुरियोंपर धावा बोल दिया तब तो बीजापुरी भाग खड़े हुए।

बीदरसे ४० मील पश्चिममें, गोलकुण्डासे सुप्रसिद्धतीर्थ तुलजापुर जाने वाले पुराने मार्गपर, कन्नड प्रदेश तथा चालुक्य राजाओंकी प्राचीन राजधानी कल्याणी शहर स्थित है। २७ अप्रेलको औरंगजेब थोड़ी-सी सेना लेकर रवाना हुआ, और सिर्फ सात ही दिनमें कल्याणी पहुँच गया, और एकदम उसका घेरा डाल दिया। किलेकी रक्षा करनेवाली शत्रुसेना उसकी दीवारोंपरसे दिन-रात गोलियोंकी अविरल वर्षा करती रही। उन्होंने मीरजुमलाकी खाईयोंपर बड़े जोरोंसे आक्रमणकर वहाँ भयंकर मार-काट मचाई, पर उससे उन्हें कोई लाभ न हुआ। एक बार खानपानकी सामग्री सुरक्षापूर्वक लानेके लिए कार्यवशात् जाते हुए स्वयं महाबतको भी कल्याणीसे दस मील उत्तर-पूर्वमें शत्रुओंने जा घेरा। देर तक घमासान युद्ध होता रहा। इस युद्धमें शत्रुओंके हमलेका सामना करनेका भार राजपूतोंपर ही पड़ा। खान मुहम्मदके घुड़सवार राव छत्रसाल तथा उसकी हाड़ा फौजपर टूट पड़े, पर राजपूतोंकी पत्थरके समान सुदृढ़ पंक्ति अचल रही एवं शत्रुओंका आक्रमण विफल हुआ। राजा रायसिंह सीसोदियापर बीजापुरवाले बहलोलखांके पुत्रोंने आक्रमण किया और शत्रुओंके हमलेमें वह घायल होकर घोड़ेसे गिर पड़ा। इसी समय महाबतके लिए दूसरी सेना जा पहुँची। महाबतखांके आक्रमणने शत्रुओंको तितर-बितर कर दिया और वे भाग खड़े हुए।

इधर जबकि औरंगजेब इस घेरेको सफल बनानेका प्रयत्न कर रहा था तभी उसके पड़ावसे सिर्फ ४ मील दूरीपर ३० हजार बीजापुरी सेना एकत्रित हुई। २८ मईको किलेके चारों ओर तम्बुओंका पर्दा छोड़कर अपनी अधिकांश सेना सहित शत्रुओंकी इस सेनाकी

ओर चल पडा। घमासान युद्ध मेउत्तरके घुडसवारोके सतत् आक्रमण अन्तमे सफल हुए। मुगल सेनाने शत्रुओको दाएँ बाएँ दोनो तरफमे घेरकर अन्तमे मार भगाया। ठीक उनके पडाव तक शाही फौजने उनका पीछा किया तथा जो उनके हाथ पडे उन्हे पकड लिया और दूसरोको मार डाला। बीजापुरी पडावमे जो भी सामान मिला, वह सब शस्त्र, स्त्रियाँ, घोडे, सामान ढोनेवाले जानवर और अन्य सभी असबाब लूट लिया गया।

यहाँ घेरा बडे ही जोरोसे चल रहा था, पर उधर अबीसीनिया-निवासी दिलावर भी डटकर पूरे साहसके साथ शाही सेनाका मुकाबला कर रहा था। २९ जुलाईको शाही फौजने खाईकी उस पार स्थित कल्याणीके एक बुर्जपर कब्जा कर लिया। यहाँपर ही बडी घमासान लडाई हुई। फिर भी आक्रमणकारी किलेमे उमड पडे और इस ओरका हिस्सा वहाँके रक्षकोसे छीन लिया। १ली अगस्तको दिलावरने किलेकी चाबियाँ मुगलोको सौप दी। उसे मुगलोकी ओरसे सम्मानसूचक वस्त्र दिए गए और बीजापुर लौटनेकी आज्ञा भी उसे मिल गई।

कल्याणीके किलेके जीत जानेके बाद बीजापुरके सुलताननने सन्धिकी बातचीत प्रारम्भ की। दिल्लीमे रहनेवाले बीजापुरके प्रतिनिधियोने दाराको मिलाकर बादशाहका अनुग्रह प्राप्त करनेका भी सफल प्रयत्न किया। अन्तमे यह तय हुआ कि आदिलशाह बीदर, कल्याणी और परेण्डाके किले और उन्ही किलोके आसपास का राज्यका भाग भी मुगलोको दे दे, तथा उसके अतिरिक्त युद्धमे हुई मुगलोकी हानिकी पूर्तिके लिए एक करोड रुपया भी चुकावे। इन शर्तोपर सन्धि करके सेना सहित बीदर लौट जानेके लिए शाहजहाँने औरंगजेबको हुक्म दिया।

अध्याय ३

शाहजहाँका बीमार पड़ना तथा उसके पुत्रोंका विद्रोह

१. शाजहाका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह

अपने राज्य-कालके ३० वर्ष पूरे कर ७ मार्च १६५७ को शाहजहाँने ३१वेंमें पैर रखा। उसका शासन-काल अपने पूर्वजोंके समान ही सम्पन्न था। इस महान् मुगल बादशाहके अधिकारमें हिन्दकी जो दौलत थी उसे देखकर विदेशी भी चकित रह जाते थे। उत्सवोंके समय बुखारा फारस, तुर्की व अरबके राजदूत तथा फ्रान्स, इटली, आदि देशोंके यात्रीवहां के 'तख्त-इ-ताउस' (मयूर-सिंहासन), कोहिनूर हीरे तथा अन्य मणियोंको आश्चर्यसे देखते थे। सफेद संगमर्मरके महल बनाना उसे पसन्द था, वे सादे व सुन्दर होनेके साथ ही उतने ही मूल्यवान समझे जाते थे। मुगल साम्राज्यके आश्रित सरदार धन और शान-शौकतमें दूसरे कई देशोंके राजाओंको भी मात करते थे। मुगलोंके 'आश्रित साम्राज्य"की सीमा उससे पहलेके सभी बादशाहोंसे बहुत अधिक दूर तक बढ़ गई थी। देशके भीतर अटल शान्तिका राज्य था। कृषकोंको पालनेकी ओर पूरा ध्यान दिया जाता था। प्रजाको कष्ट देनेवाले कठोर हाकिम जनताकी शिकायतपर बहुधा अलग कर दिए जाते थे। सभी ओर सम्पदा और ऐश्वर्य बढ़ते ही जा रहे थे। उस दयालु और विवेकशील शासकको सर्वत्र

सुयोग्य अधिकारी घेरे रहते थे। उसका दरबार सम्पूर्ण देशकी विद्वत्ता और चातुर्य्यका एकमात्र केन्द्र बन गया था। पर इन महान् विद्वानो, सेनापतियो और मन्त्रियोको कराल काल एक-एक करके उठाता जा रहा था। उनकी मृत्युपर बादशाह नई पीढीके नवयुवाओमे उनका उपयुक्त उत्तराधिकारी नही पाता था। वह स्वय भी अब ६७ वर्षका हो चुका था। उसके बाद क्या होगा, इसका सोच विचार उसे सदैव बना रहता था।

शाहजहाँके चार लडके थे। सब वयस्क थे, और सबको प्रान्तोके शासन व सेनाओके नायकत्वका पूरा-पूरा अनुभव हो चुका था। पर उन सबमे आपसमे कोई भी भ्रातृ-स्नेह नही था। दारा और औरंगजेबमे तो विशेषरूपसे वैमनस्य हो गया था, जो दिनोदिन इतना अधिक बढ रहा था कि सारे साम्राज्यमे उसकी चर्चा होती थी। उनमे शान्ति बनाए रखनेके लिए औरंगजेबको राजधानीसे दूर भेजकर उसे दारासे अलग रखनेका विशेष प्रयत्न किया जाताथा। शाहजहाँने स्पष्टरूपसे सकेत कर दिया था कि एक ही मासे उत्पन्न इन चारोमे सबसे बढे दाराको ही वह राजगद्दी देगा। शाहजहाँ दाराको धीरे-धीरे पूरे साम्राज्यका एकमात्र अधिकारी बनाने और राज्य-शासनमे पूर्णतया दीक्षित करनेके लिए कई वर्षोसे उसे अपने पास ही राजधानीमे रखता था। प्रतिनिधियो द्वारा अपने प्रान्तोकी व्यवस्था करवानेकी सुविधा भी दाराको दे दी गई थी। साथमे बादशाहने उसे इतने अधिकार और ओहदे दे रखे थे कि वह किसी भी सम्राट्से कम नही था। बादशाह तक पहुँचनेके लिए सभीको दाराकी कृपा प्राप्त करना पडती थी।

दारा इस समय ४२ वर्षका था और उसने अपने प्रपितामह अकबरके ही आदर्शको अपने सामने रखा था। विश्व-देववादी दर्शनमे उसका विश्वास था एव इसी इच्छासे प्रेरित हो उसने तालमद, बाइबिल, मुसलमान सूफी और हिन्दू वेदान्त, आदि दर्शनोका अध्ययन किया था। जिन सार्वभौमिक धार्मिक तथ्योपर सभी धर्मोमे मतैक्य

है और जिनको कट्टरपन्थी लोग आज अपने अन्धविश्वासके कारण वाह्याचरण-मात्र समझते हैं, उनका उद्घाटन करके हिन्दू और मुसलमानी धर्मोंमें समन्वय करना ही उसका प्रधान उद्देश्य था। हिन्दू योगी लालदास और मुसलमान फकीर सरमद, दोनोंका ही समान रूपसे शिष्य था और दोनोंसे उसने उनकी उदारता धार्मिक विचारधाराओंको ग्रहण किया था। तथापि वह इस्लामका विरोधी नहीं था। उसने मुसलमान सन्तोंके जीवन चरित्रोंका संग्रह किया था। वह मुसलमान सन्त मियाँ मीरका शिष्य भी कहा गया है जो कदापि कोई काफिर नहीं हो सकता था। पवित्रात्मा जहाँनारा भी उसे अपना आध्यात्मिक गुरु मानती थी। अपनी धार्मिक रचनाओंकी भूमिकामें स्वयं दाराने जो शब्द लिखे हैं वे इन बातके स्पष्ट प्रमाण हैं कि उसने इस्लामके आवश्यक सिद्धान्तोंकी कभी अवहेलना नहीं की। उसने तो केवल सूफियोंके व्यापक सिद्धान्तोंके प्रति आदर एवं विश्वास प्रगट किया था और यह सूफी सम्प्रदाय मुसलमानोंका ही एक प्रमुख फिरका था। फिर भी हिन्दू दर्शनकी ओर झुकाव होनेके कारण प्रयत्न करनेपर भी वह अपने को कट्टर-पन्थी और एकमात्र इस्लामका माननेवाला सिद्ध नहीं कर सकता था, और न सब मुसलमानोंको अपने झण्डेके नीचे एकत्र कर वह गैर-मुसलमानोंके विरुद्ध धर्म-युद्ध ही प्रारम्भ कर सकता था।

इस प्रकार पिताके अत्यधिक प्रेमने दाराकी बड़ी हानि की। उसे हमेशा दरबारमें ही रखा जाता था और कन्धारके तीसरे घेरेको छोड़कर वह कभी प्रान्तीय शासन-व्यवस्थाके लिए अथवा युद्धमें सेना-सचालनके हेतु बाहर नहीं भेजा गया। युद्ध और राज्य करनेका कोई भी उसे अनुभव नहीं मिल सका। कठिनाई और संकटकी कसौटीपर कसकर मनुष्यको आजमाना कभी नहीं सीखा। सेनामें भी उसका अपना कोई समर्थक नहीं रहा था, इस प्रकार धीरे-धीरे वह उत्तराधिकारके लिये होनेवाले उस युद्धके अयोग्य हो गया, जो मुगलोंमें योग्यतम अधिकारीकी परीक्षाके लिए प्रत्यक्ष-सर्वभाग्य

साधन समझा जाता था। पर उसके एकछत्र प्रभाव उसकी अतुल सम्पदा, उसमे शील, संयम और दूरदर्शिता बिलकुल ही नही बढा सकते थे, उसके चारो ओर अनावश्यक झूठी चापलूसीने उसमे दिल्लीके सिंहासनके उत्तराधिकारी युवराज होनेकी स्वाभाविक भावना और उद्‌ण्डता अवश्य उत्तेजित की थी। उसे मनुष्य-चरित्र पहचाननेका अभ्यास नही था। स्वाभिमानी और सुयोग्य व्यक्ति अवश्य ही ऐसे घमण्डी और अविवेकी स्वामीसे दूर रहा करते होगे। दारा एक प्रेमी पति, लाडला पुत्र और प्यारा पिता था, पर सकटापन्न प्रजाको अधिकारमे रखनेमे वह असफल ही रहा। पुश्तोसे चली आती हुई शान्ति और सम्पदाने उसकी नसोका रक्त ठडा कर दिया था। परिणामस्वरूप वह बुद्धिमानीके साथ कोई सगठन या साहसपूर्वक कार्यका खतरा उठा सकनेमे सर्वथा अयोग्य ही था। सतत परिश्रम करनेकी क्षमता उसमे न थी। कभी आवश्यकता पडनेपर हारके मुखमे पहुँचकर भी साहसपूर्ण वीरोचित दृढता दिखाकर मृत्युसे खेलते हुए विजय-श्री को छीन लाना, दाराके लिए सर्वथा एक अनहोनी बात थी। फौजी-सगठन और युद्धावश्यक व्यूह-रचना तो उसकी शक्तिके बाहर बाते थी। सच्चे जन्मजात सेनापतिके समान युद्धके समय शान्ति और पूर्ण विचार-बुद्धिसे उसकी विभिन्न गतियोका उपयुक्त रीतिसे सचलान करने का उसने कभी अभ्यास नही किया। युद्धकलासे अनजान इस नौसिखिया योद्धाको भाग्यवशात् सिंहासनके लिए होनेवाले युद्धमे औरगजेब जैसे चतुर सिद्धहस्त सेनानायकका सामना करना पडा।

२ शाहजहाँकी बीमारी (१६५७) और उसके परिणाम स्वरूप साम्राज्यमें अव्यवस्था

६ सितम्बरको शाहजहा एकाएक दिल्लीमे बीमार पड गया। एक हफ्ते तक शाही हकीम उसकी चिकित्सा करते रहे, परन्तु उन्हे सफलता नही मिली। उसकी बीमारी बढती ही गई। नित्य लगने-

वाला शाही दरबार भी बन्द कर दिया गया। झरोखेमें बैठकर प्रजाको दर्शन देना भी बादशाहके लिए सम्भव नहीं था। अन्तमें एक हफ्ते के बाद हकीम बीमारीपर कुछ काबू पा सके। पर बादशाह-की शारीरिक दशामें बहुत ही थोड़ा सुधार हुआ था, इसलिए उसने आगरा जाकर अपनी प्यारी बेगमके मकबरेके पास ही मृत्यु-पर्यन्त शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत करनेका निश्चय किया। तदनुसार २६ अक्तूबरको वह आगरा पहुँचा।

शाहजहाँकी इस बीमारीके दिनोंमें दारा रात-दिन लगातार उसकी शय्याके पास बैठा उसकी देखभाल करता था। उसने बड़ी मिहनतसे बादशाहकी सेवा की थी। सिंहासन प्राप्त करनेके लिए उसने कोई भी आतुरता नहीं दिखाई थी। इस बीमारीके प्रार-म्भिक दिनोंमें जब शाहजहाँ जीवनसे निराश होकर परलोककी तैयारी करने लगा, तब राज्यके कुछ विश्वस्त दरबारियों और प्रधान अधिकारियोंको बुलाकर उसने उनके सामने अपनी अन्तिम इच्छा प्रगट की और हुक्म दिया कि वे उसी दिनसे दाराको बादशाह मानकर उसकी आज्ञा मानें। तथापि अपनी स्थिति सुदृढ़ बनानेके लिए दाराने राजसिंहासन ग्रहण नहीं किया, और वह अपने पिताके नामपर ही शासन-कार्य करता रहा। उसने औरंगजेबके विश्वासपात्र साथी मीरजुमलाको वजीरके पदसे हटा दिया और उसे, महाबत खाँ और अन्य अधिकारियोंको सेना सहित दक्षिणसे लौट-कर दरबारमें आनेकी आज्ञा दी।

आधे नवम्बर तक शाहजहाँ अच्छा होकर इस योग्य हो गया कि उन सब आवश्यक बातोंको, जो तब तक उसे नहीं बताई जाती थीं, वह सुन सके। एक खबर यह थी कि शुजाने स्वयंको बादशाह घोषित कर दिया था और वह बंगालसे दिल्लीकी ओर बढ़ा आ रहा था। शाहजहाँकी स्वीकृति प्राप्त कर २२ हजार सैनिकोंकी फौज अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमानशिकोह और मिर्जा राजा जयसिंहकी अधीनतामें दाराने उनके विरुद्ध भेजी। शीघ्र ही इस प्रकार निम्ना-

जनक समाचार गुजरातसे भी आए। वहाँ ५ दिसम्बरको मुरादने अपना राज्याभिषेक कर लिया और औरंगजेबसे सन्धि करके उसको अपना साथी बनाया। इसलिए उसी माहके अन्त तक आगरासे मालवामे दो शाही सेनाएँ भेजी गई, एक औरंगजेबको दक्षिणसे आगे आनेसे रोकनेके लिए और दूसरी गुजरातमे जाकर मुरादको वहाँसे निकाल भगानेके लिए। इनमे पहली सेना मारवाडके महाराजा जसवन्तसिहके मातहत भेजी गई। मालवाके सूबेदार शायेस्ताखाँको दरबारमे वापिस बुला लिया गया एव उसकी जगह वह मालवाका सूबेदार नियुक्त किया गया। कासिमखाँको गुजरातका शासक बनाकर दूसरी सेनाका नायकत्व स्वीकार करनेके लिए प्रलोभन दिया गया था। शाहजहाँने सरदारोसे विनयपूर्वक कह दिया था कि वे शाहजादोको जानसे न मारे और बिलकुल अनिवार्य न होने तक उनसे कोई प्राणघातक युद्ध भी न करे। पहले तो वे उन शाहजादो को न्यायपूर्वक समझाकर अपने अपने प्रान्तोको लौट जाने दे अन्यथा उन्हे केवल अपनी शक्तिका डर दिखावे। केवल अनिवार्य परिस्थितिमे युद्ध करने की उन्हे ताकीद को गई।

शाहजहाँकी बीमारीमे दारा अपने विश्वासी एक-दो मन्त्रियोको छोडकर और किसीको भी बादशाह तक नही जाने जाने देता था। पत्र-वाहकोपर कडी नजर रखता था, और अपने भाइयोके पास बगाल, गुजरात व दक्षिण जानेवाले दूतो और पत्रोको भी उसने रोक दिया था। अपने भाइयोके उन दूतोपर, जो दरबारमे रहते थे, वह नजर रखता था जिससे कि वे अपने मालिकोको वहाँका हाल न भेज सके। पर इन सावधानियोसे और भी अधिक हानि हुई। दूर-स्थित शाहजादो और प्रजाने इस प्रकार समाचार बन्द हो जानेके कारणका यही अनुमान लगाया कि बादशाह मर चुका है। परिणाम-स्वरूप मुगल उत्तराधिकारके लिए एकबारगी अशान्ति-अव्यवस्था फैल गई।

अपने हाथोसे लिखे हुए और उसी की मोहरवाले शाहजहाँके पत्र

शाहज़ादोंके पास पहुँच गए थे, और उनके स्वस्थ हो जानेका निश्चित समाचार उन्हें मालूम हो चुका था, फिर भी वे यही कहते रहे कि वे पत्र शाहजहाँकी हस्तलिपिकी नकल करनेमें सिद्धहस्त दाराने ही लिखे थे, और तब शाही मुहर भी उसके अधिकारमें आ चुकी होगी। इसलिए तीनों छोटे भाइयोंने बादशाहको यह निश्चय कराते हुए पत्र लिखे कि उड़ती हुई अफवाहोंको सुन-सुनकर उनके हृदय विचलित हो उठे हैं, अतएव वे अपनी आँखोंसे पिताके दर्शन कर उनकी वास्तविक स्थिति जाननेके लिए आगरा आ रहे हैं।

३. गुजरात में मुरादबख़्शका स्वयंको बादशाह घोषित करना

शाहजहाँका सबसे छोटा पुत्र मुहम्मद मुरादबख़्श शाही कुटुम्बमें सबसे नीच स्वभाववाला व्यक्ति था। अपनी योग्यता साबित करनेका अवसर उसे बल्ख़में, दक्षिणमें और गुजरातमें दिया गया था, परन्तु हर जगह वह विफल ही रहा। वह मूर्ख, विलासी और क्रोधी था और अवस्था बढ़नेपर भी उसके चरित्रमें कोई भी सुधार नहीं हुआ था। न तो उसने कभी अपनी वासनाओंको दबाना सीखा था और न उसे राजकाजमें व्यस्त रहनेका अभ्यास ही था। सैन्य-संचालनमें योग्यताकी कमीकी पूर्ति उसकी शारीरिक शक्ति नहीं कर पाती थी।

शाहज़ादे मुरादकी इस अयोग्यताको देखकर शाहजहाँने इसकी पूर्तिके लिए अली नक़ी नामक एक बहुत ही योग्य और ईमानदार अफ़सरको उसका माल-नाज़िम तथा प्रधान सलाहकार बनाकर भेजा था। शाहज़ादेके अनेकों अनुगृहीत साथी और चापलूस दरबारी उसके ईमानदारीपूर्ण सच्चे शासनके कारण अली नक़ीके दुश्मन बन गए। शीघ्र ही मुरादके कृपापात्र खोजाने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। एक हस्तलिखित जाली पत्र लिखा, जिसमें दाराके पक्षमें सहायता करनेका वचन दिया गया था, उसपर अली नक़ीकी मुहर लगाकर यह पत्र एक दूतको दिया गया, जिसने चालाकीसे अपने आपको

जनक समाचार गुजरातसे भी आए। वहाँ ५ दिसम्बरको मुरादने अपना राज्याभिषेक कर लिया और औरंगजेबसे सन्धि करके उसको अपना साथी बनाया। इसलिए उसी माहके अन्त तक आगरासे मालवामे दो शाही सेनाएँ भेजी गई, एक औरंगजेबको दक्षिणसे आगे आनेसे रोकनेके लिए और दूसरी गुजरातमे जाकर मुरादको वहाँसे निकाल भगानेके लिए। इनमे पहली सेना मारवाडके महाराजा जसवन्तसिहके मातहत भेजी गई। मालवाके सूबेदार शायेस्ताखाँको दरबारमे वापिस बुला लिया गया एव उसकी जगह वह मालवाका सूबेदार नियुक्त किया गया। कासिमखाँको गुजरातका शासक बनाकर दूसरी सेनाका नायकत्व स्वीकार करनेके लिए प्रलोभन दिया गया था। शाहजहाँने सरदारोसे विनयपूर्वक कह दिया था कि वे शाहजादोको जानसे न मारे और बिलकुल अनिवार्य न होने तक उनसे कोई प्राणघातक युद्ध भी न करे। पहले तो वे उन शाहजादोको न्यायपूर्वक समझाकर अपने अपने प्रान्तोको लौट जाने दे अन्यथा उन्हे केवल अपनी शक्तिका डर दिखावे। केवल अनिवार्य परिस्थितिमे युद्ध करने की उन्हे ताकीद की गई।

शाहजहाँकी बीमारीमे दारा अपने विश्वासी एक-दो मन्त्रियोको छोडकर और किसीको भी बादशाह तक नही जाने जाने देता था। पत्र-वाहकोपर कडी नजर रखता था, और अपने भाइयोके पास बगाल, गुजरात व दक्षिण जानेवाले दूतो और पत्रोको भी उसने रोक दिया था। अपने भाइयोके उन दूतोपर, जो दरबारमे रहते थे, वह नजर रखता था जिससे कि वे अपने मालिकोको वहाँका हाल न भेज सके। पर इन सावधानियोमे और भी अधिक हानि हुई। दूर-स्थित शाहजादो और प्रजाने इस प्रकार समाचार बन्द हो जानेके कारणका यही अनुमान लगाया कि बादशाह मर चुका है। परिणाम-स्वरूप मुगल उत्तराधिकारके लिए एकबारगी अशान्ति-अव्यवस्था फैल गई।

अपने हाथोमे लिखे हुए और उसी की मोहरवाले शाहजहाँके पत्र

शाहज़ादोंके पास पहुँच गए थे, और उनके स्वस्थ हो जानेका निश्चित समाचार उन्हें मालूम हो चुका था, फिर भी वे यही कहते रहे कि वे पत्र शाहजहाँकी हस्तलिपिकी नकल करनेमें सिद्धहस्त दाराने ही लिखे थे, और तब शाही मुहर भी उसके अधिकारमें आ चुकी होगी। इसलिए तीनों छोटे भाइयोंने बादशाहको यह निश्चय कराते हुए पत्र लिखे कि उड़ती हुई अफवाहोंको सुन-सुनकर उनके हृदय छिन्न-भिन्न हो उठे हैं, अतएव वे अपनी आँखोंसे पिताके दर्शन कर उनकी वास्तविक स्थिति जाननेके लिए आगरा आ रहे हैं।

३. गुजरात में मुरादबख़्शका स्वयंको बादशाह घोषित करना

शाहजहाँका सबसे छोटा पुत्र मुहम्मद मुरादबख़्श शाही कुटुम्बमें सबसे नीच स्वभाववाला व्यक्ति था। अपनी योग्यता साबित करने-का अवसर उसे बल्ख़में, दक्षिणमें और गुजरातमें दिया गया था, परन्तु हर जगह वह विफल ही रहा। वह मूर्ख, विलासी और क्रोधी था और अवस्था बढ़नेपर भी उसके चरित्रमें कोई भी सुधार नहीं हुआ था। न तो उसने कभी अपनी वासनाओं को दबाना सीखा था और न उसे कामकाजमें व्यस्त रहनेका अभ्यास ही था। सैन्य-सञ्चा-लनमें योग्यताकी कमीकी पूर्ति उसकी शारीरिक शक्ति नहीं कर पाती थी।

शाहज़ादे मुरादकी इस अयोग्यताको देखकर शाहजहाँने इसकी पूर्तिके लिए अली नकी नामक एक बहुत ही योग्य और ईमानदार अफसरको उसका माल-हाकिम तथा प्रधान सलाहकार बनाकर भेजा था। शाहज़ादेके अनेकों अनुगृहीत साथी और चापलूस दरबारी उसके मनमानीपूर्ण रवैये शासनमें बाधक अली नकीके दुश्मन बन गए। शीघ्र ही सरकारके कृपापात्र लोगोंने उसके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। एक हस्तलिखित जाली पत्र लिखा, जिसमें दाराके पक्षमें सहायता करनेका वचन दिया गया था, उसपर अली नकीकी मुहर लगाकर वह पत्र एक दूतको दिया गया, जिसने चालाकीसे अपने आपको

मुरादके मार्ग-रक्षकोके हाथो कैद करवा दिया और पत्रके असली लेखकोकी वात गुप्त रखी गई। सूर्योदयसे कुछ पहले ही वह छीना हुआ जाली पत्र मुरादके पास लाया गया। उस समय वह अपने विलास-उपवनमे शरावके नशेमे झूम रहा था। उसकी रात्रि-क्रीडाओ-की थकान भी तव तक दूर न हुई थी। अतएव पत्र देखते ही आग-ववूला हो उठा और शीघ्र ही अली नकीको अपने सामने पेश करने की आज्ञा दी। अत्यधिक क्रोधसे कापते हुए उसने अली नकीको भालो-से मार डाला और गरजते हुए वोला "अरे नीच ! मेरे इतने उप-कारोके वदलेमे भी तूने विद्रोही होकर धोखा ही दिया।"

मुराद इस समय एक वडी सेना सगठन कर रहा था, जिसके लिए उसे धनकी अत्याधिक आवश्यकता थी। एव उसने शाहवाजखाँ नामक खोजाको शस्त्रोसे सुसज्जित ६,००० योद्धाओके साथ सूरतके धनाढ्य वन्दरगाहसे कर वसूल करनेके लिए भेजा। रक्षाके साधनो-से रहित उस शहरको शीघ्र ही कब्जेमे करके शाहवाजखाँनेउसे लूटा। कुछ डच कारीगरोकी सहायतासे शाहवाजखाँने सूरतके किलेकी दीवारो-के नीचे खाइयाँ खुदवाई और उनमेसे एकमे वारूद भरकर उस किले को उडानेकी भी कोशिश की। अन्तमे २० दिसम्वर १६५७ ई० को यह किला उसके अधिकारमे आ गया। इस किलेकी सारी युद्ध-सामग्री और वहाँका खजाना मुरादके हाथ लग गए, और साथ ही वहाँके दो धनाढ्य सौदागरोसे जवरन ५ लाख रुपये भी कर्ज मे लिये।

उधर शाहजहाँकी खतरनाक वीमारीकी खवर सुननेके वाद ही विश्वस्त दूतो द्वारा मुराद और औरगजेवमे गुप्त पत्र व्यवहार भी आरभ हो गया था। दाराके विरुद्ध सहायता करनेके लिए उन्होने शुजाको भी आमत्रित किया, पर शुजाके अत्यधिक दूर होनेके कारण उनमे कोई निश्चित या व्यवहारिक आयोजन नही वन पाया। किन्तु मुराद और औरगजेवके वीच एक सगठित षड्यन्त्रकी पूरी योजना वन गई। सूरतकी इस सफलताके वाद मुरादने मुरव्वजुद्दीनके नामसे अपने आपको वादशाह घोषित कर दिया (५ दिसम्वर)।

मुगल साम्राज्यके बटवारे-सम्बन्धी एक सन्धि औरंगज़ेबने तैयार की और कुरानको साक्षी कर उसका पालन करनेका वचन देते हुए उसे मुरादके पास भेजी, जिसकी शर्तें यों थीं —

१. पंजाब, अफ़गानिस्तान कश्मीर और सिन्ध मुरादके अधिकार में रहेंगे और इनपर वह एक स्वतन्त्र बादशाहके रूपमें शासन करेगा। मुगल साम्राज्यका शेष भाग औरंगज़ेब के अधिकारमें रहेगा।

२ युद्धमें प्राप्त सामग्रीका एक तिहाई हिस्सा मुरादको मिलेगा और दो तिहाई भाग औरंगज़ेबको दिया जावेगा। *

मुराद पूरी तैयारियाँ करके अहमदाबादसे २५ फरवरी १६५८ ई० को रवाना हुआ और मालवामें देपालपुरके पास १४ अप्रेलको औरंगज़ेबकी सेनाके साथ जा मिला।

४. गृह-युद्धसे पहिले औरंगज़ेबकी चिंताएँ और नीति

बीजापुरकी युद्ध-समाप्तिसे (४ अक्तूबर १६५७ ई०) लेकर सिंहासन-प्राप्तिके लिए हिन्दुस्तानकी ओर रवाना होने (२५ जनवरी-१६५८ ई०) तकका समय औरंगज़ेबने अनेक चिन्ताओं और संकटों में ही काटा। घटनाएं बड़ी शीघ्रतापूर्वक घट रही थीं, और उन्हें रोकना या किसी भी प्रकार टालना उसके लिए असम्भव था। नित्य-प्रति उसकी तत्कालीन स्थिति संकटपूर्ण होती जा रही थी और भविष्य सर्वथा अंधकारपूर्ण था। किन्तु इस समय जिन-जिन छोटी-बड़ी कठिनाइयोंपर उसने विजय प्राप्त की वे सब हमें उसकी धीरता, चतुराई और सैन्य-प्रबन्धकी उसकी क्षमता और नीति-कुशलताकी प्रशंसा करनेके लिए बाध्य कर देती हैं।

---

* शर्तें स्वयं औरंगज़ेबके पत्रोंमें (आदाब-इ-आलमगीरी, पृ० ७८), हाकिम मालिकजादा खाँके इतिहासमें (पृ० २५) और 'तज़्किरात-उस-सलातीन-चग़ताइया' में स्पष्टरूपसे दी हैं। इससे इतिहासकारोंकी उस कल्पित कहानीका पूरी तरह निराकरण होता है, जिसके अनुसार दाराको हटानेके बाद मुरादको राज्य देकर स्वयं फकीर बनने तथा मक्का जानेका औरंगज़ेबने वादा किया था।

चारो ओर यह समाचार फैल गया था कि सन्धि करने और अनावश्यक सेनाको दक्षिणसे वापिस बुलानेके लिए बादशाहने हुक्म दिया है। इस प्रकार अपने दीर्घ-कालीन और इस खर्चीले बीजापुर-युद्धमे कोई भी लाभ प्राप्त करनेकी औरगजेबकी सारी सभावनाएँ दुर्भाग्यवश देखती आँखो नष्ट हो रही थी।

बीजापुरसे सधि होनेकी आशाएँ किस प्रकार दिन-दिन कम होती गई, किस प्रकार पिछले वादेके अनुसार राज्यभाग और धन-प्राप्तिके लिए उसने अनेक प्रयत्न किए, बीजापुर द्वारा स्वीकार कराई हुई सधिकी कडी शर्तोको किस प्रकार एकके बाद दूसरीको वह ढीला करता गया, और अन्तमे बीजापुरसे कुछ भी प्राप्ति कर सकनेकी आशा खोकर, किस प्रकार दक्षिणको एकदम छोड उसने अपना सारा ध्यान और साधनोको उत्तर भागतमे अपनी चालोकी सफलताके लिए गाल दिया, आदि बातो की पूरी कहानी 'आदाव-इ-आलमगीरी' मे सगहीत औरगजेबके पत्रो द्वारा स्पष्ट हो जाती है।

कल्याणीसे ४ अक्तूबर १६५७ई०को चलकर औरगजेब ५ दिन मे ही बीदर पहुँच गया। इस किलेकी मरम्मत की गई थी तथा उसमे आवश्यक सामगी और सेना का ठीक-ठीक प्रवन्ध किया गया था। उसी माहकी १८ तारीखको वहाँसे चलकर वह १७ नवम्बरको औरगावाद पहुँचा। इससे पहले ही २८ अक्तूबरके आसपास औरगजेबने एक बहुत ही आवश्यक कार्य कर लिया था। उसने सेना भेजकर नर्मदा पार करने सारे स्थानोपर अपना अधिकार कर लिया और यो दक्षिण के शाही हाकिमो और दारामे होनेवाले सारे पत्र-व्यवहारको रोक दिया।

आरम्भसे ही औरगजेबने तय कर रखा था कि जब तक शाहजहाकी मृत्युका निश्चय नही हो जावे तब तक वह विद्रोह का झडा न उठावेगा, परन्तु शीघ्रताके साथ घटनेवाली इन घटनाओने उसे दूसरा ही रास्ता पकडनेको बाध्य किया। दक्षिण सम्बन्धी दाराकी नीति अब पूरी तौरसे मालूम हो चुकी थी। अशक्त शाहजहाको उसने

बाध्य किया कि मुरादको गुजरातकी सूबेदारीसे हटाकर वह उसे बरारका सूबेदार बनावे। इस प्रकार औरंगजेबसे लेकर बरार मुराद को दिया गया, ताकि दोनो भाइयोमे आपसी झगड़ा बना रहे। दारा-ने दिसम्बरके अन्त तक अपने इन दोनो भाइयोंके विरोधमे दो सेनाएँ दक्षिणको भेजी तथा औरंगजेबके सशक्त सहायक शायेस्ताखाँको उसके मालवा प्रान्तसे वापस दरबारमे बुलवा लिया। इसी समय मीरजुमलाको भी शाही फरमान मिला कि वह औरंगजेबको छोड़कर दिल्ली चला जावे। इस फरमानको न मानना ही विद्रोहके समान होगा। औरंगजेबके अन्य अफसरोको भी इसी प्रकारके कई पत्र मिले।

५. सिंहासन-प्राप्ति के लिए औरंगजेब की तैयारियां

औरंगजेबने देखा कि बादशाह होनेकी आशा पूरी करने या केवल स्वतन्त्रतापूर्वक बने रहनेके लिए प्रयत्न करनेका समय अतमे अब आ ही गया है। जनवरी १६५८के लगभग उसने अपना सारा कार्यक्रम निश्चित कर लिया और उसीके अनुसार शीघ्रतापूर्वक कदम उठाने लगा। सबसे पहले झूठ-मूठ ही झगड़ा करके उसने मीरजुमलाको दौलताबादके किलेमे कैद कर दिया और बादशाहके नामसे उसकी सारी सेना तथा जायदाद जब्त कर ली। प्रगट रूपमे अपनी इस सारी कार्यवाहीका कारण उसने यही बताया कि मीरजुमला दक्षिणके दोनो सुलतानोंसे मिलकर षड्यन्त्र कर रहा था। फिर उसने शाहजहाँ और उसके नये वजीर जाफरखाँको यह लिखा कि बादशाहके विषय मे अनेक अफवाहोंको सुनकर उसका पितृ-स्नेही हृदय बहुत दुःखी हुआ तथा आज्ञाकारी व कर्तव्यनिष्ठ पुत्रके नाते अपने बीमार पिताकी कुशल पूछनेके लिए वह स्वयं आगरा आ रहा था। साथ ही उसने यह प्रार्थना भी की कि साम्राज्यको आतंक, विद्रोह और अराजकतासे बचानेके लिए बादशाहको दाराके प्रभावसे मुक्त किया जावे।

युद्ध-खर्चका शेषांश शीघ्र ही दे देनेके लिए कुतुबशाहको पत्र लिखे गए। गोलकुण्डा-स्थित मुगल राजदूतको उसके साथ सद्व्यवहार

करनेकी हिदायत की गई तथा उसे सतुष्ट रखकर औरगज़ेवकी गै
हाजरीके समय दक्षिणमे गडवड न होने देनेका समुचित प्रवन्ध कर
की आज्ञा दी गई। मित्रताके नाते बहुत-से उपहार बीजापुरव
राजमाता (बडी साहिवा) को भेजे गए। जो धन देनेका वादा उस
पहले किया जा चुका था उसे भेज देने तथा साथ ही उसकी गैरहाजर
मे बीजापुरी उपद्रव न कर शान्ति बनाए रखे, इसके लिए प्रार्थन
की गई।

गुप्त रूपमे राजधानीके दरबारियो और प्रातोके (विशेष क
मालवाके) उच्च पदाधिकारियोसे मिलकर औरगज़ेब बडी तत्परत
के साथ षड्यन्त्र रच रहा था। शाहजहाँके चारो पुत्रोमे अपनी योग्यत
और अनुभवके लिए औरगजेब ही सबसे अधिक प्रसिद्ध था। स
स्वार्थी सरदार और बडे अधिकारी उसे भारतका भावी बादश
मानते थे। इसलिए भविष्यमे अपनी रक्षाके लिए सभी उसकी मद
करनेको उत्सुक रहते थे, अधिक नही तो गुप्त रूपसे उसको सहायत
देनेका ही पूरा-पूरा विश्वास दिलाते थे।

नये सैनिक लगातार भरती किए जा रहे थे। गोल-वारूद बना
के लिए गधक, सीसा, शोरा, आदि वहुत अधिक मात्रामे खरीदा गय
और दिल्लीपर चढाई करनेके लिए बारूद तथा तोडे, आदि अ
आवश्यक चीजे दक्षिणी किलोसे मगवा ली गई। इस प्रकार बढत
बढते औरगजेबकी यह सेना चुने हुए ३०,००० सिपाहियोकी हो गई
इसके सिवाय उसके साथ मीरजुमलाका बहुत ही सुशिक्षित तोपखान
भी था, जिसमे अग्रेज और फरासीसी तोपची नियुक्त थे।

सेना और सामग्रीके साथ ही साथ औरगजेबके पास सुयोग
अधिकारियोका भी एक वहुत बडा दल था, जिससे उसका पक्ष बहु
ही सुदृढ हो गया। दक्षिणकी सूवेदारी करते समय उसने अपने पा
बहुत ही योग्य कर्मचारियोका एक गुट्ट बना लिया जो उसके पक्
सहायक थे। कुछ तो कृतज्ञतावश ही उसके साथ थे, किन्तु प्राय
अन्य सबके हृदयोमे औरगज़ेबके प्रति अगाध भक्ति और श्रद्धा थी

सिंहासन-प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेके इरादेसे औरंगजेब ५ फरवरी १६५८ ई० को औरंगाबादसे चल पड़ा। १८ वीं तारीखको वह बुरहानपुर पहुँचा। सैन्य-संगठनके हेतु तथा अन्य तैयारियाँ करनेके लिए यहाँ वह एक माह तक ठहरा रहा। मार्च २०को बुरहानपुरसे चलकर उसने अपने ससुर शाहनवाज़खांको पकड़कर कैद कर लिया, क्योंकि वह शाहजहाँके प्रति अपनी स्वामिभक्ति छोड़नेको तैयार न था। बिना किसी विरोधके उसने ३ अप्रेलको अकबरपुरके घाटेपर नर्मदा नदी पार की। इस समय उत्तरमें उज्जैनकी ओर जाते हुए १३ अप्रेल-को उज्जैनसे कोई २६ मील दक्षिणमें देपालपुरके पास उसे पता चला कि मुराद भी उससे पश्चिममें कुछ ही मीलकी दूरीपर आ पहुँचा था। दूसरे दिन दोनों भाइयोंकी सेनाएँ देपालपुरके तालावके पास मिल गईं। उनसे एक ही दिनकी यात्राकी दूरीपर सेनाके साथ जसवन्त-सिंह डटा हुआ था। सन्ध्या होते-होते दोनों शाहजादोंने चंबल नदी-की सहायक नदी गंभीरके पश्चिमी तटपर स्थित धरमत गांवमें (उज्जैन से १४ मील दक्षिण-पश्चिममें) पड़ाव डाला। दूसरे दिन मुगल-सिंहासनके उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धका प्रारम्भ हुआ।

भाग १

अध्याय ४

सिंहासन के लिए युद्ध; औरंगजेब की विजय

१ धरमत में जसवन्तसिह; उनकी कठिनाइयाँ

फरवरी, १६५८ ई० के अन्तिम दिनोमे जसवन्त सिह अपनी सेना सहित उज्जैन पहुचा। परन्तु औरगजेबका क्या इरादा है ? वह किस राहसे आगे बढ रहा है ? उसकी सेना कहाँ तक आ गई है ? आदि बातोका उसे कुछ भी पता नही था। औरगजेबकी चढाईकी सूचना जब उसे मिली, तब उसने सुना कि वह शाहजादा मालवामें आ पहुँचा था एव बडी ही तेजीके साथ वह उज्जैनकी ओर बढ रहा था।

यह समाचार सुनकर जसवन्तसिह बहुत ही घबडा गया, और उज्जैनसे १४ मील दक्षिण-पश्चिममें धरमतके सामने ही पडाव डाला तथा दक्षिणसे आनेवाले शत्रुका मार्ग रोकनेको तत्पर हुआ। इसी समय उसे एक और चिन्तापूर्ण समाचार मिला, उसने सुना कि मुराद भी औरगजेबके साथ मिल गया था (१४ अप्रेल, तथा दोनो उससे एक ही दिनकी यात्राकी दूरीपर आ गए थे।

जसवन्तसिह इसी उम्मीदसे मालवा आया था कि उसके विरुद्ध शाही सेनाके आनेका समाचार सुनकर ही ये विद्रोही शाहजादे वापिस अपने प्रान्तोको लौट जावेंगे। अब उसने स्पष्ट देखा कि उसके

शत्रुओने आगे बढनेका पूरा-पूरा निश्चय कर लिया था और वे किसी भी हालतमे युद्ध-मार्गसे पीछे नही हटेंगे ।

शाहजहाँकी यह आज्ञा कि अतमे विवश होकर ही इन शाहजादोसे लडा जाय, जसवन्तसिहके लिए एक बडी बाधा थी । इधर औरगजेब सोच-विचार कर अपनी बुद्धिके अनुसार ही अपनी नीति निश्चित करता था और अपने निर्णयके अनुसार चलता था, उधर बेचारा जसवन्तसिह बडी ही असमजसमे पडा हुआ था । अब शत्रु क्या करेगा यह जाने बिना वह अपनी नीति निश्चित नही कर सकता था ।

उसकी सेनामे अनेको परस्पर-विरोधी दल भी थे । राजपूतोकी विभिन्न जातियोके सैनिकोमे खानदानी वैमनस्यके कारण बहुधा कोई भी एकता नही पाई जाती थी । प्रत्येकको अपनी जातिके गौरव और महत्त्वका अभिमान रहता था, जिससे उनमे आपसी वैमनस्य बना रहता था । साथ ही हिन्दू और मुसलमान सेनानायकोमे भी कोई आपसी मेल नही था । धरमतमे एकत्रित सारी फौज भी किसी एक ही सेनानायककी अधीनतामे न थी । कासिमखाँको जसवन्तसिहकी सहायता करनेका ही हुक्म था, उसके आश्रित होकर कार्य करनेका आदेशउसे नहीमिला था । साथ हीअनेक मुसलमान अधिकारी गुप्त रूपसे औरगजेबके पक्षमें थे । कासिमखाँ और उसकी सेना युद्धके खतरेसे सदैव दूर ही रहे, जिससे इस युद्ध का पूरा भार राजपूतोपर ही पडा ।

अन्तत सेनानायककी दृष्टिसे भी जसवन्तसिह कभी औरगजेबकी बराबरी नही कर सकता था । जसन्तसिहकी दोषपूर्ण योजनाओ और युद्ध-भूमिमें उसके सेना-सचालनसे उसकी अनुभवहीनता और तुनकमिज़ाजी ही प्रमाणित होती है । उसने युद्धके लिए ठीक स्थान नही चुना । एक छोटेसे मैदानमे अपनी सेनाको इस तरह एकत्रित कर रखा था कि उसके घुडसवार न तो स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी चतुराई ही दिखा सकते थे और न तीव्र गतिसे वे शत्रुपर आक्रमण ही कर पाते थे । जिन टुकडियोकी सहायताकी आवशश्कता

रहती थी, उनकी भी वह समयपर सहायता नही कर पाता था। एक बार युद्धारम्भ होनेके बाद अपनी सेनापर वह आवश्यक नियन्त्रण भी नही रखसका। ऐसा प्रतीत होता था कि वह एक छोटी टुकडीका ही सचालक-मात्र था। उसने आवश्यकतानुसार अपने तोपखानेका उपयोग न करनेकी भी भयकर गलती की। इसके विपरीत जरूरत पडनेपर औरगजेबके फारासीसी और अग्रेज तोपचियोने अपनी तोपोके मुंह फेरकर राजपूतोपर ऐसी भयकर गोलाबारी की कि उसने वे मारे मारे गए। वास्तवमे इस युद्धमे तलवारोने तोपोका सामना किया था, तोपखानेने सहज ही घुडसवारोपर विजय प्राप्त कर ली।

२. धरमत कायुद्ध

यद्यपि औरगजेबकी सेनाका सगठन और उसका तोपखाना अधिक श्रेष्ठ था, फिर भी दोनो सेनाओकी सख्या प्राय समान ही थी, प्रत्येक सेना मे कोई ३५,००० सैनिक थे।

१५ अप्रेलको सूर्योदयके दो घंटे बाद दोनो विरोधी दलोका आमना-सामना हुआ। अपना नियमित सगठन कायम रखते हुए औरगजेबकी सेना शाही सेनाकी ओर आगे बढी। राजपूतोके दल एक ही स्थानपर एकत्रित थे। औरगजेबने इनपर गोलियां चलाना शुरू कर दिया। स्वतन्त्रतापूर्वक हिलने-डुलनेके लिए राजपूतोको पर्याप्त जगह भी नही थी, एव प्रत्येक क्षण अनेको राजपूत गोलियोके शिकार होने लगे। इसी समय उनकी सेनाका अग्र भाग युद्धके लिए आगे बढा। इसका सचालन मुकन्दसिह हाड़ा, दयालदास झाला, अर्जुनसिह गौड, सुजानसिह सीसोदिया, आदि वीर कर रहे थे तथा इसमें उन्हीकी जातियोके चुने हुए वीर सवार थे। वे अपनी सारी सैनिक योजनाओको भूलकर "राम! राम!" के जयनादके साथ शत्रुओंपर शेरोकी तरह टूट पडे। राजपूतोके आक्रमणका पूरा आवेग पहिले औरगजेबके तोपखानेको ही झेलना पडा। जानको हथेलीपर रखकर राजपूत तोपखानेपर टूट पडे। तोपखानेका

प्रधान सरदार मुर्शिदकुलीखा वीरतापूर्वक लडता हुआ मारा गया, तथा उसके साथी सैनिक घबडा उठे। परन्तु तोपोकी कोई हानि नही हुई। तोपखानेमे होते हुए ये आक्रमणकारी औरअजेबकी सेनाके अगले भागपर झपटे। यहाँ कुछ समयके लिए हाथोहाथ घमासान युद्ध हुआ। राजपूतोका यह दल इस प्रारम्भिक सफलतासे उन्मत आगे बढता हुआ औरगजेबकी सेनाके मध्य तक घुस गया। उस सारे दिनके युद्धमे यह समय ही सबसे अधिक सकटपूर्ण था। अगर राजपूतोके इस आक्रमणको तब न रोका जाता तो औरगज़ेबको सफलता नही प्राप्त होती।

परन्तु शाहजादेकी सेनाके इस भागमे बहुत ही चुने हुए वीर अनुभवी सैनिक थे। उनके पैर किसी प्रकार भी नही उखडे। राजपूतोका आवेगपूर्ण आक्रमण उनके चारो ओर मडराता ही रह गया। उस दिनका सबसे भयकर और निर्णयात्मक युद्ध यही हुआ। औरगजेबकी सेनाके इस सुसगठित एव बहुत बडे भागका सामना करनेमें ही राजपूतोकी सारी शक्ति नष्ट हो गई।

कासिमखाके अधीन मुगल सेनाने जसवन्तसिहकी कोई सहायता नही की। जसवन्तसिहकी सेनाके इस आक्रमणमें उन्होने हाथ नही बटाया। राजपूतोके आक्रमणके इस आकस्मिक तूफान मे पडकर औरगज़ेबकी जो सेना अलग-अलग हो गई थी, वह फिरसे राजपूतोके पीछे सम्मिलित हो गई, जिससे राजपूतोका वापस लौटना असभव हो गया। तब तक औरगजेब ने परिस्थितिको अच्छी तरह समझ लिया था, वह स्वय सेनाके इस मध्य भागके साथ आगेकी ओर बढा। उसके साथ ही मध्य सेनाके दाए और बाए पक्षोको लेकर शेख मीर और सफशिकनखाने अपने सामने औरगज़ेबकी सेनाके अगले भागसे लडते हुए राजपूतो को दोनो ओरसे जा घेरा। आक्रमणमे लगे हुए सारे राजपूत सरदार एक-एक कर मारे गए। अपनी मुख्य फौजसे राजपूतोके इस दलका कोई भी लगाव नही रहा था। उनपर सामने और दाए-बाएसे भयकर आक्रमण हुए। धीरे-धीरे उनकी

सन्ख्या बहुत कम रह गई। बड़ी ही अविश्वसनीय वीरताके साथ लड़ते हुए वे सब युद्ध-भूमिमें काम आए।

तब तक सारे युद्ध-क्षेत्रमे सर्वत्र लडाई छिड चुकी थी। मुकुन्द-सिहके ये राजपूत साथी जब दूसरी ओर बट गये, तब उनके इन हमलेके प्रभावसे सम्हलकर औरगजेबके तोपचियोने अपने तोपोको ऊची पहाडीपर पुन जमा दिया, एव वे जसवन्तसिहकी सेनाके मध्य भाग-पर जोरोसे गोलाबारी करने लगे।

शाही फौज एक बडे सकडे मैदानमे सिमट गई थी। इस मैदानके दोनो बाजुओपर गहरी खाइयां तथा दलदल थी, जिससे शाही सैनिक स्वतन्त्रतापूर्वक घूम नही सकते थे। अब अपनी वीर सेनाके हरोलको यो नष्ट होते, तथा औरगजेबको विजयपूर्वक आगे बढते देख, जसवन्त-सिहकी प्रधान सेनाके दाए बाजूसे रायसिह सिसोदिया, सुजानसिह बुन्देला और अमरसिह चन्द्रावत अपने सैनिको सहित युद्ध-भूमिसे भाग खडे हुए तथा अपने-अपने घरोको लौट गए।

उसी समय मुरादने अपनी सेना लेकर जसवन्तके पडावपर आक्र-मण किया। यह पडाव युद्ध-भूमिके पास ही था। उसके अनेको रक्षकोको मार भगाया तथा उनमेसे देवीसिह बुदेलाने मुरादके प्रति आत्मसमर्पण कर उसकी शरण ली। फिर वहां से आगे बढते हुए युद्ध-भूमिमे पुन. आकर उसने शाही फौजकी बाई बाजूपर हमला किया। थोडी ही देरमें शाही फौजके इस भागकासेनापति इफ्तारखां मारा गया, और वहां की सेनाका सफाया हो गया।

३. जसवन्तसिह और शाही सेना का युद्ध-भूमि छोड़ना

रायसिहके भागनेसे जसवन्तकी सेनाकी दाहिनी बाजू बिलकुल अरक्षित रह गई थी। इफ्तारखांके मारे जानेसे अब उसकी बाईं बगल भी निर्बल हो गई। उस समय तक उसकी प्रधान सेना भी भागने लगी थी। कासिमखांके मातहत मुसलमान सेना अभी तक युद्धसे दूर ही थी, औरगजेबकी सेनाको सहित बढते देख उसने भी भागना

आरभ कर दिया। अब जसवन्तकी बची हुई सेनापर सामनेसे औरगजेब, बाई ओरसे मुराद, और दाहिनेसे सफशिकनखा हुकार करती हुई भयकर बाढके समान घेरते हुए तेजीसे बढ रहे थे। स्वय महाराजा सजवन्तसिहको भी दो घाव लग चुके थे और शत्रुके बढते हुए इस प्रवाहमे वीर-गति पानेके लिए वह अपना घोडा बढानेको उत्सुक हो उठा। पर उसके मन्त्रियो और सेनापतियोने उसकी लगाम थामकर उसे युद्ध-भूमिसे जोधपुरके लिए रवाना होनेको बाध्य किया। उसे लेकर वे जोधपुरकी ओर चले। शाही सेना की हार तब तक सुनिश्चित तथा सर्वथा सुस्पष्ट हो गई थी। जसवन्तसिहके युद्ध-क्षेत्रसे चल देनेके बाद रतनसिह राठौड शाही सेनाका सेनापति बना और वह इस युद्धको चलाए गया, किन्तु अब तो यह युद्ध शत्रुको उलझाए रखकर उन्हे रणक्षेत्र छोडकर जानेवालोका पीछा न करने देने तथा यो उनके पृष्ठ भागकी रक्षाका प्रयत्न-मात्र बन गया था। शाही सेनामे भगदड मच चुकी थी एव इस हारी हुई बाजीको पलट देना रतनसिह और उसके उन मुट्ठी-भर वीर राजपूतोके लिए कदापि सभव नही था। कुछ समय तक वीरतापूर्वक लडते रहनेके बाद अन्तमे रतनसिह भी खेत रहा, और उसके साथ ही शाही सेनाकी ओरका रहा सहा विरोध भी समाप्त हो गया। किन्तु भागती हुई शाहीसेनाका किसीने पीछा नही किया। दोनो ही पक्ष युद्धमे पूरी तरह थक चुके थे। जीतने वालोके सामने विजयमे प्राप्त लूटका सारा माल प्रस्तुत ही था। विजयी शाहजादोने दोनो शाही सेनापतियोके पडावपर अपना अधिकार कर लिया। इनके साथ ही सारी तोपे, तम्बू, हाथी, खज़ाना, आदि सब-कुछ उनके हाथ लगा। सैनिकोने भी शाही फौजके सिपाहियोका सारा सामान लूट लिया।*

---

* फारसी भाषामे प्राप्य आधार-ग्रन्थो मे दिए गए वर्णनो के आधार पर ही धरमत के युद्ध का वृतान्त मैने पहिले लिखा था। इस युद्ध-का विवरण हमे दो समकालीन हिन्दी तथा राजस्थानी काव्य-ग्रन्थो मे भी मिलता है—खड़िया जगाकृत "वचनिका" (१६५८) तथा कुम्भकर्ण

लूटमे प्राप्त इस सारे माल-मतेकी अपेक्षा युद्धमे प्राप्त विजयके फलस्वरूप मिलनेवाला यश ही औरंगज़ेबके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था। उसकी भावी सफलताके लिए धरमतका यह युद्ध एक शुभ सगुन बन गया। एक ही हाथमे उसने ऊंचे चढ़े हुए दाराको अपनी बराबरीका बना डाला और कुछ हद तक अपनी विजय द्वारा औरंगज़ेब ने उसकी हीनता भी सिद्ध कर दी। संशयमे पड़े हुए लोगोंकी हिचकिचाहटका अब अन्त हो गया। चारो भाइयोमे कौन भाग्य-

---

कृत "रतन रासो" (१६७५ ई०)। जसवन्तसिंह का चचेरा भाई, रतलाम का शासक रतनसिंह राठौर भी इस युद्ध के समय शाही सेना-के साथ था एवं इस युद्ध में वह काम आया। रतनसिंह राठौर ने इस युद्ध में क्या किया, उसने किस प्रकार युद्ध किया तथा वह किस प्रकार अन्त में वीरता पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया, इन्हीं बातों का समकालीन विवरण हमें इन दोनों काव्य-ग्रन्थों में मिलता है। इन दो ग्रंथों में दी गई बातों के आधार पर मेरे पहिले के विवरण में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन किया जाना आवश्यक हो गया था। 'आलमगीर-नामे' के आधार पर अब तक यह विश्वास किया जाता था कि रतनसिंह राठौर भी प्रारम्भिक आक्रमण में मुकुन्दसिंह हाडा के साथ था और तभी जूझ मरा, किन्तु इन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि रतनसिंह मुकुन्दसिंह हाडा के साथ तब नहीं गया था। दूसरे, युद्ध-क्षेत्र से रवाना होते समय बाकी रही शाही सेना के संचालन का भार जसवन्तसिंह ने रतनसिंह को सौंपा था। जसवन्तसिंह के रवाना होने के बाद भी रतनसिंह ने वीरता-पूर्वक शाहज़ादों की सेना का सामना किया, और वह तथा उसके सारे साथी युद्ध करते हुए खेत रहे। इस युद्ध में रतनसिंह के कोई ८० घाव लगे थे। यों जसवन्तसिंह के रवाना होने के बाद भी कुछ समय तक युद्ध चलता रहा तथा रतनसिंह और उनके साथियों के मारे जाने पर ही उसका अन्त हुआ। इन काव्य-ग्रन्थों के आधार पर महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह द्वारा सुझाए गए इस युद्ध-सम्बन्धी इन दो संशोधनों को उचित मानकर यहां उसका यह विवरण लिखते समय मैंने इन्हें पूर्णतया स्वीकार किया है। इस विषयक विशद विवेचन के लिए देखो—डा० रघुबीरसिंह कृत 'रतलाम का प्रथम राज्य' (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली)।

लक्ष्मीका दुलारा है, यह जाननेमे अब उन्हे कठिनाई नही होती थी ।

जैसे ही जसवन्तसिह और कासिमखाने पीठ फेरी वैसे ही औरग-जेवकी सेनाने जय-घोप किया । औरगजेब धरतीपर उतर पडा, और वही रणभूमिमे घुटने टेककर बैठ गया, तथा हाथ जोडकर उसने विजय प्रदान करनेवाले उस परमपिताको धन्यवाद दिया ।

इस युद्धमे शाही फौजके कोई ६ हज़ार सैनिक काम आए । इस हानिमे अधिकाश सख्या राजपूतोकी ही थी । राजस्थानकी हर एक राजपूत जातिके वीरोने इस प्रकार युद्धमे जान देकर अपनी स्वामिभक्ति दिखाई तथा अपना वीरोचित कर्तव्य निवाहा । रतलाम, सीतामऊ और सैलानाके राजघरानोके आदि-पुरुप, रतनसिह राठौडकी स्मृतिमे उसके वशजोने युद्ध-भूमिमे ही जहाँ उसके शवकी दाह-क्रिया की गई थी, वहाँ सगमरमरका एक सुन्दर स्मारक वनवाया ।

४. औरंगज़ेब का आगरा की ओर बढ़ना

विजयके दूसरे दिन दोनो शाहजादे उज्जैन पहुचे । वहाँसे चलकर २१ मार्चको वे ग्वालियर आए । यहाँपर उन्हे मालूम हुआ कि दारा भी एक वडी सेनाके साथ धौलपुर आ गया है, तथा उसने चम्वल नदीके सारे सुज्ञात तथा कामलायक घाटोको अपने अधिकारमे कर लिया । तव तो औरगजेवने एक स्थानीय जमादारकी सहायताली । उसने धौलपुरसे ४० मील पूर्वमे भदौलीके पास एक निर्जन घाटका पता लगाया जहाँ केवल घुटनो तक ही पानी था । इस घाटपर दाराने कोई सैनिक या पहरेदार नही रखे थे ।

अव देरी करना अनुचित था । २१ मईको ग्वालियर पहुचनेपर उसी शामको औरगजेवकी सेनाकी एक मजबूत टुकडी तीन सेना-पतियो और तोपखानेके साथ रातोरात चलकर इस घाटपर पहुची, और दूसरे दिन प्रात कालमे कुशलता-पूर्वक नदीको पार किया । सेनाका मुख्य भाग ग्वालियरके पास ही रुक गया था । २२ मईको औरगजेव स्वय ग्वालियारसे चला । दो पडावोकी यात्रा समाप्त

करके अपनी शेष सेनाके साथ उसने भी २३ मईको उसी घाटपर नदी पार की। राह ऊबड़-खाबड़ थी, घाट पहुँचनेमें सैनिकोंको बड़ा कष्ट हुआ। रास्तेमें लगभग १५,००० आदमी प्यासके कारण मर गए। किन्तु इस प्रकार चम्बल पार करनेका सैनिक महत्त्व बहुत अधिक था। उसने एक ही चालसे शत्रुके सारे मोर्चोंको निरर्थक बना दिया और लम्बी-चौड़ी खाइयाँ खोदकर तोपें जमानेमें दाराने जो मेहनत की थी वह सारी व्यर्थ हो गई। आगराका मार्ग औरंग-जेबके लिए खुला पड़ा था। अब चम्बलका किनारा छोड़कर दाराको पीछे लौटना पड़ा कि वह राजधानीकी रक्षाके लिए प्रयत्न करे। अनेकों भारी तोपें दाराको नदीपर ही छोड़ देनी पड़ीं, जिससे वह अगले युद्धमें कमज़ोर पड़ गया। औरंगजेबकी विजयी सेना चम्बलसे उत्तरकी बढ़ती गई और तीन दिनमें ही आगरासे कोई १० मील पूर्वमें सामूगढ़के पास शत्रुके सामने आ डटी।

५. धरमत के युद्ध के बाद दारा की हलचलें

चम्बल नदीके तीरपर जा पहुँचनेके लिए दारा १८ मईको चल पड़ा। आगरासे रवाना होते समय वहाँके किलेमें दीवान-आमम उसने जब अपने वृद्ध पितासे विदा ली तब एक बहुत ही दर्दनाक दृश्य वहाँ उपस्थित हुआ। २३ मईको धौलपुर पहुँचकर उसने आसपासके चम्बल नदीके सारे घाटोंपर अधिकार कर लिया। उसका उद्देश्य था कि बिना युद्ध किए ही वो औरंगजेबकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोक दे, जिससे सुलेमान शिकोहको सेना सहित आकर मिलनेका अवसर मिल जाए। पर शीघ्र ही उसने सुना कि औरंगजेबने धौलपुरसे ४० मील पूर्वमें २३ मईको ही नदी पार कर ली है। तब तो वह हड़बड़ाकर आगराकी ओर लौट पड़ा और आगरा शहरसे कुछ ही दूर सामूगढ़के पास उसने पड़ाव डाला। औरंगजेब भी २८ मईको वहाँ पहुँचा।

औरंगजेबके आनेका समाचार सुनते ही दारा उसी दिन अपनी

फौज़ सम्हालकर पडावसे बाहर निकला, मानो वह युद्ध करने ही जा रहा हो। परन्तु शत्रु सेनाको देखकर रुक गया, और देखने लगा कि शत्रु क्या करता है। सन्ध्या समय वह अपने पडावको लौट आया। यही उसकी भयकर भूल थी। औरगज़ेवकी सेना सख्यामे बहुत कम थी तथा उसके सैनिक कडी धूपमे बिना पानीके दस मीलकी यात्रा करनेके कारण थक चुके थे। दाराकी फौज़ बिलकुल ताज़ा व तैयार थी। दिन भर गर्मीमे घटो बेकार रहनेसे सैनिक और हाथी-घोडे, आदि सब बुरी तरह थक गए। उधर चतुर औरगजेबने अपनी सेनाको सख्या व पूरी रात्रि भर आराम देकर अगले दिनके युद्धके लिए पूरी तरह ताज़ा कर लिया।

६ सामूगढ़ का युद्ध, २६ मई १६५८

२६ मईको प्रात कालमे दाराने अपनी सैन्य-पक्तियोको सुसज्जित किया। उसके पास लगभग ५०,००० सेना थी। राजपूत सैनिको और दाराके ईमानदार पक्षपातियोपर ही इस सेनाकी पूरी-पूरी शक्ति निर्भर थी। परन्तु उसके साथकी फौजमे लगभग आधी सेना ऐसी थी, जिसपर कोई विश्वास नही किया जा सकता था। उसके अनेक मुखियोको औरगज़ेबने फोड लिया था, जिनमे खलीलुल्लाखाका नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय है। अपनी फौजके अग्र भागके सामने दाराने अपना सारा तोपखाना एक कतारमे जमा दिया। इसके पीछे उसके पैदल बन्दूकची थे और बाद मे ये हाथी। सबसे पीछे घुडसवारोकी सेनाका बडा समूह था। दाराका तोपख़ाना भारी होनेसे अधिक क्रियाशील न था। उसके तोपची भी औरगज़ेबके तोपचियोकी अपेक्षा कही अधिक अयोग्य थे। उसके घोडे तथा सामान ढोनेवाले जानवर भी बहुत-कुछ बेकार व अनुपयोगी थे।

इसके विरुद्ध औरगजेबके साथ अनुभवी कुशल साहसी वीरोकी सेना थी। उसके श्रेष्ठ तोपखानोकी कतारोका मीरजुमलाके युरोपीय गोलन्दाज़ सचालन कर रहे थे और गोला-बारूद भी उनके पास पर्याप्त

मात्रामें था। पूर्ण आज्ञाकारिता और सुदृढ़ संगठन ही उसकी सेनाकी प्रधान विशेषताएं थी। बिना किसी हिचकिचाहट या आशंका किए आज्ञा-पालनकी शिक्षा उसके सारे अधिकारियोंको पूर्ण रूपसे दी गई थी।

मध्यान्ह तक उनका युद्ध आरंभ हो गया। दारा एकदम आक्रमणके लिए उतारू हो गया। उसका तोपखाना दूरीपर स्थित-शत्रु-सेनाकी बहुत ही थोड़ी हानि कर पाया। इस समय अपना गोली बारूद बचा रखनेकी औरंगजेबने बुद्धिमानी की।

एक घंटे तक इस प्रकारकी गोलाबारी होनेके बाद दाराने हमलेका हुक्म दिया। रुस्तमखांकी मातहत उसकी बाई ओरकी फौज नंगी तलवारें लेकर भयंकर युद्ध-नाद करती हुई विरोधी शत्रुओं-पर टूट पड़ी। औरंगजेबके बन्दूकचियों और उनके मुखिया शफशिकन-खाने बंदूकोंकी घातक बाढ़के साथ इस आक्रमणका सामना किया। परन्तु यह धावा तोपों तक नहीं पहुंच पाया और न इन्हें नष्ट करनेमें ही उसे कोई सफलता मिली। धीरे-धीरे इस आक्रमणका वेग कम होता गया। तब तो रुस्तमखां दाहिनी ओर मुड़ा और औरंगजेब की सेनाकी ओर झपटा। पर औरंगजेबकी मध्य सेनाकी दाहिनी बाजूवाली फौजको लिये बहादुरखाने रुस्तमखांका मार्ग रोका। तब घमासान द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ। बहादुरखां घायल होकर गिरा। तब तक इस्लामखां और शेख मीर उसकी सहायताके लिए पहुँच गए थे। अब रुस्तमखांके विरोधियोंकी संख्या बहुत अधिक हो गई; इधर वह बुरी तरह थक गया था। उसका हाथ भी बुरी तरह घायल हो गया था। फिर भी कोई १०-१२ अन्य साहसी वीरों सहित मार-काट द्वारा अपनी राह बनाता हुआ वह शत्रु सेनाके बीचोबीच जा पहुँचा और वहां अनेक शत्रुओंको मारकर वहीं खेत रहा। दाराकी सेनाके बाएँ पक्षके युद्ध थके हुए सैनिक अब सिपर शिकोहके साथ पीछेको लौट पड़े।

इसी समय औरंगजेबकी बाईं ओर इससे भी भयंकर युद्ध मचा

हुआ था। वहाँ छत्रसाल हाडाके नेतृत्वमे राजपूतोकी शाही फौज अपनी पूरी शक्तिके साथ मुरादपर झपटी। राजपूतोने यो प्रयत्न किया कि मुराद व औरगजेव की सेनाए अलग-अलग हो जावे। राजा रामसिह राठौड मुरादके हाथीपर झपटा और जोरसे उपहासपूर्वक चिल्लाया कि "तू दारासे सिंहासन छीनने चला है", तथा राजाने मुरादपर अपना भाला फेका। किन्तु निशाना चूक गया और शाहजादेने एक ही बाणसे राजाको मार गिराया। मुरादको घेरनेका प्रयत्न करनेवाले दूसरे राजपूत भी एक-एक कर मारे गये। मुदारके हाथी का महावत मारा गया और उसके चेहरेपर भी तीन घाव लगे। उसके हाथीका हौदा शत्रुओके तीरोसे भरकर काँटोसे पूर्ण साहीकी पीठ-सा दिखाई देने लगा। इस आक्रमणके वेगने उसे हाथी सहित पीछेकी ओर धकेल दिया।

विजयी राजपूत अब मध्यकी ओर बढे तथा मुरादकी सहायताके के लिए आते हुए औरगज़ेवपर टूट पडे। राजपूत औरगजेवके पास तक जा पहुचे और उसपर आक्रमण किया। पर उस शाहजादेके रक्षकोने वैसी ही वीरतासे उनका सामना किया। वे बिलकुल ही थके न थे, इसलिए राजपूतोकी उनके सामने एक न चली। फिर भी राजपूत प्राणोका मोह छोडकर बहु-सख्यक शत्रुओसे लडते ही रहे। छत्रसाल हाडा, रामसिह राठौड, भीमसिह गौड, शिवाराम गौड, आदि वीर योद्धा एक-एक कर काम आए। राजा रूपसिह राठौड जानपर खेलकर अपने घोडेसे कूद पडा। नगी तलवार लिये वह औरगजेवके हाथीकी ओर लपका। औरगजेवको नीचे गिरा देनेके इरादेसे उसके हौदेकी रस्सियाँ उसने काटनेका प्रयत्न किया। हाथीके पैरपर उसने तलवारका वार किया। किन्तु वह स्वय ही औरगजेवके शरीर-रक्षको द्वारा मारा गया। बचे-खुचे राजपूत भी युद्धमे काम आए। इस प्रकार दाराकी बाई और दाई दोनो ही ओरकी सेनाए इस समय तक नष्ट हो गई।

७ सामूगढ़के युद्ध में दारा; युद्धका अंत

युद्धके आरम्भमें ही दारा सेनाके मध्यमें अपनी जगह छोड़कर रुस्तमखाकी सहायता करनेके लिए औरंगजेबकी सेनाके दाहिने पक्षकी ओर चला गया था। इससे बढ़कर खतरनाक गलती हो नहीं सकती थी। यो सेनाके प्रधान सेनापतिकी हैसियतसे अपनी सेनापर नियन्त्रण तथा संचालन सम्बन्धी जो अधिकार दारा को प्राप्त होना चाहिए था उसे वह यो एकबारगी खो बैठा। सारी मुगल सेनामें पूरी गड़बड़ मच गई। पुन. स्वयं आगे आकर उसने अपने ही तोपखानेको गोला-बारी करनेसे रोक दिया। केवल इस एक गलतीने ही दाराकी जो हानि हुई वह अनेक कारणोसे होनेवाली अन्य भारी हानियोसे कहीं अधिक थी। अब दारा अपने सामने खड़े शत्रुके तोपखानेसे बचनेके लिए दाहिनी ओर मुड़ा और शेख मीरकी सेनासे जा भिड़ा।

इस समय औरंगजेबके आसपास कोई सेना नहीं रह गई थी। पर दारा स्वयं थक गया था। साथ ही रणभूमिकी कठिनाइयोंके कारण कुछ समयके लिए वह रुक गया। उसके आक्रमणकी तेजी बहुत-कुछ कम हो गई और उसने विजय प्राप्त करनेका यह स्वर्ण अवसर हमेशाके लिए खो दिया। क्योंकि उतनी सी देरमें औरंगजेबने अपनी सेनाएँ सम्हाल ली और आवश्यकतानुसार उन्हें नये ढंगसे जमा दिया। उधर दाराको छत्रसाल हाड़ाकी सेनाकी सहायताके लिए अपनी सेनाकी दाहिनी ओर मुड़ जाना पड़ा। इस लम्बी और थकानेवाली आवाजाहीसे उसके सैनिक थक गए। उस तेज धूपमें दम घोटनेवाली धूलकी आंधीके बीच, जलती हुई बालुकापूर्ण भूमिपर उन्हें चलना पड़ रहा था, और दुर्भाग्यसे प्यास बुझानेके लिए एक बूंद पानी भी नसीब न हो सका था।

अब तक औरंगजेबकी सेना अपने स्थानपर दृढ़तासे डटी हुई थी। किन्तु अपने पिताकी सेनाको लेकर शाहजादा मुहम्मद सुलतान अब दारापर आक्रमण करनेके लिए तेजीसे आगे बढ़ा। उसी समय औरंगजेबकी दाहिनी ओरवाली विजयी सेना भी दारा की फौजपर

हमला करनेके लिए घूम पडी । दाई और बाई, दोनो ओरसे दाराके सैनिकोपर लगातार गोलियोकी बौछार पड रही थी । अब वास्तवमें युद्धका अंत आ गया था । अपने मुख्य सेनापतियोकी मृत्युकी सूचना दाराको मिल चुकी थी । अब अपने सामने तोपे लिये औरंगजेबकी सेना उसकी ओर बढी आ रही थी । खुद दाराका हाथी ही अब गोलियोका निशाना बना, जिससे घबराकर यह हाथी अपने रखवालोपर ही हमला करने लगा । अभागे दाराके लिये अब यह अनिवार्य होगया कि वह उस हाथीको छोडकर घोडेपर बैठे । तत्काल ही उसकी सेनाके सारे विरोधका अंत हो गया । पूरे रणक्षेत्रमे फैले हुए उसके सैनिकोने हौदा खाली देख उसे मरा समझ लिया । प्यास और थकानके कारण वे पहले ही अधमरे हो गए थे, अब गर्म लूके थपेडे खाकर प्यासके मारे ही कई मर गए, हथियार उठाने तककी उनके हाथ-पैरमे तब ताकत न रही थी । शाही फौजमे अब जो कोई बचे थे वे एकदम रण-क्षेत्र छोडकर भाग खडे हुए । कुछ खानदानी अनुचरोको छोडकर अब दाराके पास कोई न ठहरा, वह बिलकुल अकेला रह गया । उसके वे साथी उसे रणक्षेत्रसे आगराको ले चले ।

औरंगजेबका सामना करनेवाला अब कोई नही रहा था, फिर भी उसने भागते हुए शत्रुओका पीछा नही किया, क्योकि इस युद्धमे उसे पूर्ण विजय प्राप्त हुई थी । दाराकी सेनाके कोई दस हज़ार सैनिक काम आए । शाही सेनाकी ओरसे मारे जानेवाले ६ राजपूत और १६ मुसलमान उच्च पदाधिकारी सेनानायकोके नामोका उल्लेख मिलता है ।

इस युद्धमे खेत रहनेवाले इस वीर सेनानियोमे ५२ लडाइयोका विजेता बूंदी-नरेश राव छत्रसाल हाडा विशेष उल्लेखनीय था । धरमत और सामूगढकी दो लडाइयो मे हाडा राजघरानेके कुल मिलकार कोई बारह राजपुत्र काम आए । अपने सैनिकोको लेकर इस वशके प्रत्येक घरानेके अधिपतिने युद्धक्षेत्रमे अपनी स्वामिभक्तिका स्पष्ट प्रमाण दिया । ईरानियो और उज़बेगोके विरुद्ध लडे जानेवाले

युद्धोका वीर-विजेता सुप्रसिद्ध रुस्तमखाँ उर्फ फिरोज जग भी इस युद्धमे काम आया। औरगजेबके पक्षका प्रथम श्रेणीका केवल एक ही नायक आज़मखा मरा और केवल अत्याधिक गर्मी ही उसकी मृत्युका कारण हुई।

८ आगराकी घटनाएँ और शाहजहाँका कैद होना; जून १६५८

सामूगढके विनाशकारक युद्धसे भागकर अपने कुछ नौकरोके साथ दारा रात्रिको ६ बजे आगरा पहुचा और शहरवाले अपने मकानमे जा छुपा। शाहजहाँने सदेश भेजा कि किलेमे आकर वह उससे मिले। परन्तु दारा तो शरीर और मन, दोनोसे ही पूर्णतया हतोत्साह और मृत-प्रायसा हो रहा था। उसने किलेमे जाना अस्वीकार करते हुए कहला भेजा कि मै अपनी इस दुर्दशामें किस प्रकार शाहशाहको मुंह दिखा सकता हू। मेरे सामने जो लम्बी यात्रा है उसके लिए विदाईका आशीर्वाद दीजिए और आज्ञा दीजिए कि मै यहीसे अपनी यात्रापर चल पड़ूं।

प्रातःकाल ३ बजे वह अभागा शाहज़ादा अपनी पत्नी, पुत्रो और दस-बारह नौकरोको लेकर आगरासे दिल्लीके लिए रवाना हुआ। शाहजहाँकी आज्ञानुसार शाही खजानेसे सोनेकी मोहरें लादकर उसके साथ भेज दी गई। अपने पासके हीरे, जवाहरात और नगद रुपये, आदि जो कुछ भी इस जल्दीमें ले जा सका वह साथ लेता गया। उसके पक्षवालोके छोटे-छोटे गिरोह रास्तेमे दो दिनो तक आ-आकर उसके साथ होते गए। दिल्ली पहुँचते-पहुँचते उसके पास ५,००० सैनिकोकी एक अच्छी सेना तैयार हो गई।

सामूगढके युद्धके बाद औरगजेबने जाकर मुरादको बधाई दी, और कहा कि यह विजय मुरादकी ही योग्यताका परिणाम थी, इसलिए उसी दिनसे मुरादके राज्य-कालका प्रारम्भ माना जाना चाहिए।

सामूगढकी युद्ध-भूमिसे चलकर ये विजेता दो मजिल पार कर १ली जूनको आगराके पास पहुँचे और वहाँ शहरके बाहर नूरमजिल या धाराके बागमे उन्होने पडाव डाला। यहाँ वे दस दिन तक ठहरे रहे। दिन प्रति-दिन अनेको दरबारी, सरदार और हाकिम शाही पक्ष छोडकर उनके साथ मिलने लगे। दाराके पुराने अधिकारियोने भी यही किया।

सामूगढके युद्धके दूसरे दिन औरगजेबने सीधे शाहजहाँको एक पत्र लिखा। शत्रुओके कारण विवश होकर इस समय उसे जो कुछ भी करना पड रहा था, उसके लिए उसने क्षमा माँगी। नूरमज़िल पहुचनेपर शाहजहाँके हाथका लिखा हुआ पत्र उसे मिला। बादशाहने उसे मिलनेके लिए बुलाया था। कुछ सोच-विचारके बाद उसने अपने मित्रो (विशेपकर शायेस्ताख़ा और ख़लीलुल्लाख़ा) की सलाहपर यह निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। मित्रोने उसे भडकाया कि आगराके किलेमे घुसते ही एक तातारी स्त्री-रक्षक द्वारा उसे मरवा डालनेका शाहजहाँने षडयन्त्र रचा है।

अन्तमे अब औरगजेब खुले-आम शाहजहाँका विरोध करनेको उतारू हुआ। आगरा शहरपर अधिकार कर वहाँ अमन-चैन बनाए रखनेके लिए ३ जूनको ही औरगजेबने अपने बडे लडके मुहम्मद सुलतानको वहाँ भेज दिया था। शाहजहाँने आगरेके किलेके दरवाजे बन्द करवाकर आक्रमणका सामना करने की तैयारी की। ५ जूनको आगराके किलेका घेरा डाला गया, किन्तु गोला-बारी कर उस किलेको तोडनेमे औरगजेबका तोपखाना विफल ही हुआ। अगर ठीक तौरपर उस किलेका घेरा डालकर उसे जीतनेके लिए प्रयत्न किया जाता तो उसमे कई माह या सभवत वर्ष भी लग जाते और ये दोनो विजयी भाई आगरामे ही रुके रह जाते, तथा उधर दाराको अवसर मिल जाता कि वह पुन नई सेना एकत्रित कर उसे सुसज्जित कर डाले। इसलिये औरगजेबने अपनी सेनाको भेजा कि वह जमुनाकी ओर खुलनेवाली किलेकी खिडकीके पासके बाहरी

भागपर अधिकार कर ले। इस प्रकार किलेकी सेनाके लिये आवश्यक जल-प्राप्तिका साधन बन्द हो गया। किलेके कुछ पुराने अनुपयोगी कुओंका पानी खारा और बिलकुल पीने योग्य न था। यह हालत देख बादशाहके अनेक हाकिम तथा मुफ्तमें पानेवाले कई आलसी दरबारी भी चुपचाप किलेके बाहर खिसक गए।

इन परिस्थितियोंमे भी शाहजहांने तीन दिन तक किलेके दरवाजे नही खोले। उसने स्वयं औरंगजेबसे एक बहुत दर्दनाक व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वह अपने जीवित पिताको प्यासो न मारे पर उसके उत्तरमे औरंगजेबने यही कहा कि "यह सब आपकी ही करनीका फल है"। अपने चारो ओर षड्यन्त्र और विनाश देखकर प्याससे व्याकुल वृद्ध बादशाहने आत्मसमर्पण करनेका निश्चय किया ८ जूनको उसने औरंगजेबके अफसरोंके लिए किलेके दरवाजे खोल दिए, तब तो वह स्वयं महलके हरममें कैदी बना दिया गया। अब उसे विवश होकर किलेमे दरबार-आमसे लगे हुए कमरोंमें ही रहना पडा। उसके सारे अधिकार छीन लिये गए। किलेके भीतर और बाहर मजबूत पहरे बैठा दिए गए कि उसको छुडानेका प्रयत्न विफल ही रहे। उसके पास रहनेवाले खोजापर भी कडी नजर रखनेका हुक्म हुआ ताकि वे उसका कोई भी पत्र बाहर न ले जा सके। आगराका अटूट खजाना, भारतके महान् शक्तिशाली बादशाहोंकी तीन पुश्तोंसे सगृहीत वह सारा धन, सहज ही औरंगजेबके अधिकारमें आ गया।

१० जूनको शाहजादी जहांनारा बहनके नाते औरंगजेबको मनाने और उसपर अपना प्रभाव डालनेके लिए उससे मिलने आई। शाहजहांकी ओरसे उसने चारो भाइयोंमें साम्राज्यको बांट देनेका प्रस्ताव भी पेश किया। परन्तु औरंगजेबने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया उसका ऐसा करना स्वाभाविक ही था।

६ मुरादबख्शकी कैद और मृत्यु

दाराका पीछा करनेके लिए १३ जूनको औरंगजेब आगरे

रवाना हुआ। पर मुरादके ईर्ष्यालु और हठी वर्तावके कारण कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जानेसे उसे मार्गमे ही मथुरामे रुक जाना पड़ा। इस शाहज़ादेके दरवारी दिन-रात उसे भडकाया करते थे और कहते थे कि धीरे-धीरे सारी हुकूमत उसके हाथसे निकलकर औरगज़ेवके ही हाथमे चली जा रही थी और इस प्रकार औरगजेव ही धीरे-धीरे सर्वेसर्वा वनता जा रहा था। इन सलाहकारोके वहकानेमें आकर मुराद खुल्लम-खुल्ला औरगजेवका विरोध करने लगा। उसने अपनी सेना भी वढा ली और औरगज़ेवके पास आना-जाना भी उसने वन्द कर दिया।

परिस्थिति वडी ही नाजुक होगई। परन्तु औरगजेवने २३३ घोडे और २० लाख रुपये देकर मुरादके सन्देहको मिटा दिया। साथ ही मुरादको युध्द मे लगे हुए घावोके अच्छे हो जाने के उपलक्षमे, तथा भागते हुए दाराके विरुद्ध युद्ध-यात्राकी योजनाको पूरी करनेके उद्देश्यसे औरगजेवने मुरादको भोजनोत्सवके लिए आमन्त्रित कर दिया। भाईका यह निमन्त्रण स्वीकार कर २५ जूनको शिकारसे लौटते हुए मुराद औरगज़ेवके पडावमे जा पहुचा।

औरगजेवने सादर उसका स्वागत किया। उसे खूव खिलाया और शराव पिलाकर नशेमे चूर कर दिया। जव उसे नशा आगयी, तव उसके हथियार छीन लिये गए और वह कैद करके ग्वालियरके सरकारी कैदखानेमे भेज दिया गया। मुरादके पक्षवालोको उसके दुर्भाग्यकी कहानी वहुत देर वाद मालूम हो सकी। दूसरे दिन उसकी नेता-रहित सेनाने औरगजेवकी सेवा स्वीकार कर ली। मुराद ग्वालियरके किलेमे तीन साल तक जीवित रहा। अन्तमे सिहासनारूढ होनेका स्वप्न देखनेवाला यह अभागा शाहज़ादा ४ दिसम्वर १६६१को उसी किलेके कैदखानेमे दो गुलामो द्वारा कत्ल कर दिया गया तथा उसकी लाश किलेमे ही दफना दी गई।

अध्याय ५

उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए युद्ध; दारा और शुजा का अन्त

१. सामूगढके बाद दाराका पीछा

५ जून १६५८को दारा दिल्ली पहुंचा। वहां राजधानीमें एक नई सेना तैयार कर उसे पूरी तरह सुसज्जित करनेकी उसने कोशिश की। परन्तु एक सप्ताहके बाद ही दिल्ली छोड़ वह लाहौरके लिए चल पडा। बहुत दिनों तक वह पंजाबका सूबेदार रह चुका था, और इस समय उसका ईमानदार हाकिम गैरतखां उस प्रान्तका सूबेदार था। दारा ३ जुलाईको लाहौर पहुंचा और वहां डेढ माह तक युद्धकी तैयारियां पूरी करनेमें लगा रहा। उसने २०,००० सैनिकोंकी फौज इकट्ठी की। सतलजके तलवान और रूपारके घाटोंकी रक्षाके लिए भी उसने सेनाके सुसज्जित दस्ते भेजे।

इसी बीचमें औरंगजेबने दाराके अधिकारियोंसे इलाहाबाद छीन लेनेके लिए खान-ए-दौरानको वहाँ भेजा, तथा बहादुरखांको पीछा करनेका हुक्म दिया। वह स्वयं भी ६ जुलाईको दिल्लीकी ओर बढ़ा। दिल्लीमें तीन हफ्ते रहकर उसने पुराने शासनमें फेरफार कर एक नये सुदृढ़ प्रबन्धकी स्थापना की। अन्तमें २१ जुलाईको आलमगीर गाजीके नामसे वह स्वयं राजगद्दीपर बैठा। खलीलुल्लाखां पंजाबका शासक नियुक्त किया गया और दाराका पीछा करनेवालोंकी सहायता करनेके लिए उसे भेजा।

५ अगस्तकी रात्रिको रूपारके पास बहादुरखाँने एकाएक सतलज पार की। दाराके सेनानायकोको अब व्यासकी ओर पीछे हटना पडा। परन्तु जब औरगजेब दिल्लीसे सतलज पहुचा, तब १८ अगस्तको दारा लाहौरसे मुलतानकी ओर भाग गया, और वह अपने कुटुम्ब और खज़ानेको भी साथ ले गया। यह यात्रा उसने जल-मार्गसे नाव द्वारा की।

औरगजेबकी सेना ३० अगस्तको लाहौरसे दाराके पीछे-पीछे चली। १७ सितम्बरको औरगजेब खुद इन पीछा करनेवालोमे जा मिला। पर दारा १३ सितम्बरको मुलतानसे भी आगे भागा। मुलतानके पाससे ३० सितम्बरको औरगजेब शुजाके आक्रमणका सामना करनेके लिए पीछे दिल्लीको लौट पडा। परन्तु इससे दाराका पीछा करनेमे किसी तरहकी ढिलाई नही आई।

सक्करमे औरगजेबकी सेनाको २३ अक्तूबरके दिन मालूम हुआ कि भक्खरके किलेमे अपनी वडी तोपे और बहुत-सा माल-असबाब छोडकर दारा स्वय सेहवानकी ओर भाग गया था। उसके सारे सैनिको और एकमात्र विश्वासपात्र सरदार दाऊदखाने भी उसका साथ छोड दिया। तेजीसे वढते-वढते ३१ अक्तूबरको शाही फौज सेहवानमे दाराके पास आ पहुची। दाराको घेरनेके इरादेसे उन्होने सिन्धुके दोनो किनारोपर अधिकार कर लिया। परन्तु दाराकी नावे अधिक अच्छी थी, एव खुली नदीके वीचोवीच तेजीसे अपनी नावे निकालकर २ नवम्बरको वह सेहवानमे चल पडा और यत्ता जा पहुचा (१३ नवम्बर)। शाही फौज फिर तेजीसे आगे वढी और उसके पीछे-पीछे यत्ता पहुची (१८ नवम्बर), परन्तु वहाँ उन्हे पता लगा कि गुजरातकी ओर जानेके लिए दारा तव कच्छकी खाडी पार कर रहा था। पीछा करने वालोको अब औरगजेबने वापिस दरबारमे वुला लिया। नावोके अभावसे पीछा करनेवालोको इस बार सफलता न मिली।

२ राजपूतानामें दारा; दोराईका युद्ध

थत्तासे ५५ मील पूर्वमें स्थित बादिन छोड़कर दाराने कच्छके रणको (नवम्बरके अन्तमें) पार किया, तथा भुज और काठियावाड़में नवानगरकी राह ३,००० सैनिकोंके साथ वह अहमदाबाद पहुंचा। इस प्रान्तका नया सूबेदार शाहनवाजखां दाराके साथ हो गया (९ जनवरी १६५९)। सूरतके तोपखानोंको भी वह ले आया और बड़ी तेजीसे वह आगराकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें उसे अजमेर आनेके लिए जसवन्तसिंहका सन्देश मिला। वहाँ अपने राठौड़ों और दूसरे राजपूतोंके साथ दारासे मिल जानेका उसने वादा किया था। परन्तु दारा वहाँ पहुंचे उसके पहिले ही खजवामें (५ जनवरी) मिर्जा राजा जयसिंहकी सहायतासे औरंगजेबने जसवन्तसिंहको अपनी ओर मिला लिया था। औरंगजेब अब उसके बिलकुल नजदीक आ पहुंचा था, इसलिए उसके साथ लड़नेके सिवाय दाराके लिए दूसरा कोई चारा न रहा। अजमेरसे चार मील दक्षिणमें दोराईकी घाटीमें औरंगजेबको रोकनेका उसने निश्चय किया। उसके दोनों बाजू बिटली और गोकला पहाड़ियोंसे सुरक्षित थे, और अजमेरका समृद्धिशाली शहर ठीक उसके पीछे था। अपनी सेनाके दक्षिणमें दोनों पहाड़ियोंके बीचकी समतल भूमिमें उसने एक दीवाल बनवाई, और उसके सामने खाइयाँ और अनेक स्थानों पर छोटी-छोटी बुर्जें भी बनवाईं।

दक्षिण दिशासे औरंगजेबने उन मोर्चेबन्दीका सामना किया और १ मार्च १६५९की सन्ध्याको ही उसने शत्रुपर गोला-बारी शुरू कर दी। परन्तु शत्रुकी खाइयाँ बड़ी ही दुर्गम थीं और दाराके गोलन्दाजों तथा बन्दूकचियोंने अपने ऊंचे और सुरक्षित स्थानसे औरंगजेबके अरक्षित पैदलों और बन्दूकचियोंपर मौत बरसाना आरम्भ किया। १४ मार्चको औरंगजेबने अपने सेनानायकोंसे परामर्श कर आक्रमणकी एक नई योजना तैयार की। उसने निश्चय किया कि उसकी सेनाएं

एक बडा दल शत्रु सेनाके बाए पहलूपर शाहनवाज़खाकी सेनापर जोरोसे आक्रमण करे। उधर जम्मूके पहाडी राजा राजरूपके पहाडी सैनिकोने गोकला पहाडीपर चढनेका एक अज्ञात मार्ग ढूंढ निकाला था, एव राजरूपको हुक्म हुआ कि वह अपने सैनिकोके साथ चुपचाप उस पहाडीकी चोटीपर चढकर वहाँ अधिकार जमा ले।

१४ मार्चकी सध्या-समय शाही फौजने शाहनवाजखाके मोर्चोपर धावा कर दिया। औरगज़ेबका तोपखाना पुन फुर्तीके साथ गोला-बारी करने लगा, जिससे दाराकी सेनाके दूसरे भाग वहाँसामने होकर बाई ओरके अपने साथियोको शत्रुके आक्रमणका विरोध करनेमे सहायता न दे सके। दाराकी सेनाने डटकर सामना किया और अपने मोर्चोकी रक्षा करती रही, फिर भी अन्तमे शाही फौजने सारी शत्रु-सेनाको रणभूमिसे खदेड दिया और खाइयोके किनारे तकके सारे मैदानपर अधिकार कर लिया।

इस समय तक पहाडीके पीछेसे धीरे-धीरे चढकर राजरूपके सैनिक गोकलाकी चोटीपर जा पहुचे, और वहाँ अपना झडा गाडकर उन्होने जोरोसे जयनाद किया। यह देखकर कि शत्रु उनके पीछे भी जा पहुचे, दाराकी सेनाका बायाँ पहलू पूरी तरह निराश होकर भाग खडा हुआ, किन्तु उनमेसे कई फिर भी बराबर डटे रहे और वीरता पूर्वक लडते रहे। अन्तमे जब उन खाइयोपर जोरोसे हमला हुआ, तब दाराकी सेना नही टिक सकी, सैनिक तथा सेनापति, सब रणभूमिसे भाग खडे हुए और रात्रि के बढते हुए अन्धकारसे उन्हे भागनेमे पूरी-पूरी सहायता मिली।

गोकला पहाडीके शत्रुओके हाथमे पड जानेसे दाराकी हालत बहुत ही खतरनाक हो गई, और अब अधिक टिक सकना दाराके लिए सभव नही रहा। एव केवल बारह साथियोको लेकर अपने पुत्र सिपर शिकोहके साथ वह सिरपर पैर रखकर गुजरातकी ओर भागा। जसवन्तसिहकी आज्ञानुसार हजारो राजपूत युद्ध-क्षेत्रके पास एकत्रित हो गए थे, अब दाराकी सेनाकी सारी सामग्री और

सामान ढोनेवाले उसके बहुत-से जानवर उन्होंने लूट लिये।

३ दाराका भागना एवं अन्तमें पकड़ा जाना

दोराईके युद्धके समय दाराने अपना सारा खजाना और हरम अजमेरके अनासागरके किनारे ही छोड दिया था। आवश्यकता पडनेपर वहांसे उन्हे ले जानेकी पूरी-पूरी तैयारी थी। एव १४ मार्चकी रातको दाराके साथी उन्हे लेकर अजमेरसे चल दिए और १५ मार्चकी शाम तक मेडतामे दारासे जा मिले। परन्तु दाराका पीछा करनेके लिए औरगजेबने जयसिह और बहादुरखाके सेनापतित्वमे एक शक्तिशाली सेना पहिले ही भेज दी थी। इसलिए दाराको कही भी विश्राम करनेका कोई अवसर नही मिला। पहलेकी-सी ही शीघ्रतासे उसे वहांसे भागना पडा। मेडता छोडते समय उसके साथ केवल २,००० सैनिक थे। गुजरातकी ओर भागते समय उन्हे बहुत अधिक कष्ट भोगना पडे। साथ ही साथ उनके कुछ घोडे और ऊँट गर्मी और बहुत अधिक थकावटके मारे मर गए।

दारासे पहले ही हर जगह औरगजेबके पत्र पहुच चुके थे। अहमदाबादसे लौटकर उसके दूतने दाराको सूचना दी कि यदि वह उस शहरमे घुसनेका प्रयत्न करेगा तो उसका विरोध किया जावेगा। यह सुनकर दाराकी रही-सही आशाएं भी विलीन हो गई। इस निराशापूर्ण हालतको देखकर दारा और उसके साथी हारे-थाके रह गए। अब क्या करे, कहां जावे, यही सोचते-सोचते थक उठे। इस प्रकार अन्तमें सिर्फ एक घोडा, एक बैल-गाडी, पांच ऊंटोंपर औरतों-को लिए तथा अन्य कुछ ऊंटो पर सामान लादे, इने-गिने थोडे-से नौकरोंको साथ लेकर एशियाके सबसे सुसमृद्ध शक्तिशाली साम्राज्यका मनोनीत युवराज दीन-हीन वेशमे पुन इन उजाड़ इलाकों पारकर [illegible] आरम्भमें सिन्धकी दक्षिणी सीमापर आ पहुचा।

यहां भी सिन्धके निचले हिस्सेमें आगे जाना उसके लिए सम्भव नहीं था। औरंगजेबने [illegible] लाहौरसे दक्षिणमें भागकर

भेज दिया था। सिन्ध सूबेके स्थानीय अधिकारी और जयसिंहकी सेनाके आगे बढे हुए दस्ते दाराको उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पूर्वसे घेरे हुए आगे बढ रहे थे। दाराके लिए भाग निकलनेका सिर्फ एक ही रास्ता खुला था, एव वह उत्तर-पश्चिम को मुडा। उसने सिन्धु नदी पार की और कन्धारकी राह ईरान भाग जानेके इरादेसे वह सेहवान जा पहुँचा।

जयसिह अजमेरसे दाराके पीछे-पीछे बढता आ रहा था। बडी कठिनाइयाँ सहते हुए उसने छोटे-बडे रण तथा कच्छ द्वीपको पार किया। इसपर भी बडी दृढताके साथ वह चलता ही गया, और ११ जूनको सिविस्तानकी सीमापर सिन्धु तक जब वह पहुचा, तब उसे ज्ञात हुआ कि दारा भारतकी मुगल सीमा पार कर चुका था। अब सिन्धुके किनारे-किनारे चलता उत्तरकी राह हिन्दुस्तानकी ओर चल पडा।

दाराका कुटुम्ब ईरान जानेके बिलकुल ही विरुद्ध था। उसकी प्यारी बेगम नादिरा बानू इस समय बहुत बीमार थी। इसलिए दाराने अपना विचार बदल दिया और दादरके जमीदार, मलिक जीवाँसे मित्रताके नाते सहायता पानेकी आशासे वह उधर चल पडा। बोलन घाटीकी भारतीय सीमाके छोरसे नौ मील पूर्वमे स्थित दादरकी यह जमीदारी थी। कई वर्ष पहले मृत्युकी सजा-प्राप्त इस अफगानी सरदारके जीवन और स्वतन्त्रताके लिए दाराने बादशाहसे सफलता-पूर्वक प्रार्थना की थी। अब उसी कृतज्ञ जीवाँसे सहायता पानेकी आशा कर दारा दादर पहुचा। सम्भवत ६ जूनके लगभग सरदार उसे अपने घर ले गया और आदरपूर्वक वहाँ उसका पूरा प्रबन्ध किया।

दादर जाते समय मार्गकी तकलीफोके कारण नादिरा बानूकी बीचमे ही मृत्यु हो गई थी। इस दु खमे दारा पागल हो उठा। उसकी लाशको अपने आध्यात्मिक गुरु मियाँ मीरके ही कब्रिस्तानमे गडवानेके उद्देश्यसे दाराने नादिरा बानूकी लाशको

लहौर भिजवा दिया। उसकी रक्षाके लिए उसने बाकी बचे हुए हुए अपने ७० सैनिकोंको भी अपने परम भक्त अधिकारी गुलमुहम्मदके साथ जाने या उनके साथ ईरान जानेकी दोनो बातोमेंसे एक चुन लेनेकी पूरी स्वतन्त्रता दी। इस प्रकार उसके सच्चे अनुचरोमेंसे अब एक भी दाराके पास न रहा।

कृतघ्न अफगानी सरदारने दाराकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु अब लोभने उसे आ घेरा। उसने विश्वासघात करके ९ जूनको दारा, उसके छोटे लडके और उसकी दोनो पुत्रियोंको कैद कर उन्हे बहादुरखाके सुपुर्द कर दिया।

४ दाराका अपमान और उसकी मृत्यु

जब ये कैदी दिल्ली पहुचे, तब उन्हे अपमानपूर्वक राजधानीकी सड़कोपर घुमाया गया (२९ अगस्त)। एक मैली-कुचैली छोटी-सी हथिनीपर खुले हौदेमे दाराको बैठाया गया। उसके बगलमें उसका दूसरा पुत्र सिपर शिकोह था। जिसकी उम्र इस समय केवल १४ वर्षकी ही थी। इनके पीछे हाथमें नंगी तलवार लिये उनके कैदखानेका वह भयंकर अफसर गुलाम नजरबेग बैठा था। संसारके सबसे समृद्ध साम्राज्यका उत्तराधिकारी आज लम्बी यात्रामें फटे गए मैले-कुचैले मोटे कपड़े पहने, जिन्हे गरीबसे गरीब भी नहीं पहने, वैसी काली-कलूटी पगड़ी सिरपर लपेटे था। उसके गलेमें न तो हीरोंके कण्ठे ही थे और न उसके शरीरपर कोई जवाहरात ही सुशोभित थे। उसके पैरोंमे बेड़ियाँ थीं; उसके हाथ अवश्य खुले थे। अगस्तकी चमचमाती धूपमें अपने विगत ऐश्वर्य और गौरवके स्थानोंमे उसी वेशमें उसे घुमाया गया। इस अपमानकी मर्मान्तक पीड़ाके कारण उसने सिर भी नहीं उठाया और न किसी ओर उसने नज़र ही डाली। तोड़कर कुचली हुई मालाके समान वह बैठा था।

जनताकी हर एक भावना करुणामें परिणत हो गई। उसे देखनेको एक बड़ी भीड़ एकत्रित हुई थी। बर्नियर लिखता है

कि हर जगह दाराके दुर्भाग्यपर लोग रोते और कलपते दिखाई पडते थे।

उसी शामको औरगजेबने दाराके भाग्य-निर्णयके लिए अपने मन्त्रियोसे गुप्त परामर्श किया। बर्नियरके आश्रयदाता दानिशमन्द-खाने उसकी प्राण-रक्षाकी सिफारिश की। पर शायेस्ताखाँ, मुहम्मद अमीनखा, बहादुरखा और हरममे रोशनआराने धर्म और राज्यकी भलाईके लिए उसकी मौतकी माँग पेश की। बादशाहसे तनख्वाह पानेवाले दब्बू धर्म-गुरुओने उसे इस्लामके विरुद्ध आचरण करनेके दोषमे मौतकी सज़ा पाने योग्य बताकर मृत्यु-दण्डके फरमानपर दस्तखत कर दिए।

३० तारीखको दरबारमें जाते समय मार्गमे विश्वासघातक मलिक जीवाँके (जो अब एक हज़ारी का मनसबदार बनकर बख्तियार-खा कहलाता था) विरुद्ध जनताने बलवा कर दिया, जिससे दाराकी मौत और निकट आ गई। उसी रात्रिको नजरबेग और अन्य गुलामोने खवासपुरामे दाराके कैदखानेमे जाकर सिपर शिकोहको दाराके पाससे छीन कर दाराको मार डाला और दाराके टुकडे-टुकडे कर डाले। औरगज़ेबके हुक्मसे उसकी लाश हाथीपर रखकर शहरके सारे मार्गोपर घुमाई गई और अन्तमे हुमायूँके मकबरेके नीचे एक गढेमे उसे गडवा दी।

५. सुलेमान शिकोहका अन्त

सुलेमान शिकोहने अपने हारे हुए चाचा शुजाको मुगेर तक खदेडा। इसी समय १६५८की मईके आरम्भमे उसके पिता दाराने उसे आगरा वापस बुला भेजा, जिससे उसने जल्दी-जल्दी शुजाके साथ सन्धिकी और आगरा लौट पडा। २ जूनको जब वह इलाहाबादसे १०५ मील पश्चिममे पहुँचा तब उसे सामूगढमे अपने पिता के सर्व-नाशका समाचार मिला। उसके श्रेष्ठ सेनापति जयसिह, दिलेरखाँ तथा अन्य शाही हाकिमोने तत्काल ही उसका साथ छोड दिया। वे औरगज़ेबसे मिल गए। ४ जूनको सुलेमान इलाहाबादको लौट

गया। वहाँसे उसने गंगाके उत्तरी किनारे होते हुए पहाड़ोंके पास नदियाँ पार करके बिना रुकावटकी आशंकाके अपने पितासे पंजाबमें जा मिलनेका निश्चय किया।

सुलेमान तेजीसे चला, परन्तु हर दिशामें शक्तिशाली शत्रु-सेना उसका मार्ग रोके हुए थी, एवं अन्तमें शरणके लिए सुरक्षित स्थानकी खोजमें वह श्रीनगरके पहाड़ोंकी ओर भागा। गढ़वालमें श्रीनगरके राजा पृथ्वीसिंहने इसी शर्तपर उसे आश्रय देना स्वीकार किया कि वह अपनी सारी सेना छोड़ दे और अपने कुटुम्बियों और केवल १७ नौकरोंको ही साथ लावे। इस जंगली परन्तु सुरक्षित आश्रयमें सुलेमान एक साल तक शान्तिपूर्वक रहा।

किन्तु अपने सब भाइयों पर विजय पाकर अंतमें औरंगजेबने सुलेमानकी ओर ध्यान दिया। गढ़वालका राजा वृद्ध था। अपने शरणागत आश्रितको धोखा देकर ऐसा लज्जाजनक पाप-पूर्ण कार्य करनेको वह राजी न हुआ। परन्तु उसका पुत्र युवराज मेदिनीसिंह अधिक व्यवहार-कुशल मक्कारी व्यक्ति था। अपने आश्रयदाताके इस निश्चयको सुनकर सुलेमानने बर्फीले पहाड़ पार कर लद्दाख पहुंचनेका प्रयत्न किया। किन्तु उसका पीछा किया गया, तब वह घायल हुआ और पकड़ लिया गया। औरंगजेबके अधिकारियोंको उसे सौंप दिया गया, जो उसे २ जनवरी १६६१को दिल्ली ले आए।

५ जनवरीको सुलेमान कैदीके रूपमें दिल्लीके महलोंके दीवान-खासमें अपने भयंकर चाचाके सामने लाया गया। औरंगजेबने बातचीतमें उसके प्रति ऊपरी दयालुता दिखाई और उसने जोरसे बोलते हुए दृढ़तापूर्वक वचन दिया कि उसे किसी भी हालतमें पोस्ता* नहीं पिलाया जावेगा।

* पोस्ता एक पेय है, जो पत्तोंमें फूलोंको तोड़कर उन्हें पानीमें एक रात भिगोकर बनाया जाता है। इसे पीनेवाले क्रमशः छिन्न-शक्ति दुर्बल होते जाते हैं और उनकी अपनी सारी शारीरिक व मानसिक शक्ति खोकर, अन्तमें असहाय होकर मर जाते हैं।

कैदी सुलेमान ग्वालियर भेज दिया गया। औरंगज़ेबने अपनी दृढ प्रतिज्ञा तोड दी और अभागे सुलेमान शिकोहको अत्यधिक अफीम पिला-पिलाकर मई १६६२मे मार डाला।

६. उत्तराधिकार-प्राप्तिके युद्धमें शुजाके विरुद्ध पहली चढ़ाई; बहादुरपुरका युद्ध

वगालका सूबेदार, शाहजहाका दूसरा पुत्र शाहजादा मुहम्मद शुजा वहुत ही वुद्धिमान व्यक्ति था। उसका स्वभाव सुशील और वर्ताव नम्रतापूर्ण तथा सहृदय था। पर उसने अपने प्रान्तके शासनकी आवश्यक देख-रेख नही की, जिससे वह वहुत ही विगड गया था, उसकी सेना क्रमश अयोग्य होती जा रही थी। उसके मातहतके सभी महकमोका कार्य सुस्त और ढीला-ढाला हो गया था। उसकी मानसिक शक्तियाँ भी यदा-कदा ही चेतन होकर अपनी चमक दिखाती थी। अव भी वह मिहनतके साथ काम कर सकता था, परन्तु अपनी धुनके अनुसार कभी-कभी और तव भी कुछ कालके लिए ही वह अपने आलस्यको छोड पाता था।

शाहजहाँकी बीमारीकी अतिशयोक्तिपूर्ण खवरे शुजाके पास वगालकी तत्कालीन राजधानी राजमहलमें पहुँची। उसने उसी समय अपने आपको सम्राट घोपितकर अपना अभिपेक किया, तथा इस अवसरपर उसने अवुल फौज नासिरुद्दीन मुहम्मद तीसरा तैमूर दूसरा सिकन्दर शाह शुजा गाज़ीका नया खिताव धारण किया।

राजमहलसे रवाना होकर वह २६ जनवरी १६५८को वनारस पहुँचा दाराने अपने पुत्र सुलेमान शिकोहको शुजाका सामना करनेके लिए भेजा था। मिर्ज़ा राजा जयसिह और दिलेरखा रुहेला जैसे अनुभवी और योग्य सेनानायक सुलेमान शिकोहके साथ उसकी सहायताके लिए भेजे गए थे।

१४ फरवरीके दिन प्रात कालमे सुलेमानने वहादुरपुरमे शुजाके पडावपर एकाएक हमला किया। यह स्थान वनारससे ५ मील उत्तर-

पूर्वमें है। यह हमला इतना अचानक हुआ कि बंगालके सुस्त सोते हुए सैनिक अपने नायको सहित सब-कुछ पीछे छोड़कर भाग गए। शुजा भी बड़ी कठिनाईसे हाथीपर बैठकर शत्रुओंके घेरेसे निकल सका। उसने भागकर अपनी नावोंमें शरण ली। इन नावोंपरसे होनेवाली गोला-बारीके कारण ही शत्रु-सेनाको नदी तटसे दूर ठहरना पड़ा।

उसकी भय-त्रस्त सेना थल मार्गसे पटनाकी ओर भागी। शुजाने मुंगेरसे खाइयों और अपने तोपखानेसे सारा रास्ता रोक लिया। इस कारण सुलेमानको मुंगेरसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें सूरजगढ़ नामक स्थानपर एकाएक जाना पड़ा। वह आगे बढ़ ही नहीं पा रहा था। परन्तु इसी समय धरमतकी पराजयके समाचार उसे मिले, जिससे विवश होकर उसे ही शीघ्रतापूर्वक सन्धि करनी पड़ी। ७ मईको उसने शुजाको बंगाल, पूर्वी बिहार और उड़ीसाका प्रदेश दे दिया और वह वापस आगराके लिए रवाना हुआ।

२१ जुलाईको दिल्लीमें राजदण्ड धारण करनेपर औरंगजेबने शुजाको एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा, जिसमें बिहारका पूरा प्रान्त शुजाके अधिकारमें दे दिया था, तथा उसे और उपहार देनेका वचन भी औरंग-जेबने दिया।

दाराका पीछा करते हुए सुदूर पंजाब पहुँचे औरंगजेबकी गैर-हाजरीके समाचारोंने शुजाकी महत्त्वाकांक्षाको पुनः जाग्रत कर दिया। इस कारण शुजा ३० दिसम्बरको इलाहाबादसे भी आगे तीन दिनकी यात्राकी दूरीपर स्थित खजवा नगर तक जा पहुँचा। यहाँ उसने सुलतान मुहम्मदको अपना मार्ग रोके हुए पाया। उसी समय (२० नवम्बर) औरंगजेब तेजीसे चलकर दिल्लीकी ओर वापस आया था और २ जनवरी १६५९को औरंगजेब शुजाके पड़ावसे ८ मील पश्चिममें कोड़ा नामक स्थानपर अपने पुत्रके साथ आ मिला। उसी दिन मीरजुमला भी दक्षिणसे वहींपर आ पहुँचा।

७. खजवामें जसवन्तका विश्वासघात तथा औरगजेबकी दृढ़ता

४ जनवरीको औरगजेब अपनी सुसज्जित सेनाको ठीक क्रमसे जमाकर उसके साथ बढता हुआ शत्रु-पडावसे एक ही मीलकी ,दूरी-पर सामने आ डटा । उसी रातको मीरजुमलाने दोनो सेनाओके बीच पडनेवाली एक छोटी पहाडीपर ४० तोपे चढाईं जहाँसे शत्रुओके सारे पडावपर बडी ही आसानीसे गोला-बारी हो सकती थी ।

५ जनवरीके दिन सूर्योदयसे कुछ ही घटे पहले औरगजेबकी सेनामें कुछ हो हल्ला मच गया । अन्धेरेकेकारण यह गडबडी बहुत बढ गई । शाही सेनाकी दाहिनी टुकडीके नायक महाराज जसवन्त-सिहने औरगजेबसे बदला लेनेके लिए एक गहरा षड्यन्त्र रचा था । कहा जाता है कि उसने शुजाको लिखा था कि रात्रिके समाप्त होते-होते स्वय शाही फौजपर रणभूमिके पीछेसे हमला कर देगा और शुजा भी उसी समय गडबडीमे पडी हुई शाही फौजपर तेजीसे टूट पडे, जिससे दोनो ओरसे घिरकर शाही सेना बीचमे ही नष्ट हो जावेगी । इसलिए आधी रातके कुछ समय बाद ही औरगजेबको छोड अपने राजपूत सैनिकोके साथ वापस जानेके लिए जसवत अपने डेरेसे रवाना हुआ और अपनी राहमे पडने वाले शाहजादे मुहम्मद सुलतानके पडावपर हमला कर दिया । इन राजपूतोके जो कुछ भी हाथ पडा उसे वे लूट ले गए । औरगजेबके कई पडाववालोको उन्होने यो लूटा । तब राजपूतोने आगराकी राह ली । परन्तु अधेरेमे इस आक्रमणके कारण औरगज़ेबके सामनेवाली फौजमे भी गडबडी मच गई ।

परन्तु रात्रिके समय डेरा छोडकर आक्रमण करनेका साहस शुजा को न हुआ । इस समय औरगज़ेबने बडे ही शान्त दिमागसे सारी परिस्थितिको सम्हाल लिया । जसवन्तके फौज सहित भागने और आक्रमण करनेकी खबर औरगज़ेबको मिली, तब वह आधी रातकी नमाज़ पढकर ईश्वरोपासनामे लगा हुआ था । उसने अपनी प्रार्थना समाप्त की और अपने डेरेसे निकल तख्त-ए-रवां (पालकीनुमा

कुर्सी) पर चढ़कर उसने अपने हाकिमोंको आवश्यक हुक्म दिए।

इस प्रकार औरंगजेब दृढ़तापूर्वक डटा रहा और उसने अपनी फौजमें किसी भी प्रकारकी गड़बड़ी न मचने दी। भिन्न-भिन्न दस्तोंके नायकोंको उसने हुक्म दिया कि वे अपने-अपने स्थानपर साहसके साथ डटे रहें। घबराकर भागनेवाले लोगोंको भी वापस इकट्ठा करनेकी ताकीद की। ५ जनवरीका प्रातःकाल होते-होते बहुत-से स्वामिभक्त सेनानायक और हाकिम फिरसे लौटकर औरंगजेबके झंडेके नीचे चले आए। शुजाके २३,००० सैनिकोंका सामना करनेके लिए अब भी उसके पास ५०,००० से अधिक सैनिक थे। एवं औरंगजेबने शुजाके साथ युद्ध करनेमें देरी करना ठीक नहीं समझा।

खजवा का युद्ध

शुजाको मालूम था कि शत्रुकी तिगुनी फौजके सामने वह परम्परागत युद्ध-प्रणालीके अनुसार नहीं लड़ सकेगा। इसलिए उसने सारी फौज तोपखानेके पीछे एक कतारमें खड़ी की। शुजाने शत्रुपर आक्रमण कर अपनी सेनाकी संख्यामें कमी को यों पूरी करनेका निश्चय किया।

तोपों, गोलों और बन्दूकोंकी भयंकर गर्जनाके साथ ५ जनवरी १६५९ ई० के दिन प्रातःकाल ८ बजे युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों पक्षकी सेनाएं एक दूसरेसे भिड़ गईं और तीरोंकी बौछार होने लगी। सैयद आलमने तीन मतवाले हाथियोंको अपने सामने खदेड़ते हुए बादशाहके बाएं पहलूपर हमला किया, इस आक्रमणका सामना न कर सकनेके कारण इस पहलूकी शाही सेना भाग खड़ी हुई। इसी समय औरंगजेबके मरनेकी गलत खबर भी शाही सैनिकोंमें फैल गई, जिससे बहुतसे शाही सैनिक भाग खड़े हुए। इसके बाद शत्रुओंकी सेनाने शाही सेनाके पिछले भागपर हमला किया, तब वहां औरंगजेबकी रक्षाके लिए सिर्फ २,००० सैनिक ही रह गए थे। पर शाही सेनाके पिछले दो दस्तोंने पथ आगे बढ़कर शत्रुओंकी राह रोक ली।

बादशाह स्वयं बाईं ओर मुड़ा और उसने सैयद आलमको आगे बढ़नेसे रोका और जिस राहसे वह आया था उसी रास्ते उसे खदेड़ दिया।

किन्तु तब भी वे तीन मदमस्त हाथी आगे बढ़ते ही जा रहे थे। उनमेसे एक तो औरंगजेबके हाथीके पास आ पहुँचा। युद्धकी यह एक विकट घड़ी थी। पर अपने हाथीके पैरोंको जंजीरोंसे जकड़कर बादशाहने उसे वहाँसे हटने न दिया। इस कारण औरंगजेबका हाथी भाग न सका और चट्टानकी तरह अटल बना ही खड़ा रहा। शत्रुके हाथीका महावत गोलीसे मार दिया गया और शाही महावत इस मस्त हाथीपर पीछेसे चढ़ बैठा, और उसे अपने वशमें कर लिया। तब बादशाह दाहिनी ओरकी सेनाकी मददके लिये मुड़ा, जिसे शाहजादे बुलन्द अख्तरके सेनापतित्वमें शत्रुओंकी सेनाने बुरी तरह परेशान कर रखा था। शत्रुओंके इस दलकी संख्या अधिक न थी, तथापि उसने ऐसे साहसके साथ आक्रमण किया कि शाही सेनाके पैर उखड़ गए थे, उसमें गड़बड़ी मच गई और वह भागने लगी थी। इतनी बड़ी कठिनाइयों और विपत्तिकी घड़ीमें भी औरंगजेब शान्तचित्त बना रहा और उसकी स्थिर बुद्धिने उसका साथ न छोड़ा। उसके किसी भी सैनिक चालका कोई भ्रमपूर्ण अर्थ न लगा ले, इसलिए अपने नौकरों-के द्वारा अपना वास्तविक उद्देश्य उसने अपने सेनानायकोंको पहले सूचित कर दिया और उनसे निडरतापूर्वक लड़नेके लिए कहा गया।

तब औरंगजेब सेनाके मध्यकी ओर बढ़ता हुआ अपनी पिछड़ती हुई दाहिनी टुकड़ीमें जा शामिल हुआ। उस दिनके युद्धकी यही निश्चयात्मक घड़ी थी। शाही फौजके दाहिने पक्षने अब लौटकर शत्रुपर आक्रमण किया और बड़ी ही बहादुरीसे लड़ते हुए भयंकर मार-काटके साथ अपने शत्रुओंको साफ कर दिया।

उसी समय जुल्फिकारखाँ और सुलतान मुहम्मदके नायकत्वमें शाही सेनाने आगे बढ़कर हमला किया, जिससे शत्रु-सेनाकी पहली कतार तितर-बितर होने लगी। तब सारी शाही सेना आगे बढ़ी

और उसने शुजाकी सेनाके मध्य भागको चारों ओरसे घेर लिया। तोपोंके गोले शुजाके सिरपरसे होकर जा रहे थे, एवं वह हाथी जैसी खतरनाक और प्रमुख सवारीको छोड़कर घोड़ेपर जा बैठा।

शुजाके ऐसा करते ही युद्धका अन्त हो गया। उसके सैनिकोंने अपने स्वामीको मरा हुआ समझा। एक ही क्षणमें बची-खुची बंगाली सेना तितर-बितर होकर भाग खड़ी हुई। शुजाको भी अपने पुत्रों और सेनानायक सैयद आलम सहित रण-क्षेत्रसे भागना पड़ा। शाही सेनाने उनके सारे पड़ाव और सामानको लूट लिया।

६ शुजाका पीछा करना और बिहारमें युद्ध

खजवाके युद्धमें विजयी होनेके दूसरेदिन औरंगजेबने शाहको शुजाका पीछा करनेके लिए एक सेना भेजी। शुजा मुंगेरको भागा और वहां उसने १५ दिन तक शत्रुका सामना किया (९ फरवरीसे ६ मार्च) । इस प्रकार शुजा बंगालके मार्गको रोके रहा।

मार्चके आरम्भमें मीरजुमला मुंगेर पहुंचा। उसने खड़गपुरके राजा बहरोजकी शाही फौजको मुंगेरके किलेसे दक्षिण-पूर्वमें जो घाटियां और जंगल हैं उनमेंसे ले जाकर उसे शुजाकी फौजके पीछे पहुंचा दिया तब तो शुजा मुंगेरसे ६ मार्चको भागकर साहिबगंज पहुँचा। वहां एक दीवार बनाकर वह उस गढ़ी घाटीका मार्ग रोके रहा (१० मार्चसे २४ मार्च)। पर शाही सेनानायकोंने वीरभूमि और खड़गपुरके जमींदारको अपनी ओर मिला लिया तथा उसकी सहायता और निर्देश पाकर शाही सेना २६ मार्चको सूरी जा पहुँची।

परन्तु इसी समय शाही सेनामें यह झूठी अफवाह फैली कि दारा [illegible] पास विजयी होकर अब राजपूत राज्योंमें अपना बदला ले रहा था जिसके कारण मीरजुमलाके मातहत राजपूत सैनिकोंने इस खबरसे डरकर घरोंको वापिस लौटनेके लिए रवाना हो गए। इस समय तक [illegible], [illegible] सूना [illegible] [illegible]

जा पहुँचा था (९ अप्रेल) । शाही फौजने १३ अप्रेलको राजमहल-पर अधिकार कर लिया । इस प्रकार गगासे पश्चिमका सारा प्रदेश शुजाके हाथसे निकल गया ।

अब दोनो पक्षोमे चलनेवाला यह युद्ध मगर और शेरके युद्धके समान विचित्र द्वन्द्व हो गया । शुजाके साथ अब केवल ५,००० सैनिक ही रह गए थे । थलपर शुजाकी शक्ति अब अत्यधिक कमजोर हो गई थी । उधर मीरजुमलाकी थल-सेना बहुत ही शक्तिशाली थी । उसके साथ ही शुजाके पास बडी-बडी तोपे थी जिन्हे विदेशी बन्दूकची चलाते थे । बगालका पूरा नव्वारा (जल-सेना) भी उसके ही अधिकारमे था, जिससे शुजाको एकसे दूसरी जगह जानेकी बडी सुविधा थी । यो उसकी थल-सेनाकी शक्ति कई गुनी बढ जाती थी । इसके विपरीत नावोके अभावमे मीरजुमलाकी थल-सेनाकी सारी शक्ति और उसके सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते थे ।

शुजाने गौर किलेसे ४ मील पश्चिममे टाँडा नामक स्थानको अपना प्रधान सैनिक-केन्द्र बनाया और गगाके पूर्वी तटके अनेक स्थानोपर खाइयाँ खोदी । परन्तु मीरजुमलाने दूर-दूरसे नावे उपलब्ध की, तथा औरगजेबने भी पटनाके शासकके नायकत्व में एक और सेना उसकी मददके लिए भेजी । गगाके बाएँ किनारेपर आगे बढते हुए शुजाके दाहिनी ओरवाली फौजके पीछे तक पहुचकर शुजाकी सेनाका ध्यान दूसरी तरफ भी बँटाना इस सेनाका प्रधान उद्देश्य था ।

शाही फौज पूरे पश्चिमी तटपर फैली हुई थी । सुदूर उत्तरमे मुहम्मद मुराद बेग राजमहलमे था । शाहजादा स्वय अधिकाश सेनाको लिए जुल्फिकारखाँ और इस्लामखाँके साथ दक्षिणमे १३ मीलकी दूरीपर दोगाची स्थानपर शुजाके सामने डटा हुआ था । लगभग ८ मील दक्षिणमे दुनापुरमे अली कुलीखाँ नियुक्त था । मीरजुमला ६ या ७ हज़ार सेना सहित मुगल सीमाके दक्षिणतम

किनारेपर, राजमहलसे २८ मील दक्षिणमे सूती नामक स्थानमे अधिकार जमाए बैठा हुआ था। दोगचीके पडावसे मीरजुमलाके आदेशानुसार शाही सेनाने शुजापर दो बार सफलतापूर्वक आक्रमण किए। परन्तु उसका तीसरा प्रयास असफल रहा, तथा उसमें शाही सेनाको बडी हानि उठानी पडी, क्योंकि इस बार शुजा सजग हो चुका था और तब तक उसने अपनी रक्षाकी पूरी तैयारी कर ली थी। इस प्रकार ३ मई १६५९को इस आक्रमणमें व्यर्थ ही शाही सेनाके चार ऊचे पदाधिकारी और सैकडो सैनिक काम आए। इसके सिवाय लगभग ५०० शाही सैनिकोंको शत्रुओंने कैदी भी बना लिया।

८ जूनको अधिक रात गए शाहजादा मुहम्मद सुलतान दोगाचीमें अपने डेरेसे चुपचाप भाग कर शुजासे जा मिला। बहुत दिनोंसे मीरजुमलाके सलाहके अनुसार ही काम करते-करते वह घबरा उठा। उसकी इच्छा थी कि स्वतन्त्र होकर वह राज्य करे। शुजाने उसे अपनी पुत्री गुलरुख बानू व्याह देने और तब राजगद्दी प्राप्त करनेमें उसकी सहायता करनेका गुप्तरूपसे वचन दिया था। इस प्रकार उस मूर्ख शाहजादेको शुजाने अपनी ओर मिला लिया। यह समाचार सुनकर मीरजुमलाने दृढतापूर्वक अपने सैनिकों को सूतीमें शान्त रखा। शाहजादेके भागे जानेके दूसरे दिन सुबहसे वह दोगाचीमें शाहजादेके डेरेपर गया, और वहां उसने अमन और अनुशासन स्थापित किया। दूसरे नायकोंने मीरजुमलाको अपना एकमात्र सेनानायक और अधिकारी मानकर उसकी आज्ञानुसार चलनेका वादा किया। इस प्रकार सारी फौज उस बडी आफतसे बच निकली। इस सेनाने केवल एक ही आदमी खोया और वह था स्वयं शाहजादा।

इसके कुछ ही दिनो बाद बंगालकी घनघोर वर्षाके कारण युद्ध स्थगित हो गया। मीरजुमलाने खानखाना-बाजारमें डेरा डाला और बाकी फौज अधिकारियोंकी अध्यक्षतामें राजमहलमें ठहरी रही। वर्षाके कारण राजमहलके आसपासका स्थान एक दलदलपूर्ण तालाब

वन गया था। शहरकी खाद्य-सामग्रीको भी शुजाने रोक दिया। इस तरह मुगल सेनाके पास खानेके लिए नाम-मात्रको भी अन्न नही रहा। ऐसी ही दशामे अपने बेडेको लेकर शुजाने अकस्मात् हमला किया और २२ अगस्तको उसने राजमहल शहर जीत लिया, तथा मुगलोके सारे सामान-असबावपर भी अधिकार कर लिया।

१० बंगालमें युद्ध

मीरजुमला बेलघाटमे डेरा डाले हुए था। दिसम्बर १६५९ के आरम्भमे शुजा राजमहलसे उसके विरुद्ध बढा। शुजाने शाही फौजपर दो बार आक्रमण किए जिनसे विवश होकर मीरजुमलाको मुर्शिदाबाद लौटना पडा। उसके साथ ही साथ शुजा भी नाशीपुर तक चला गया। परन्तु इसी समय बिहारका शासक दाऊदखाँ एक दूसरी फौजके साथ टाडाकी ओर जा रहा था। यह खबर पाते ही शुजा २६ सितम्बरको नाशीपुर छोड सूती होता हुआ टाडाकी ओर बढा। मीरजुमलाने तुरन्त ही उसका पीछा कर ११ जनवरी १६६० को नाशीपुर फिरसे जीत लिया। इस प्रकार गगाके पश्चिमका पूरा प्रदेश शुजाके हाथसे निकल गया। अब मीरजुमला सामदा द्वीपके उत्तरमे राजमहल, अकबरपुर और मालदा होता हुआ एक लम्बा चक्कर काटकर एकाएक दक्षिणकी ओर पलटा और पूर्वकी ओरसे टाँडा जा पहुचनेका उसने आयोजन किया। पटनासे सहायतार्थ लाई गई १६० नावोके द्वारा उसने अपनी फौजको गगाके पार उतारा और राजमहलसे १० मील दूर दाऊदखाँमे जा मिला।

शत्रुओकी अपेक्षा अब शुजाकी सेना बहुतही कम रह गई थी। उसके भागनेके लिए फरवरी १६६०मे केवल दक्षिणका ही एकमात्र रास्ता रह गया था और वह भी था बहुत ही खतरनाक। इसी समय शाहजादे मुहम्मद सुलतानने भी शुजाका साथ छोड दिया और दोगाचीके मुगल डेरे आकर फिरसे वह शाही फौजमे आ मिला (८ फरवरी)। पर मुहम्मद सुलतानका बाकी रहा सारा जीवन जेलमे ही बीता।

६ मार्चको मीरजुमला मालदा पहुँचा और वहाँ वह एक माह तक शुजाके विरोधको पुरी तरह समाप्त कर देनेके लिए आखिरी हमलेकी तैयारी करता रहा। मालदासे कुछ मील दूर महमूदाबादके अपने डेरेसे ५ अप्रेलको वह निकला। दस मील दूर जाकर महानन्दा नदीके अख्यात घाटपर डटी हुई शत्रु-सेनाकी छोटी-सी टुकड़ीपर उसने अचानक ही हमला कर दिया। गड़बड़ीमें शत्रु घाटकी उथली राह चूक गए, जिससे कोई १,००० से ज्यादा सैनिक नदीमें डूबकर मर गए।

परन्तु मीरजुमलाकी इस चालने इस चढ़ाईका अन्तिम परिणाम बहुत ही जल्द निकाल गया। शुजाकी शक्तिका पूरी तरह अन्त हो गया। वह ६ अप्रेलको सुबह टाँडाको भागा और अपनी बेगमोंको उसने हुक्म दिया कि वे बिना कपड़े बदले ही उसके साथ भागनेको तैयार हो जावें। उसका खजाना और कुछ चुनी हुई सामग्री चार नावोंपर लादकर नदीकी राह आगे रवाना कर दी गई। शाम होते-होते वह खुद भी रवाना हो गया। उसके दो छोटे लड़के (बुलन्द अख्तर और जैनुल्आबदीन), उसके प्रधान सेनानायक, कुछ सैनिक, सेवक और खोजे, आदि कुल मिलाकर ३०० व्यक्ति थे ६० नावों पर बैठकर उसके साथ चले।

दूसरे दिन (७ अप्रेलको) मीरजुमलाने टाँडापर अधिकार करके वहाँ शान्ति स्थापित की। उसने सारी सामग्री, जो कि लुटेरोंके पास थी या किसी भी तरह उसने मिल सकी, एकत्रित कर उसे जब्त कर लिया। शुजाकी फौज भी ९ अप्रेलको उससे साथ आ मिली। दस दिनके बाद मीरजुमला टाँडासे ढाकाके लिए रवाना हुआ।

११. शुजाका बंगाल छोड़ना एवं उसका अन्त

अपने सौभाग्य, सम्पत्ति और यशका दिवाला निकालकर शुजा १२ अप्रेलको बंगालकी दूसरी राजधानी ढाका पहुँचा। पर वहाँ उसको शरण न मिली। वहाँके सारे जमींदार उसके विरुद्ध उठ

अध्याय ६

राज्य-कालका पूर्वार्द्ध; उसकी रूपरेखा

१. औरंगजेबके राज्य-कालके दोनों अर्द्धांशोंमें विभिन्नताएँ; औरंगजेबकी व्यक्तिगत हलचलें

औरंगजेबका सारा शासन-काल स्वाभाविकरूपेण ही पच्चीस-पच्चीस वर्षोंके दो समान भागोंमें बँट जाता है। पहले अर्धांशमें वह उत्तरी भारतमें था, और दूसरा उसने दक्षिणमें ही बिताया। पहले कालमें उत्तर भारतको ही ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ। यह बात सिर्फ इसलिए ही नहीं थी कि उस समय औरंगजेबका निवास उत्तरी भारतमें था, बल्कि इसलिए कि उसके समयके सारे सार्वजनिक और सैनिक कार्योंका सूत्रपात उत्तरी भारतमें ही हुआ था। इस प्रथम पूर्वार्द्धमें औरंगजेबने दक्षिणकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। परन्तु शासन-कालके उत्तरार्द्धमें स्थिति बिलकुल ही बदल गई थी, क्योंकि उस समय राज्यकी सारी शक्तियां दक्षिणमें ही जुटी हुई थीं। बादशाह स्वयं अपने कुटुम्बी, दरबारियों, बड़े-बड़े हाकिमों और सारी सेनाके साथ पूरे पच्चीस वर्ष तक दक्षिणमें ही डटा रहा। इन वर्षोंमें उत्तरी भारतका महत्त्व घट जाना स्वाभाविक ही था। इस अनिच्छापूर्ण देश-निकालेके दिनोंमें दक्षिणमें पड़े हुए सारे अधिकारी तथा सैनिक उत्तरी भारतमें अपने-अपने घरोंको वापिस जानेके लिए

लालायित रहते थे। यह हालत यहाँ तक पहुँची थी कि घर जानेके लिए उत्सुक एक अफसरने दिल्लीमे केवल एक वर्षका अवकाश बितानेके लिए बादशाहको एक लाख रुपये भेट करना स्वीकार किया। राजपूत सैनिकोकी भी शिकायत थी कि जीवन-भर अपने घर और कुटुम्बसे इतनी दूर दक्षिणमे पडे रहनेके कारण उनके वश धीरे-धीरे नष्ट हो रहे थे। सम्राट् तथा सब सुयोग्य अफसरोका सारा ध्यान उस एक ही ओर केन्द्रित होनेके कारण उत्तरी भारतका शासन स्वाभाविकतया ढीला होकर धीरे-धीरे बिगडता ही गया, साम्राज्यकी प्रजा दिन-प्रति दिन गरीब होती गई। समाजकी ऊपरी कक्षा वालोके आचार-विचार भ्रष्ट हो रहे थे, और उनका नैतिक तथा मानसिक पतन होनेके कारण, उनकी अकर्मण्यता ऐसी बढती जा रही थी कि समाजके लिए उनकी उपयोगिता नाम-मात्रको ही रह गई थी। यह परिस्थिति पूरे पच्चीस वर्ष तक बनी रही, जिस अरसेमें भारतीय समाजकी एक पूरी पीढी निकल गई। अतएव अन्तमें साम्राज्यके कई एक भागोमे उपद्रव उठ खडे हुए और अराजकता फैल गई।

औरगजेबके शासन-कालके पूर्वार्द्धकी सारी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ उत्तरी भारतके किसी एक ही स्थानमे केन्द्रित न हुई, किन्तु उनका स्थान बडी तेजीसे समय-समयपर बदलता ही रहा। मुगल साम्राज्यके शाही झण्डे भारतकी आखिरी पश्चिमी सीमापर काबुलसे लेकर उसकी अन्तिम पूर्वीसीमामे नामरूपकी पहाडियो तक फहरा उठे। उसी प्रकार अपनी उत्तरी सीमाके पहाडोसे भी परे तिब्बतसे लेकर साम्राज्यकी दक्षिणी सीमाके पार बीजापुर तक शाही सेना जा पहुँची थी। बडी दूर-दूरके अनेको विभिन्न जगली इलाकोमें विद्रोहकर अराजकता फैलानेवाले किसानो और राजाओके विरुद्ध सेनाएँ भेजी गई। इसी कालमे हमें बादशाहकी असहिष्णुताका सच्चा नग्न स्वरूप दिखाई पडता है।

शासन-कालके दूसरे वर्षमे १३ मई १६५६ ई० को औरगजेब

बड़ी धूमधामके साथ सिंहासनपर बैठा और अपनी विजयके उपलक्षमें बहुत बड़ा जलसा किया। उसके बाद अत्यधिक समय तक वह अपनी राजधानीमें ही रहा और वहींसे राज्यका शासन-प्रबन्ध तथा उसकी देख-भाल करता रहा। उसके सिंहासनारूढ़ होनेके अवसरपर विदेशी मुसलमानी राज्योंकी ओरसे बधाई देनेके लिए आनेवाले एलचियोंका उसने उसी राजधानीमें पूरे ठाठ-बाटके साथ स्वागत किया। इन विदेशी मेहमानोंके लिए उसने साम्राज्यके वैभवका ऐसा प्रदर्शन किया कि उसे देख वर्षोंकी महान् समृद्धिको देखनेवाली आँखें भी चौंधिया गईं। शासन-कालके ५वें वर्षमें वह दिल्ली छोड़ ८ दिसम्बर १६६२को काश्मीर यात्राको निकला और १८ फरवरीको वहाँसे वापिस लौट आया। फरवरी १६६६ में पिताकी मृत्युके कारण उसे आगरा जाना पड़ा। जब तक शाहजहाँ कैद रहा औरंगजेबका आगरेमें अपना दरबार नहीं लगाना स्वाभाविक ही था, उन दिनों वह प्रायः दिल्लीमें ही रहा।

सन् १६७४ ई० में अफरीदियोंके भयानक विद्रोहके कारण पेशावरके पास रहकर सेनाका सञ्चालन करनेके लिए वह हसन अब्दाल गया और २६ जून १६७४से २३ दिसम्बर १६७५ तक वह वहाँ रहा, इस यात्रासे वह २७ मार्च १६७६ को दिल्ली वापिस लौटा। सन् १६७९ ई० में महाराजा जसवन्तसिंहकी मृत्युपर वह उनके राज्यको मुगल साम्राज्यमें मिलानेके लोभसे अजमेर गया। अगले दो वर्ष उसने राजपूतानेमें ही बिताए। फिर अपने राज्य-कालके पच्चीसवें वर्ष में वह दक्षिणकी ओर बढ़ा। उसने अपने राज्यके अन्तिम पच्चीस वर्ष कठिन और कष्टमय परिश्रममें वहीं बिताए, उसके जीवनका अन्त भी उसी सुदूर दक्षिणमें ही हुआ।

औरंगजेबका पहला राज्याभिषेक हिजरी सन् के अनुसार पहली जीकाद १०६८ हि० (२१ जुलाई १६५८) को हुआ था, किन्तु उसका दूसरा राज्याभिषेक २४ रमजान १०६९ हिजरी (५ जून १६५९) को हुआ। उसकी आज्ञा थी कि सरकारी कागज-पत्रोंके लिए

उसके राज्य-कालके वर्षका प्रारम्भ पहली रमजानसे गिना जाए।

किन्तु धार्मिक उपवास और ईश्वरोपासनाके इस मासमे भोज और आनन्दोत्सव मनानेमे कठिनाइयाँ होती थी, एव चौथे वर्षसे वह रमजानकी समाप्तिके दूसरे दिन (कभी ईदसे ही और कभी एक दिन बाद) सिहासनपर बैठकर राज्यारोहणका वार्षिक उत्सव मनाना आरम्भ करता था, और अगले दस दिन तक ये उत्सव होते रहते थे। राज्य-कालके २१वे वर्ष (१६७७ ई०) मे राज्याभिषेककी तिथिपर उत्सव मनाने, सरदारोसे भेट लेने तथा अन्य किसी भी प्रकारके वैभवका प्रदर्शन करने की औरगजेबने पूरी मनाही करदी।

२ औरगजेबकी बीमारी, १६६२

राज्यारोहणके ५वे वर्षके आरम्भमे वह सख्त बीमार हो गया। बीमारीमे भी लगातार परिश्रम करने और धार्मिक कार्य-क्रमोमे लगे रहनेके कारण उसकी बीमारी बढती ही गई। रमजानके उपवासो से (१० अप्रेलसे ९ मई १६६२) उसकी कमजोरी बढती गई। १२ मईको उसे बुखार हो गया। तब हकीमोने उसका इतना खून निकाला कि वह मारे कमजोरीके यदा-कदा बेहोश हो जाता था। उसके चहरे पर मुर्दनी भी छा गई।

पाँच दिन तक उसकी दशा ऐसी ही बनी रही। परन्तु–औरगजेबमे आत्मबल बहुत था। उस दिन शामको तथा दूसरे दिन भी लकडीका सहारा लेकर उसने कुछ ही समयके लिए दरबारमे दर्शन दिए और शाही झण्डोकी सलामी ली। वह एक माह तक बीमार रहा, परन्तु तब जनताको कभी घबराने या भय करनेका कोई कारण नही रह गया। २४ जूनको उसके पूर्ण स्वस्थ होनेका उत्सव मनाया गया। डेढ माह तक उसकी इस बीमारीके समय भी चारो ओर शान्ति बनी रहना उसकी शासन-सत्ताकी सुदृढता एव उसके निजी प्रभावका अनोखा प्रमाण था।

स्वस्थ होनेपर शारीरिक शक्ति प्राप्त करने तथा अपना स्वास्थ्य सुधारनेके लिए उसे काश्मीर जानेकी सलाह दी गई। मई १६६३

ई० के प्रारम्भमें वह लाहौरसे कश्मीरके लिए रवाना हुआ। श्रीनगरमें उसने ढाई माह आराममें काटे। वह लौटकर २९ सितम्बर १६६३ को लाहौर और अगली १८ जनवरीको दिल्ली पहुँचा।

३. प्रान्तोंमें विद्रोह

राज्य-कालके इन आरम्भिक २५ वर्षोंमें मुगल साम्राज्यकी सीमासे लगे हुए कुछ छोटे-छोटे प्रदेशोंको जीत लिया गया।

इन वर्षोंमें मुगल-साम्राज्यकी आन्तरिक शान्ति भंगके प्रधानतया तीन कारण हुए —

(१) राज्यारोहणके समय अन्य भाइयोंके साथ उत्तराधिकार-प्राप्तिके लिए होने वाले अनिवार्य युद्ध।

(२) शासन-कालके १२वें वर्षमें हिन्दू-मन्दिर तोड़नेकी नीति अंगीकार करनेके फलस्वरूप हिन्दुओंके विद्रोह।

(३) साम्राज्यके अधीन राजाओंके विद्रोह। सुदूर जंगलों या साम्राज्यके एकान्त प्रदेशोंके हाकिम भी यदा-कदा सम्राट्की आज्ञाओंका उल्लंघन कर कभी-कभी विद्रोह कर बैठते थे।

यदा-कदा अपने आपको औरंगजेबका मृत भाई या भतीजा घोषित करनेवालोंने भी कई विद्रोह आरम्भ किए थे। परन्तु ये उपद्रव स्थानीय ही रहे।

बीकानेरका राव करण दाराकी आज्ञानुसार औरंगजेबकी आज्ञा लिये बिना ही सन् १६५७ ई० में उत्तरी भारतसे लौट आया था। उसने नये बादशाह औरंगजेबको समय-समयपर दिए जाने वाले उपहार तथा कर भेजना एवं दरबारमें स्वयं उपस्थित होना भी बन्द कर दिया। जब १६६० ई० में उसके विरुद्ध सेना भेजी गई, तब राव करणने हार मान ली और बादशाहकी सेवामें उपस्थित होकर क्षमा-प्रार्थना की। तब औरंगजेबने उसे क्षमा कर दिया।

दूसरा महत्वपूर्ण विद्रोही पूर्वी बुन्देलखण्डमें ओरछाका राजा चम्पतराय था। सन् १६५८ में वह औरंगजेबसे आ मिला था,

परन्तु जब शुजा खजवाकी ओर बढ रहा था तब वह शाही सेनासे भाग खडा हुआ और घर लौटकर उसने फिर लूटमार शुरू कर दी। उसे दबानेके लिए बादशाहने १० फरवरी १६५९को एक फौज भेजी। उस प्रदेशके सब लोग चम्पतारायके विरुद्ध हो गए थे। वह एकसे दूसरी जगह भागता फिरा और बादशाही फौज उसका लगातार पीछा करती ही रही। अन्तमे उसके ही झूठे मित्रोने उसके साथ विश्वासघात किया। बीमारीके कारण वह बहुत ही कमजोर हो गया था, एव शत्रुओसे अपना बचाव नही कर सकता था। इसलिए कैद किए जानेसे बचनेके लिए आधे अक्तूबर (सन् १६६१ ई०) के लगभग उसने आत्महत्या कर ली।

४. पालामऊ, आदि देशो की विजय

बिहारकी दक्षिणी सीमापर पालामऊ जिला है। वह सारा प्रदेश जगली है एव वहां समतल भूमि नही है। घाटियोमे दूर-दूर बसे हुए छोटे-छोटे गावोकी आबादी बहुत ही कम है। १७वी व १८वी शताब्दीमे वहाँपर प्रधानतया द्रविड जातिके चेरे लोगोकी बस्ती थी। १६४३ ई० मे मुगलोने वहाँके प्रताप चेरे नामक राजाको अपना मनसबदार बना लिया और उससे एक लाख रुपया सालाना कर वसूल करने लगे। परन्तु इतना अधिक कर देना उसके लिए सम्भव न था, एव वह उसे चुका न सका और बहुत-सा कर देना बाकी रह गया।

अप्रेल १६६१मे बादशाहकी आज्ञासे बिहारके सूबेदार दाऊदखाँने पालामऊपर चढाई कर दी। दिसम्बरमे मुगल सेना पालामऊके पास जा पहुँची और शहरपर हमला किया। तब तो वहाँका राजा रातोरात किलेसे निकलकर भाग गया। मुगलोने दूसरे दिन पालामऊपर कब्जा कर लिया। इस प्रकार पालामऊ बिहारके सूबेमे मिला दिया गया।

१६६५ ई० मे काठियावाड-स्थित नवानगर राज्यमे उत्तरा-

विकारके लिए आपसी झगड़ा हुआ जिसमें मुगल सूबेदारको हस्तक्षेप करना पड़ा। जूनागढ़के फौजदारने झूठे हकदारको मारकर वास्तविक हकदारको गद्दीपर बैठाया। (फरवरी १६६३)।

५. अनाज-करका अन्तः बादशाहके इस्लामी फ़रमान

राज्यारोहणके, दूसरे जश्नके बाद ही औरंगजेबने दो आवश्यक हुक्म दिए। उत्तराधिकारके युद्धके कारण उत्तरी भारतकी खाद्य-स्थिति चिन्तनीय हो गई थी। अनाज, अकालके समयकी-सी बढ़ी हुई कीमतोंपर बिक रहा था। साम्राज्य-भरमें जगह-जगह पर आयात-कर लगनेसे यह कठिनाई और भी बढ़ गई थी। नदीके सब घाटों, पहाड़ोंके बीचकी घाटियों तथा विभिन्न सूबोंकी सरहदोंपर मालका दसवां हिस्सा राहदारी अर्थात् रास्तोंकी देख-रेख एवं उन्हें सुरक्षित रखनेके करके रूपमें लिया जाता था। आगरा, दिल्ली, लाहौर और बुरहानपुर, जैसे बड़े-बड़े शहरोंमें बाहरसे लाई गई हर खाद्य वस्तुपर पण्डरी नामक कर लिया जाता था। औरंगजेबने राहदारी और पण्डरी, दोनों कर मुगल साम्राज्यके खालसा इलाकोंमें बन्द कर दिए, एवं जमींदारों और जागीरदारोंको उसने अपने यहां भी ऐसा ही करनेकी सलाह दी। शाही हुक्मकी तामील की गई जिससे कम अनाजवाले स्थानोंमें आवश्यक अनाज बिना बाधाके जाने लगा। अन्नकी कीमत भी पुनः काफी घट गई। औरंगजेबने १६७३ में बहुत कम आमदनीवाले असुविधा-जनक कई एक अन्य करोंको भी बन्द कर दिया। (देखो मेरा ग्रन्थ 'मुग़ल एडमिनिस्ट्रेशन' अध्याय ५)। तमाकू पर चुंगी-कर १६६६ ई० में बन्द किया गया।

दाराशिकोहके विधर्मी कृत्यों और सिद्धान्तोंके विरुद्ध अपने आपको इस्लामका कट्टर अनुयायी बताकर औरंगजेबने गद्दीपर अधिकार किया था। दूसरी बार राज्याभिषेक (१६५९) होनेके कुछ समय बाद ही औरंगजेबने मुगल साम्राज्यमें कट्टर इस्लामी

पुनर्स्थापनाके लिए और लोगोके जीवनको कुरान शरीफके नियमानुसार बनानेके लिए निम्नलिखित नये फरमान निकाले —

(१) अब तक मुगल बादशाहोके सिक्कोपर कलमाकी मुहर लगती थी, परन्तु अब औरगजेबने इसे बन्द करवा दिया ।

(२) ईरानके पुराने बादशाह तथा उनके बाद वहाँके मुसलमान शासकोके समान भारतके मुगल बादशाह भी अब तक प्रति वर्ष नौरोज का त्योहार मनाते थे । वह दिन उत्सव और आनन्दका दिन मानते थे । उस दिन सूर्य मेष राशिमे प्रवेश करता है, एव ईरानके अग्नि-उपासक पारसियोके नये वर्षका यह पहला दिन होता था । औरगज़ेबने इस उत्सवको न मनानेका हुक्म दिया, और नौरोजके उत्सवके स्थानमे राज्याभिषेकके दिनका उत्सव मनानेका तरीका चलाया । औरगजेबके समयमे यह दिन रमजान माहके बाद ही मनाया जाता था ।

(३) पैगम्बरकी आज्ञाए अमलमे लाई जाती रही है, यह देखने एव सार्वजनिक सदाचारकी जाँचके लिए एक मुहतसिब नियुक्त किया गया । कुरानमे जिन बातोका विरोध किया गया है, उन्हे वह बन्द करता था, जैसे शराब पीना, भग तथा अन्य नशीली चीजोका व्यवहार, जुआ खेलना, व्यभिचार-कर्म, आदि । परन्तु अफीम और गाँजेके व्यवहारकी रोक नही की गई थी । धर्म-विरोध विचारो व कार्योके लिए और नमाज न पढने तथा उपवास तोडनेके जुर्मोकी सजा देना भी उसीका काम था । इसके हाथके नीचे कुछ मनसबदार एव अहदी भी नियुक्त थे, जो उसकी आज्ञाओको अमलमे लाते थे ।

(४) १३ मई १६५९को सब प्रान्तोमे भगकी पैदावार रोकनेके लिए हुक्म निकाला गया ।

(५) सारी टूटी और पुरानी मसजिदो और खानकाहो की मरम्मत की गई और उनमे इमाम, मुअज्जिन और खतीब नियुक्त किए गए, जिन्हे नियमित रूपसे साम्राज्यके खज़ानेसे तनख्वाह मिलती थी ।

औरंगजेबकी धार्मिक कट्टरता अवस्थाके साथ बढ़ती ही गई। अपने निजी विचारोंके अनुसार अपनी प्रजाके जीवनको उदासीनतापूर्ण गम्भीरता प्रदान करनेके लिए औरंगजेबने जो-जो प्रयत्न किए उनका यहां संक्षेपमें उल्लेख किया जा सकता है।

(६) गद्दीपर बैठनेके बाद ग्यारहवें वर्षमें उसने शाही दरबारमें गवैयोंको अपने सामने नाचने-गानेसे मना कर दिया। धीरे-धीरे दरबारमें गाने-बजानेकी पूरी मनादी कर दी गई।

कला-प्रेमियोंने आम जनतामें औरंगजेबकी खिल्ली उड़ाकर बदला निकाला। वह जब मसजिदको जा रहा था तब एक शुक्रवारके दिन कोई एक हजार गवैये एकत्रित हुए। उनके साथ युक्तिपूर्वक सजे हुए लगभग बीस जनाजे थे। वे सब बहुत जोर-जोरसे दुखित होकर रोते-चिल्लाते जा रहे थे। औरंगजेबने दूरसे ही उन्हें देखा और उनका रोना भी सुना। उन सबका कारण जाननेके लिए उसने अपने आदमी भेजे। गवैयोंने जवाबमें कहला भेजा कि अपनी आज्ञा द्वारा बादशाहने संगीत-विद्याको मार डाला है, इसलिए उसे अब कब्रमें गाड़नेके लिए जा रहे हैं। बादशाहने उत्तर दिया कि उसे अच्छी तरह ही गहरा दफनाया जावे।

(७) चान्द्र वर्ष और सौर वर्षके अनुसार बादशाहकी उन दो जन्म तिथियोंपर वह सोने और चांदीसे तुलता था। अब इस प्रथाको बन्द कर दिया गया।

(८) आगरा किलेके हाथी-पुल दरवाजेपर जहांगीरने १६६८ में पत्थरके दो हाथी रखवाए थे, बादशाहने उनको वहांसे हटवा दिया।

(९) एक दूसरेको प्रणाम करनेकी अब तक प्रचलित हिन्दू तरीका काममें लानेकी अप्रेल १६७० ई० में दरबारियोंको मनाही करदी गई। उन्हें आज्ञा दी गई कि वे 'अस्सलाम-अलैकुम' कहें जिसका अर्थ 'आपको शान्ति मिले' होता है।

(१०) अपने जन्म-दिवसके सारे उत्सवोंको मनाना उसने मार्च १६७७ ई० में बन्द कर दिया। शाही नगाड़ा तब तक सारे

दिन-वजा करता था, इसके वाद वह दिन-भरमें केवल तीन घण्टे ही वजने लगा। अपने राज्य-कालके इक्कीसवें वर्षमे (नवम्वर, १६७७ ई०) उसने राज्यारोहणके दिन हर साल मनाई जानेवाली खुशियाँ भी वन्द कर दी।

(११) वडे-वडे राजाओको जव उनका राज्य सौपा जाता था उस समय वादशाह स्वय उनके तिलक या टीका करता था। यह एक हिन्दू प्रथा होनेके कारण मई १६७९मे वन्द कर दी गई।

(१२) अकवरने यह प्रथा भी प्रचलित की थी कि वादशाह प्रति दिन प्रात काल महलके ऊपरके झरोखेमे वैठकर जनताको दर्शन देता और उनकी सलामी लेता था। अकवरके उत्तराधिकारियोने भी यह प्रथा कायम रखी। परन्तु औरगज़ेवने इसे भी वन्द कर दिया, क्योकि यह प्रथा किसी भी कार्यसे पहले सुवहमे अपने इष्ट-देवकी मूर्तिके दर्शनकी हिन्दू-प्रथा की नकलमात्र थी।

(१३) कब्रोवाले मकानोकी छतें वनवाना, कब्रोपर चूना पुतवाना और फकीरोके मजारोपर औरतोका तीर्थ करने जाना, आदि वाते कुरानके विरुद्ध होनेके कारण उसने वन्द कर दी। किन्तु इस प्रकार लोगोको एकवारगी सुधारनेका औरगज़ेवका यह प्रयत्न असफल ही रहा। लोगोकी इच्छाके विरुद्ध इन कडे नियमोको पहले एकदम जवरदस्ती लागू करके वाद उनमे आवश्यक सुधार किए बिना ही उन्हे ढीला कर देनेसे उसके शासनका वहुत ही उपहास हुआ। मनुची ने लिखा है—"जव औरगजेव गद्दीपर वैठा तव शराव पीना, एक वहुत ही साधारण वात थी। एक दिन उसने गुस्सेमे भर कर कहा कि सारे हिन्दुस्तानमे ऐसे दो ही आदमी थे जो शराव नही पीते थे, एक तो प्रधान काज़ी और दूसरा वह स्वय। पहले इस विपयके वहुत कडे नियम थे, वादमे धीरे-धीरे उन्हे शिथिल कर दिया गया, क्योकि ऐसे वहुत कम लोग थे जो छिपकर न पीते रहे हो। उसके मन्त्री भी स्वय पिया करते थे और दूसरोसे भी उनका यही अनुरोध होता था। सगीतको वन्द करनेवाली आज्ञाका भी यही हाल हुआ।

जुआ खेलनेके बड़े-बड़े मामलोंमें बादशाह स्वयं सजा देता था। मनुचीके कथनानुसार हर एक नर्तकी और वेश्याको आज्ञा दी गई थी कि वह या तो शादी कर ले या मुगल साम्राज्यकी सीमा छोड़ दे। पर स्वयं मनुचीने लिखा है कि इस नियमकी कभी पाबन्दी नहीं की गई। होलीके उत्सवमें गालियों, फूहड़ गानों और होली जलानेके लिए आवश्यक सामग्री लूटीजानेकी प्रथा थी; बादशाहने इस उत्सवको भी बन्द कर दिया, और इस बातकी पाबन्दी करवानेका पुलिसको हुक्म मिला। इसी प्रकार १६६६ ई० में बुरहानपुरमें दो अलग-अलग जुलूसवालोंमें आपसी झगड़ेके बाद मुहर्रमके जुलूसोंपर भी रोक लगा दी गई।

सन् १६६४ ई० में औरंगजेबने सती प्रथाको भी बन्द करनेका हुक्म दिया था। परन्तु इस नियमको हर जगह लागू करनेमें साम्राज्य असमर्थ ही रहा। छोटे-छोटे बच्चोंको गुलाम बनाकर बेचने और हरममें नौकरी केलिए उन्हें हिजड़े बनानेकी भी सारे साम्राज्यमें सख्त मनाई की गई। (१६६८)।

६. दाराके प्रिय मुल्लाओं और इस्लाम धर्म-विरोधियोंपर अत्याचार

कट्टर इस्लामके ऐसे नियमोंको जारी करनेके बाद औरंगजेबको अवसर मिला कि दाराके साथियों तथा उदार विचारोंवाले मुसलमान सन्तोंको वह सता सके। मियाँ मीरका शिष्य शाह मुहम्मद बदख्शी दाराका ऐसा ही साथी था, जो सरल सूफी कविता लिखता था। उसे बादशाहके सामने पेश करनेकी आज्ञा हुई, परन्तु दिल्ली आते हुए रास्तेमें लाहौरमें ही वह मर गया। (१६६१)।

इस प्रकार औरंगजेबने जिन्हें सताया उनमें विशेष उल्लेखनीय है भारतका सबसे प्रसिद्ध सूफी-फकीर सरमद। उसका जन्म फारसके काशान नामक स्थानमें यहूदी माँ-बापसे हुआ था। वह [illegible] भाषाका बहुत ही बड़ा पण्डित था। उसने बादमें मुहम्मद [illegible]

नामसे इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। हिन्दुस्तानमे एक व्यापारीकी तरह आनेके बाद यहाँ ही वह नग्न फकीर हो गया। दिल्लीमे दाराशिकोहके साथ उसकी भेट हुई। दाराने उसका बहुतआदर-सम्मान किया और शाहजहाँके साथ भी उसकी भेट कराई गई। वह विश्व-देवता-वादी था। यद्यपि मुहम्मदके लिए उसके हृदयमे अत्यधिक श्रद्धा थी, फिर भी इस्लाम धर्मकी अनेक परम्पराओ और कई विचारोमे उसका विश्वास नही था।

सरमदके मामलेको सुनकर उसका विचार करनेके लिए इस्लाम धर्मके कट्टर विद्वानोका एक दल नियुक्त किया गया। उस दलने धर्म-विरोधके अपराधमे उसे मृत्यु-दण्ड दिया। परन्तु इस दण्डका असली कारण राजनैतिक ही था, सरमदने दाराको सिहासन दिलवानेका पूरा आश्वासन दिया था।

१६७२ ई० मे तीन बडे खलीफाओको गाली देनेके अपराधमे मुहम्मद ताहिर नामक एक शिया दीवानका सिर काट लिया गया। एक पुर्तगाली पादरी मुसलमान हो गया, उसके बाद वह फिर ईसाई हो गया। उसका यह आचरण धर्म-विरुद्ध माना गया एव सन् १६६७ ई० मे धर्म-भ्रष्ट होनेके अपराधमे उसे औरगाबादमे मृत्यु-दड दिया गया। बोहरा जातिके धर्म-गुरु सैयद कुतुबुद्दीन अहमदाबादमे रहते थे। बादशाहकी आज्ञानुसार उन्हे तथा उसके सात सौ अनुयायियोको मरवा डाला गया।

७. विदेशी मुसलमान राज्योके साथ औरगजेबका सम्बन्ध

व्यापार द्वारा भारतसे सबन्धित अनेक मुसलमानी राज्योमे राजगद्दीपर बैठनेके उपलक्षमे औरगज़ेबको बधाई देनेके लिए आए हुए अनेको राजदूतोका उसने स्वागत किया।

अपने शानदार राज्याभिषेकके कुछ समय बाद ही नवम्बर १६५९में सैयद मीर इब्राहिमको ६ लाख ६० हजार रुपये देकर

मक्का-मदीना भेजा कि वहांके सन्तो, मसजिदों और मजारोंके नौकरों, फकीरों और सैय्यदोंको यह रकम बांट दी जावे ।

जब औरंगजेब भारतपर एकछत्र शासन कर रहा था, तब सन् सन् १६६१ ई० में ईरानके शाह अब्बास द्वितीयने उसे बधाई देनेके लिए अपने तोपचियोंके नायक बुदाक बेगको अपना राजदूत बनाकर बड़ी ही शानशौकतके साथ उसे भारत भेजा ।

ईरानके राजदूतके आनेका समाचार सुनकर मुगल-दरबारमें एक हलचल-सी मच गई ? बादशाहसे लेकर एक साधारण सिपाही तकने समझ लिया कि अब उनकी तथा उनके देशकी परीक्षाका समय आया । आगन्तुकोंकी उपस्थितिमें उनकी प्रतिष्ठा और मर्यादामें यदि कोई भी त्रुटि दिखाई दी तो सारे मुसलमानी राज्योंमें हिन्दुस्तानकी हँसी होगी ।

२७ जुलाई १६६१ ई० के दिन उस राजदूतको वापस ईरान लौटनेकी आज्ञा मिली । नवम्बर १६६३ में शाह अब्बासके पत्रका उत्तर लेकर औरंगजेबने अपना एक राजदूत ईरान भेजा । इस्फाहनके दरबारमें उसकी शाहसे भेंट हुई पर उसके साथ बड़ी ही रुखाईका व्यवहार किया गया । उसकी हंसी भी उड़ाई गई, जिसका उसके हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ा । उसके सामने ही फारसके बादशाहने भारतपर चढ़ाई करनेकी कई बार धमकी दी । ईरानमें एक साल रहनेके बाद अन्तमें उसे वापिस लौटनेकी आज्ञा मिली । उसके साथ ही औरंगजेबके नाम एक व्यंगपूर्ण पत्र भी भेजा गया । शाह अब्बासके प्रति अपने रोषको औरंगजेबने उसी बेचारे राजदूतपर उतारा । ठीक काम न कर सकनेका उसपर अपराध लगाकर उसे पदच्युत भी कर दिया । बादशाहने उससे मिलना भी स्वीकार नहीं किया ।

शाह अब्बास १६६७ ई० में मर गया और तब ईरान द्वारा भारत-पर हमलेकी बात भी जहाँकी तहाँ रह गई । औरंगजेबने फिर ना सदैव ईरानकी सीमापर कड़ी निगाह रखी । बल्ख और बुखारा (१६६१ और १६६७ ई० में) काशगार (१६६० ई० में),

उरगज (खीव), कुस्तुन-तुनियाँ (१६६० ई० मे), और (१६६५ और १६७१ ई० मे) अबीसीनिया के राजदूत भी औरंग-ज़ेवके पास आए।

सात वर्षसे भी कम समयमे (१६६१ से १६६७ ई०) औरगज़ेवने २१से अधिक लाख रुपया राजदूतोको भेजने और उनका स्वागत करनेमे खर्च किया। इसके अतिरिक्त सन् १६६८ ई० मे भारतकी शरण लेनेंवाले काशगारके पिछले बादशाह अब्दुल्ला खाँको भी हर साल ११ लाख रुपया प्रति वर्ष देता था। मक्काके प्रधान शरीफको भी हर साल सात लाख रुपया भेजा जाता था।

८. आगराके किलमें शाहजहाँका कैदी-जीवन और औरंगजेबके साथ उसका सघर्ष

जिस दिन शाहजहाँने अपने विजयी पुत्रके लिए आगरा किलेके दरवाजे खोले उसी दिन वह जन्म-भरके लिए कैद होगया। एक शाहशाहके लिए यह एक बहुत ही कटु अनुभव था। बडी कशमकशके बाद विवश होकर ही उसने यह परिस्थिति स्वीकार की थी। दारा और शुजाके नाम शाहजहाँके लिखे पत्रोको राहमे ही पकडवाकर आगराके किलेसे उन पत्रोको लेजानेका प्रयत्न करनेवाले उसके खोजा दूतोको औरगजेबने कडी सजाएँ दी। परिणामस्वरूप औरगजेबने उसपर और भी अधिक कडा पहरा लगा दिया। तब तो शाहजहाँको उसके विरोधियोने चारो ओरसे घेर लिया था। उससे कोई भी मिल नही सकता था। उसकी कही हुई एक-एक बात तकको सरकारी जासूस औरगजेब तक पहुँचा देते थे। लिखने का सामान भी इस भूतपूर्व बादशाहके पाससे हटा दिया गया।

लोभ-लोलुपताके वश होकर औरगजेबने मुगलोमे सबमे अधिक शानदार इस बादशाहको उसके पतनके बाद भी शन्तिमे न रहने दिया, उसके विपरीत उसकी प्रतिष्ठाको कम करनेका निरन्तर प्रयत्न किया जाता था। शाहजहाँके नित्य-प्रति पहनने तथा आगरेके किलेमे

सुरक्षित रखे जानेवाले हीरा, मोती आदि जवाहिरातोंको लेकर पिता-पुत्रमें काफी झगड़ा हुआ। शाहजहाँ यह कभी नहीं भूल सका कि ये उसकी निजी सम्पत्ति थे और न्यायकी दृष्टिसे औरंगजेबका राज्य और साथही राज्यके खजाने तथा माल-मत्तेपर भी कोई अधिकार नहीं था। इसके जवाबमें औरंगजेब कहता था कि शाही खजाना तथा माल जनताके हित-कल्याणके लिए है। यही कारण है कि उनपर कोई भी कर नहीं लगाया जाता है। बादशाह खुदाका चुना हुआ उसका रक्षक-मात्र है, जो उसकी इस अमानतको अपने अधिकारमें रखकर उसे लोगोंके उपकारमें लगावे। इस प्रकार सिंहासनारूढ़ होनेपर अब आगरेकी सारी जायदाद उसकी हो चुकी थी।

आगरेसे भागते समय दारा भी अपनी स्त्रियों और लड़कियोंके १७ लाखके जवाहिरात आगरेके किलेमें छोड़ गया था। औरंगजेबने उन्हें भी माँगा। शाहजहाँ बहुत समय तक विरोध करता रहा, परन्तु अन्तमें उसे औरंगजेबकी बात स्वीकार करनी ही पड़ी। दाराके यहाँ गाने-नाचनेवाली स्त्रियोंको भी औरंगजेबने माँगा। किलेपर अधिकार करते ही औरंगजेबने (८ जून १६५८) वहाँके सारे शाही जेवर, कपड़े, सामान और किलेके रसोईघर तक अपनी मुहर लगवा दी थी। सारे मालको बड़ी सख्तीके साथ जब्त कर उसे उसे पूरी सावधानीपूर्वक निगरानीमें रखनेकी उसने आज्ञा दी थी।

मुहम्मद सुलतानके चले जानेपर मुतमिद नामक हिजड़ा ही आगरेके किलेका प्रधान अधिकारी बन गया। उसने शाहजहाँके साथ बड़ी सख्ती और बहुत ही दुर्व्यवहार किया और उसकी देख-भालमें भी काफी असावधानी दिखाई। उसके व्यवहारसे कभी-कभी यही लगता था कि स्वयं शाहजहाँ उस हिजड़ेका एक कैदी मात्र था।

ऐसे सारे वर्षोंमें पिता-पुत्रमें बहुत ही रचनापूर्ण पत्र-व्यवहार होता रहा। इस सारे पत्र-व्यवहारमें औरंगजेब अपने व्यवहारको मोड़ [illegible]

पिताके प्रति किए गए इस दुर्व्यवहारका बदला उसीके चौथे पुत्र मुहम्मद अकबरने औरगजेबसे लिया था। सन् १६६१ ई० मे जब उस शाहजादेने विद्रोह किया तब उसने अपने पिताको एक बहुत ही व्यगपूर्ण कटु पत्र लिखा। उसका वह पत्र पढकर शाहजहाँको लिखे गए औरगजेबके इन्ही पत्रोका स्मरण हो आता है। उस पत्रमें औरगज़ेबकी राज्य-शासनकी विफलताका उल्लेख कर उसे सलाह दी गई कि उस बुढापेमे धार्मिक जीवन बिताकर वह अपने पिता और भाइयोकी हत्याके पापोका प्रायश्चित कर ले। उसे असफल शासक भी कहा गया। अन्तमे औरगजेबसे पूछा गया था कि जब उसने स्वय अपने पिताका विरोध किया, तब इस समय वह कैसे अपने पुत्र अकबरको विद्रोही कह सकता था।

शाहजहाँके साथ औरगजेबका यह पत्र-व्यवहार बहुत ही कटु और असह्य हो गया। अन्तमे हार मानकर बूढे शाहजहाँको अनिवार्य दुर्भाग्यके सामने सिर झुकाना ही पडा, और जैसे एक बालक रोते-रोते सो जाता है वैसे ही उसने भी कुछ दिन बाद ये सारी शिकायतें करना भी बद कर दी।

उसके दुखी हृदयपर एकके बाद दूसरा यो अनेक आघात हुए। दारा, मुराद और सुलेमान क्रमश मारे गए। शुजाको सकुटुम्ब माघोके देशमे जाना पडा और वहाँके अज्ञात अत्याचार सहते-सहते उनका विनाश हुआ। पर इन सारे दुखोको सहनेपर भी उसका धीरज एव ईश्वरमे उसका भरोसा ज्योका त्यो ही बना रहा। अन्त तक उसने सहनशीलता और धैर्यका ही परिचय दिया।

धर्मसे उसे शान्ति मिली। कन्नौजका सैय्यद मुहम्मद अन्त तक उसके साथ बना रहा, और यही धर्मात्मा तब उसका एकमात्र गुरु, शिक्षक और दान करानेवाला था। इस भूतपूर्व सम्राट्का सारा समय अब ईश्वरोपासना, प्रार्थना और सारे आवश्यक दैनिक धार्मिक कर्म करने, कुरान पाठ करने और भूतकालीन महान् पुरुषोका इतिहास पढनेमे ही बीतता था।

पुण्यात्मा शाहजादी जहांनाराकी प्रेमपूर्ण सेवासे भी शाह-जहांको शान्ति मिलती थी। उसकी इस अनुरागपूर्ण परिचर्याको पाकर शाजहां अपनी अन्य सतानके कटु व्यवहारको भूल-सा गया। यह शाहजादी मियां मीरकी शिष्या थी। वह आगराके किलेके हरममें साध्वीका-सा जीवन व्यतीत करती रही। पुत्री और माताके समान अपने बूढे निरीह पिताकी सेवा करना ही उसने अपना कर्त्तव्य समझा। इसके अतिरिक्त वह दारा और मुरादकी अनाथ सतानकी भी देख-भाल करती थी। इस प्रकार के आध्यात्मिक सहयोग तथा वातावरणमें शाहजहांने परलोक यात्राकी तैयारी की। अब मृत्युका भय उसे नहीं सताता था, और अपने इस कष्टपूर्ण जीवनसे मृत्यु द्वारा मुक्ति पानेकी आशासे वह उसकी बाट जोहने लगा।

६ शाहजहांकी अन्तिम बीमारी और मृत्यु

जनवरी १६६६में ही जाकर मुक्तिकी उसकी यह इच्छा पूर्ण हुई। ७ जनवरीको उसे बुखारने आ घेरा। धीरे-धीरे उसकी हालत बिगड़ती ही गई। इस समय वह ७४ वर्षका था। सिंहासन पर बैठनेसे पहले उसे अनेक बाधाओंसे पूर्ण कठिन जीवन बिताना पड़ा था। अब शीतकालकी इस कड़ी ठण्डमें उसकी शक्तियोंने जवाब दे दिया।

सोमवार, २२ जनवरीको उसकी दशा और भी बुरी बनाई गई। उसकी मृत्यु अब हो जायगी यह कोई सह नहीं सकता था। अपनी मृत्यु-को निकट जानकर शाहजहांने उसकी सारी कृपाओंके लिए परमात्माको धन्यवाद दिया और अपने को उसीके हवाले छोड़ दिया। अन्तमें उसने शान्तिपूर्वक अपनी अन्तिम क्रिया सम्बन्धी आवश्यक आदेश दिए और तब भी जीवित अपनी दोनों पत्नियों—अकबराबादी महल, फतहपुरी महल—अपनी बड़ी बेटी जहांनारा एवं नाना अन्य स्त्रियोंको यह सान्त्वना देता रहा। उसके चारों ओर सब लोग रो रहे थे। पद निराश्रित होनेवाली जहांनाराको उसने अपने

सौतेली बहन पुरहुनर बानू तथा अन्य महिलाओंके सुपुर्द कर दिया। अपना वसीयतनामा लिखकर अपने कुटुम्बियो और नौकरोको उसने अनेक इनाम दिए, और अन्तमे उसने कुरान पढनेकी आज्ञा दी। इन अन्तिम क्षणोमे उसका कमरा स्त्रियोके रोदनसे भर गया। तथापि शाहजहाँके होशहवास ठीक थे। वह अपनी प्यारी बेगम मुमताजकी यादगार, ताजमहलकी ओर टकटकी लगाकर देख रहा था। कलमा पढ़कर फिर उसने प्रार्थना की—"ऐ खुदा! इस लोकमे मेरी गति सुधार ले, और परलोकमे मुझे नरक-यातनासे बचा ले।"

कुछ ही क्षण बाद वह चिर-निद्रामे सो गया। तब सध्याके सवा सात बज रहे थे। इस समय वह मुसम्मन बुर्जमे लेटा हुआ था, जहाँसे सामने ताजमहल दिखाई दे रहा था, यही उसकी मृत्यु हुई। शाहजहाँ चाहता था कि उसे ताजमहलमे ही दफनाया जावे कि मृत्युके बाद भी वह अपनी प्रेयसीसे दूर न रहे।

शाहजहाँकी कैदके दिनोमे इसी बुर्जके नीचेकी सीढियोका दरवाजा ईटसे चुनकर बन्द कर दिया गया था। अब ईंटोकी इस दीवारको तोडकर किलेके अफसरोने वह रास्ता खोला और उसी राह शाहजहाँका जनाजा निकालकर जमुनाके किनारे लगी हुई नाव तक उसे ले गए। नाव द्वारा ही उस जनाजेको ताजमहल तक पहुँचाया और वहाँ उसकी प्रेयसी सम्राज्ञी मुमताज महलके रहे-सहे अवशेषोके पास ही शाहजहाँकी लाशको भी दफना दिया।

जनताको शाहजहाँकी मृत्युका बडा ही खेद हुआ। लोगोने उसकी त्रुटियो और अपराधोको भुला दिया और अब उसकी अच्छी बातोकी ही यादकर वे उनकी चर्चा करने लगे।

शहजहाँकी मृत्युसे कोई एक माह बाद औरंगजेब आगरा पहुँचा और वहाँ जहाँनारासे मिला। जहाँनाराके प्रति उसने बहुत ही अनुग्रह दिखलाया और नम्रताके साथ बर्ताव किया। इन पिछले दिनोमे जहाँनाराने शाहजहाँसे निरन्तर प्रार्थना की थी कि वह औरंग-

जेबके अपराधोंको क्षमा कर दे। कुछ समय तक तो शाहजहां टालता रहा, परन्तु अन्तमें जहांनाराकी प्रार्थनाको स्वीकार कर उसने औरंगजेबके सारे अपराधोंके क्षमा-पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए थे।

औरंगजेबने अपने पिताके साथ जो दुर्व्यवहार किया था, वह उसकी समकालीन जनताको बहुत ही अनुचित एवं न्याय-विरुद्ध जान पड़ा। उस युगकी सामाजिक मर्यादाको इस प्रकार तोड़नेके कारण जनताके हृदयोंमें औरंगजेबके विरुद्ध बहुत ही तीव्र नैतिक रोष उठ खड़ा हुआ था।

अध्याय ७

सीमाओंपर युद्ध; आसाम और अफ़ग़ानिस्तान

१. १६५८से पहले आसाम और कूचविहारके साथ मुगलोंके सम्बन्ध

१६वीं सदीके आरम्भमें एक भाग्यवान् मंगोली सैनिक, विश्वसिंहने (शासन-काल १५१५–१५४० ई०) कूचविहारमें एक राजवंशकी स्थापना की जो अभी तक चला आ रहा है। विश्वसिंहने हिन्दू-धर्म और संस्कृतिको पूरी तरह अपना लिया और सफलतापूर्वक राज्य स्थापित कर वहाँ सैनिक संगठन किया। उसके छोटे भाईके पुत्रने कामरूप या कूचहाजो कहलानेवाले कूचके पूर्वी भागपर अधिकार किया और वहाँपर वह स्वयं राजा बन बैठा। इस राजवंशकी इन दो शाखाओंके आपसी संघर्षके समय कूचविहारके राजाने बंगालके सूबेदारसे सहायता माँगी, तब तो मुगलोंने कूचहाजोको जीतकर उसे मुगल साम्राज्यमें मिला लिया (१६१२ ई०)। इस प्रकार मुगल साम्राज्यकी सीमा पूर्वी ओर मध्य आसामके अहोम राजाओंके राज्यसे जा मिली।

अहोम लोग उत्तरी ब्रह्माके पहाड़ी भागोंमें बसनेवाली 'शान जाति' की ही एक शाखा थे। १३वीं सदीमें पोंग राजघरानेके

एक राजकुमारने ब्रह्मपुत्राके दक्षिणी-पूर्वी कोनेपर अपना राज्य स्थापित किया और तब राहमें पड़नेवाली जातियोंको जीतता हुआ पश्चिमकी ओर बढ़ा। आसाममें बसनेपर अहोम जाति हिंदू सभ्यता और धर्मके प्रभावमें आकर धीरे-धीरे बदलने लगी। हिन्दू धर्मके पुजारी, महन्त तथा हिन्दू कारीगर लोग आसाममें जा पहुंचे। वैष्णव धर्म भी वहां खूब फला-फूला।

सन् १६१२ ई० में कूचहाजोको मुगल साम्राज्यमें मिला लेनेके बाद १७वी शताब्दीके इन प्रारम्भिक वर्षोंमें मुगलोंकी अहोमोंके साथ बड़ी कशमकश होती रही। अन्तमें सन् १६३८ ई० में जाकर सन्धि हुई, जो अगले २० वर्ष तक बनी रही।

अहोमोंका कामरूप जीतना, १६५८ ई०

१६५७ ई० में जब शुजा बंगालकी अधिकांश सेना सहित सिंहासन-प्राप्तिके लिए चला तब कूचविहारके राजाने कामरूपको एक सेना भेजी। गोहाटीका फौजदार मीर लुत्फुल्ला शीराजी अहोमोंके आक्रमणसे डर नावमें बैठकर नदीकी राह ढाका भाग गया। कामरूपकी राजधानी गोहाटीपर बिना युद्ध किए ही आसामियोंका अधिकार हो गया। वहां उन्होंने सबकुछ लूट लिया।

यह सब १६५८ के आरम्भमें हुआ था। किन्तु जून १६६० में मीरजुमलाको विशेष तौरसे बंगालका सूबेदार बनाकर भेजा था कि वह बंगालके और खास तौरपर आसाम और माघ (अराकान) के विद्रोही जमींदारोंको दण्ड देकर उन्हें ठीक कर दे।

२. मीरजुमलाका कूचविहार और आसाम जीतना

१ नवम्बर १६६१ ई० को ढाकासे कूच कर एक महान लम्बी रास्तेमें मीरजुमला कूचविहारमें जा पहुँचा। १६ दिसम्बरको मुगलों-ने राजधानीमें प्रवेश किया। राजा और प्रजा पहले ही पहाड़ी प्रदेशमें भाग गए थे। सारे राज्यपर मुगलोंका पूरा अधिकार हो गया।

४ जनवरी १६६२ ई० को वहाँसे रवाना होकर उसने आसामपर आक्रमण किया। घने जगल और अनेक नालोके कारण वह प्रति दिन ४–५ मीलसे अधिक नही चल सकते थे, फिर भी वे वडे परिश्रमके साथ आगे वढ रहे थे। मुसलमान सेना वढते-वढते ब्रह्मपुत्रा तक जा पहुँची। एकके वाद दूसरा किला वह जीतती गई। अन्तमे ३ मार्चकी रातको मीर जुमलाने शत्रुकी जल-सेनाको भी नष्ट कर दिया।

१७ मार्चको आक्रमणकारी गढगॉव पहुँचे। वहॉका राजा जयध्वज राजधानी छोडकर भाग गया था। आसाम-विजयमे वहुत-सा माल मुगलोके हाथ लगा। अगली वरसात भर वही रहकर उस प्रदेशपर अपना आधिपत्य वनाए रखनेका मीरजुमलाने पूरा-पूरा प्रवन्ध किया। अपनी प्रधान सेनाको लेकर गढगॉवसे कोई ७ मील दक्षिण-पूर्वमे स्थित मथुरापुर गॉवमे ३१ मार्चको वह जा पहुँचा। इधर एक वडी सेनाके साथ मीर मुर्तजा अहोमोकी राजधानीपर अधिकार किए वैठा रहा। इसके सिवाय कई अन्य स्थानोपर मुगल सैनिकोके थाने स्थापित किए गए।

४ अहोमोके साथ मुगलोके निरन्तर युद्ध, वर्षामें मुगलोका घिर जाना

आरम्भसे ही मुगल मोर्चोपर कोई शान्ति न रह सकी। अहोमोने फिरसे रातमे छापा मारकर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। गढगॉवपर भी हमला हुआ पर वह असफल रहा। सारी वरसात (मईसे अक्तूवर) मुगल सेना आसाममे घिरी पडी रही।

आवश्यक घास-दानेके अभावमे सवारोके घोडे हजारोकी सख्यामे मरने लगे। वाहरसे किसी भी प्रकारकी मदद तो दूर रही खवर भी नही आ सकती थी।

इसलिए मीरजुमलाने अपने सारे वाहरी थाने उठा लिए। लखावसे पूर्वके सारे प्रदेशपर अहोम राजाने अधिकार कर लिया।

मुगलोंके पास केवल गढगांव और मथुरापुर ही रह गए।

अहोमोंकी आक्रमण शक्ति अब दूनी हो गई। ८ जुलाईकी रातको गढगांवपर उन्होंने जोरोंसे हमला किया और एक बार तो उन्होंने उस किलेके आधे हिस्सेपर भी अधिकार कर लिया, किन्तु बादमें बड़ी मिहनत कर मुगलोंने उन्हें मार भगाया और सारे किलेको पुन. अपने अधिकारमें लिया। इस प्रकार उस रात्रिकी वह कठिन घड़ी टल गई। इसके बादके सारे आक्रमण व्यर्थ ही रहे।

अगस्तमें मथुरापुरके मुगल सैनिकोंमें बड़े जोरसे बीमारी फैली। ज्वर और बातके कारण सैकड़ों सैनिक प्रति दिन मरने लगे। सारा आसाम पीड़ित हो उठा। अन्तमें वहांका जीवन असह्य होनेके कारण १७ अगस्तको मुगल सेना गढगांव लौट आई। आवागमनकी असुविधाके कारण बहुत-से बीमार सिपाही पीछे ही छोड़ दिए गए। पराजित अहोम लोग फिरसे आक्रमण करने लगे। प्रत्येक रात्रिको किलेके बाहर लड़ाई होने लगी। बीमारी फिर भयंकर हो उठी। मीरजुमला भी एक साधारण सैनिककी भांति रहता था। सितम्बरके तीसरे सप्ताह तक जाकर कहीं दशा कुछ सुधरी। वर्षा कम हुई और रास्ते फिरसे खुलने लगे।

५. मुगलोंकी जल-सेनाके कार्य; मीरजुमलाका पुन आक्रमण करना

मुगल सेनाके सेनापति इब्नहुसनके मातहत लखावमें रहनेवाली जल-सेनाने इन आपत्तिपूर्ण दिनोंमें अपनी तथा सारी फौजकी रक्षा की। उसने ढाकाकी राह सदैव दिल्लीसे सम्बन्ध बना रखा। उसने गढगांवका मार्ग खुला रखनेमें पूरा-पूरा सहयोग दिया, तथा अनगरके पासकी सप्ताहमें बहुत-सी रसद गढगांव भेजी। पानी सूख जानेके बाद तो मुगल सवारोंको रोकना असम्भव हो गया। ज्यादातर अहोम उनके सरदार दूसरी बार नामरूपकी पहाड़ियोंकी ओर भाग गए। मीरजुमलाने फिर आक्रमण किया और

सोलापुरी होता हुआ टीपमकी ओर बढा (१८ दिसम्बर)। टीपम तक पहुँचना ही उसका लक्ष्य था। २० नवम्बरको चक्कर आजानेसे वह वेहोश हो गया १० दिसम्बरको उसकी वीमारी वहुत ही वढ गई। सारीमुगल सेनाने अव नामरूपकी ओर बढनेसे इन्कार कर दिया। अपने सेनापतिको छोड घर लौट जानेका भी वे षड्यन्त्र करने लगे।

३ आसामके साथ सन्धि

दिलेरखाँके जरिये अहोमके राजाके साथ सन्धि की गई, जिसकी शर्ते थी —

(१) जयध्वज अपनी लडकी और टीपमके राजपुत्रीको मुगल राजदरवारमे भेजेगा।

(२) युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए अहोमका राजा तत्काल ही २०,००० तोला सोना, १,२०,००० तोला चाँदी और २० हाथी मुगल वादशाहकी भेट करेगा। इसके अतिरिक्त मीरजुमला और दिलेरखाँको भी क्रमश १५ और २० हाथी दिए जावेगे।

(३) वाकी रही युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए अगले वारह महीनोमे तीन लाख तोले चाँदी और ६० हाथी तीन किश्तोमे देगा।

(४) उसके वाद, वह प्रति वर्ष २० हाथी टाँकेके रूपमे देगा।

(५) जब तक युद्ध-हानिको पूरी तरह नही चुकाया जावे तब तक वुरहा गुहैन, वर गुहैन, गटगौनिया फुकन और वरपत्र फुकनके पुत्र मीरजुमलाके पास शरीर-वधक रहेगे।

(६) ब्रह्मपुत्राके उत्तरी तटपर भरालीके पश्चिमसे लेकर कलिग नदीके दक्षिणतटपर पश्चिम तकका आसामका प्रदेश मुगल साम्राज्यमे मिला लिया जावेगा। इस प्रकार जगली हाथियोके प्रदेश, दरग जिलेका आधेसे अधिक भाग मुगलोके अधिकारमे चला गया।

(७) मुगल साम्राज्य (विशेषकर कामरूप) मे जिन्हे अहोम कैद कर ले गए थे, उन सब कैदियोको छोड दिया जावे। साथ ही

साथ अहोम राजा द्वारा कैद किए गए बदुली फुकनके बच्चे और स्त्री भी छोड़े जावें ।

५ जनवरी १६६३को अहोमके राजाकी पुत्री, अन्य शरीर-बंधक, सोना-चांदी, और कुछ हाथी युद्ध-हानिकी पूर्तिके लिए मुगल पड़ाव पर पहुंचे । पांच दिन बाद मीरजुमला आसामसे वापस लौट पड़ा । हकीमोंकी सलाहके अनुसार अन्तमें वह नावमें बैठ कर जल-मार्गसे ढाकाकी ओर चला । परन्तु ३१ मार्च १६६३को मार्गमें ही वह मर गया ।

७ मीरजुमलाके चरित्रकी महानता

सेनाकी चढ़ाईकी दृष्टिसे मीरजुमलाका यह आसाम-आक्रमण पूरी तरह सफल हुआ । उसने राजाको अपमान-पूर्ण सन्धि करनेके लिए बाध्य कर दिया और अपना बहुत-सा युद्ध व्ययभी उससे वसूल कर लिया । सालाना नजरानेके साथ ही आसामका एक बड़ा प्रदेश पानेका वचन भी उसे मिल गया था । इस चढ़ाईका राजनैतिक परिणाम स्थायी नहीं हुआ, जीते हुए जिलेपर मुगलोंका कब्जा कायम नहीं रह सका, और उसकी मृत्युके चार वर्ष बाद ही गोहाटी भी मुगलोंके हाथोंसे निकल गया, किन्तु इस सारी विफलताके लिए वह किसी भी तरह दोषी नहीं था ।

यद्यपि मीरजुमलाकी इस चढ़ाईमें बहुत-से सैनिक काम आए, बीमार होकर वह स्वयं मर गया, और कूचबिहार और आसामके जीते हुए प्रदेश भी कुछ ही दिनों बाद अधिकारसे निकल गए, तथापि इस चढ़ाईमें उसका उज्ज्वल चरित्र कसौटीपर कसा जाकर पूरी तरह जगमगा उठा । इस युगके किसी भी अन्य सेनानायकने इतनी सतर्कता और नीतिके साथ सञ्चालन नहीं किया और न वैसी कठिनाइयोंमें ही अपने सिपाहियों, नौकरों तथा सहायकोंपर उसके समान रीतिसे अनुशासन रखा । इतनी कठिनाइयों और संकटोंमें पड़कर भी कोई दूसरा सेना उसके समान अपने लोगोंपर इतना

विश्वासपात्र और प्रेमपात्र नही हो सका था। बीस मन हीरे का मालिक और बगाल जैसे धनवान प्रदेशका सूबेदार होते हुए भी सामान्य सैनिकके साथ ही युद्धकी सारी असुविधाओ और कठिनाइयोको उसने भी उठाया था। कठिन परिश्रम कर तथा सारे सुख-भोगोको छोडकर ही उसने अपनी मृत्युको आमत्रित किया। लूटमार, औरतोकी बेइज्जती और निरीह जनतापर अत्याचर करनेकी उसने सख्त मनादी कर दी थी। उसके आदेश वडे कडे होते थे। अपने आदेशोका पालन करवानेमे वह सदैव सतर्करहता था। पहले अपराधियोको वह कडी सज़ा देता था, जिससे उसके वाद उस प्रकारके अपराध नही होते थे। अन्य लोगोसे उसकी तुलना करनेपर ही हम उसकी योग्यताको ठीक तरह समझ पाते है। मीरजुमला जैसे चरित्रनायक-को पाकर इतिहासकार तालीशकी लेखनी अपनी सुलभ अलकारपूर्ण भाषामे मीरजुमलाकी प्रशसा करनेके लिए वडी तेजीसे आगे बढती है। किन्तु उस सेनानायकी यह प्रशसा न तो कोरी चापलूसी ही है न अत्युक्तिपूर्ण काव्य-विवरण ही, वह तो पुरुषोके एक जन्मजात नेताके प्रति उचित तथा अत्यावश्यक श्रद्धाजलि-मात्र है।

८ मुगलोका कामरूप खोना; कामरूपके लिए लडाई (१६६७–१६८१)

आसाममे मीरजुमलाके जीते हुए प्रदेशोपर सन् १६६७ ई० तक मुगलोका अधिपत्य वना रहा। अहोमोका नया राजा चक्र-ध्वज कुछ समयसे युद्धकी तैयारियाँ कर रहा था। अगस्त, १६६७मे उसने मुगलोके विरुद्ध दो सेनाए भेजी और नवम्बरके प्रारम्भमे उसने गौहाटीपर कब्जा कर लिया। इसी गौहाटीमे अब अहोमोके हाकिमने अपना अड्डा जमाया। खोये हुए इस प्रदेशको फिरसे जीत लेनेके लिए मुगलोने कोशिश की, लेकिन बहुत काल तक अव्यवस्थित लडाईके वाद भी मुगलोको कोई सफलता नही मिली। सारी अहोम जाति अब मुगलोके विरुद्ध विद्रोह करनेको उठ खडी हुई, और मुमज्जित

होकर अब जलमार्गोंपर भी उन्होंने अपना पूरा-पूरा आधिपत्य जमा लिया।

तब तो आम्बेरके राजा रामसिंहको विशेषरूपसे आसाममें नियुक्त किया गया। वहां पहुचते ही रामसिंहने गौहाटीको जा घेरा, परन्तु गौहाटी को जीतनेके उसके सारे प्रयत्न असफल ही रहे। मार्च १६७१ ई० में वह रंगमतीको वापस लौट आया और १६७६ तक उसने कुछ भी नही किया। १६७६ ई० मे उसे वापस दिल्ली लौट जानेकी इजाजत भी मिल गई।

सन् १६७० ई० मे चक्रध्वजकी मृत्युके बाद आपसी झगड़ोंके कारण अहोम राज्यकी शक्ति बहुत ही कम हो गई। फरवरी १६७६ ई० मे अपने प्रतिद्वन्द्वी बुरहा गुहैनके भयसे बर फुकनने गौहाटी शहर मुगलोंको सौंप दिया। किन्तु १६८१ ई० में गदाधरसिंह अहोमोंकी गद्दीपर बैठा और उसने आसानीसे गौहाटीको जीत लिया। वहां उसे लूटमें बहुत-सा माल मिला। इस प्रकार अन्तमें कामरूप मुगलोंके हाथसे निकल गया। अब वह बंगाल सूबेमे नही रहा।

सन् १६६२ ई० में जब मीर जुमला गढ़गांवमें घिरा हुआ था, कूचबिहारको वहांके राजाने वापस जीत लिया और उसने वहांसे मुगल फौजको खदेड़ दिया था। शायस्ताखां इस समय बंगालका सूबेदार था। मार्च १६६४ मे वह राजमहल पहुचा, तब कूचके राजाने तत्काल उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और हरजाना भी भी दे दिया। प्राणनारायण १६६६ ई० मे मर गया और उसके बाद लगभग आधी शताब्दी तक राज्यमें लगातार आपसी झगड़े चलते रहे, जिससे वहांका सारा शासन शिथिल हो गया। मुगलोंने कूचबिहारके दक्षिणी और पूर्वी प्रदेशोंको भी अपने अधिकारमें कर लिया। कूचके राजा को बाध्य होकर मुगलोंकी इस विजयको स्वीकार कर लेना पड़ा तथा सन् १७११ ई० की सन्धि द्वारा ये प्रदेश मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लिए गए।

६. चटगाँवके समुद्री डाकू और बंगाल में उनके उपद्रव

चटगाँवके जिलेको लेकर अनेको शताब्दियो तक बंगालके मुसलमान शासको और अराकानके मगोल राजाओमे बहुत ही कशमकश होती रही थी । ईसाकी १७वी शताब्दीके प्रारम्भमे फेनी नदीको दोनो राज्योकी सीमा मान लिया गया । परन्तु उसके बाद जहाँगीरके ढीले-ढाले शासन तथा उसके उत्तराधिकारी शाहजहाँके विद्रोहके कारण बगालमे मुगलोकी सत्ता घट गई । उधर अराकानियोके बेडेमे कई विदेशी नाविक आ मिले । ये पुर्तगाली फिरगी या उनकी अधगोरी सन्तान चटगाँवमे बसकर वहाँके राजाकी स्वामिभक्त प्रजा बन गए थे, और अराकानियोके जल-बेडेमे नाविक बनकर उनके भरती होनेसे १७वी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे इस नाविक बेडेकी शक्ति बहुत बढ गईथी । पूर्वी बगालके सारे नदी-नालो तथा जल मार्गोपर माघोका ही पूरा-पूरा आधिपत्य हो गया ।

अराकानके इन समुद्री डाकुओमे माघ और फिरगी दोनो ही शामिल थे । वे हमेशा जलमार्गसे आकर बगालमे लूटमार करते थे । बगाल दिनोदिन उजाड होता जा रहा था और उनसे अपनी रक्षा करनेकी शक्ति भी निरन्तर कम होती जा रही थी । फिरगी लुटेरे अपनी लूटके मालका आधा हिसा अराकानके राजाको देकर बाकी रहा आधा भाग खुद रख लेते थे । ये लोग 'हरमद' के नामसे ही प्रख्यात थे । यह 'हरमद' शब्द जहाजी बेडेके लिए पुर्तगाली शब्द 'आरमडा' का ही अपभ्रंश था । इन लोगोके जहाजी बेडेमे युद्ध-सामग्रीसे भरे हुए तेज चलनेवाले कोई १०० जहाज थे ।

पूर्वी बगालमे नदी किनारेके प्रदेश उजाड और निर्जन हो जानेसे साम्राज्यकी आमदनी भी बहुत घट गई । राज्य-मर्यादाको भी असहनीय धक्का पहुँचा । प्रान्तकी रक्षाके लिए चटगावके इन सामुद्रिक लुटेरोको हराना अत्यावश्यक होगया ।

मीरजुमलाके आरम्भ किए हुए कामको पूरा करनेके लिए शायेस्ताखाँको आज्ञा दी गई । ऊपरी दृष्टिमे उसका यह कार्य

निराशाजनक और असम्भव-सा ही प्रतीत होता था । मुगल साम्राज्य-का एक जहाजी बेडा बंगालमें रहता था । परन्तु शाहजादा शुजाके अव्यवस्थित शासन-कालमें अफसरोंकी बेपरवाहीके कारण इस बेडेकी दशा बिगडती ही गई । बादमें मीरजुमलाने जब आसामपर चढाई की तब यह बेडा बिलकुल ही बरबाद हो गया था । मुगल साम्राज्यके लिए एक नया सुसज्जित जहाजी बेडा बनाना ही शायस्ताखांका पहला काम था । उसने इस कामकी ओर अब ध्यान दिया । उसकी महत्वा-कांक्षा और उत्साहके कारण सारी कठिनाइयां दूर हो गईं । नये जहाज बनाए गए और केवल एक वर्षके ही थोडेसे समयमें एक नई सामुद्रिक सेना लडाईके लिए पूरी तरह सुसज्जित कर दी गई ।

सन्दीप नामक टापू सग्रामगढ और चटगांवके बीचोंबीच स्थित है । नवम्बर १६६५ में आक्रमण कर मुगलोंने उसे जीत लिया, और वहां एक मुगल फौज तैनात कर दी गई । मुगलोंकी शानदार नौकरियां देनेका प्रलोभन देकर शायस्ताखाने फिरंगियोंको भी अपनी ओर मिला लिया । अराकानी और फिरंगियोंमें बडा झगडा हुआ, जिसमें कई एक फिरंगी मारे गए, एवं चटगांवमें रहनेवाले सारे फिरंगी दिसम्बर १६६५में अपना असबाब और कुटुम्बियोंको लेकर मुगल प्रदेशोंमें चले आए । उनके मुखियाओंको बडी-बडी तनख्वाह देकर मुगलोंने उन्हें अपने जहाजी बेडेमें रख लिया । फिरंगियोंके इस प्रकार मुगलोंके पक्षमें आ जानेसे उपद्रव बंद हो गए और बंगालके लोगोंकी जानमें जान आई ।

१०. मुगलोंका चटगांव जीतना

शायस्ताखांका लडका, बुजुर्ग उम्मेदखां एक बडी सेना लेकर २४ दिसम्बर १६६५ ई० को ढाकासे चल पडा । यह सेना समुद्रके किनारे-किनारे स्थल-मार्गसे अराकानकी ओर बढ रही थी, उधर सारा जहाजी बेडा लेकर इब्नहुसैन उसके साथ-साथ ही समुद्रमें एक-दूसरेकी सहायता करता हुआ चला जा रहा था । मुगल सेनाएं एक

दलने फरहादखांके नायकत्वमे आगे बढकर १४ जनवरी १६६६ ई० को फेनी नदी पार की और वह अराकान प्रदेशमे जा पहुँचा ।

मुगल जहाजी बेडेका प्रधान सेनापति २३ जनवरीको कुमरियाकी खाडीमेसे निकला और उसी दिन उसका सामना करनेके लिए दुश्मनो-का जहाजी बेडा कठालियाकी खाडीसे निकल कर आगे बढा । दोनो बेडोकी मुठभेड हो गई । मुगल बेडेके आगेके जहाजोपर फिरगी डटे हुए थे, उन्होने ऐसे जोरसे हमला किया कि उसीसे इस जहाजी युद्धका नतीजा स्पष्ट हो गया । गुर्राबोमे बैठे हुए माघ नावे छोडकर समुद्रमे कूद पडे और उन गुर्राबोपर मुगलोने अधिकार कर लिया । जालियावाले माघ भाग खडे हुए ।

किन्तु दुश्मनोके बडे-बडे जहाज हुरलाकी खाडीमे होते हुए अब खुले समुद्रमे आ गए ।

दूसरे दिन सुबह मुसलमानोको दूसरी बडी विजय मिली । वे गोलियोकी वर्षा करते हुए दुश्मनको खदेडते आगे बढ गए । अराकानी जहाजी बेडा आगे बढनेवाले मुगल बेडेपर गोलियाँ चलाता हुआ पीछे हटने लगा और कर्णफूली नदीकी ओर लौटा । तीसरे पहर कोई तीन बजे नदीके मुहानेमे घुमकर अराकानियोने चटगाँवमे एक कतारमे खडाकर युद्धकी तैयारी की । साथ ही उन्होने इसी नदीके सामनेवाले किनारेपर बासोकी तीन बाडे बनाए । किन्तु इब्नहुसैनने अपने बहुत-से जहाज पहिले ही नदीमे ऊपर भेज दिए थे, थल-मार्गसे भी हमलाकर उसने उन तीनो बाडोपर कब्जा कर लिया ।

अब तो मुगल इन सफलताओमे उत्साहित होकर दुश्मनोके जहाजोपर टूट पडे । एक घमासान लडाई छिड गई । चटगाँवके किलेपरसे भी मुगलो पर गोला-बारी होने लगी । किन्तु अन्तमे दुश्मनोको मुगलोने मार भगाया । दुश्मनोके बहुत-से नाविक तैरकर भागे और यो उन्होने अपनी जान बचाई । किन्तु बाकी सारे नाविक या तो मार डाले गए, अथवा उन्हे कैदी बना लिया गया । कोई

१३५ जहाज विजेताओंके हाथ लगे। २५ जनवरीको चटगांवके किलेको मुगलोंने जा घेरा। दूसरे दिन २६ जनवरीको सुबहमें यह किला उम्मेदहुसैनके अधिकारमें आ गया।

इसी बीच २३ जनवरीको मुगलोंके जहाजी बेड़ेको आगे बढ़नेका समाचार पाते ही फरहादखांके मातहतकी मुगल फौज भी घने जंगलोंमें होकर चटगांवकी ओर बढ़नेका भरसक प्रयत्न करने लगी। उनके आगे बढ़नेपर माघ लोगोंने भी राहमें पड़नेवाले अपने सारे नाके छोड़ दिए। फरहादखां स्वयं तारीख २६को चटगांव पहुंचा और दूसरे ही दिन उस विजयी सेनापतिने उस किलेमें प्रवेश किया। मुगलोंकी इस विजयका सबसे गौरवपूर्ण एवं सुखद परिणाम यह हुआ कि बंगालके जिन हजारों किसानोंको अराकानी समुद्री डाकू कैद कर ले गए थे और जिन्हें उन्होंने दास बना रखा था, वे अब स्वतन्त्र होकर अपने घरोंको वापस लौट आए। सूबेमें खेती और पैदावारीके बढ़ जानेसे बंगालको बहुत लाभ पहुँचा। चटगांवमें मुगल थाना स्थापितकर वहां एक मुगल फौजदार नियुक्त किया गया, तथा उस शहरका नाम चटगांवसे बदलकर इस्लामाबाद रखा गया।

११. अफगान, उनका चरित्र तथा मुगल साम्राज्यके साथ उनका सम्बन्ध

भारतसे काश्मीर और अफगानिस्तान जानेवाली घाटियों और उनके आसपासकी पहाड़ियोंमें सम्मिश्रित तुर्की और ईरानी जातियोंके अनेकों घराने रहते हैं, जो उत्तरमें पठान और दक्षिणमें बलूच कहलाती हैं। इस्लाम धर्ममें दीक्षित हो जानेपर भी अपने प्राचीन जातीय संगठन, चोरी-चारी और लूटमार करनेके अपने चिरकालीन पेशेको उन्होंने अभी तक नहीं छोड़ा है।

मैदानमें रहनेवाली दूसरी जातियोंसे अधिक वीर और साहसी होते हुए भी अपने जातीय और [illegible] निजी झगड़ोंके कारण परस्पर ही उनमें कभी एकता नहीं हुई। यही कारण है कि इनमें

सारे इतिहास मे कही भी हमे अधिक काल तक बने रहनेवाले उनके किसी बडे सुसगठित राज्यकी स्थापना करनेका वर्णन नही मिलता है, और न उन विभिन्न जातियोके किसी सुचालित सघकी स्थापनाका विवरणही उनमे पाते है ।

वे कभी किसी प्रकार का कोई राष्ट्र-निर्माण नही कर सके, उनका सगठन जातीय सगठनसे अधिक नही हुआ, और उनके इस जातीय सगठनमे राजपूतोके समान ही कडे अनुशासनकी पूरी-पूरी कमी होती है । अफरीदी या यूसुफजाई जातिवाले केवल अपने-अपने मुखियाओकी ही बात सुनते है, और वह भी केवल तभी जब या तो उससे उनका स्वार्थ सधता हो या अन्य किसी कारणवश ऐसा करनेको वे राजी हो गए हो । विभिन्न कुटुम्बोके निरन्तर बनने और टूटनेवाले इन दलोके अतिरिक्त किसी भी अफगान जातिकी सुरक्षा तथा उनकी ओरसे आक्रमण करनेके लिये किसी भी प्रकारकी कोई दूसरी सेना नही होती है । किसी भी जातिके मुखियाकी सत्ता केवल नाममात्र-की होती है, और जब तक उस जातिवाले स्वेच्छासे उसे मुखिया मानते है, तब तक ही उसकी कुछ चलती है । अफगान समाजमे सारी शक्ति विभिन्न परिवारोमे ही सीमित होती है, जातीय सगठन भी उनमे नही पाया जाता है ।

ये जगली अफगान मेहनती, साहसी तथा साथ ही चालाक भी होते है, उनका एकमात्र वश-परम्परागत व्यवसाय होता है उन पहाडी मार्गोपर लूटमार करना । उनकी निरन्तर बढती हुई आबादीके लिए खेतीसे होने वाली थोडी-सी आमदनी किसी भी प्रकार पूरी नही पडती है । अपने पडोसवाले अधिक कमाऊ व्यक्तियो तथा पासकी ही राहपरसे होकर गुजरनेवाले धनी यात्रियो-को लूटकर एकबारगी तथा आसानीसे जो आमदनी हो जाती थी उसकी तुलनामे खेती-बाडीसे होने-वाले लाभ बहुत ही कम तथा बडी देरीसे प्राप्त होते थे । उन पहाडोमे बसनेवाली अफरीदी, शिनवारी, यूसुफजाई और खटक जातियोको भाग्यमे काबुल आने-

जानेवालोंसे कर वसूल करनेका अधिकार था, यह बात मुगलोंने भी स्वीकार कर ली थी। दीर्घकालीन अनुभवके बाद मुगलोंने देखा कि उस प्रदेशमें शान्ति बनाए रखनेके लिए सैनिक शक्ति द्वारा इन जातियोंको नियन्त्रणमें रखनेकी अपेक्षा उन्हें रुपये-पैसे देकर वशमें करना अधिक सरल था। राजनैतिक कारणोंसे बाध्य होकर यों द्रव्य दे-दिलानेपर भी कई बार उनसे आज्ञा पालन करवानेमें कठिनाई ही होती थी। यदा-कदा उनमेंसे कोई न कोई झूठ-मूठ ही अपने को राजकीय या किसी पवित्र घरानेका वंशज घोषित करके मुखिया बन जाता था। अपने ही खर्चसे नवयुवाओंके दलोंको खिलापिलाकर वह उन्हें संगठित करता और फिर अचानक विपक्षी कुनबोंके खेतोंपर आक्रमण कर बैठता या कभी शाही इलाकोंमें भी लूटमार करता था। जब तक यह लूटमारका तांता न टूटता तब तक उस दलका संगठन टूटने नहीं पाता था। किन्तु ज्योंही वे या तो बेकार हो जाते या लूटमारकी सामग्रीके बटवारेको लेकर उनमें मतभेद हो जाता तभी ये आपसमें लड़ जाते थे और साथ ही वह दल भी बिखर जाता था* ।

पूरी तरह अपनी सत्ता स्थापितकर अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए शक्तिशाली मुगल बादशाह, जहां ये जातियां बसती हैं, उन घाटियोंमें अपनी बड़ी-बड़ी सेनाएं भेजकर उन जातियोंके दलोंके संगठित विद्रोह दबाकर उनके घरोंको बरबाद करवा देता था। समतल मैदानोंपर सैनिक थानोंको स्थापितकर वहां अधिकार स्थायी बनानेका प्रयत्न किया जाता था। अफगानोंकी सेनाएं उजाड़ दी जातीं और अनेकों अफगानोंको तलवारके घाट उतारकर उनकी सत्ता खत्म कर दी जाती थी। यदा-कदा कमजोर थानोंपर आक्रमणकर ये अफगान वहांके मुगल सैनिकोंको मार डालते थे। [illegible] [illegible]

*[illegible] एक [illegible] अपनी जातिको एक साथ ही अज्ञान और अभिमान [illegible] कहा था कि "तुम [illegible], और [illegible] न होंगे" ([illegible], पृ० [illegible])।

ये थान उठा लिए जाते थे, और ज्योही बसन्त ऋतु शुरु होती अफगानो-को दवानेका काम फिर प्रारम्भ हो जाता ।

कुछ ही वर्षोमे अफगानोकी यह आबादी फिर बढ जाती थी, जिससे मुगलो द्वारा मारे गए अफगानोकी सख्या पूरी हो जाती । तव पुन अफगानोके दलके दल पास-पडोसके प्रदेशो या व्यापारियोके कारवाँपर भूखे भेडियोकी नाई टूट पडते ।

फरवरी १६८६ ई० मे मुगल सेनाको पहली वार ऐसी हानि उठानी पडी । उस समय राजा वीरवल और उसके साथके कोई, ८,००० मुगल सैनिक स्वातकी घाटीमे मारे गए । अन्त मे विवश होकर वादशाहने इद जातियो द्वारा की जानेवाली लूटमारकी उपेक्षा कर उनके मुखियोके साथ सन्धि कर उन्हे प्रति वर्ष द्रव्य देनेका वादा किया । जहाँगीर और शाहजहाँके समयमे भी यही प्रवन्ध चलता गया ।

१२ यूसुफजाइयोका विद्रोह, १६६७ ई०

सन् १६७६ ई० मे यूसुफजाइयोने आसपासके प्रदेशोपर अधिकार करनेका प्रयत्न किया । उनके महान् व्यक्तियोमे भागू नामक एक व्यक्ति था । उसने एक व्यक्तिको झूठ-मूठ ही पुराने राजघराने का वशज वताकर मुहम्मदशाहके नामसे गद्दीपर विठाया । भागूने उसका वजीर वनकर चढाईके लिए एक वडी फौजका सगठन किया । अटकके पास उसने सिन्धु नदी पार कर हजारा जिलेपर चढाई की । वहाँके स्थानीय शासक शादमनको जीतकर उस प्रदेशके किसानोमे उसने लगान वसूल किया । यूसुफजाइयोके एक दूसरे दलने पश्चिमी पेशावरके शाही इलाको और अटक जिलेमे लूटमार करना आरम्भ कर दी ।

वादशाहने शाही इलाकोकी रक्षाके लिए पूरा-पूरा प्रवन्ध किया और हुक्म दिया कि शाही सेनाके तीन दल आक्रमण-कारियोके प्रदेशपर आक्रमण करे । ९ अप्रेल १६६७को अटकके फौजदार कामिलखाने शत्रुओपर आक्रमण कर उन्हे नदी तक मार भगाया । इस प्रकार सिन्धु नदीके आसपासवाले शाही इलाकेमे शत्रु न रहे ।

अफगानिस्तानसे शाही सेनाके एक दलको लेकर शमशेरखांने मईमें सिन्धुको पार किया। यूसुफजाइयोंके प्रदेशमें पहुँचकर उसने शाही सेनाके प्रधान सेनापतिका काम सभाल लिया। उसने उनसे अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं, तथा कईमें उसे पूरी विजय भी मिली। मदोर की तराईवाले प्रदेशमें खेती कर वहाँ यूसुफजाई धान पैदा करते थे। शमशेरखांने उस प्रदेशपर अधिकार कर लिया और वहाँ यूसुफजाइयोंकी सारी खेती, मकान तथा अन्य जायदाद नष्ट कर दी। पजगिर नदीके तीरपर ममूर नामक स्थान तक उसने शत्रुओंको भगा दिया (२८ जून १६६७ ई०)। इसके कुछ ही समय बाद मुहम्मद अामीनखांको यहाँकी शाही सेनाका प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया, एवं अगस्तके अन्तमें शमशीरखांके सारे अधिकार मुहम्मद अामीनखांने सम्हाल लिये। इस तरह अनेकानेक बार बुरी तरह हार खाने और इतनी हानि उठानेके बाद उस समय तो यूसुफजाई कुछ समयके लिए दब गए और उस पश्चिमोत्तर इलाकेमें १६७२ ई० तक उनका फिर कोई बड़ा बलवा नहीं हुआ।

१३. अफरीदी और खटकोंका विद्रोह, १६७२ ई०; मुगल सेनापतियोंपर विपत्तियाँ

१६७२ ई० में जलालाबादके फौजदारके मूर्खतापूर्ण व्यवहारसे सीमान्तकी इन जातियोंमें बड़ा ही असन्तोष फैला। अपने सेनापति अकमलखांके नेतृत्वमें अफरीदियोंने विद्रोह कर दिया। अकमलखां एक जन्मजात सेनापति था। उसने अपने आपको शाह घोषित कर दिया और इस जातीय आन्दोलनमें सम्मिलित होनेके लिए उसने सब पठान जातियोंको आमन्त्रित किया। खैबरकी घाटीकी राह भी उसने बन्द कर दी।

१६७२ ई० की बसन्तमें अफगानिस्तान का सूबेदार मुहम्मद आमीनखां अपनी सेनाके साथ पेशावरसे काबुलके लिए रवाना हुआ। उसके कुटुम्बी और उसका बहुत सामान भी इस समर उसके साथ

था। जमरूदमे उसे पता लगा कि अफरीदियोने आगे मार्ग रोक रखा था। फिर भी उसने अफगानोकी शक्तिकी अवज्ञाकी और आँख मीचकर वह अपने सर्वनाशकी ओर बढता ही गया। अली मसजिद पहुँचा और २१ अप्रेलके दिन उसने मोर्चा बनाकर खाइयाँ खुदवाई और वही पडाव डाला। जहाँसे इस पडावके लिए पानी लाते थे, रात्रिके समय अफरीदियोने उसका रास्ता भी रोक दिया। दूसरे दिन अफगानोने पडावकी ओरसे उतरकर मुगल सेनापर आक्रमण किया, और सारी मुगल सेनाको मौतके घाट उतार-कर उन्होने मुगल पडावको लूट लिया।

मुहम्मद आमीनखाँ और उसके कुछ उच्च पदाधिकारी किसी तरह अपनी जान बचाकर वहाँसे भाग निकले और पेशावर जा पहुँचे। परन्तु इस बार वहाँ उन्होने अपना सर्वस्व गँवाया। जुर्मानेके रूपमे एक बहुत बडी रकम देकर आमीनखाने अपनी माँ, स्त्री और पुत्रीको छुडाया। इस असाधारण विजयसे अफरीदी नेताकी ख्याति फैल गई। अब उसके साधन भी बढ गए, और दूर-दूर प्रदेशोके लोग आ-आकर उसकी सेनामे भरती होने लगे।

अफगानोकी एक जाति खटकोकी भी है। इस जातिवालोकी सख्या बहुत है, एव वे बहुत युद्ध-प्रिय होते है। खटकोकी यूसुफ-जाइयोके साथ खानदानी दुश्मनी थी। खटकोका प्रधान नायक खुशालखाँ बडा कवि था। निडर बनकर शाही सत्ताका विरोध करनेके लिए वह वर्षोमे अपनी जातिको उत्तेजित कर रहा था। १६६७ ई० मे यूसुफजाइयोपर आक्रमण करनेमे उसने मुगलोका साथ दिया था। परन्तु अब वह अकमलमे मिलकर अफगानोके इस आन्दोलनका प्राण-स्वरूप नेता बन गया। अपनी वीर-रसवाली कविताओके साथही साथ अपने अदम्य साहस तथा अनोखे शूरतापूर्ण कार्योसे भी वह अपने साथी-सैनिकोको उत्तेजित कर रहा था।

यह विद्रोह अब सारे अफगानोका एक जातीय आन्दोलन बन गया था, जिसमे पठानोके उस सारे देशपर इसका बहुत प्रभाव पडा।

उस विद्रोहके नेतागण मुगल सेनाके साथ हिन्दुस्तान और दक्षिणमें रह चुके थे, एवं शाही फौजके संगठन, योजना व सञ्चालन-चतुरतासे वे पूरी तरह परिचित थे। अफगानी वैसे ही परिश्रमी होते हैं और वे अपने पहाड़ी देशमें सदैव लड़ा करते हैं, इस कारण युद्ध-विद्यामें वे हर प्रकारसे उन मुगलोंसे श्रेष्ठ थे।

अमीनखाँकी उस हारका हाल सुनते ही बादशाहने पेशावरको अफगानी आक्रमणोंसे बचानेके लिए पूरा प्रबन्ध किया। महम्मद अमीनखाँ पदच्युत कर दिया गया। महाबतखाँ पहले भी सफलता-पूर्वक उस जातिको हरा चुका था, एवं अब उसे फिरसे बुलाया गया और चौथी बार वह काबुलका शासक नियुक्त हुआ। अमीनखाँकी-सी जल्दबाजी कर वैसी ही आपत्ति अपने सिरपर लेनेका साहस महाबतखाँको भी नहीं हुआ और खैबरका मार्ग पहले जैसा ही बन्द रहा। इस कारण बादशाह उससे बहुत नाराज हो गया और उसने स्वतन्त्र रूपसे एक बड़ी फौज, अन्य युद्ध-सामग्री और तोपखानेके साथ शुजाअतखाँको भेजा (१४ नवम्बर १६७३)। जसवन्तसिंहको आज्ञा हुई कि वह भी उसकी मदद करे। परन्तु शुजाअतखाँने जसवन्त॰ की सलाह ठुकरा दी और अपनी मनमानी की, जिससे १६७४ ई० में उस शाही सेनाका सर्वनाश हुआ।

शुजाअतखाँ करापाकी घाटी चढ़ा (२१ फरवरी)। उस रात बहुत अधिक पानी और बर्फ गिरा था। प्रातःकालमें अफगानोंने सर्दी-पानीसे पीड़ित इस शाही सेनापर सब ओरसे हमला किया। शुजाअतखाँ यह भूलकर कि वह एक सेनापति था, सेनाके आगेके भागमें जा पहुँचा और वहीं एक सैनिकके समान लड़ता हुआ मारा गया। जसवन्त द्वारा भेजा हुआ ५०० राठौरोंका दल बची हुई मुगल सेनाको एकत्रित कर वापिस पड़ावपर ले आया।

शाही सेनाकी प्रतिष्ठाको पुनः स्थापित करनेके लिए स्वयं औरंगजेब रावलपिंडी और पेशावरके बीचके स्थित हसन अब्दाल नामक स्थानपर गया (२६ जून १६७४), और वहाँसे ही साम्राज्य-

के शासनका काम कोई डेढ वर्ष तक सम्हालता रहा। समस्त युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित दृढ सेनाओके जत्थे शत्रुओके देशमे भेजे गए। जुलाई महीनेमे अगरखाको दक्षिणसे बुलाकर खैबर घाटीका रास्ता साफ करनेका काम उसे सौंपा।

घटना-स्थलपर औरगज़ेबके स्वय पहुँच जानेसे अब मुगलोकी राजनैतिक चालो और शाही सेनाके सारे प्रयत्नोको सफलता मिलने लगी। बहुत ही थोडे समयमे मुगल सेनाने गौराई, गिलजाई, शीरानी और यूसुफजाई जातियोको बुरी तरह हराकर उन्हे उनके गाँवोसे भी निकाल बाहर किया। अगस्तके अन्तिम दिनोमे दरियाखाँ अफरीदीके साथियोने वादा किया कि यदि उनके पिछले अपराधोके लिए उन्हे माफ कर दिया जावेगा तो वे अफरीदी नेता अकमलका सिर काट ले आवेगे।

इसी अरसेमें अगरखांने खैवर घाटीके रास्तेको चालू कर देनेका प्रयत्न किया, परन्तु अली मसजिदके पास बडी देर तक युद्ध हुआ, अन्तमें हारकर उसे यह प्रयत्न छोड देना पडा। अब उसने नग्रहारपर अधिकार कर लिया और वहांसे मार्ग खुला रखनेकी चेष्टा की। गिलजाइयोको उसने बारबार हराया और अन्तमे वे जगदलककी घाटीसे बाहर निकाल दिए गए।

१६७५ ई० के बसन्तमे जब फिदाईखा पेशावरको लौट रहा था, तब अफगानोने जगदलक घाटीमे उसपर आक्रमण किया। फिदाई-खांकी सेनाका हरोल हार गया। परन्तु फिदाईखाँ की धीरता और साहसके कारण ही उसकी सेनाका मध्य भाग बच सका। इस समय अगरखाँ गडमक में था, वह फुर्तीके साथ फिदाईखा की सहायताके लिए जा पहुँचा, और उसने आसपासके पहाडियोकी चोटियोपरसे शत्रुओको मार भगाया।

जूनके आरम्भमे मुकर्रमखां एक बडी सेनाके साथ साथ अफगानोका पीछा कर रहा था, तब बजौर प्रदेशमें खपुशके पास अफगानोने उसे बुरी तरह हराया।

शीघ्र ही बदला लेनेके उपाय किए गए। अफगानिस्तानमें स्थित सारे मुग़ल थानोंमें सेना और युद्ध-सामग्री भेजकर उन्हें सुरक्षित तथा सुदृढ़ बनाया गया।

अगस्तके अन्तमें मुगल सेनाकी दो और हारोंके समाचार मिले, जो बहुत ही साधारण और नगण्य थी। परन्तु पठान प्रदेशमें, युद्धकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण सारे स्थानोंपर किले और थानोंपर अपनी सेना रख मुगलोंने उस प्रदेशपर अपना आधिपत्य बनाए रखा। १६७५ ई० के अन्त तक स्थिति काफी सुधर गई थी एवं तब बादशाह अब्दालसे दिल्लीको लौट गया।

१४. अफ़गानिस्तानपर अमीरखांका सुयोग्य शासन, १६७८--१६९८

खलीलुल्लाके पुत्र मीरखाने शाहबाजगढ़ीके युसुफजाइयों को दण्ड देकर तथा बिहारमें दो अफगान विद्रोहियोंको दबाकर अपनी योग्यताका परिचय दिया था। १६७५ ई० में उसे अमीरखांकी पदवी मिली और १९ मार्च १६७७ ई० को वह काबुलका सूबेदार बनाकर वहां भेजा गया। उसने ८ जून १६७८ को अपना पद ग्रहण किया और मृत्यु-पर्यन्त २० साल तक बड़ी ही योग्यताके साथ वह अफगानिस्तानपर शासन करता रहा। वह अफगानोंके हृदयपर शासन करने लगा तथा उसने उनके साथ सामाजिक सम्बन्ध भी स्थापित किए। वह अपने इन प्रयत्नोंमें इतना सफल हुआ कि कबीलोंके मुखिया अपनी दुश्मनी और दूर रहने की आदतें छोड़कर बिना किसी संदेह या हिचकके उससे मिलने-जुलने लगे। वे उसके घनिष्ट मित्र हो गए। अपने कौटुम्बिक मामलोंको भी सुधार करने सुलझानेके लिए वे उसकी सलाह लेने लगे। उसके सुन्दर शासन-प्रबन्धसे उन्होंने पहाड़ी सड़कोंको लूटना छोड़ दिया और एक दूसरे पर धावा करनेके पारस्परिक युद्धोंमें ही अपना समय गंवाना भी उन्होंने बन्द कर दिया। एक बार उसने खटक कबीले, कबीलेको भी तोड़नेके लिए उसके अफगानों

को गुप्त रूपसे उकसाया कि वे जीती हुई जमीनका वटवारा करनेके लिए उससे कहे। इस प्रकार अकमल और उसके साथियोमे विरोध उत्पन्न हो गया। अकमलने यह कहकर कि इतना छोटा प्रदेश इतने व्यक्तियोमे कैसे बाँटा जा सकता है, उस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। निराश पहाडी सैनिक उसका साथ छोड क्रुद्ध होते हुए अपने-अपने घरोको लौटने लगे। अन्तमे विवश होकर अकमलको उस जमीनका वँटवारा करना ही पडा। परन्तु उस वँटवारेमे उसने अपने सम्बन्धियो और जाति-भाइयोका ही अधिक ध्यान रखा, इसलिए उसके दूसरे साथी हताश हो गए और पडाव छोडकर चले गए। अमीरखाँकी राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी अधिकाश सफलता वास्तवमे उसकी ही पत्नी साहिवजीकी बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह, चतुरता और कर्मशीलताके कारण हुई थी। अमीरखाकी यह पत्नी अली-मर्दानकी पुत्री थी।

अन्तमे अफगानिस्तानमे वादशाह पूर्णतया सफल हुआ। उसने अफगानोको रुपया देने तथा एक जातिको दूसरीसे लडा देनेकी नीति अगीकारकी थी। औरगजेवके शब्दोमे दो हड्डियोको तोडनेके लिए ही वह उन्हे यो परस्पर टकराता था। अव मुगल साम्राज्यके शाही प्रदेशोपर सीमान्तकी ओरसे कोई आक्रमण नही होते थे। एक नियमित रकम पहाडियोको देकर खैबरका मार्ग खुला रखा जाता था। अमीरखाँकी नीतिने अकमलके अनुयायियोमे फूट पैदा कर दी। अपने आपको शाह कहलानेवाला वह व्यक्ति जब मर गया तब अफरीदियोने मुगल साम्राज्यमे सन्धि कर ली।

❀ कलिमात्० (पृ० १६ व) मे औरगजेवने मृत अमीरखाकी शासन-व्यवस्था सवन्धी तरीकोका वर्णन करते हुए वताया है कि वह एक न्यायी सूवेदार या और दूसरोके साथ व्यवहार करनेमे वह चातुर्य तथा युक्तिसे किस प्रकार काम वह लेता था। खर्चके लिये स्वीकृत रकममे वचत निकालकर किस प्रकार वह घाटियोके रास्तोको आवागमनके लिए

न झुकने वाला स्वतन्त्रता-प्रेमी दृढ़-निश्चय खुशालखां खटक अनेक वर्ष बाद तक किसी भी प्रकार उस विद्रोहको चलाए गया। यद्यपि, यूसुफजाई जातिवाले और उसका पुत्र अशरफ भी मुगलोंकी ओरसे उसके ही विरुद्ध लड़ रहे थे। पर न तो आती हुई वृद्धावस्था और न अपने पक्षको निरन्तर घटनेवाली निराशापूर्ण विवशता ही उसके कट्टर और दृढ़ स्वभावको बदलनेमें समर्थ हुई। वह अकेला ही पठानोंकी स्वतन्त्रताके झण्डेको ऊँचा उठाए रहा। अन्तमें उसके पुत्रने ही धोखा देकर उसे शत्रुओंके हवाले कर दिया। अपने देशसे सैकड़ों कोसों दूर, शत्रुके किलेमें कैद वह वीर तब भी उत्साहपूर्ण स्वरोंमें गरज उठता था—

‘मैं वह व्यक्ति हूँ, जिसने औरंगजेबके हृदयको बुरी तरह आहत किया, और मेरे ही कारण मुगलोंको खैबरका सौदा अत्यधिक महँगा पड़ा।

इस अफगान-युद्धके कारण ही कुछ वर्षों बाद होनेवाले राजपूत-युद्धमें मुगलोंको अफगानोंसे कोई भी सहायता नहीं मिली। पश्चिमोत्तर सीमापर मुगलोंको निरन्तर अपनी चुनी हुई सेनाएँ भेजनी पड़ती थी, जिससे दक्षिणमें शिवाजीके विरुद्ध जानेवाली सेनाएँ चाहिए वैसी अच्छी नहीं थीं। मुगल सेनाओंके इस प्रकार बँट जानेका मरहठोंके नेताने पूरा-पूरा लाभ उठाया और इसके बाद दूसरी [illegible] अनेकों आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त कीं। दिसम्बर १६७६ ई०

गुप्त रखता था। जिस प्रकार अंग्रेजों [illegible] पठानोंको [illegible] लगा देकर या उन्हें अपने लिए उपयोगी नौकर बना लेता था [illegible], अपनी निजी जेबसे या [illegible] के लिए कुछ [illegible] देते थे [illegible] था। (पृ० ११८)। २५ [illegible] १६८१ ई० को पठानोंका एक दल औरंगजेबसे मिला, [illegible] था—"मार्ग-रक्षाके लिए पठानोंको [illegible] मजूरी दी। मैंने उनमेंसे [illegible], और [illegible] पार [illegible] क्षमा हो गई।"

अनुयायीको ईश्वरीय मार्गमें *जिहाद (कोशिश) ही उसका सबसे प्रधान एव महत्वपूर्ण कर्तव्य बताया गया है । काफिरोके देश (दार्-उल्-हर्ब) मे युद्ध करके इसको उस समय तक चलाए जाना चाहिए, जब तक कि वह इस्लामी राज्यके दायरे) दार्-उल्-इस्लाम (में पूर्णरूपसे शामिल नही हो जावे । धार्मिक एव राजनैतिक सिद्धान्तोके अनुसार ऐसी विजयके बाद उस देशके काफिरोकी सारी आबादी जीतनेवालोकी गुलाम बन जाती है ।

सम्पूर्ण जनसमाजको इस्लाम धर्ममें दीक्षितकर उसका धर्म परिवर्तन करना और हर प्रकारके धार्मिक मतभेदोको मिटा देना ही मुसलमानी राज्यका आदर्श है । किसी भी मुसलमानी समाजमे कोई काफिर रहने दिया जाता है तो केवल इसी कारण कि इस दोषको मिटाना तब सम्भव नही हो । ऐसी परिस्थिति केवल कुछ ही कालके लिए रह सकती है । ऐसे विधर्मीको राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारोमे वचित किया जाना चाहिए कि शीघ्र ही उस व्यक्तिको वह अनोखी आध्यात्मिक ज्योति प्राप्त हो जावे और उसका नाम भी सच्चे मुसलमान धर्मावलम्बियोमे लिखा जा सके* ।

---

* जिहाद-फी-सबील्-उल्लाह (कुरान, IX, २६) जिहादके लिए देखो—ह्यज, पृ० २४३, २४८, ७१०, इसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम, १,१०४१ । "और जब पवित्र माह समाप्त हो जावें, तब उन सारे व्यक्तियोको जो ईश्वरके साथ अन्य देवोका भी नाम जोडते हैं, जहां मिलें, मार डालो । पर यदि वे धर्म परिवर्तन करते हो तो उन्हे छोड दो और उन्हें अपनी राह जाने दो ।" (कुरान, IX, ५,६) । 'उन विधर्मियोसे कहो कि यदि वे अपना अविश्वास छोड दे तो जो कुछ हो चुका है, उसके लिए उन्हें क्षमा कर दिया जावेगा । पर यदि वे पुन उसी विधर्मी मार्गको लौट पडें तो उनसे उस समय तक लडो, जब तक कि यह भेद-भाव दूर होकर एक ईश्वरका ही मत सर्वत्र नही फैल जावे ।" (VIII, ३६ ८२) ।

* अरबसे बाहरके प्रदेशोके मूर्तिपूजकोके विषयमे शाफीका मत है कि उनका भी नाश कर दिया जाना चाहिए, परन्तु दूसरे विद्वान् लेखकोके मतानुसार उन्हे गुलाम बना देना ही प[illegible]त होता है । ऐसा करनेमे मानो

२. इस्लामके अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियोंका राजनैतिक अधिकारोंसे वंचित किया जाना

अतएव कोई भी अन्य धर्मावलम्बी किसी मुसलमानी राज्यका नागरिक कदापि नहीं हो सकता है। वह उस राज्यके अधीन रक्षाप्राप्त एक सदस्य बन जाता है और उसकी राजनैतिक स्थिति निकृष्ट गुलामीसे कुछ ही अच्छी होती है। राज्यके साथ उसका एक प्रकारका ठेका (जिम्मा) हो जाता है। ईश्वर द्वारा दिए हुए जीवन और धनका भोग कर सकनेके लिए इस्लामी शासक उसे जो प्राणदान देते हैं उसके बदलेमें उसे कई एक राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारों-का त्याग करना पड़ता है, एवं इसी उपकारके लिए कर-रूपमें कुछ धन (जजिया) देना भी उसके लिए अनिवार्य हो जाता है।

अपनी जमीनके लिए भी उसे कर (खिराज) देना पड़ता है। पहिले समयके मुसलमान यह कर नहीं देते थे। सेनाके खर्चके लिए भी उसपर एक और करका भार आता है। इस करके बदलेमें यदि वह स्वयं सेनामें भरती होकर सेवा करना चाहे तो भी उसे सेनामें भरती नहीं किया जाता है। उन विधर्मियोंके लिए यह आवश्यक होता है कि अपने दरिद्री वेश और दीनतापूर्ण आचरणसे वह स्पष्टतया यह बताये कि वह विजित समाजका ही एक व्यक्ति है। मुसलमानोंके अतिरिक्त कोई भी विधर्मी (जिम्मी) किसी भी प्रकारका महीन कपड़ा नहीं पहन सकता है, और न वह घोड़ेपर ही चढ़ सकता है, और न वह शस्त्र ही धारण कर सकता है। [illegible] जातिके प्रत्येक सदस्यके साथ सम्मानपूर्वक [illegible] हुए ही उसे व्यवहार करना चाहिए।"

[illegible] (पृ०, २१०)।

[illegible]

' जिम्मी ' [illegible]

कई दूसरी आशाएँ तथा डर भी दिखाए जाते थे । हिन्दू धर्म छोड देनेवालोको धन अथवा सरकारी नौकरी दिए जानेका प्रलोभन दिया जाता था । हिन्दू धर्म और समाजके नेताओपर दवाव डाला जाता था कि वे किसी भी प्रकारकी धार्मिक शिक्षा न देने पावे । हिन्दुओके धार्मिक जुलूमो और सम्मेलनोपर प्रतिवन्ध था कि उनमे किसी भी प्रकारका सगठन न हो सके तथा उनमे यो कही जातीय एकताकी भावना उत्पन्न न हो जावे । न तो कोई नया मन्दिर वनाया जा सकता था और न पुराने मन्दिरोकी मरम्मत ही की जा सकती थी । एव कुछ समय वाद सारे हिन्दू मन्दिर एकवारगी ही मिट जावेगे, यह एक अवश्यम्भावी वात थी । परन्तु इसपर भी कई एक अधिक कट्टर इस्लामी भावनावाले मुसलमान समयसे पहलेही मन्दिरोका सर्वनाश करनेके लिए उन्हे जवरदस्ती गिरा देते थे ।

वादके इस युगमे, विशेपकर तुर्कोके शासन-कालमे, प्राचीन अरवोके समान इन अन्य धर्मोके प्रति सहनशीलता दिखाना घोर पाप समझा जाता था । अपने राज्यसे वाहर प्रत्येक आक्रमण और युद्धमे हिन्दुओकी हत्या करना और उनके मन्दिरोका विनाश करना एक पुण्यदायक कार्य माना जाता था । इस प्रकार मुसलमानोमे एक ऐसी विचारधारा उत्पन्न हो गई जिसके कारण वे स्वभावसे ही लूटमार और मानव-हत्याको पवित्रतम धार्मिक कार्योमे गिनने लगे और इन्हे ईश्वरीय मार्गमे जिहाद समझने लगे । हिन्दूकी हत्या (काफिर-कुशी) मुसलमानकी एक वडी विशेपता मानी जाती थी । अपनी वासनाओको वशमे करना और अपनी इन्द्रियोका दमन उसके लिए आवश्यक नही था । अपने ही समान जीवधारियोकी एक विशेप जातिकी हत्या करना और उनका धन लूटना ही उसके लिए काफी था । केवल यही कार्य उसे आत्मिक उन्नति देकर स्वर्गके योग्य वनानेके लिए यथेष्ट माना गया ।*

---

*सन् १९१० ई० मे मिश्रके एक मुसलमानने बुत्रास पाशाको मार डाला । यह हत्या किसी व्यक्तिगत शत्रुताके कारण नही की गई थी, किन्तु उसका

जिस धर्मके अनुयायियोंको यह शिक्षा दी जाती हो कि लूटमार और मानव-हत्या ही उनका प्रधान धार्मिक कर्त्तव्य है, वह धर्म किसी भी प्रकार मानव-उन्नति तथा समाजकी शान्तिके लिए हितकर नहीं हो पाता है।

३. कुरानके राजनैतिक आदर्शोंका मुसलमानी जनता और उसके आश्रित अन्य धर्मोंपर प्रभाव

इस्लाम अपने अनुयायियोंके सच्चे हितोंकी उन्नतिमें भी कभी सहायक नहीं हो सका। इस्लामकी इस राजनीतिके अनुसार "इस धर्मपर विश्वास करनेवाले" सारे अनुयायी एक ऐसी सेनाके अंग समझे जाते थे जिसका एकमात्र आदर्श और कार्य युद्ध ही होता था। जब तक जीतनेके लिए नए-नए स्थान और लूटनेके लिए नित नए धनवान काफिर मिलते थे, तभी तक इस राज्यमें सब तरह रौनक रहती थी। उस समय तक ही एक विशेष प्रकारकी सभ्यता, साहित्य, उद्योग-धन्धा और अन्य कलाओंको भी आश्रय मिलता था। परन्तु जब मुसलमानी राज्य-विस्तारकी चरम सीमा तक फैलकर आक्रमण और लड़ाइयोंका सिलसिला सा टल गया, तथा अनुयायियोंकी शान्त जीवनकी चाहका विशेष प्रभाव होने लगा, तब तो एकबारगी पतनसे इसे बचानेका कोई साधन ही न रह गया। इसका कोई भी स्थायी धार्मिक आधार नहीं था और शान्तिके समय इसके

[illegible]

अस्तित्वको बनाए रखनेमे वह असमर्थ ही रहा।

इन विजेताओमे यह योग्यता बिलकुल ही न थी कि वे शान्ति-युगके उद्योग-धन्धोमे पूरी तरहसे लग जावे और तब भी निरन्तर चलनेवाले इस अनिवार्य जीवन-सग्राममे सफलता-पूर्वक टिक सके। उनके लिए शान्तिका अर्थ होता था—'बेकारी, दुर्व्यसन, कुकर्म और घोर पतन।

इस्लामके निश्चित सिद्धान्तोका अतिम और एकमात्र परिणाम यही होता था कि मुसलमान धर्मावलम्बियोको विशेप अधिकार-प्राप्त जातिका स्थान मिल जाता था। अतएव इस अधिकारी वर्गका भरण-पोपण राज्य द्वारा ही होता था, इस कारण शान्तिके समय उनका आलस्योन्मुख होना स्वाभाविक ही था। जीवन-क्षेत्रमे वे अपने पैरोपर स्वय खडे होनेमे सर्वथा असमर्थ रहते थे। राज्यके सारे ऊँचे-ऊँचे ओहदोपर नियुक्त किया जाना, मुसलमानोका ही जन्मसिद्ध अधिकार माना जाता था। इसलिए विशेष योग्यता दिखाने या किसी भी प्रकारकी मिहनत करनेके लिए कोई प्रलोभन भी उनके लिए नही रह गया था। इस प्रकार मुसलमानी साम्राज्यमे एक स्थूल शरीरवाली आलसी जातिकी सृष्टि हुई। इसी जातिने धीरे-धीरे साम्राज्यकी जडोको निर्बल बना दिया और जब उस साम्राज्यकी समृद्धिका अन्त हुआ तो उससे इसी जातिको सबसे पहिले हानि पहुँची। धनकी प्राप्तिसे आलस्य और विलास-प्रियताका उद्भव हुआ, जो इस जातिको कुकर्मोकी ओर ले गई, दुर्व्यसन और कुकर्मोके फलस्वरूप वे दरिद्री हो गए, तथा इस प्रकार उनका सर्वनाश हुआ।

साथ ही साथ उनकी आश्रित प्रजाके साथ जो दुर्व्यवहार होते रहे थे, उनसे राज्यकी उन्नतिके लिए आवश्यक सारे साधनोका पूर्ण विकास और उपयोग नही हो सका था। जब किसी जाति या जन-समुदायको खुले-आम कानून द्वारा या हाकिमोकी स्वेच्छाचारिताके अनुसार दबाया जाता है या उनपर अत्याचार किए जाते है, तब अपने अस्तित्वको बनाए रखनेके लिए केवल पशुओका-सा जीवन व्यतीत

करके ही उन्हें सन्तोष कर लेना पड़ता है। ऐसे समय हिन्दुओंने यह आशा रखना कि भरसक प्रयत्न कर वे उत्पादनको पूरा-पूरा बढ़ा देंगे व्यर्थ ही था। अपने मालिकोंके यहाँ पानी भरना या लकड़ी चीरना ही उनके भाग्यमें बदा था। पैसा कमा-कमाकर राज्यको सौंप देना ही उनका प्रधान कर्तव्य था। अपनी गाढ़ी कमाईमेंसे जो कुछ भी बचाया जा सके उसे बचानेके लिए वे निकृष्ट कोटिकी चालाकी और चापलूसीको ही अपनानेमें हिचकिचाते न थे। इस प्रकारकी सामाजिक परिस्थितियोंमें किसी भी मानवका शारीरिक और मानसिक विकास होना, तथा उसका उच्चतम योग्यता प्राप्त करना एक असम्भव बात थी। मानवीय आत्माका भी अपनी चरम सीमा तक विकास नहीं हो सकता था। मुसलमानी शासन-कालमें ज्ञान और चिन्तनके क्षेत्रोंमें हिन्दू कुछ भी नहीं कर पाए, एवं उच्च जातीय हिन्दुओंमें अवाञ्छनीय कुत्सित नीच प्रवृत्तियाँ आ गईं। ये दो बातें ही उनके शासनकी निन्दाके लिए पर्याप्त हैं। जो फल पका, उसे देखते हुए यह स्पष्ट है कि भारतमें मुसलमानी राजनैतिक वृक्ष सर्वथा निष्फल ही साबित हुआ।

एक आधुनिक महापण्डित जर्मन तत्त्ववेत्ता का कथन है कि—

इस्लाम धर्मके अनुसार ईश्वरके प्रति सम्पूर्ण आत्मसमर्पण और उसके सामने पूरी-पूरी दीनता स्वीकार करना आवश्यक होता है, परन्तु उसका यह ईश्वर विशिष्ट गुणवाला एक युद्ध-देवता ही होता है। इस धर्मकी सारी रीति-रस्मोंमें कड़े अनुशासनकी भावना पूरी तरह निहित है। ... इस्लाम धर्मके सैनिक आधार एवं उसके फौजी स्वरूपसे ही प्रत्येक मुसलमानमें सामरिक गुणोंकी स्पष्ट विशेषता देख पड़ती है। उसकी धर्मनिष्ठता, उसका [illegible], समानोंके साथ बरतने और उनसे उपयुक्त ढंग [illegible] अधीनता स्वीकार करना, अधिकार-वृद्धि एवं स्वाभाविक [illegible] न होना, आदि मुसलमानोंमें स्वाभाविकतया पाए जानेवाले योग्यता [illegible] भी इसी शिक्षामें ही आता है। सैनिकता [illegible] [illegible]

तक ही सीमित रहता है। बाकी रही सारी बाते अल्लाहके ही भरोसे रहती है। (एच० कैसरलिग)।

जब राज्यके ऊँचे-ऊँचे पदोपर नियुक्तियाँ गुणोकी अपेक्षा जाति या धर्मके ही आधारपर की जाती है, तब गैरमुसलमानी जनताका बरबस यही विश्वास हो जाता है कि उस राज्यमे उनके लिए कोई स्थान या किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नही है। विभिन्न धर्मावलम्बियो-की सम्मिलित आबादीपर जब कभी ऐसी इस्लामी धर्म-प्रधान राजसत्ता स्थापित हो जाती है, तब अल्पजनसत्तात्मक राज्य (oligarchy) तथा विदेशी शासनके सारे दुर्गुण उस राज्यमे उत्पन्न हो जाते है।

भारतीय मुगल साम्राज्यमे तो समूची शासन-सत्ता बहुत ही थोडे लोगोके हाथमे केन्द्रित थी। शासन करनेवाले इन अल्पसख्यको तथा शासित बहुसख्याकोमे केवल एक ही बात, धर्ममे विभिन्नता ही पाई जाती थी, जातीय गुणो, शारीरिक और मानसिक शक्तियो तथा अन्य सारी बातोमे उनमे कोई भी भेद नही था। इस शासक-समुदायके अतिरिक्त अन्य सभी इतर-धर्मावलम्बी स्वाभाविकतया यही सोचते थे कि समाज, देशकी सत्ता और सारे साधन शासकोको जनसमाजकी भलाईके लिए ही सौपे गये थे। किन्तु वे शासक इनका निरन्तर दुरुपयोग कर उन इतर-धर्मावलम्बियोको ही मिटानेके लिए भरसक प्रयत्न करनेवाले धर्मका प्रचार करनेमे रत रहते थे। ऐसा राज्य जनताकी श्रद्धा और प्रेमपर स्थित नही था। ऐसे राज्यको राष्ट्रीय कहलानेका कोई भी अधिकार नही था।

४. मुसलमानी राज्य मे धार्मिक सहनशीलता कुरान-सम्मत कानूनके विरुद्ध एव अपवाद-स्वरूप थी

कट्टर इस्लाम धर्मके अनुसार जिस प्रकारके आदर्श राज्यकी कल्पना की गई थी, उसका स्वरूप ऊपर दिया गया है। इसमे सन्देह नही कि यदा-कदा साधारण सद्बुद्धिकी तर्कपर और राजनैतिकताकी धर्मपर विजय हो जाती थी। कई बार मानव स्वभावकी दुर्बलताके

कारण हर एक शासक या हाकिमके लिए यह असम्भव हो जाता था कि वह इस भयंकर असहिष्णुतापूर्ण नीतिका सर्वत्र एवं सदैव सख्तीके साथ पालन करता रहे। इसी कारण मुसलमानी शासन-कालमें कई बार ऐसे भी समय आए जब हिन्दुओंके साथ सहिष्णुताकी नीति बरती गई और उनके जान-मालकी पूरी-पूरी रक्षा की गई। यदा-कदा कई बुद्धिमान और उदार विचारवाले बादशाहोंने हिन्दुओंको प्रोत्साहन भी दिया, साहित्य और कलाकी उन्नति करनेके लिए उनको प्रेरित किया, धन और ऊँचे पद दिए और यों उनका राज्य शक्ति-शाली तथा समृद्धिपूर्ण होता गया।

परन्तु इस प्रकार अपने धर्मके प्रति अविश्वासपूर्ण यह सारी सहिष्णुता दिखाना अपवाद-स्वरूप यदा-कदा ही देखनेमें आता था। इस प्रकारकी सारी कार्यवाही मुसलमानी सरदारोंकी दृष्टिमें इस्लामके सच्चे सिद्धान्तोंके विरुद्ध एक निन्दनीय आचरण और शासकके प्रधान कर्तव्यकी अक्षम्य उपेक्षापूर्ण अवहेलना ही प्रतीत होती थी। मुसल-मान शासनकी सारी सत्ता मुसलमानी सेनाकी तलवारोंपर ही निर्भर रहती थी। किसी भी उदार विचारोंवाले सुलतानको ये मुसलमान सैनिक ऐसा धर्मद्रोही शासक समझते जो किसी भी तरह उनपर शासन करनेके योग्य नहीं था।

इसलिए गैर-मुसलमानोंकी वृद्धि और उन्नति तथा उनका निरन्तर अस्तित्व बना रहना ही मुसलमानी शासनके आधारभूत सिद्धान्तोंकी दृष्टिसे सर्वथा असंगत था। जब तक या तो ये सारे विरोधी नष्ट न हो जाएँ अथवा मुसलमानोंके हाथसे ही सत्ता न निकल जाये तब तक ऐसा राजनैतिक संघर्ष स्वतः ही अनिवार्य और अनि-श्चिततापूर्ण बना रहता था। इस प्रकार इन लोगोंमें शासक और शासितोंके बीच एक स्वाभाविक प्राचीन पारस्परिक विरोधकी भावना निरन्तर बनी रहती थी। इस भावनाने भारतकी विभिन्न मतो-वलम्बियोंमें जन-समुदायमें मुसलमानी शासनके प्रति विद्रोह पैदा किया है, और औरंगज़ेबके शासन-कालके अन्तिम दिनोंमें तो इसी

तरह चरितार्थ होकर ही रहा ।

औरंगजेबकी धर्मान्धता और मन्दिरोंका विध्वन्स

औरगज़ेबने बडी धूर्तताके साथ हिन्दू धर्मपर धीरे-धीरे आक्रमण किये । अपने राज्य-कालके पहिले ही वर्षमे वनारसके एक पुजारीको दिए गए अधिकार-पत्रमे उसने घोपित किया कि उसका धर्म नए मन्दिर वनानेकी आज्ञा नही देता, परन्तु वह साथ ही पुराने मन्दिरोको नष्ट करनेका भी आदेश नही देता है । सन् १६४४ ई० मे जव वह गुजरातका सूवेदार था, तव उसने अहमदावादमे तत्काल ही वने हुए चिन्तामणिके हिन्दू मन्दिरमे गो-हत्या करवाकर उसे भ्रष्ट करवा दिया, और वादमे उस मन्दिरको मसजिदमे वदलवा दिया । उसी समय उसने गुजरातके और भी हिन्दू मन्दिरोको गिरवाया था । अपने शासन-कालके प्रारम्भमे ही औरगज़ेवने एक हुक्म निकाला था, जिसमें उसने कटकसे लेकर मेदिनीपुर तक उडीसाके प्रत्येक शहरके स्थानीय हाकिमको सारे मंदिर गिरवा देनेकी आज्ञा दी थी । पिछले १० या १२ वर्षके भीतर वने मिट्टीके झोपडोमे स्थापित मन्दिरोको भी इस हुक्मके अन्तर्गत माना गया । उसने पुराने मन्दिरोकी मरम्मत करवाना भी वन्द करवा दी ।

फिर ९ अप्रेल १६६९को उसने एक आम हुक्म दिया कि काफिरो-के सव शिक्षालय और मन्दिर* गिरा दिए जावे तथा उनकी धार्मिक प्रथाओको दवाया जावे । अव उसकी यह विनाशकारी कुदाल सोमनाथके दूसरे मन्दिर, वनारसमे विश्वनाथजीके मन्दिर और मथुरा-मे केशवरायजीके मन्दिरके समान वडे मन्दिरो पर भी पडी, जिन्हे सारे भारतकी समस्त हिन्दू जनता वडे ही आदर और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखती थी ।

---

*औरगजेबने जिन-जिन मन्दिरोको तुडवाया उनकी सप्रमाण सूची मेरे वहत् ग्रन्थ 'औरगज़ेव'की तीसरी जिल्दकी परिशिष्टमे देखो ।

मुसलमानोंकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिके फलस्वरूप मथुराकी पवित्र भूमिपर सदैव ही विशेष आघात होते रहे हैं। दिल्लीसे आगरा जानेवाले राजमार्गपर स्थित होनेके कारण मथुराकी ओर सदैव विशेष ध्यान आकर्षित होता रहा है। वहाँके हिन्दुओंको दाबनेके लिए औरंगजेबने अब्दुन्नबी नामक एक कट्टर मुसलमानको मथुराका फौजदार नियुक्त किया।

कई वर्ष पहले दाराने उपहारस्वरूप मथुराके केशवरायके मन्दिरमें पत्थरका जगमोहक जंगला लगवा दिया था। यह बात १४ अक्तूबर १६६६ ई० को औरंगजेबको ज्ञात हुई। उसने तत्काल ही हुक्म दिया कि उस जंगलेको वहाँसे हटा दिया जावे। अन्तमें जनवरी, १६७० ई० में उसने इस मन्दिरको बिलकुल ही विध्वंस कर देनेकी आज्ञा दी और यह भी हुक्म दिया कि मथुरा शहरका नाम बदल कर इस्लामाबाद कर दिया जावे। साम्राज्यके सारे सूबों, परगनों, शहरों और महत्त्वपूर्ण स्थानोंमें जनताके सदाचारकी देख-रेख करनेके लिए मुहतसिब नियुक्त किए गए, जिनका एक प्रधान कर्तव्य यह भी होता था कि वे हिन्दुओंके तीर्थों और मन्दिरोंका विध्वंस कर उन्हें तहस-नहस कर दें। जून १६८०में आम्बेर राज्यके स्वामिभक्त राजाकी राजधानीके भी सारे मन्दिर तुड़वा डाले गए।

गुजरातमें हिन्दुओंको धर्मार्थ वज़ीफे के रूपमें जो भी जमीनें दी गई थीं, वे सब सन् १६७४ ई० में ज़ब्त कर ली गईं।

६. गैर-मुसलमानोंपर जजिया कर

मुसलमानी राज्यमें रहनेकी इजाजतके लिए हर काफिरको जजिया नामक कर देना पड़ता था। जजिया का अर्थ होता है, बदलेमें दिया गया धन अथवा जीवन-यापन की सुविधाका मूल्य। यह कर पहिले-पहल मुहम्मदने ही लगाया था। उसने अपने धर्मानुयायियोंको आदेश दिया था कि, जो लोग इस्लामके इस सच्चे मतको अंगीकार नहीं करें, उनसे तब तक युद्ध करो जब तक कि वे

दीनतापूर्वक अपने ही हाथोसे जजिया नही चुका देवे। (कुरान, ९, २९)।

स्त्रियो, १४ वर्षसे कम उमरके बच्चो और गुलामोको इस करसे छूट दी गई थी। धनवान् होनेकी हालतमे ही अन्धो, लगडो और पागलोको यह कर देना पडता था। गरीब होनेपर महन्त या सन्यासी भी यह कर देनेसे छूट जाते थे, परन्तु यदि वे एक धनवान् मठमे रहने-वालोमेसे होते थे तो इन मठोके मठाधीशोको उन गरीब महन्तो या सन्यासियोकी भी ओरसे यह कर चुकाना पडता था। करकी रकम मनुष्य की वास्तविक आमदनीके अनुपातमे नही होती थी, फिर भी जायदादके मूल्याकनके आधारपर ही कर देनेवाले साधारणत तीन श्रेणियोमे विभाजित किए जाते थे। सबसे पहली श्रेणी मे रुपये-पैसेका लेनदेन करनेवाले, कपडेके व्यापारी, जमीदार और वैद्य लोग होते थे, परन्तु दर्जी, रगरेज, कुम्हार, चमार आदि व्यवसायी लोगोकी गिनती गरीबोमे होती थी। उनसे यह कर उसी हालतमे लिया जाता था यदि जीवन बितानेके लिए आवश्यक रकमके बाद भी उनकी आमदनीमेसे कुछ रुपया बाकी बचता हो। भिखारी और दिवालिये तो स्वाभाविकतया ही इस करसे बच जाते थे।

तीन श्रेणियोके लिए कर की क्रमश १२, २४ और ४८ दरहम प्रति वर्षकी अलग-अलग दरे नियत की गई थी, रुपयोमे इनका मूल्य क्रमश ३, ६ और १३ रुपये होता था। आबादी की गरीब जनतापर ही जज़ियाका सबसे अधिक भार पडता था। अकबरने इसे बन्द करके अपनी अधिकाश प्रजापरसे एक राजनैतिक असमानता एव अधोगतिके इस द्वेषपूर्ण कलकको हटा दिया था (१५६४ ई०), परन्तु औरगजेबने अकबरकी इस उदार नीतिको उलट दिया।

शाही हुक्मसे २ अप्रेल १६७९ ई० को साम्राज्यके सब भागोमे जजिया कर फिरसे लगा दिया गया। यह कर गैरमुसलमानोसे ही वसूल होता था। दिल्ली और वहीके आस-पासके प्रदेशके हिन्दुओ-ने एकत्रित होकर इस करको हटा लेनेके लिए औरगज़ेबसे बडी ही

करुणाजनक प्रार्थना की। परन्तु बादशाहने यह सब सुनी-अनसुनी कर दी। इसी समय शिवाजीने तर्कयुक्त विचारपूर्ण सयत शब्दोंमें एक पत्र लिखकर इस नए करकी इस अनीतिको दूर करनेके लिए औरगज़ेबसे प्रार्थना की। मानवमात्रके लिए ईश्वर एक ही है, और उस ईश्वरपर सच्चा विश्वास करनेवाले सारे धर्म ईश्वरके लिए समान ही हैं, उस महान् सत्यकी ओर ध्यान देनेके लिए भी शिवाजीने अपने इस पत्रमे विशेष आग्रह किया था। परन्तु शिवाजीके इस पत्रकी ओर औरगजेबने कोई ध्यान नहीं दिया।*

इस करसे बहुत बडी रकम वसूल होती थी, केवल गुजरात प्रान्तमे ही जजिया करसे कोई पाँच लाख रुपये प्रति वर्ष आते थे। हिन्दुओंके लिए जजिया करका अर्थ यही होता था कि प्रत्येक हिन्दू नागरिकको राज्यको दिए जानेवाले करोंके अपने भागमे एक-तिहाई हिस्सा और भी यों देना पडता था। इस करके भारसे बचनेका एकमात्र उपाय इस्लाम धर्म अगीकार कर मुसलमान बनना ही था। समकालीन इतिहासकार मनूचीने लिखा है—"ऐसे अनेको हिन्दू जो यह कर नही दे सकते थे, इस करको वसूल करनेवालों द्वारा किए जानेवाले अपमानोंसे छुटकारा पानेके लिए मुसलमान हो गए। और यह सब देखकर औरगजेब आनन्दित होता है।"

७. हिन्दुओंके दमन के उपाय

बेचनेके लिए आनेवाली वस्तुओंपर महसूल लगानेके लिए १० अप्रेल १६६५ ई० को एक नियम जारी किया गया। इसके अनुसार मुसलमान सौदागरोंकी वस्तुओंके मूल्यपर २ प्रतिशत और हिन्दुओंसे उनका ५ प्रतिशत चुगीकर लिया जाता था।

९ मई १६६७को बादशाहने मुसलमान सौदागरोंपरसे चुगी-कर बिलकुल उठा दिया, परन्तु हिन्दू सौदागरोंसे पुराने नियमके अनुसार

*इस पत्र के लिए देखो मेरे ग्रंथ 'औरगजेब', खण्ड ३, परिशिष्ट ६, अथवा 'शिवाजी', चौथा संस्करण, अध्याय १३।

ही कर लिया जाता रहा। इससे राज्यकी वास्तवमें अत्यधिक हानिकी सभावना और भी बढ गई, क्योकि अब हिन्दू सौदागर मुसलमानोको प्रलोभन देकर अपने मालको उनका कहकर निकलवा देनेकी चालाकी करनेको प्रेरित होने लगे।

काफिरोपर आर्थिक दवाव डालनेकी नीति का एक और साधन यह था कि धर्म परिवर्तन करनेवालोको पुरस्कार मिलते थे। मुसलमान हो जाने की शर्तपर हिन्दुओको ऊचे पद दिए जाने, कैदसे छुटकारा पाने अथवा विवादग्रस्त जायदादपर उनका अधिकार माना जानेका प्रलोभन भी दिया जाता था।

१६७१ ई० मे एक हुक्म इस आशयका निकाला कि राज्यके कर वसूल करनेवाले सव मुसलमान ही हो। सब शासको और ताल्लुकेदारोको भी आज्ञा दी गई कि वे अपने हिन्दू पेशकारो और दीवानोको निकालकर उनके स्थानपर मुसलमानोको नियुक्त करे परन्तु प्रान्तीय अधिकारियोके हिन्दू पेशकारोको हटा देने से कई स्थानोमे शासनका चलाना भी असम्भव प्रतीत हुआ। फिर भी कुछ स्थानोमें ज़िलेके कर वसूल करनेके लिए हिन्दुओ की जगह मुसलमान करोडी नियुक्त हो गए। आगे चलकर अनिवार्य आवश्यकतासे विवश होकर वादशाहको माल-मत्री और तनख्वाह-नवीसके महकमोमें आधे पेशकार हिन्दू और आधे मुसलमान रखनेकी अनुमति देनी पडी। औरगजेवके शासन-कालमे कानूनगो वननेके लिए मुसलमान वनना एक लोकप्रसिद्ध कहावत हो गई थी। आज भी पजाव के अनेक कुटुम्वोके पास वे आज्ञा-पत्र सुरक्षित है जिनमे उस पदपर नियुक्ति की इस शर्तका विना किसी हिचकिचाहटके स्पष्ट शब्दोमे उल्लेख किया गया है।

वादशाहकी आज्ञा होनेपर धर्म परिवर्तन करनेवाले कुछ व्यक्तियो को हाथीपर विठाकर गाजे-वाजे और झण्डोके साथ बड़े-बड़े शहरोकी गलियोमे उनका जुलूस भी निकाला जाता था। कई दसरे लोगोको चार आना प्रति दिनके हिसावसे दैनिक तनख्वाह भी मिलती थी।

मार्च १६६५ ई० में शाही हुक्म द्वारा राजपूतोंके सिवाय दूसरे सारे हिन्दुओंको हाथी, घोड़े और पालकीपर चढ़नेकी मुमानियत कर दी गई। वे अब शस्त्र भी धारण नहीं कर सकते थे।

प्रति वर्ष साल भरमें कुछ निश्चित दिनोंपर भारतके विभिन्न तीर्थ-स्थानोंपर हिन्दुओंके बड़े-बड़े धार्मिक मेले भरते हैं। वहां दूर-दूर प्रदेशोंसे हजारों स्त्री-पुरुष, बूढ़े और बालक एकत्रित होते हैं। ऐसे अवसरपर उन मेलोंमें व्यापारी दूकानें लगाते हैं और देश-प्रदेशकी वस्तुएं प्रदर्शित की जाती हैं। गांवोंकी स्त्रियां ऐसे अवसरोंपर दूर-दूर रहनेवाली अपनी सखियों और सगी-सम्बन्धियोंसे मिलती और इस उत्सवका आनन्द उठाती हैं। सन् १६६८ ई० में औरंगजेबने शाही हुक्म निकाला कि साम्राज्य भरमें कहीं भी ऐसे मेले न पड़ें।

हिन्दुओंके होली और दीवाली त्योहार मनानेके बारेमें भी हुक्म हुआ कि वे बाजारसे बाहर और वह भी बहुत ही नियन्त्रित रूपमें मनाए जावें।

८. मथुरा जिलेके हिन्दुओंका दमन . किसानोंका विद्रोह

हिन्दू धर्मपर जब इस तरह खुले तौरसे आक्रमण होने लगे तब यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह दबाए गए हिन्दुओंमें तीव्र असन्तोष उत्पन्न हो। बादशाहकी हत्या करनेके लिए भी उसपर अनेकानेक आक्रमण किए गए, किन्तु ये आक्रमण ऐसी मूर्खतापूर्ण रीतिसे किए गए कि वे असफल ही रहे।

१६६९ ई० के आरम्भमें मथुरा जिलेमें हिन्दू जनताका एक भीषण विद्रोह उठ खड़ा हुआ। अब्दुन्नबीखां अगस्त, १६६० ई० से मई १६६९ ई० तक मथुराका फौजदार रहा था। बड़े ही उत्साहके साथ उसने अपने सम्राट्की मूर्ति पूजाका अन्त करदेने की नीतिका पालन किया था।

अपने इस पदपर नियुक्त होनेके कुछ समय बाद ही उस

हिन्दू मन्दिरके भग्नावशेषोपर मथुरा शहरके बीचो-बीच एक जुमा-मसजिद बनवाई (१६६१–६२ ई०) तत्पश्चात् १६६६ ई० में उसने केशवरायके मन्दिरको दारा द्वारा उपहारमे दिया हुआ नक्काशी-दार पत्थरका जगला वहाँमे हटवा दिया । १६६६ ई० मे तिलपटके जमीदार गोकलाके नेतृत्वमे जाट किसानोने जब विद्रोह किया, तब उनपर आक्रमण करनेके लिए अब्दुन्नबी बशरा ग्रामकी ओर चला । परन्तु १० मईके लगभग इस युद्धमे वह गोलीसे मारा गया । गोकलाने सादाबादका परगना लूट लिया । धीरे-धीरे यह विद्रोह मथुराके पडोसी आगरा जिलेमे भी फैल गया ।

इसपर विद्रोह दबानेके लिए औरगजेबने ऊँचे हाकिमोकी मातहती मे एक बडी सेना भेजी । १६६६ ई० के पूरे वर्ष भर मथुरा जिलेमे अशान्ति और उपद्रवकी धूम बनी रही । १६७० ई० के जनवरीके आरम्भमे तिलपटसे २० मील दूर स्थानपर भयकर लडाई हुई, जिसमे बहुत मारकाटके बाद हसनअलीखाने गोकलाको पराजित किया । तब शाही सेनाने तिलपटको जा घेरा और तीन दिन तक घेरा लगाए रहनेके बाद अन्तमे हमलाकर उसे जीत लिया । अपने कुटुम्ब सहित गोकला कैद कर लिया गया ।

हसनअलीके इन प्रयत्नो तथा उसकी सफलताओसे मनोवाञ्छित परिणाम निकला । पूरे जिलेमे शान्ति स्थापित तो हो गई परन्तु यह सब कुछ समयके लिए ही रहा । १६८६ ई० मे पुन राजारामके नेतृत्वमे दूसरा जाट-विद्रोह आरम्भ हुआ, जिसका वर्णन आगे यथा-स्थान दिया जावेगा ।

६. सतनामी सम्प्रदाय : उनका विद्रोह, १६७२ ई०

वास्तवमे सतनामी साधू ही थे । उन्हे रायदासियोकी ही एक शाखा समझना चाहिये । सिरके सारे बाल और भौहो तकको मुडवा देने के कारण उन्हे लोग मुडिया अथवा घुटे हुए सिरवाले कहते थे । १७वी शताब्दीमे उनका प्रधान केन्द्र दिल्लीसे ७५

मील दक्षिण-पश्चिममे नारनौलमे था । ईमानदारी, भाईचारा और इन्सानियतके लिए खफीखाँने उनके चरित्रकी बडी प्रशसा की है । वह लिखता है कि इनमेसे अधिकाश या तो खेती करते थे या थोडी बहुत पूंजी लगाकर व्यापार करते थे । इन्होने कभी बेइमानी या अन्य किसी गैर-कानूनी तरीकेमे पैसा कमानेका प्रयत्न नही किया ।

'सरकारी फौजके साथ इन लोगोकी पहली मुठभेड एक बहुत ही साधारण सामारिक मामलेमे हो गई थी । एक दिन नारनौलके पास एक सतनामी किसानकी एक सैनिक पियादेसे कुछ गरमागरम बहस हो गई । वह सैनिक किसी खेतकी रखवाली कर रहा था । उसने एक मोटे डडेसे उस सतनामीका सिरफोड दिया । सतनामीके एक जत्थेने उस आक्रमणकारीको खूब पीटा, जिससे वह सिपाही मृतप्राय हो गया ।"

अब यह साधारण-सा झगडा बहुत ही बढ गया, और शीघ्र ही वह युद्धमे परिणत हो गया, जिसमे हिन्दुओकी मुक्तिके लिए स्वय औरगजेबपर भी आक्रमण हुआ । भविष्यवाणी करनेवाली एक बूढी औरतने घोषित किया कि उसके झण्डेके नीचे आकर लडनेवाले सारे सतनामियोपर उसके तत्र-मत्र के बलसे शत्रुओके हथियारोका कोई भी असर नही होगा और वे अजेय बन जावेगे । यह समाचार दावानलकी लपेटोकी तरह चारो ओर फैल गया । लगभग ५,००० सतनामी शस्त्र ले-लेकर विद्रोहके लिए उठ खडे हुए । अपनी प्रारम्भिक विजयोसे विद्रोहियोको आत्मविश्वास बढ चला, और उस बुढियाके तत्र-मत्रकी अद्भुत शक्तिवाली बातपर लोगोका और भी दृढ विश्वास हो गया । उन्होने नारनौलके फौजदारको बुरी तरह मार भगाया और उस शहरपर कब्जा कर लिया । विजयी विद्रोहियोने नारनौलको लूट लिया और वहाकी मसजिदोको गिरा दिया । उन्होने उस जिलेमें अपना शासन भी कायम किया । किसानोने अब वे कर वसूल करने लगे ।

अब औरगजेब क्योकर चुप बैठता ? १५ मार्चको उसने रदन्दाजखाके मातहत एक बडी फौज रवाना की । सतनामियोके जादू-

टोनेके प्रभावको जीतनेके लिए बादशाहने स्वय अपने हाथसे प्रार्थनाए और जादूके अक लिखे। बादशाह स्वय बहुत बडा सन्त समझा जाता था और 'आलमगीर ज़िन्दा पीर' के नामसे प्रसिद्ध था। एव शत्रुओको दिखानेके लिए ये अक और प्रार्थनाए झण्डोपर सी दी गई। शाही सेनाका यह हमला बडा ही भयकर हुआ। बहुत घमासान और कठिन युद्धके बाद बहुत ही थोडे सतनामी बचकर भाग सके। प्रान्तके उस भागसे काफिरोको इस प्रकार साफ कर दिया गया।

१०. सिक्ख धर्मकी गति-विधि : उसके नेताके उद्देश्यो और नीति-स्वभावमें परिवर्तन

ईसाकी पन्द्रहवी शताब्दीके अन्तिम वर्षो मे पजाबमे बाबा नानक नामक एक हिन्दू सुधारक का उदय हुआ, जिसके प्रति जनताकी श्रद्धा बहुत बढी। उन्होने धर्म और जातिकी विभिन्नताओकी उपेक्षाकर प्रत्येक धर्मके प्रधान तत्त्वो और उनमे निहित सत्यकी एकतापर ही ज़ोर दिया, तथा उसीके आधारपर मानव समाजको भ्रातृत्वके सुदृढ बन्धनमे सगठित करनेका प्रयत्न किया।

गुरु नानकका जन्म लाहौरसे ३५ मील दक्षिण-पश्चिममे तलवण्डी नामक स्थानमे सन् १४६९ ई० मे हुआ था। यह स्थान अब ननकाना साहब नामसे सुप्रसिद्ध है और सिक्खोका एक बडा तीर्थ समझा जाता है। नानक जातिके खत्री अथवा हिन्दू बनिया थे। उनके मतका सार यही था कि एक चेतन सत्यमय ईश्वरमे पूरा विश्वास कर उसकी प्राप्तिके लिए तद् अनुरूप जीवन तथा आवश्यक चरित्र-निर्माण करना चाहिए। वे सन् १५३८ ई० तक जीवित रहे और धीरे-धीरे उनके साथ सच्चे श्रद्धालु भक्तोका एक बडा दल एकत्रित हो गया। उनके ये ही अनुयायी आगे चलकर एक सुस्पष्ट विभिन्न सम्प्रदायके रूपमे सगठित हो गए।

ईसाकी १६वी शताब्दीमे गुरु नानक से लेकर गुरु अर्जुन तक सिक्खोके पांच गुरु हुए। उन सबका जीवन बहुत सरल और तपस्वियो-

का-सा था, एवं उनके प्रति तत्कालीन मुगल बादशाहोंके हृदयोंमें अपार श्रद्धा थी। इस्लाम धर्म तथा मुगल साम्राज्यके साथ उनका कोई भी विरोध या झगडा नही था। जहाँगीरके शासन-कालमें पहली बार सिक्खोने मुगल राज्यका विरोध किया। इस झगडेका कारण किसी भी प्रकार धार्मिक नही था। परन्तु एक सासारिक मामलेपरसे ही प्रारम्भ होनेवाले इस झगडेका सिक्खोपर दूसरा ही प्रभाव पडा, उसीके फलस्वरूप गुरुओका दृष्टिकोण ही बदल गया, और उनके जीवन और आचरणमे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए।

पाँचवें गुरु अर्जुन के (१५८१–१६०६ ई०) समयमें सिक्ख धर्म स्वीकार करनेवालोकी सख्या बहुत बढ गई थी। इसके साथ ही गुरुओके वैभव और सम्पत्तिमे भी वृद्धि होती गई। गुरुओके लिए स्थायी आमदनीका साधन भी कायम कर दिया गया। काबुलसे लेकर ढाका तक जहाँ भी सिक्ख रहते थे, उनसे वहाँ ही गुरुओका कर तथा गुरुके प्रति भक्तोकी भेटको एकत्र करनेके लिए विशिष्ट प्रतिनिधियोके दल प्रत्येक शहरमे नियुक्त किए गए। अब गुरुको सिक्ख लोग सासारिक राजाके समान मानने लगे। गुरुओका भी दरबार लगने लगा और दरबारियो तथा मन्त्रियोका समूह अब उन्हें घेरे रहता था। ये मंत्री 'मसन्द' कहलाते थे; यह मसन्द शब्द दिल्ली के पठान सुलतानोके अमीरोको दिए जानेवाले खिताब 'मसनद-इ-आला' का ही हिन्दी अपभ्रंश है। जहाँगीर के विरुद्ध अपना झण्डा खड़ा करनेवाले खुसरोकी विजयके लिए गुरु अर्जुनने आशीर्वाद दिया था। एव जब खुसरो हार गया तब जहाँगीरने साम्राज्यके शास्त्र-सम्मत शासकोंके विरुद्ध इस राजद्रोहके अपराधमें गुरु अर्जुनपर दो लाख रुपया जुर्माना किया। गुरु जुर्माना देनेसे इन्कार कर गया और कैद तथा अन्य सारी अत्याचारी पीड़ाए बड़ी ही धीरतापूर्वक सहता रहा। लाहौरकी कड़ी धूप और गरमीसे तपतपाती रेतीपर बैठ रहनेके लिए उसे बाध्य किया गया, जिससे अन्तमें वह जून १६०६ ई० में मर गया।

उसके पुत्र हरगोविन्द के समयसे (१६०६ से १६४५) सिक्ख सम्प्रदायके इतिहासमे एक नया ही युग आरम्भ हुआ। हरगोविन्दने अपने ५२ शरीर-रक्षक सैनिकोकी सख्याको बढाते-बढाते उन्हे एक छोटी सेनाके समान बना लिया। गद्दीपर बैठनेके कुछ समय बाद ही जब अमृतसरके पास बादशाह शाहजहाँ बाज़ोसे शिकार खेल रहा था, तब गुरु भी शिकार खेलता-खेलता उसी स्थान आ पहुचा। एक पक्षीको लेकर उसके सिक्खो और शिकार-खानेके शाही नौकरोमे झगडा हो गया। अन्तमे सिक्खोने कई शाही नौकरोको मार डाला और बाकी हारकर भाग खडे हुए। इसलिए विद्रोही के विरुद्ध एक सेना भेजी गई, परन्तु सिक्खोने अमृतसरके पास सग्राना नामक स्थानमे इस सेनाको बुरी तरह हराया (१६२८ ई०), उधर सिक्खोकी कोई विशेष हानि नही हुई। लाहौरके पास ही शाही सत्ताका ऐसा खुले-आम अपमान बादशाहके लिए असहनीय हो उठा। यद्यपि आरम्भमे गुरुको कुछ सफलता अवश्य मिली, किन्तु अन्तमे अमृतसरवाला गुरुका घर और उसका सारा सामान छीन लिया गया, और गुरुको बाध्य होकर मुगल सेनाकी पहुँचसे परे कश्मीरकी पहाडियोमे स्थित कीरतपुरमे शरण लेनी पडी। वही सन् १६४५ ई० मे उसकी मृत्यु हो गई।

सन् १६६४ ई० मे गुरु हरकिशनकी मृत्युपर सिक्खोमे अराजकता फैल गई, और वे लोभ तथा लूटकी भावनासे प्रेरित होने लगे। कुछ समयके बाद हरगोविन्दके सबसे छोटे पुत्र तेगबहादुरको सिक्खोपर अपना आधिपत्य स्थापित करनेमे पर्याप्त सफलता मिली और अधिकाश सिक्खोने उसे अपना गुरु मान लिया।

जब वह आनन्दपुरमे ठहरा हुआ था, तब वहाँ उसने देखा कि उसके सिक्ख सम्प्रदायको व्यर्थ ही सख्तीके साथ दबाया जा रहा था एव सिक्खोके पवित्र तीर्थ-स्थानोको खुले-आम भ्रष्ट किया जा रहा था। अब वह चुप नही रह सका। उसको पकडकर दिल्ली ले गए और वहाँ इस्लाम धर्म स्वीकार करनेके लिए उसे बाध्य करने लगे,

किन्तु वह किसी भी प्रकार राजी नहीं हुआ। अनेकों प्रकारकी यातनाएँ भी दी गईं, परन्तु वे भी व्यर्थ ही हुईं, और अन्तमें बादशाहके हुक्मसे सन् १६७६ ई०में उसका सिर काट डाला गया।

अब अन्तमें इस्लाम और सिक्खोंमें खुले-आम युद्ध ठन गया। शीघ्र ही सिक्खोंमें एक ऐसा नेता उठ खड़ा हुआ, जिसने उनका संगठन करके सिक्खोंको इस्लाम धर्म और मुगल साम्राज्यसे टक्कर ले सकने योग्य उनका एक बहुत ही कट्टर शत्रु बना दिया। सिक्खोंका यह दसवाँ एवं अन्तिम गुरु गोविन्दसिंह (१६७६से १७०८ ई०) तेगबहादुरका एकमात्र पुत्र था। जन्मसे पहिले ही उसके विषयमें भविष्यवाणी की गई थी कि वह एक ऐसा मनुष्य होगा, जिसमें गीदड़को शेर और चिड़ियाको बाज बना देनेकी क्षमता होगी।

यहाँ एक क्षण ठहर कर हम उन कारणोंकी विवेचना करेंगे, जिनसे गुरु गोविन्दकी ऐसी अनोखी सफलता सम्भव हो सकी। गुरुकी सत्ता क्रमशः बढ़ते-बढ़ते दैवी सत्तामें बदल गई, गुरु गोविन्दकी सफलताका यही पहला कारण था। एकमात्र सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिमें आशंका-रहित विश्वास से ही सारे सिक्ख फौजके सैनिकोंके समान एक सुदृढ़ सम्बन्ध-सूत्रमें बँध गए। वे अब अपने आपको ऊँचा और अन्य लोगोंसे श्रेष्ठ समझने लगे। गुरु गोविन्दकी आज्ञा होते ही सारे आन्तरिक जाति-भेद मिटा दिए गए, जिससे सिक्खोंमें पारस्परिक एकताकी भावना और सुदृढ़ हो गई। खान-पानके जो बन्धन और विचार हिन्दू समाजमें अत्यधिक प्रचलित थे, वे पहले ही तोड़े जा चुके थे। सारे सिक्ख समाजकी अब एक ही जाति हो गई और वे सब अब एक ही धर्मके उपासक हो गए।

११. गुरु गोविन्द ; उसका चरित्र और आदर्श

गोविन्दने अपने अनुचरोंको क्रमशः शिक्षित किया और उनके लिए एक अलग ही विशिष्ट पहनावा नियुक्त किया। नए संस्कारोंसे अभिषिक्त कर उसने उन्हें नए आदर्शोंके लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया। तब यहीं खुलेआम इस्लामका विरोध करनेकी नीति प्रारम्भ की गई। मुसलमानोंके अत्या-चारोंके विरुद्ध विद्रोह करनेके लिए उसने हिन्दुओंको भी उत्तेजित किया। किसी भी मुसलमान सन्तके मकबरेको प्रणाम करनेवाले अपने अनुयायीके लिए उसने रु० १२५के जुर्मानेकी सजा नियत की। उसके

उद्देश्य स्पष्टतया सासारिक ही थे। "हे माँ! मै यही सोच रहा हूँ कि किस प्रकार खालसाको एक साम्राज्य दे सकूँ।" वह स्वय बडे ही राजसी ठाठ से रहता था।

गोविन्दने अपना अधिकाश जीवन उत्तरी पजाबके पहाडोमे ही बिताया। वह गढवालमे जम्मूसे श्रीनगर तक पहाडी राजाओसे निरन्तर लडता-भिडता रहा। उसके अनुयायियोकी मारकाट तथा स्वय उसकी महत्त्वाकाक्षासे उठनेवाली आशकाओसे वे भी घबरा उठे थे। गुरु गोविन्द को दबानेमे पहाडी राजाओसे सहयोग करनेके लिए सरहिन्दसे बडी-बडी शाही सेनाएँ भेजी गई। पर वे हमेशाके समान असफल ही रही। पजाब के दोआबोमे निरन्तर लोग आ-आकर उसके मतको स्वीकार करते थे, जिससे उसकी सेना बढती गई, यहाँ तक कि कई मुसलमान भी गुरुसे आ मिले। आनन्दपुर पाँच बार घेरा गया। अन्तिम घेरेके बाद गुरुने यह किला छोड दिया। मुसलमानोने उनका पीछा किया। वह अनेक दुर्घट-नाओसे बाल-बाल बचता ही रहा और शिकारके पशुके समान अपनी सुरक्षाके लिए उसे बारम्बार अपना निवास-स्थान बदलना पडता था। उनके चार पुत्र मारे गए। तब गुरु गोविन्द अपने इने-गिने विश्वसनीय रक्षकोको साथ लेकर दक्षिण-यात्राको चल पडा। सन् १७०७ ई० मे नये बादशाह पहले बहादुरशाहने उसे राजपूताने और दक्षिणकी यात्रामे अपने साथ चलनेके लिए उत्साह दिया। १७०७ ई० के अगस्त माहमे कुछ पैदल और दो-तीन सौ घुड-सवारोके साथ गुरु हैदराबादसे १५० मील उत्तर-पश्चिममे गोदावरी तटपर स्थित नान्देर पहुचा। वहाँ एक वर्षसे कुछ अधिक दिन रहनेके बाद एक दिन एक अफगानने छुरा भोक दिया, जिससे तब वही उसकी मृत्यु हो गई (१७०८ ई०)। उसके साथ ही गुरुओकी इस वश-परम्पराका अन्त हो गया।

इस प्रकार औरगजेबके शासन-कालमे मुगल सत्ताने गुरुओकी शक्तिको तोडनेमे पूरी सफलता प्राप्त की, जिससे अब सिक्खोका कोई नेता नही रह गया और उनकी कोई सगठित केन्द्रीय सस्था भी न रही। उसके बाद भी सिक्ख लोग जन-शान्ति भग करते रहे, परन्तु अब वे अलग-अलग जत्थोमे बँट गए थे। अब वे एक प्रधान मुखियाके आधिपत्यमे रहकर एक सगठित सेनाके रूपमे नही लड सके। उनका कोई निश्चित राजनैतिक उद्देश्य भी अब नही रहा। वे घूमने-फिरनेवाले डाकुओ और लुटेरोके समान

बन गए। वे अत्यधिक साहसी, उत्साही और परिश्रमी थे, परन्तु प्रधानतया वे लुटेरे ही थे। प्रान्तमें संगठित सत्ता स्थापित करनेकी कोई भी महत्त्वाकांक्षापूर्ण प्रेरणा उनमें न रही। यदि रणजीतसिंहका उदय न होता तो सिक्खोंका कोई भी विस्तृत और संगठित राज्य स्थापित नहीं हो सकता था। सारे पंजाबमें अनेकों छोटे-छोटे राज्य थे, जिनपर सिक्ख सैनिकोंके ही नेता राज्य करते थे। आक्रमण करके आसपासके देशको उजाडनेके लिए वे अपने संगठित लुटेरोंको प्रतिवर्ष भेजा करते थे।

औरंगजेबकी धर्मान्धतापूर्ण नीतिका सबसे बुरा परिणाम यही हुआ कि उसने राजपूत तथा सिक्खों जैसी भारतकी सबसे कट्टर एवं वीर योद्धा-जातियोंको उत्कट विरोध करनेके लिए प्रेरित किया।



अध्याय ९

राजपूतानेमें युद्ध ; अकबरका विद्रोह

१. औरंगजेबका मारवाडपर अधिकार करना, १६७९ ई०

मारवाड एक मरुभूमि है, परन्तु मुगलकालमें उसका सैनिक महत्त्व एक विशेष कारणसे था। मुगल राजधानीसे समृद्ध उद्योग-धन्धेवाले शहर अहमदाबाद और खम्भातके काम-धन्धेवाले बन्दरगाहको जानेवाला सबसे सीधा व नजदीक व्यापारिक-मार्ग मारवाडकी सीमामेंसे होकर गुजरता था। यदि ऐसा प्रदेश मुगल साम्राज्यमें मिलाया जा सके तो उदयपुरके अभिमानी, गौरवपूर्ण राणाको उस बाजूसे पूरी तरह घेर लिया जावेगा और राजपूतानेके ठीक बीचोबीचमें ऐसे लम्बे प्रदेशकी स्थापना हो जावेगी, जिसपर मुसलमानोंका एकाधिपत्य होगा। उस समयकी उत्तरी भारतकी सारी हिन्दू रियासतोंमें मारवाड ही सबसे अग्रगण्य और महत्त्वपूर्ण था। इस समय वहां जसवन्तसिंह राज्य कर रहा था। बलपूर्वक हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन करवानेकी औरंगजेबकी नीतिके लिए यह बहुत ही आवश्यक था कि जसवन्तका यह राज्य बिल्कुल ही शक्तिहीन एवं साधारण आश्रित राज्यमात्र बन जावे, अथवा वह साम्राज्यका एक सामान्य सूबा ही रह जाए।

१० दिसम्बर १६७८ ई०को जमरूदमें[1] ही जसवन्तसिंहकी मृत्यु हुई। जसवन्तकी मृत्युका हाल सुनते ही औरंगजेबने मारवाड राज्यको एकदम मुगल शासनमें ले लिया। ९ जनवरी १६७९को स्वयं बादशाह अजमेरके

१ जसवन्तसिंह उस समय अफगानिस्तानका प्रधान शासक था। काबुल शहरका सूबेदार नहीं था। वह तो जमरूदका थानेदार मात्र ही था।

लिए रवाना हुआ। यदि वहाँ कोई विरोध उठ खड़ा हो तो उसको दबाने के लिए जोधपुरके पास पहुँच जाना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था।

जसवन्तकी मृत्युसे राठौड़ जाति बड़ी ही व्याकुल एवं अस्तव्यस्त हो गई, तथा वहाँ सर्वत्र गड़बड़ी मच गई। राज्यपर कोई भी शासक नहीं रह गया था, एवं राज्यमें बढ़ी-चढ़ी आती हुई सुसंचालित सशक्त मुगल सेनाका सामना करनेकी शक्ति मारवाड़ राज्यमें नहीं रह गई थी।

२६ फरवरीको औरंगजेबने सुना कि लाहौरमें जसवन्तकी दो विधवा रानियोंने दो पुत्रोंको जन्म दिया था। फिर भी बादशाह मारवाड़ राज्यको मुगल साम्राज्यमें सम्मिलित कर लेनेकी नीतिसे विरत होनेवाला न था। अजमेरसे लौटकर दो अप्रेलको बादशाह दिल्ली पहुँचा। पिछले सौ वर्षोंसे जो बन्द था, वह जज़िया कर उस दिन औरंगजेबने पुनः हिन्दुओंपर लगा दिया, और यों हिन्दुओंके प्रति अपने विरोध एवं द्वेषको स्पष्टरूपेण घोषित किया।

जसवन्तके भाईका पौत्र, इन्द्रसिंह राठौड़, इस समय नागौरका शासक था, २६ मईको उसे जोधपुरका राजा बनाकर मेवाड़ भेजा। परन्तु मुगल अधिकारी और सेनानायकोंको जोधपुरमें ही रहनेका हुक्म मिला। अपने इस राज्यपर अधिकार करनेमें नये राजाकी सहायता करना ही संभवतः उनका प्रधान कर्तव्य था।

२. दुर्गादासने अजीतसिंहको कैसे बचाया

लाहौर पहुँचनेपर जसवन्तकी दो विधवा रानियोंने दो पुत्रोंको जन्म दिया (फरवरी १६७९)। उनमेंसे एक तो कुछ ही सप्ताहोंके बाद मर गया, किन्तु दूसरा, अजीतसिंह, जोधपुरकी गद्दी पर बैठनेके लिए बच रहा। जूनके अन्तमें महाराजाका कुटुम्ब दिल्ली पहुँचा। अजीतके अधिकारोंकी स्वीकृतिके लिए पुनः औरंगजेबसे प्रार्थना की गई, परन्तु उसने यही हुक्म दिया कि बालक अजीतका लालन-पालन मुगल राजघरानेके जनानखानेमें ही किया जावे, और यह आश्वासन भी दिया गया कि वयस्क होनेपर उसे भी मुगल सरदारोंकी कोटिमें गिना जावेगा तथा तब उसे राजाकी पदवी दी जाएगी। एक तत्कालीन इतिहासकार लिखता है कि अजीतके मुसल्मान बन जानेपर उसे तत्काल ही जोधपुरकी गद्दी देनेका प्रलोभन भी दिया गया था।

औरगजेबका यह प्रस्ताव सुनकर सारे स्वामिभक्त राठौडोके हृदयोमे तीव्र व्याकुलता भर गई। अपने स्वर्गीय स्वामीके इस नवजात उत्तराधिकारी को बचानेके लिए प्रत्येक राजपूतने प्राण रहते कट्टरतापूर्वक लडते रहनेकी कठोर प्रतिज्ञा की। जसवन्तके प्रधान मन्त्री द्रुणेराके सरदार आसकरणका पुत्र दुर्गादास ही इन वीर राजपूतोका प्रधान नेता एव उनका एकमात्र प्रेरक था। राठौड वीरोमे सर्वश्रेष्ठ इस बाके राजपूत दुर्गादासको मुगलोका सारा द्रव्य और उनका कल्पनातीत ऐश्वर्य नही लुभा सके, और न मुगलोकी सैनिक शक्ति तथा साम्राज्यकी सत्ता ही उसके दृढ-प्रतिज्ञ और धीर हृदयको डगमगा सकी। सारे राठौडोमे इसी एक व्यक्तिमे राजपूत योद्धाओके अदम्य उत्साह तथा उनकी प्रचण्ड निरपेक्षणीय वीरताके साथ ही साथ मुगलोके राजमन्त्रियोकी-सी नीति-कुशलता, चतुराई एव सगठन करनेकी अद्वितीय शक्तिका भी अतुलनीय एव अनोखा सम्मिश्रण पाया जाता था।

जसवन्तकी रानी और अजीतको पकडकर उन्हे दिल्लीमे ही नूरगढके किलेमे बंद कर देनेके लिए बादशाहने १५ जुलाईको दिल्लीके फौजदार और अपने निजी सैनिकोंके नायकको एक बडी शक्तिशाली सेनाके साथ भेजा। जहा वे ठहरे हुए थे, उस हवेलीकी एक ओरसे जोधपुरके भाटी सरदार रघुनाथने अपने सौ राजनिष्ठ सैनिकोके साथ मुगलोके इस सैनिक दलपर जोरोंके साथ आक्रमण किया। इस भयकर आक्रमणसे ही शाही फौज घबडा उठी और उनकी इस क्षणिक अस्त-व्यस्ततासे लाभ उठाकर दुर्गादास दोनो रानिया, जो इस समय मर्दाना वेशमे थीं, और अजीतको लेकर उस हवेलीसे निकल गया। वहासे वह सीधा मारवाडकी ओर चल पडा। उस घण्टेतक रघुनाथने दिल्लीकी गलियोमे खूनकी नदियाँ बहा दीं और अन्तमे वह भी वही काम आया। मुसलमानी सेनाने जब दुर्गादास, आदिका पीछा किया। तब तो रणछोडदास जोधाने शत्रुओका रास्ता रोका। उसके पास थोडी-सी सेना थी। ऐसा तीन बार हुआ। शाम तक मुसलमानोने पीछा करना छोड दिया। २३ जुलाईके दिन अजीतसिंहको कुशलतापूर्वक मारवाड पहुचा दिया। स्वामिभक्त राठौड अजीतसिंहका साथ देनेको तैयार होकर सगठित होने लगे। उधर औरगजेबने किसी ग्वालेके बच्चेको हरममे रखकर उसे वास्तविक अजीतसिंहके नामसे प्रख्यात किया और दुर्गादास द्वारा पोषित राजकुमारको झूठा बताया जाने लगा। दो माह पहिले नियुक्त मारवाडके नए राजा इन्द्रसिंहको शासन करनेके लिए अयोग्य घोषित कर इसी समय गद्दीसे उतार दिया।

२५ सितम्बरको बादशाह अजमेर पहुँचा, और वहीं उसने अपना अड्डा जमाया। उसके पुत्र मुहम्मद अकबरके सेनापतित्वमें बढ़ती हुई शाही सेना आगे बढ़ने लगी। मुगल सेनाके हरोलका नायक अजमेरका फौजदार तहाव्वरखाँ था। राजसिंहके नेतृत्वमें मेड़तिया राठौड़ोंने पुष्कर झीलके पास शाही सेनाका रास्ता रोक दिया। वहाँ तीन दिन तक लगातार घमासान युद्ध हुआ, जिसमें मारवाड़की रक्षा करनेके लिए उद्यत साहसी राठौड़ वीर एक-एक कर कट मरे। उसके बाद राजपूत पहाड़ियों और मरु स्थलमें छिपने योग्य स्थानोंमें रहकर छापा मारने और यों शत्रुओंका विरोध करने लगे। अक्टूबर माहके अन्तमें बादशाहने मारवाड़को कई जिलोंमें बाँट दिया और हर एक जिलेमें एक मुगल फौजदार नियुक्त किया। यों सारे प्रदेशपर शीघ्र ही मुगल सेनाका अधिकार हो गया।

३. उदयपुरके महाराणाके साथ मुगलोंका युद्ध

मारवाड़का मुगल राज्यमें यों मिलना मेवाड़के सफलतापूर्वक जीते जानेकी एक भूमिका-मात्र थी। जज़िया करको फिरसे लगानेपर महाराणाके पास शाही हुक्म गया कि मेवाड़के सारे राज्य भरमें उसे लागू किया जावे। अब यदि सीसोदिया राजपूत राठौड़ोंका साथ नहीं देते तो ये दोनों राजपूत जातियाँ एक एक कर क्रमशः दबा दी जातीं और तब सारा राजस्थान असहाय होकर क्रूर और अन्यायी मुगल शासकोंके अधिकारमें आ जाता। अजीतसिंहकी माता मेवाड़की बहिन-बेटी नहीं थी, तथापि जोधपुरके राजघरानेके साथ मेवाड़का जो पुरातन कौटुम्बिक सम्बन्ध था, उसे किस तरह भुलाया जा सकता था? पुनः एक वीर योद्धाकी दृष्टिसे ही क्यों न हो, एक अनाथ बालकके अधिकारोंकी रक्षाके लिए उससे की गई उस असहाय संकटापन्न राजमाताकी प्रार्थनाको महाराणा राजसिंह किसी भी हालतमें नहीं टुकरा सकता था।

'राजसिंह अब युद्धकी तैयारी करने लगा। किन्तु अपनी स्वभावगत तत्परताके साथ औरंगजेबने ही युद्ध छेड़ा और मेवाड़पर आक्रमण कर दिया। शाही सेना लेकर हसनअली खाँ आगे बढ़ा राणाके प्रदेशोंमें लूट-पाट करता हुआ वह प्रधान मुगल सेनाके लिए राह साफ करता जा रहा था। राणा इस आक्रमणके लिए पहिलेसे ही तैयार था। राणा और उसकी प्रजा तलहटीके मैदानोंको छोड़कर पहाड़ोंमें जा पहुँचे। अब मुगल सेना

उदयपुर पहुँची, तब उस शहरको निर्जन पाया। मुगलोने उदयपुरपर अधिकार कर लिया और वहाँके बडे मन्दिरके साथ ही साथ उदयसागर तालावकी पालपरके तीन मन्दिरोको भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।) ~

राजपूत सेनाकी खोजमे हसनअली उदयपुरसे उत्तरपश्चिमी पहाडोमे जा घुसा। वहाँ उसने २२ जनवरीके दिन महाराणाको हराया। चित्तोड-पर पहिलेसे ही मुगलोका अधिकार हो चुका था। फरवरी मासके अन्तमे जब औरंगजेब वहाँ पहुँचा, तब वहाँके कोई ६३ मन्दिर तोड-फोड डाले गए। २३ मार्चको बादशाह अजमेरको लौट पडा। मेवाडपर आक्रमण करनेके लिए चित्तोड ही मुगलोका प्रधान सैनिक केन्द्र था, एव शाहजादे अकबरकी अधीनतामे एक शक्तिशाली सेना चित्तोडमे डटी रही, जिससे उस सारे जिलेपर मुगलोका आधिपत्य बना रहा। सारा राजस्थान मुगलोके विरुद्ध तीव्र रोष और कट्टर शत्रुताकी भावनासे उबल रहा था।

उदयपुरसे लेकर पश्चिममे कुम्भलगढ तक और राजसमन्द झीलसे लेकर दक्षिणमे सलम्बर तक फैले हुए मेवाडके ये दुगम पहाड एक विस्तृत अजेय किलेके समान प्रमाणित होने लगे, जिसके तीन ही द्वार थे, पूरबमे देवारीकी घाटी, उत्तरमे राजसमन्द झील और पश्चिममे देसूरीकी घाटी। इन्ही तीन रास्तोसे राजपूतोकी सेनाके शक्तिशाली दल निकल-निकलकर मुगलोकी दूर-दूर फैली हुई चौकियोको नष्ट कर देते थे।

औरंगजेबने शाहजादे अकबरको चित्तोडमे रखा था, परन्तु उसके पास इतनी बडी सेना न थी कि जिससे वह लम्बे चौडे प्रदेशकी सफलता-पूर्वक रक्षा कर सकता। ज्योही औरंगजेब अजमेरकी ओर लौटा, मेवाडमे पुन राजपूत उठ खडे हुए और उनकी ये हलचल दिनो-दिन बढती ही गई। अब तो मुगलोकी सारी चौकिया खतरेमे पड गई और उस सारे प्रदेशमे मुगल राजपूतोकी शक्तिसे भयभीत हो उठे।

मई मास आधा भी बीता न था कि चित्तोडके पास ही अकबरके पडावपर रातके समय राजपूतोने एकाएक हमला कर दिया। महाराणा भी सहसा पहाडोसे निकला और उसने सारे बदनोर जिलेमे चक्कर लगाया। महाराणाके इस आक्रमणकी अकबरको आशका तक न थी, एव इस हमलेसे शाही सेनाको बहुत हानि हुई। एक बडी राजपूत सेना साथ लेकर राणा पुन निर्भीक सारे देशको लूटने लगा और मुगल सेनापर लगातार [illegible] आक्रमण भी करता रहा। अकबरको [illegible] करना

पड़ा कि "राजपूतोंके भयके मारे हमारी सेना स्तब्ध और निश्चेष्ट हो गई है"।

उसकी इन विफलताओंमें क्रुद्ध होकर औरंगजेबने अकबरको वहाँसे बदलकर मारवाड़ भेज दिया और उसके स्थानपर २६ जूनको शाहज़ादा आज़म चित्तौड़की इस सेनाका नायक नियुक्त किया गया।

अब यह तय हुआ कि शाही सेना तीनों ओरसे मेवाड़की इन पहाड़ियोंमें प्रवेश करे। पूर्वमें देवारीकी राह उदयपुर होता हुआ शाहज़ादा आज़म घुसे। उत्तरमें राजसमन्द झीलकी राहसे शाहज़ादा मुअज़्ज़म ससैन्य चढ़ाई करे और पश्चिममें देसूरीकी घाटीकी राहसे शाहजादा अकबर धीरे-धीरे आगे बढ़े। इन तीनोंमेंसे पहले दोनों शाहज़ादे अपना उद्देश्य पूरा करनेमें असफल ही रहे।

४. मारवाड़की ओरसे शाहज़ादे अकबरकी चढ़ाई

चित्तोड़से बदल दिए जानेपर अकबरने मारवाड़ जाकर १८ जुलाई १६८० ई० को सोजतमें पड़ाव किया। किन्तु मेवाड़की तरह मारवाड़में भी उसको कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अकबरको आज्ञा हुई थी कि वह नाडोलपर अधिकार कर ले। तब पूर्वकी ओरसे मेवाड़पर चढ़ाई कर देसूरी घाटीपर अधिकार करता हुआ तहाव्वरखाँ कुम्भलगढ़के प्रदेशपर आक्रमण करे। कुम्भलगढ़के इसी प्रदेशमें मारवाड़से निकले हुए राठौड़ शरण लिए हुए थे। किन्तु मौतके साथ खिलवाड़ करनेवाले राजपूतोंका तहाव्वरखाँके सैनिकोंके दिलोंमें ऐसा डर समाया हुआ था कि आगे बढ़नेकी उन्हें हिम्मत ही नहीं हो रही थी। किन्तु सितम्बर, १६८० ई० के बाद तो हमें तहाव्वरखाँकी गतिविधिमें सन्देहजनक शिथिलता देख पड़ती है।

औरंगजेब अब अधीर हो उठा। किसी भी कारण अधिक देरी करने देना उसके लिए असह्य हो गया, एवं विवश होकर अकबरको आगे बढ़ना ही पड़ा। नाडोलसे चलकर २९ नवम्बरको उसने देसूरीमें पड़ाव किया, और यहींसे सेना-सञ्चालन करने लगा। जीलवाड़ा घाटीपर अधिकार करनेके लिए अकबरने तहाव्वरखाँको भेजा। २७ नवम्बरको मुग़ल सेना जीलवाड़ा तक बढ़ गई और यहींसे तहाव्वरखाँ निश्शंक होकर आसपासके प्रदेशोंमें लूटमार भी करने लगा।

महाराणाका एकमात्र आश्रयस्थान, कुम्भलगढ, यहाँसे केवल ८ मील दूर दक्षिणमे रह गया था। परन्तु अगले पाँच सप्ताहोमे तहाव्वरखाँ पुन अकर्मण्य बैठा रहा, जिससे उसके प्रति सदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

६. शाहजादे अकबरका स्वयको सम्राट् घोषित करना; १६८१ ई०

औरंगजेबके चौथे पुत्र सुल्तान मुहम्मद अकबरकी आयु इस समय केवल २३ सालकी ही थी। निरन्तर हार खानेपर वह बारम्बार झिडका जाता था, जिसकी तीव्र वेदनासे वह बहुत ही व्याकुल हो उठा था। ऐसे ही समय राजपूतोंने उसे प्रलोभन दिया कि वह उनसे जा मिले और उनकी सहायता द्वारा औरंगजेबके अधिकारसे साम्राज्य छीनकर वह स्वय सम्राट् बन बैठे। अकबर इस प्रलोभनमे फँस गया और राजपूतोंके आमन्त्रणको अस्वीकार नही कर सका।

तहाव्वरखाके जरिये ही राजपूतोंके साथ यह सारी राज्यद्रोहात्मक बातचीत हुई थी। महाराणा राजसिह और राठौडोंके नेता दुर्गादासने उसे सुझाया कि यदि वह अपने राजघरानेको नष्ट होनेसे बचाना चाहता था तो उसे चाहिए कि वह मुगल राज्यसिहासनपर अधिकार कर अपने पूर्वजोंकी सहिष्णुतापूर्ण नीतिको पुन बरतने लगे।

औरंगजेबके विरुद्ध अजमेरकी ओर ससैन्य बढनेकी पूरी-पूरी तयारियाँ हो चुकी थी, परन्तु दुर्भाग्यवश उसी समय २२ अक्टूबर १६८० ई० को महाराणा राजसिहकी मृत्यु हो गई। मेवाड राजदरबारमे एक माह तक शोक मनाया गया, एव उसका उत्तराधिकारी जयसिह उस समयतक कुछ भी नही कर सका। इसके बाद समझौतेकी यह गुप्त वार्ता फिर चल पडी और जल्दी ही सारी बात तय हो गई। औरंगजेबके विरुद्ध लडाइया लडनेके लिए महाराणाने शाहजादेके साथ अपनी आधी सेना भेजना स्वीकार किया। मुगल राजसिंहासन प्राप्त करनेके लिए युद्धार्थ अजमेरकी ओर चढाईके वास्ते २ जनवरी १६८१ ई० को रवाना होनेका निश्चय किया गया।

राजपूतोंके हृदयमे कहीं कोई सन्देह न उठ खड़ा हो जावे, इस आशकाको दूर करनेके लिए [illegible] अकबरने दो दिन पहिले ही [illegible] अपने [illegible] नाम एक [illegible] बनावटी पत्र लिखा। किन्तु शीघ्र ही [illegible] निर्मलिखित [illegible] दिया और [illegible]-राम लिखा

विरोध करनेको उठ खडा हुआ। अकबरके साथ रहनेवाले चार मुल्ला-मौलवियोने एक फतवा दिया और उसपर अपनी मोहरें लगाईं। उस फतवे द्वारा उन्होने घोषित किया कि औरंगजेबका आचरण इस्लाम धर्मके विरुद्ध होनेके कारण औरंगजेबको राज्यसिंहासनपर बने रहनेका कोई भी अधिकार नही रह गया था। तब १ जनवरी १६८१ ई० को अकबरने स्वयको सम्राट् घोषित किया। अकबरके साथके अधिकांश शाही अफसर न तो शाहजादेका विरोध ही कर सकते थे और न वे वहाँसे भाग ही सकते थे। अतएव अकबरके पक्षमे होकर उसका ही साथ देनेका ढोंग करने लगे।

उधर अजमेरमे बादशाहकी परिस्थिति बहुत ही सकटपूर्ण हो गई। शाही सेनाके जो दो प्रधान दल अभी तक उसके ही पक्षमे थे वे तब अजमेरसे बहुत ही दूर थे। औरंगजेबके पासके साथियोमे प्रधानतया उसके व्यक्तिगत नौकर तथा कठिन युद्धके अनुपयुक्त सैनिक ही थे।

हर एकका यही खयाल था कि अपनी सेनाको लेकर अकबर बडी तेजीके साथ अजमेरकी ओर बढेगा, अतएव औरंगजेबके साथकी छोटी-सी सेनाकी हारके बाद अकबरका सिंहासनारूढ होना निश्चित-सा ही जान पड रहा था। किन्तु सिर्फ १२० मीलकी दूरीको पार करनेमे अकबरने पूरे १५ दिन (२से १५ जनवरी) लगा दिए, और प्रत्येक घण्टेकी देरीके साथ औरंगजेबका पक्ष सुदृढ होता गया।

इसी समय इधर-उधर फैले हुए शाही सेनाके दलोंको अपने पास बुला लानेके लिए औरंगजेबने चारो ओर दूत दौडा दिए थे। समय रहते बादशाहके साथ जा मिलनेके लिए सारे स्वामिभक्त शाही सेनानायक बडी तेजीसे अजमेरकी ओर बढ रहे थे। इस प्रकार कुछ ही दिनोमे औरंगजेबका यह आपत्तिपूर्ण समय निकल गया और १४ जनवरीको बादशाह ससैन्य अकबरका सामना करनेके लिए खुले मैदानमे आ डटा। अब तो अकबरके सैनिक दलमे निराशा छा गई और बहुतसे सैनिक उसके पक्षसे छोडकर खिसकने लगे। केवल ३०,००० राजपूतोंने ही अकबरका साथ दिया।

१५ जनवरीको वह निर्णायक घडी आ उपस्थित हुई। औरंगजेब आगे बढा और दोराईपर अकबरकी प्रतीक्षा करने लगा। [illegible] [illegible] ढगसे बिना कहीं ठहरे ही तेजीके साथ बढता हुआ शाहजादा मुअज्जम भी उसी शामको ससैन्य औरंगजेबसे आ मिला, जिससे बादशाहकी पक्षकी सैनिक शक्ति दूनी हो गई। उधर अकबरने भी अपने पिताके [illegible] तीन

मीलकी दूरीपर आकर पड़ाव डाला। अगले दिन युद्ध करनेका उसने निश्चय किया था।

६. तहाव्वरखाँकी हत्या : अकबरकी विफलता

परन्तु औरंगजेबने बिना युद्ध किए अपनी धूर्ततापूर्ण नीतिसे ही उसी रात अकबरपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली। औरंगजेबने इनायतसे उसके दामाद तहाव्वरखाँके नाम एक पत्र लिखवाया, जिसमें अकबरके उस प्रधान सहायकको सलाह दी गई थी कि वह बादशाहके पास लौट आवे और अपने पिछले अपराधोंके लिए माफी माँग ले। उसे वचन दिया गया था कि बादशाह उसे अवश्य ही क्षमा कर देंगे, किन्तु यदि वह न आया तो उसकी बीवी और बच्चोंके साथ दुर्व्यवहार करनेकी भी उसे धमकी दी गई थी।

यह पत्र पाकर तहाव्वरखाँ चक्करमें पड़ गया। आधी रातसे कुछ ही पहिले वह चुपकेसे शाही पड़ावमें जा पहुँचा और बादशाहसे मिलनेकी आज्ञा चाही। परन्तु उससे कहा गया कि वह सशस्त्र बादशाहके पास नहीं जा सकेगा। निरस्त्र होकर एक कैदीके समान ही वहाँ जानेको वह राजी न हुआ। झगड़ा बढ़ गया और बहुत शोरगुल होने पर अनेकों शाही नौकर वहाँ इकट्ठे हो गए और उन्होंने अपनी गदाओंसे उसपर बहुत प्रहार किए, तथा अन्तमें उसका सिर काट डाला।

इधर औरंगजेब भी अकबरके नाम एक झूठा पत्र लिखा। उसमें इसलिए अकबरकी प्रशंसा की गई थी कि वह सारे राजपूत योद्धाओंको अपने जालमें फँसाकर बादशाहके इतने पास ले आनेमें सफल हुआ था। अब ज्योंही सामनेसे औरंगजेब और पीछेसे अकबर उनपर आक्रमण करेंगे तब उनको पूर्णतया नष्ट करनेमें उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हो सकेगी। औरंगजेबकी चालके अनुसार वह पत्र दुर्गादासके ही हाथ लगा। उसने यह पत्र पढ़ा और इस पत्रके बारेमें खुलासा करनेके लिए वह अकबरके तम्बूमें पहुँचा। उस समय अकबर सोया हुआ था और उसे जगाना सम्भव नहीं था। तब तो दुर्गादासने तहाव्वरखाँको बुलानेके लिए एक आदमी भेजा किन्तु तहाव्वरखाँ इससे कुछ ही घण्टे पहले शाही पड़ावकी ओर चला गया था। इन सारी बातोंको देखकर वह चकित हुआ पर दुर्गादास-को षड्यन्त्र ही प्रतीत होने लगा। सूर्योदयसे तीन घण्टे पहले राजपूत अपने स्थानसे हट गये और अकबरके माल-असबाबमें जो कुछ उनके हाथ

पडा उसे उन्होंने लूटा और तब वे मारवाडकी ओर चल खडे हुए। उधर जो शाही सैनिक तथा अन्य स्वामिभक्त सेनानायक अकबरके डेरेमे कैद पडे थे, वे सब अब भागकर औरंगजेबके पडावमे जा पहुँचे।

प्रातःकालमे जब अकबर जगा, तब उसने देखा कि उसे छोड़कर सब चल दिए थे, एवं वह अकेला ही रह गया था। अपनी औरतोंको घोडोपर चढाकर यथाशक्ति अपना खजाना ऊँटोपर लादकर वह अपनी प्यारी जान बचा राजपूतोंके ही पीछे-पीछे भाग चला।

अकबरका बाकी रहा माल-असबाब और पीछे रहे उसके कुटुम्बियोंको बादशाहके पडावमे लाया गया। अकबरके साथ शाहजादी जेबुन्निसाका जो पत्र-व्यवहार हो रहा था, वह भी पकडा गया, जिसके लिए उसे सलीमगढ के किलेमे कैद कर दिया गया।

शाहज़ादे मुअज्जमकी अधीनतामे एक सुसज्जित सेना अकबरका पीछा करनेके लिए मारवाडकी ओर भेजी गई। औरंगजेब द्वारा फैलाए हुए इस जालका ठीक-ठीक पता जब दुर्गादासको लगा, तब तो उसने लौटकर अकबरको अपने संरक्षणमे ले लिया। अपने इन रक्षकोंके साथ-साथ अकबर भी सारे मारवाडमे घूमता फिरा। अन्तमे दुर्गादासने साहसपूर्वक वादा किया कि वह अकबरको सकुशल मराठा राजाके पास पहुँचा देगा। तब तक भारतमे मराठे ही सफलतापूर्वक मुगल सेनाओंका विरोध और उनकी उपेक्षा कर सके थे। राहमे पडनेवाली मुगल चौकियोंको बडी ही चतुरता-से टालते हुए, इस राठौड वीरने अपना पीछा करनेवालोंको भी अपने वास्तविक उद्देश्यका ठीक-ठीक पता न लगने दिया। ९ मईको अकबरपुर-के घाटपर उसने नर्मदाको पार किया, और १५ मईको वह बुरहानपुरसे कुछ ही दूरीपर ताप्ती नदीके तटपर जा पहुँचा, किन्तु यहां भी मुगल सैनिक नदीके घाटपर पहरा दे रहे थे, एवं उस राहको छोड़कर वह खान-देश और बगलानेसे होता हुआ पश्चिमको चला, और अन्तमे १ जूनको वह अकबरके साथ सकुशल शम्भूजीके पास जा पहुँचा।

७. महाराणाके साथ सन्धि

मारवाड़पर मुगल आधिपत्य स्थापित करनेके लिए जैसा हुआ औरंगजेबका जाल जब पूरी तरह बिछ चुका था, और जब वह सफल होनेवाला था, तब ही अकबरका यह विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिसने मारवाड़में फैलनेवाली औरंगजेबकी सारी योजनाओंमें पूरी-पूरी [illegible]

हो गई। इस सबके फलस्वरूप अब मारवाड राज्यपर पहिलेका-सा सैनिक दबाव नही रहा। सभवत. इसी समय सुअवसर पाकर महाराणा जयसिह के वीर भाई भीमसिह और अर्थमत्री दयालदासने गुजरात तथा मालवाके शाही इलाको पर आक्रमण कर वहाँ बहुत लूट-पाट की थी।

वास्तविक युद्धकी दृष्टिसे तो इस राजपूत-युद्धमे दोनो पक्ष बराबर ही रहे, किसी भी एककी हार या जीत न हुई। परन्तु आर्थिक दृष्टिमे यह युद्ध महाराणाकी प्रजाके लिए ही अहितकर तथा हानिकारक साबित हुआ। मैदानोमे खडे हुए उनके खेतके खेत शत्रुओने नष्ट कर दिए। मेवाड-निवासी हारको टाल सकते थे, परन्तु धान्यकी इस कमीको दूर करना उनके लिए सम्भव नही था। अतएव अब दोनो ही पक्षवाले सन्धिके लिए उत्सुक हो उठे। महाराणा जयसिह स्वय १४ जून १६८१ ई०को शाहजादे मुअज्जमसे मिला और मुगलोके साथ उसने सन्धि कर ली, जिसकी खास-खास शर्तें ये थी –

(१) मेवाड राज्यसे वसूल की जानेवाली जजिया करकी रकमके बदले मे महाराणाने माण्डल, पुर और बदनौरके परगने मुगल साम्राज्यको दे दिए।

(२) मुगलोने मेवाड राज्यको छोड देनेका वादा किया। मेवाड राज्य जयसिहको वापिस दे दिया गया, उसे 'राणा'की उपा ध देकर औरगजेबने पच-हजारीका मनसबदार बना दिया।

इस प्रकार अन्तमे मेवाड राज्यको अपनी शान्ति एव स्वतन्त्रता पुन प्राप्त हुई। किन्तु मारवाडके भाग्यमे तो यह भी लिखा न था। अगले तीस वर्षो तक मारवाडमे निरन्तर युद्ध चलता ही रहा, जिससे वह सारा प्रदेश उजड गया। अशान्ति, अकाल तथा बीमारीने एक साथ ही उस प्रदेशको निर्जन भी बना दिया। उधर अकबरके शम्भूजीके साथ जा मिलनेसे मुगल साम्राज्यके लिए एक बिल्कुल ही नया तथा अनुपेक्षणीय खतरा उठ खडा हुआ। अब अपनी सारी सेनाएँ दक्षिणमे ही केन्द्रित करना औरगजेबके लिए अत्यावश्यक हो गया। औरगज़ेबको भी स्वय दक्षिण जाना पडा। अतएव मारवाड पर मुगलोका अधिकार ढीला पडने लगा और इसी तरह राठौडोकी मुक्ति हुई। आनेवाले युगोमे भी दक्षिणी युद्ध-क्षेत्रकी सैनिक परिस्थितिमे होनेवाले परिवर्तनोका प्रभाव मारवाडपर मुगलोके आधिपत्यकी दृढता एव ढिलाईमे सुस्पष्टरूपेण देख पडता था।

दुर्गादासके समान सुयोग्य मार्ग-प्रदर्शककी देख-रेखमे धीरे-धीरे राठौडो की युद्ध प्रणाली बदलने लगी। आगे चलकर मराठोने भी जिस प्रणाली को अपनाया था, बहुत-कुछ उसीको अपनाकर अब राठौड वीर शाही फौजोको सब ओरसे सता-सताकर उन्हे थका देने लगे। उस उजाड मरु भूमिमे शाही सेनानायक असहाय होकर राठौडोको चौथ देनेको तैयार हो जाते थे कि कमसे कम इस तरह तो उन्हे शान्ति प्राप्त हो। यो कोई तीस वर्ष तक यह युद्ध निरन्तर चलता ही गया। अगस्त १७०९ ई० मे जब विजयी अजीतसिहने अन्तिम बार पुन जोधपुरमे प्रवेश किया, और जब दिल्लीके मुगल सम्राट्ने भी उसे जोधपुरका शासक स्वीकार कर लिया, तब ही जाकर कही इस युद्धका अन्त हुआ।

भाग ४

अध्याय १०

मराठोंका उत्थान

१. १७वीं शताब्दीके दक्षिणके इतिहासकी प्रधान विशेषता

ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके पहले चतुर्थांशके अन्तमें जब महान् बहमनी राजवंशका अन्त हो गया, तब बहमनी राज्यको आपसमें बांटनेवाले आदिलशाह और निजामशाह ही उस बहमनी राजवंशके सुयोग्य उत्तराधिकारी बने। कुलबर्गाके सुलतानों द्वारा प्रारम्भ की गई इस्लामी राज्य और सभ्यताकी परम्पराओंका अहमदनगर और बीजापुरके केन्द्रोंमें पूर्णरूपेण पालन होने लगा। सत्रहवीं सदीके पहले चतुर्थांशमें निजामशाहोंका नाम सदैवके लिए मिट गया। अब तक दक्षिणके इन सुलतानी राज्योंका नेतृत्व अहमदनगर राज्य करता रहा था, अब उस नेतृत्वके भारको सभालनेके लिए बीजापुर तेजीसे आगे बढ़ा।

किन्तु सत्रहवीं शताब्दीके प्रारम्भसे ही इन दक्षिणी रणक्षेत्रमें एक नई सत्ताने पदार्पण किया था। मुगल बादशाहोंको अब दक्षिण-विजयके लिए अवसर मिला। यही एक तथ्य १७वीं सदीके दक्षिण-भारतीय इतिहासकी प्रधान विशेषता है। १६३६ ई० में बँटवारेकी सन्धिके अनुसार मुगल-साम्राज्यकी दक्षिणी सीमा स्पष्टरूपसे निर्धारित की जा चुकी थी। अगले २० वर्षोंमें बीजापुर अपनी उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच गया। तब उसका राज्य भारतीय प्रायद्वीपके दोनों समुद्री तटों तक फैल गया था। उसकी राजधानी कला, साहित्य, धर्म और विज्ञानकी उन्नतिका प्रधान केन्द्र बन गई थी। पर उस राज्यके दक्षिणी और पश्चिमी सीमा-सम्बन्धी सुल्तानोंमें इन उत्तराधिकारी शासकोंको युद्धभूमि और फौजी सवारीकी अपेक्षा दरबार और अन्तःपुर अधिक प्रिय थे। इस तरह स्पष्ट

शासक वीर नेता नही होता तब तक उस राज्यके विभिन्न सूबोके सैनिक-सूबेदार कभी उसकी आज्ञा नही सुनते है। इसलिए अन्तिम क्षमताशाली आदिलशाही सुलतानकी मृत्युके बाद (नवम्बर, १६५६) दक्षिणकी बची हुई मुसलमानो रियासतोका अनिवार्यरूपसे शान्ति व शीघ्रतापूर्वक मुगल साम्राज्यमे मिल जाना एक बहुत ही स्वाभाविक बात थी। किन्तु इसी समय दक्षिणी भारतकी राजनीतिमे एक नये तत्त्वके आनेसे वहाँकी सारी राजनैतिक परिस्थिति ही पूर्णतया बदल गई।

मराठोकी सत्ताका प्रादुर्भाव ही यह नई और बिलकुल ही अनपेक्षित विशेषता थी। औरगजेबके राज्याभिषेकसे कोई डेढ सौ वर्ष तक दक्षिणी भारतके इतिहासमे और ईसाकी १८वी सदीके अन्तिम ५० वर्षो तक उत्तरी भारतके इतिहासमे भी मराठोका प्रभुत्व बना रहा। ये मराठे अनादि कालसे दक्षिणी भारतमे रहते आए थे, परन्तु १३वी सदीके बाद अपनी ही जन्मभूमिमे स्थित अनको रियासतोमे बिखरे हुए विदेशी शासकोकी प्रजा बनकर उन्हे जीवन बिताना पड रहा था। उन्हे न तो कोई अपने स्वाधिकार ही प्राप्त थे और न उनका अपना कोई राजनैतिक सगठन ही था। इन बिखरे हुए मराठोको सुसगठित कर उन्हे एक जातिमे परिणत करना तथा उन्हीको लेकर मुगल साम्राज्यपर आघात कर उसे टुकडे-टुकडे करनेके लिए एक प्रतिभाशाली नेताकी आवश्यकता थी। औरगजेब-के समकालीन प्रतिद्वन्द्वी शिवाजीके रूपमे ही मराठोने अपने उस विलक्षण नेताको पाया।

ईसाकी १६वी सदीके अन्तमे जिस दिन सम्राट् अकबरने विन्ध्याचलसे आगेके दक्षिणी प्रदेशको जीतनेकी नीति प्रारम्भ की, तबसे लेकर कोई ९४ वर्ष बाद जब अन्तिम कुतुबशाही सुलतानसे जीती हुई उसकी राजधानी गोलकुण्डामे औरगजेबने विजयीके रूपमे प्रवेश किया, तब तकके इस कालमे बीजापुर और गोलकुण्डाके सुलतान कभी एक क्षणके लिए भी यह भूल न सके कि उनके राज्योको जीतकर उनका अस्तित्व मिटाने तथा उन्हे मुगल साम्राज्यमे मिलानेके लिए मुगल सम्राट् निरन्तर प्रयत्न कर रहे थे। ऐसे भयकर आपत्ति-कालमे अपनी रक्षाके लिए पहिले शिवाजीकी अनोखी प्रतिभा और बादमे शम्भूजीकी साहसपूर्ण वीरतामे ही उन्हे अपना एकमात्र सहारा दिखाई पडा। मराठोके विरोधमे मुगल-साम्राज्यका बीजापुर या गोलकुण्डाके साथ मित्रता कर संगठन करना मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे एक असम्भव बात थी।

संक्षेपमें दक्षिणी भारतकी विभिन्न शक्तियोंका संगठन इस प्रकार था। मुगलोंके आगे बढ़नेकी आशंकासे गोलकुण्डाका सुलतान तो एकबारगी शिवाजीसे जा मिला, किन्तु बीजापुरने अविश्वासके कारण बड़ी ही हिचकिचाहटके साथ यदा-कदा ही शिवाजीकी मित्रता स्वीकार की। जब बीजापुरपर मुगलोंके निरन्तर आक्रमण होने लगे और आदिलशाहकी स्थिति बहुत ही निराशापूर्ण हो गई तब ही कहीं बीजापुरके शासकका शिवाजीके साथ मेल हो पाया। किन्तु तत्काल ही यह आशंका होने लगी कि कपट-जालसे उसके किलों और प्रदेशोंको हड़प कर शिवाजी स्वयं समृद्ध हो रहा है, एवं बीजापुरके शासकों की यह मित्रता भी शीघ्र ही समाप्त हो गई। दक्षिणकी इन तीन शक्तियोंमेंसे इस कालके लिए तो हम कुतुबशाहको भुला सकते हैं, क्योंकि इस समय उसने कभी मुगलोंका विरोध नहीं किया। १६६६ ई०के बाद जब आदिलशाह द्वितीय शराबके नशेमें चूर रहने लगा, तब बीजापुरका निराशापूर्ण पतन आरम्भ हो गया। वजीरी प्राप्त करने और राजधानी तथा विलासी सुलतानपर अधिकार करनेके लिए विरोधी सरदार आपसमें लड़ने लगे। सन् १६७२ ई०में नाबालिग सुलतान सिकन्दरके गद्दीपर बैठते ही बीजापुरकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। इस समयके बाद बीजापुरका इतिहास वास्तवमें सुलतानके अभिभावकोंका ही इतिहास रह जाता है। शासनमें बहुत ही गड़बड़ी मच गई। इस अवसरसे लाभ उठाकर स्वतन्त्र शक्तिके रूपमें शिवाजीका उत्थान सम्भव हो सका।

दिल्लीके मुगल शासक शान्तिमय व्यवहार बनाए रखने या सन्धिकी शर्तोंपर ईमानदारीसे चलनेके लिए तैयार हैं, इन बातोंपर विश्वास करनेके लिए शिवाजी एक क्षणके लिए भी तैयार नहीं थे। इसी कारण दक्षिणमें मुगल प्रदेशोंपर अधिकार करनेका शिवाजीने कोई भी मौका नहीं छोड़ा। बीजापुरके साथ उनका सम्बन्ध कुछ दूसरे ही प्रकारका था। वह बीजापुरकी हानि करके ही अपना राज्य बढ़ा सकता था या इसे उजाड़ कर पाता था। किन्तु १६६२ ई०के लगभग आदिलशाही सन्धियोंके साथ उसका समझौता हो गया, इसके बाद शिवाजीने बीजापुरवालोंको सताना छोड़ दिया।

२. दक्षिणमें मुगलोंकी निर्बलताके कारण

मुगल साम्राज्यकी राजगद्दीका दावेदार बनकर लड़नेसे, १६५८ ई०

मे औरंगजेब दक्षिणसे रवाना हुआ, और अपने जीवनके अन्तिम पच्चीस वर्ष निरन्तर युद्धमे ही वहाँ विता देनेके लिए औरंगजेब मार्च १६८२मे वापस दक्षिण लौटा। इन बीचके इन चौबीस वर्षोंमे दक्षिणी सूबोपर पाँच सूबेदारोने शासन किया।

इन चौबीस वर्षोंमे दक्षिण भारतमे मुगल सेनाओको यदा-कदा ही सफलता मिली और तब भी वे कभी निर्णयात्मक विजय नही प्राप्त कर सकें। इस असफलताके कारण कुछ तो व्यक्तिगत थे और कुछ राजनैतिक। शाहआलम एक शर्मीला और अनुत्साही शाहजादा था। स्वभाव से ही वह पडोसियोके साथ शान्ति बनाए रखनेको उत्सुक रहता था तथा अन्त पुरके विलास और शिकारका प्रेमी था। इसके अतिरिक्त उसका प्रधान सेनानायक दिलेरखाँ बिना किसी प्रकारके सकोचके खुले-आम शाहजादेकी आज्ञाओकी अवहेलना करता था जिससे गृह-युद्धसे पीडित किसी भी प्रदेशके समान ही दक्षिणमे मुगल सेनाकी निर्बलता सुस्पष्ट हो जाती थी। शाहआलम और दिलेरखाँ हमेशा परस्पर-विरोधी उद्देश्योपर चलते थे, जिससे दक्षिणमे मुगलोकी विफलता निश्चित-सी हो जाती थी।

दूसरे शाही सेनानायक और अधिकारी शिवाजीके साथ इस लगातार युद्धसे विलकुल ऊब गए थे। जो हिन्दू अधिकारी इस समय मुगलोकी सेवा कर रहे थे उन्होने भी हिन्दू धर्मके इस दक्षिणी समर्थकके साथ गुप्त रूपसे भाईचारा स्थापित कर लिया और उनके मुसलमान सेनापति भी शान्तिमय जीवन व्यतीत करनेके लिए उसे रिश्वत देनेको प्रसन्नतापूर्वक तैयार थे। इसके अतिरिक्त बीजापुर और मराठोको हरानेके लिए दक्षिणके किसी भी मुगल सूबेदारको साम्राज्यकी ओरसे अत्यावश्यक सैन्य और धनका आधा भाग भी प्राप्त नहीं हुआ।

शाहजादे अकबरके विद्रोह और बादमे उसके शम्भूजीकी शरणमे जा पहुँचनेसे दिल्लीके तख्तके विरुद्ध एक और नया सकट उत्पन्न हो गया था। उसका सामना करनेके लिए औरंगजेबको स्वय दक्षिण जाना पडा। इस प्रकार उस ओरकी शाही नीतिमे एकाएक ही पूरा परिवर्तन हो गया। शम्भूजीकी शक्तिको नष्टकर साथ ही अकबरको भी बिलकुल अशक्त तथा निस्सहाय बना देना अब औरंगजेबका प्रधान कार्य हो गया।

३. महाराष्ट्र प्रदेश और वहाँके निवासी

मराठोकी जन्मभूमि तीन सुस्पष्ट भौगोलिक भागोमे बँटी हुई है।

पश्चिमी घाट और हिन्द महासागरके बीच एक लम्बी परन्तु सँकरी जमीन का हिस्सा बहुत दूर तक चला गया है। इसकी चौड़ाई कहीं कम और कहीं ज्यादा है। बम्बई और गोआके बीचके इस हिस्सेको कोंकण कहते हैं। गोआके दक्षिणमे कन्नड प्रदेश शुरू हो जाता है। इसे कोंकण प्रदेशमे हमेशा निश्चित रूपसे बहुत गहरी बरसात होती है। प्रति वर्ष यहां सौसे दो सौ इंच तक वर्षा होती है। यहांकी मुख्य उपज चावल है। आम, केले और नारियलके बाग यहां बहुतायतासे पाए जाते हैं। घाट पार करनेके बाद पूर्वकी ओर लगभग २० मील चौड़ा धरतीका एक लम्बा टुकड़ा पड़ता है। इसे मावल कहते हैं। यहांकी धरती बहुत ही ऊँची-नीची है। दूर तक चली जानेवाली गहरी टेढ़ी-मेढ़ी घाटियोमे यत्र-तत्र समतल भूमि पाई जाती है। इससे भी आगे पूर्वकी ओर बढ़नेपर पश्चिमी घाटकी पहाड़ियोकी ऊँचाई कम होने लगती है और नदियोके कछार चौड़े और समतल होने लगते हैं। यहीसे 'देश' नामक प्रदेश प्रारम्भ होता है। दक्षिणके मध्यमे स्थित दूर-दूर तक फैला हुआ यह एक लम्बा-चौड़ा उपजाऊ मैदान है जहांकी मिट्टी काली होती है।

जहां अपने सीधे-सादे स्वरूप द्वारा प्रकृति स्वयं सादगीकी शिक्षा देती हो, उस देशमे किसी प्रकारकी विलासिताका पाया जाना, ब्राह्मणोंको छोड़कर अन्य उच्च वर्णवालोंको विद्याध्ययनके लिए आवश्यक अवकाश मिलना, तथा कलात्मक विकासकी बात तो दूर रही किन्तु वहां शिष्ट समाजमें चतुरतापूर्ण व्यवहारका भी पनपना सर्वथा असम्भव है। साथ ही ऐसे प्रदेशके इन अभावोंकी पूर्ति वहांकी जलवायु तथा धरतीसे उत्पन्न होनेवाले अनेकों आवश्यक गुणोंसे होती है। वहांके निवासियोंमें आत्म-विश्वास, साहस, अध्यवसाय, कठोर सादगी, सीधापन और सामाजिक समताके साथ ही मानवोचित गर्व भी पूर्णरूपेण पाया जाता है। कार्य-शीलता, आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और समता-प्रेम, आदि गुण उनके चरित्रकी आधारभूत विशेषताओंके रूपमें मिलते हैं।

ईसाकी १६वीं शताब्दीके मराठोंमे दूसरी धनवान् और अधिक सभ्य जातियोंकी अपेक्षा सामाजिक भेदभाव बहुत ही कम था। समता की ऐसी ही भावनाएँ धार्मिक प्रवृत्तियों द्वारा भी प्रेरित होती थी। पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदियोंके लोकप्रिय सन्तोंने जन्मकी श्रेष्ठतासे अपेक्षा चरित्रकी पवित्रताको अधिक महत्त्व दिया था। उनके विचारानुसार ईश्वरके सामने सारे सच्चे भक्त एक ही समान थे।

प्रारम्भिक मराठा समाजकी सादगी और एकता उनकी भाषा और साहित्यमे भी प्रतिविम्बित होती थी। उनका भाषा-साहित्य अविकसित और अल्प होते हुए भी अत्यधिक लोकप्रिय था। इस प्रकार शिवाजी द्वारा राजनैतिक एकता स्थापित होनेसे पहले ही, १७वी शताब्दीके महाराष्ट्रमे समान भाषा, समान धर्म और समान जीवनसे परिपुष्ट एक जातिका निर्माण हो चुका था।

शिवाजीकी सेनामे प्रधानतया मराठा और कुनबी जातिके ही सैनिक थे। ये जातियाँ स्वभावसे ही सीधी, निष्कपट, स्वच्छन्द, वीर और परिश्रमी होती हैं। ईसाकी १४वी शताब्दीमे जब मुसलमानोने दक्षिणी भारतको जीत लिया और उसीके फलस्वरूप जब महाराष्ट्रके अन्तिम हिन्दू राज्यका भी अन्त हो गया, तब इस देशके निवासियोमेसे योद्धा जातियोके छोटे दल अपने विभिन्न नायकोके नेतृत्वमे सगठित हो गए, और जब-जब देशके नए मुसलमान शासकोको आवश्यकता पडी तब-तब उन्होने द्रव्य देकर इन्ही सेनानायकोको उनके सैनिक साथियोके साथ अपनी सहायतार्थ बुलाया। इस तरह अपने पडोसी मुसलमान राज्योकी सहायता करके कई मराठा घरानोने धन और शक्ति प्राप्त की और वीर साहसी योद्धा होनेका यश भी कमाया।

४. शाहजी भोंसले; उनका जीवन-चरित्र

इसी प्रकारका भोसले नामक एक खानदान आरम्भमे पूना जिलेके अन्तर्गत पाटस नामक तालुकामे रहता था, और वहीके दो गाँवोकी पटेली भी करता था। वे खेती करते थे। अपने सीधे सच्चे चरित्र तथा धार्मिक उदारताके कारण आसपासके प्रदेशमे उन्हे बहुत ही सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। उन्हे अपने खेतोमे कुछ गडा हुआ धन भी प्राप्त हुआ, जिससे वे आवश्यक शस्त्र और घोडे, आदि खरीद सके। १६वी सदीके अन्त तक वे निजामशाही राज्यके विदेश-निवासियोकी सेनाके नायक बन गए। मालोजीके ज्येष्ठ पुत्र शाहजी भोसलेको भी ऐसे ही नायकका पद मिला था। उनका जन्म १५९४ ई० मे हुआ था। बाल्यकालमे ही उनका विवाह अहमदनगर राज्यके एक बडे हिन्दू सरदार, सिन्दखेडके प्रतिष्ठित सामन्त लखूजी यादवरावकी पुत्री जीजाबाईके साथ हुआ था। निजामशाहके वजीर मलिक अम्बरके शासन-कालमे शाहजी सम्भवत पहिले-पहल अपने कुटुम्बकी ही छोटी-सी सेनाके नायकके रूपमे नौकर हुए थे। मई १६२६मे

मलिक अम्बरकी मृत्युके बाद बडी तेजीके साथ इस राज्यका पतन होने लगा। दरबारमें आए दिन हत्याएँ होने लगी। ऐसे संकटकालमें शाहजीने पहिले तो निजामशाही सरकारका साथ दिया और फिर वे मुगलोंसे जा मिले। कुछ समय बाद मुगलोंको छोडकर बीजापुरसे लडे और बादमें वे बीजापुरकी ओर गए। अन्तमें १६३३में सह्याद्रि श्रेणीके एक पहाडी किलेमें उन्होंने नाम-मात्रके निजामशाहके एक शाहज़ादेको गद्दीपर बिठाकर उसका राज्याभिषेक किया। पूना और चाकणसे लेकर बालाघाट तकके सारे प्रदेश तथा जुन्नर, अहमदनगर, संगमनेर, त्र्यम्बक और नासिक, आदि स्थानोंके आसपासका सारा निज़ामशाही इलाका छीन लिया। उस सुलतानके नामसे तीन वर्ष (१६३३-३६) तक उन्होंने इस राज्य-भारको सम्हाला। जुन्नर शहर उस राज्यकी राजधानी बना। अन्तमें १६३६में शाहजीके विरुद्ध एक बडी मुगल सेना भेजी गई, जिसने शाहजीको बुरी तरह हराया और उन्हें विवश होकर अपने आठ किले मुगलोंको दे देना पडे। अब वे महाराष्ट्र छोडकर बीजापुर चले गए और फिरसे उन्होंने वहाँ नौकरी कर ली।

५. शिवाजीका बाल्यकाल; उनकी शिक्षा तथा चरित्र

शाहजी और जीजाबाईके दूसरे पुत्र शिवाजीका जन्म जुन्नर शहरके पास ही शिवनेरके पहाडी किलेमें सन् १६२७ ई०में हुआ था। १६३६के अन्तमें शाहजी पुनः बीजापुर राज्यकी नौकरी करने लगे और उनके कुछ ही समय बाद अपने इस नये स्वामीके लिए नये प्रदेश जीतने और स्वयं अपने लिए नई जागीर प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पहिले वे तुङ्गभद्रा और मैसूरके पठारकी ओर भेजे गए और वहाँसे वे मद्रासके समुद्री तटकी ओर भी गए। शाहजीकी प्रिय पत्नी तुकाबाई और उसी पत्नीका पुत्र व्यंकोजी भी इन चढ़ाईके समय शाहजीके साथ थे। जीजाबाई और शिवाजीको शाहजीने पूना भेज दिया था, जहाँ उनकी जायदादके कर्मचारी दादाजी कोण्डदेव उनकी भी देख-रेख करते थे।

अपने पतिकी इस उपेक्षाके कारण जीजाबाईकी मानसिक प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गईं और उनकी स्वाभाविक धार्मिक भावनाएँ अधिक सुदृढ़ बन गईं। इस प्रवृत्ति तथा भावनाको शिवाजीने अपनी माताहीसे ही पाया था। शिवाजीका बाल्यकाल एकाकी ही बीता, उनके साथ खेलनेको कोई साथ-साथी भी नहीं था उनके कोई दूसरा भाई-बहन न था और न

पिताका सहवास ही उन्हे प्राप्त हो सका। अपने जीवनके इस एकाकीपनके कारण ही माँ-बेटे अधिक निकट आ गए। शिवाजीका मातृ-प्रेम बढता ही गया, यहाँ तक कि वे अन्तमे अपनी माताको देवीके समान पूजने लगे थे। अपने बाल्य-कालसे ही शिवाजीने अपने पैरोपर खडा होना सीखा था। दूसरे किसीकी सहायताके बिना ही अपने विचारोको कार्यरूपमे परिणत करना वह जानते थे। अपने किसी उच्च अधिकारीके विशेप निर्देशके बिना अपनी प्रेरणासे ही आगे बढना उन्हे आता था। इस प्रकारकी जो शिक्षा उन्हे मिली थी वह वास्तवमे प्रधानतया व्यावहारिक थी। घुड-सवारी तथा युद्ध, आदि अनेकानेक वीरोचित कार्योमे वे पूर्ण दक्ष हो गए। उन्होने कहानियाँ और गीत सुन-सुनकर ही हिन्दू धर्मके महान् पुराणोका ज्ञान प्राप्त कर लिया और उन्हीसे शिवाजीने राजनैतिक और आचरण-सम्बन्धी सारे उपदेश भी ग्रहण किए। शिवाजीको धार्मिक उपदेश और कीर्तन सुननेका भी बडा चाव था। जहाँ कही भी वे जाते थे, वहाँ हिन्दू और मुसलमान सन्तोका सत्सग करते थे।

मावल अथवा पूना जिलेका यह पश्चिमी भाग सह्याद्रि पहाड-श्रेणीके तलेके घने जगलोंके किनारे-किनारे दूर तक चला गया है। यहाँपर मावले किसान रहते है, जो बहुत ही स्वस्थ परिश्रमी और साहसी होते है। शिवाजीने अपने प्रारम्भिक साथियो, सच्चे अनुयायियो और वीर सैनिको-को इन्हींमेसे चुना था। अपनी ही उम्रवाले मावले नायकोके साथ-साथ युवा शिवाजी भी सह्याद्रिकी चोटियो और नदी किनारेके जगलोमे घूमते-फिरते थे। यो ही उन्हे परिश्रमपूर्ण एकाकी कठोर जीवनका अभ्यास हो गया था। धार्मिक आचरणके साथ ही साथ चरित्रकी दृढता भी शिवा-जीने प्रारम्भसे ही प्राप्त कर ली थी। उन्हे स्वतन्त्र जीवनसे प्रेम हो गया था एव मुसलमानोके आश्रयमे रहकर विलासी जीवन बितानेके विचार-मात्रसे ही उन्हे घृणा हो गई थी। १६४७ ई०मे दादाजी कोण्डदेवका देहान्त हो गया, जिससे बीस वर्षकी अवस्थामे ही शिवाजीको पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई।

६. शिवाजीकी प्रारम्भिक विजयें

सन् १६४६ ई०से बीजापुर राज्यके इतिहासमे एक महान् आपत्ति-काल प्रारम्भ होता है। बीजापुरका सुलतान मुहम्मद आदिलशाह सख्त बीमार हो गया और अपने जीवनके अगले दस वर्ष उसने वैसी ही रोगी

की दशामें बिस्तरमें पड़े-पड़े बिताए। इन दस वर्षोंमें वह राज-काजकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे सका। इस अपूर्व अवसरसे शिवाजीने पूरा लाभ उठाया। उन्होंने चालाकीसे तोरणा किलेको वहांके किलेदारके हाथसे छीन लिया। इस किलेमें बीजापुर राज्यके खजानेके कोई दो लाख हूण शिवाजीके हाथ लगे। तोरणासे कोई पांच मील दूर पूर्वमें पहाड़ियोंकी इसी श्रेणीकी एक चोटीपर शिवाजीने राजगढ़ नामक एक नया किला बनवाया। बादमें उन्होंने बीजापुरके एक प्रतिनिधिके पाससे कोण्डानाका किला भी ले लिया। दादाजीकी मृत्युके बाद शिवाजीने शाहजीकी पश्चिमी जागीरके सभी भागोंको अपने अधिकारमें करना आरम्भ किया। एक ही सत्ताके अधिकारमें सारे राज्यको सुसंगठित करना उनका उद्देश्य था।

२५ जुलाई १६४८ ई०को बीजापुरी सेनानायक मुस्तफाखांने शाहजी-को कैदकर उनकी सारी जायदाद तथा उनकी सारी सेनाको जब्त कर लिया। इस समय मुस्तफाखां दक्षिण अर्काटके जिलेमें जिंजी नामक किले-का घेरा डाले हुए था।

पांवोंमें बेड़ियां डालकर शाहजीको बीजापुर लाया गया और एक अमीरकी देख-रेखमें नजरबन्द ही रहे। अन्तमें बीजापुरी सरदार अहमद-खांने बीचमें पड़कर समझौता करवाया और जब शाहजीने बंगलोर, कोण्डाना और कन्दर्पीके तीन किले बीजापुर सुलतानको भेंट करनेका वादा किया, तब १६ मई १६४९को वे कैदसे छूट पाए।

सतारा जिलेके उत्तर-पश्चिमी कोनेके बिल्कुल छोरपर जावली नामक गांव है जो उस समय एक काफी बड़े राज्यका केन्द्र था। लगभग सारा जिला ही इस राज्यके अधीन था। उस राज्यका स्वामी मोरे नामक एक मराठा घराना था, जिसका खान्दानी खिताब 'चन्द्रराव' था। उस राज्यकी सेनामें मावलोंके समान ही परिश्रमी पहाड़ी जातिके कोई १२,००० पैदल सिपाही थे।

अपनी भौगोलिक स्थितिके कारण जावलीका यह राज्य दक्षिण और दक्षिण-पश्चिमी दिशामें शिवाजीकी महत्त्वाकांक्षाके मार्गमें एक बड़ी बाधा बना हुआ था। इसलिए शिवाजीने अपने नादेदार रघुनाथ बल्लाळ कोरडेको चन्द्ररावकी हत्या करनेके लिए भेजा। चन्द्ररावके साथ कोई राजनैतिक सन्धि करनेके बहाने उससे मिलकर रघुनाथने चन्द्ररावकी हत्या कर दी। ज्योंही चन्द्ररावके मारे जानेकी सूचना शिवाजीको मिली उन्होंने

सेना सहित जावलीपर आक्रमण कर दिया (१५, जनवरी १५५६)। उनके साथ किसी भी सेनानायकके न होते हुए भी जावलीकी सेना छ घण्टे तक आत्मरक्षाके लिए लडती रही, परन्तु अन्तमे शिवाजीकी ही जीत हुई। जावलीका पूरा राज्य अब शिवाजीके अधिकारमे आ गया। जावली-से दो मील पश्चिममे शिवाजीने प्रतापगढ नामक एक नया किला बनवाया और वहाँ अपनी इष्टदेवी भवानीकी स्थापना की। रायगढका किला तब भी मोरे कुटुम्बके अधिकारमे था, एव अप्रैल १६३६मे शिवाजीने यह किला भी जीत लिया। रायगढका यही किला आगे चलकर शिवाजीके राज्यकी राजधानी बना।

७. मुगलोंके साथ शिवाजीका प्रथम युद्ध; १६५७ ई०

४ नवम्बर १६५६को मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु हुई और उसके साथ ही औरगजेब बीजापुरपर आक्रमण करनेके लिए बडे जोरोसे तैयारी करने लगा। जितने भी आदिलशाही सरदारो या अन्य अफसरोको फुसला-कर वह अपने पक्षमे मिला सका उन्हे उसने मिलाया। यह सारी हालत देखकर शिवाजीने भी अपनी नीति बदली और बीजापुर राज्यकी सहायता करना उन्हे अधिक उचित एव आवश्यक जान पडा। बीजापुरकी ओरसे औरगजेबका ध्यान बटानेके लिए वे अब मुगलोके दक्षिणी सूबेके दक्षिण-पश्चिमी कोनेपर आक्रमण करने लगे।

तीन हजार घुडसवारोको लेकर मानाजी भोसलेने भीमा नदीको पार-कर मुगल राज्यके चमारगुण्डा तालुकाके गाँवोको लूटा। उसी समय काशी नामक दूसरा सेनानायक भी भीमा पार कर रायसीन तालुकाके गाँवोको लूट रहा था। अप्रैल १६५७ समाप्त होते-होते ये दोनो ही मुगल साम्राज्यके दक्षिणी सूबेके प्रधान नगर अहमदनगरकी चारदीवारी तक लूटमार कर वहाँ भी उत्पात मचाने और सर्वत्र आतक फैलाने लगे। अहमदनगर किलेके नीचे ही बसे पेठ (नगर) को लूटनेका मराठोने प्रयत्न किया था, किन्तु वहाँ नियुक्त मुगल सैनिकोके ठीक समय पर जा पहुँचनेसे वे सफल नही हो सके। उसी समय शिवाजी उत्तरमे जुन्नर तालुकाको लूटनेमे व्यस्त थे। ३० अप्रैलकी अँधेरी रातमे वे रस्सोकी सीढियो द्वारा जुन्नर शहरकी चारदीवारीको चुपकेसे फाँदकर अन्दर जा पहुँचे और वहाँके पहरेदारोको मारकर तीन लाख हूण, दो सौ घोडे और

बहुतसे बहुमूल्य कपड़े व जेवर ले गए। इन उपद्रवोंका हाल सुनकर औरंगजेबने सहायतार्थ और भी सेना अहमदनगर जिलेमें भेजी। तीन हजार घुड़सवार लेकर वहाँ जानेका नसीरीखाँ और इरजखाँको हुक्म दिया गया। परन्तु इससे पहिले ही अहमदनगरके किलेसे रवाना होकर मुल्तफत-खाँ चमारगुण्डा पहुँचा और २८ अप्रैलके दिन मानाजीको हराकर वहाँसे मार भगाया।

किन्तु जब उधर उत्तरी पूना प्रदेशमें मुगलोंका दबाव बहुत अधिक बढ़ गया, तब शिवाजी अहमदनगर जिलेकी ओर खिसक गए और वहाँ लूटमार आरम्भ कर दी। मईके अन्त तक नसीरीखाँ भी किसी प्रकार घटना-स्थलपर पहुँच गया। राहमें कहीं भी ठहरे बिना ही उसने शिवाजी-की सेनापर एकाएक आक्रमण कर उसे घेर-सा लिया। कई मराठे मारे गए, अनेकों घायल हुए और बाकी रहे भाग खड़े हुए (४ जून)। मराठों-के इन आक्रमणोंके जवाबमें शिवाजीके प्रदेशपर सब तरफसे चढ़ाई कर वहाँके गाँवोंको उजाड़ने, लोगोंको निर्दयतापूर्वक मार डालने और उन्हें पूर्णतया लूटनेके लिए, औरंगजेबने अपने अधिकारियोंको विशेषरूपसे आदेश दिया।

सन् १६५७ ई०के पिछले महीनेमें कई एक महत्त्वपूर्ण बातें हुईं। मुगल सिंहासनके लिए गृहयुद्धकी सम्भावनाएँ सुस्पष्ट हो गईं और शाहजादा औरंगजेब दिल्लीके लिए चल पड़ा। उधर मुगलोंके साथ हुए पिछले युद्ध में बीजापुरकी सेनाकी विफलताके कारणोंको लेकर वहाँके सरदारोंमें आपसी झगड़े उठ खड़े हुए थे, जिनके फलस्वरूप बीजापुरके वजीर खान मुहम्मदकी हत्या हुई। अतएव अब अपनी महत्त्वाकांक्षाओंको पूरी करनेमें शिवाजीकी राहमें कोई भी बाधाएँ नहीं रह गई थीं। पश्चिमी घाटके पहाड़ोंको पार कर वे कोंकणमें जा धमके। समुद्री तटका यह उत्तरी भाग, जो आजकल थाणा जिला कहलाता है, तब कल्याण जिलेके अन्तर्गत पड़ता था। वहाँका शासन नवायत (नए आए हुओंकी) जातिके मुल्ला अहमद नामक एक अरबके हाथमें था, जिसकी गिनती बीजापुरके प्रमुख सरदारोंमें होती थी। कल्याण और भिवण्डीके समृद्ध शहरोंके चारों ओर शहरपनाह न थी एवं शिवाजीने बिना किसी कठिनाईके उनपर अधिकार कर लिया (२४ अक्तूबर १६५७)। वहाँ अत्यधिक धन और बहुतसी व्यापारिक सामग्री शिवाजीके हाथ पड़ी। ८ जनवरी १६५८को माहुलीके किलेको भी शिवाजीने जीत लिया। यहाँसे दक्षिणमें कोलाबा जिलेपर

अधिकार करते समय शिवाजीको वहाँके स्थानीय छोटे-छोटे सरदारोसे भी सहायता मिली। ये लोग मुसलमानोके आधिपत्यका अन्त कर देना चाहते थे, अतएव अपने जिलेमे आनेके लिए उन्होने शिवाजीको आग्रहपूर्वक लिख भेजा। शिवाजीने भी तुरन्त ही कल्याण और भिवण्डीको अपनी जल-सेना तथा जहाजोके ठहरनेका प्रमुख केन्द्र बना दिया।

८. शिवाजीका बीजापुरके अफजलखां को मारना, १६५९ई०

अपने सीमा-प्रदेशपर मुगल-आक्रमणकी निरन्तर बनी रहनेवाली आशकाके तब कुछ समयके लिए दूर हो जानेपर सन् १६५९ ई०मे बीजापुर के शासक अपने विभिन्न सरदारोको दबानेके लिए प्रयत्नशील हुए। अफजलखाँ उपाधिसे भूषित अब्दुल्ला भटारी नामक व्यक्तिको शिवाजीके विरुद्ध भेजी जानेवाली सेनाका नेतृत्व सौपा गया। अफजलखॉ की गणना बीजापुरके प्रथम श्रेणीके सरदारोमे होती थी। उसने कर्नाटकके युद्धमे तथा मुगलोकी पिछली चढाईके समय बडी वीरता और युद्ध-कौशल दिखाए थे। किन्तु इस बार अफजलखांके साथ केवल १०,००० घुडसवार ही भेजे जा सके। उधर सर्वसाधारणमे प्रचलित विवरणके अनुसार शिवाजीके मावले पैदलोकी सख्या ६०,०००के लगभग बतायी जाती थी। इसलिए शिवाजीके साथ मित्रताका ढोग रचकर आदिलशाहसे उसके पूर्वापराध क्षमा करवानेका झाँसा दे शिवाजीको पकडने अथवा मार डालनेकी सलाह बीजापुरकी राजमाताने अफजलखांको दी थी।[१] वाई पहुँचकर अफजलखॉने अपने कर्मचारी कृष्णाजी भास्करके द्वारा शिवाजीको एक बहुत ही ललचा देनेवाला सदेश भेजा। उसने लिखा कि—"बहुत वर्षों तक तुम्हारे पिताके साथ मेरी घनिष्ठ मैत्री रही है, अतएव तुम मेरे लिए

---

१ राजापुरसे रेविंग्टनने कम्पनीको १० दिसम्बर १६५९के दिन लिखा था —"इस वर्ष राजमाताने १०,००० घुडसवार और पैदल लेकर अब्दुल्लाखां को शिवाजीके विरुद्ध भेजा। वह जानती थी कि इतनी थोडी सेनाको लेकर ही शिवाजीका सामना करना सभव नही था, अतएव शिवाजीके प्रति मित्रताका ढोग रचनेकी उसने सलाह दी थी, और वैसा ही उसने किया। और उधरसे (शिवाजीने) भी उसके प्रति कपट प्रेम दिखाया, शिवाजीको इस भेदका पता लग गया था या केवल सन्देहके कारण ही ऐसा किया, यह निश्चितरूपेण ज्ञात नही हो सका है।" (फैक्टरी रेकर्ड्ज, राजापुर)।

कदापि अपरिचित नहीं हो। तुम आकर मुझसे मिलो। मैं अपना पूर्ण प्रभाव डालकर तुम्हारे अधिकारमें अब तक आए हुए सारे किलों और कोंकणके सारे प्रदेशपर तुम्हारा पूर्णाधिपत्य आदिलशाह द्वारा स्वीकृत करवा दूँगा।"

शिवाजीने अफजलके दूत कृष्णाजी भास्करका यथायोग्य सम्मान किया। रात्रिमें उससे गुप्त रूपसे मिलकर शिवाजीने शपथें दे हिन्दू और विशेषतया पुरोहित ब्राह्मण होनेके नाते खानके सच्चे उद्देश्यका पूरा-पूरा भेद खोल देनेके लिए उससे प्रार्थना की। जब अफजलखाँ सीराके किलेको घेरे हुए था, तब उसने वहाँके राजा कस्तूरी रंगाका नाहक वध किया था, जो शरण माँगनेके लिए उसके पास पड़ाव पर आया था। यह एक बहुत ही सुज्ञात घटना थी। कृष्णाजीने इतना ही संकेत किया कि खानके मनमें कुछ कपटपूर्ण षड्यन्त्रकी भावना अवश्य है। शिवाजीने कृष्णाजीको वापस लौटा दिया, और उनके साथ ही अपने कर्मचारी पन्ताजी गोपीनाथको भी अफजलखाँके पड़ावपर भेजा। पन्ताजीने वहाँ जाकर अफजलके कर्मचारियोंको बहुत-सा द्रव्य घूँसमें देकर इस बातका पता लगा ही लिया कि भेंटके समय ही शिवाजीको बंद कर लेनेका अफजलने पूरा-पूरा प्रबंध कर लिया था, क्योंकि वह जानता था कि शिवाजी जैसे अत्यधिक चालाक व्यक्तिको आमने-सामनेके खुले युद्धमें पकड़ सकना कदापि संभव नहीं था।

प्रतापगढ किलेके नीचे एक छोटी-सी पहाड़ीकी चोटीपर, जहाँसे कयना नदीकी घाटी साफ दिख पड़ती थी, वहाँ भेंट होनेका निश्चय हुआ और तदर्थ वहाँ एक बहुमूल्य सुशोभित शामियाना भी लगाया गया। प्रमुख व्यक्ति, उनका ब्राह्मण दूत और उनके दो सशस्त्र शरीर-रक्षक यों कुल मिलाकर चार-चार व्यक्ति दोनों पक्षोंके उस डेरेमें उपस्थित थे। हारकर आनेवाले विद्रोहीकी तरह शिवाजी ऊपरसे बिलकुल ही शस्त्र-विहीन दिखाई पड़ रहे थे। उधर अफजलखाँकी कमरमें एक तलवार बँधी हुई थी। परन्तु दो अंगूठियों द्वारा अंगुलियोंमें फँसा हुआ एक तेज बघनखा शिवाजीके बाएँ हाथमें छिपा हुआ था, और दाहिने हाथकी बाँहके नीचे एक पतला किन्तु तेज बिछुआ छिपा हुआ था।

साथी सब नीचे ही खड़े रहे। शिवाजी ऊँचे मञ्चपर चढ़े और उन्होंने झुककर अफजलको प्रणाम किया। खान गद्दीसे उठा और कुछ कदम आगे

बढकर शिवाजीको गले लगानेके लिए उसने अपने दोनो हाथ फैलाए। दुबला पतला और ठिंगना मराठा अपने शत्रुके कन्धो तक ही पहुँच पाता था। एकाएक अफजलने अपने बाहुपाशको जकड दिया और अपने बाएँ हाथसे शिवाजीकी गर्दनको दृढतापूर्वक पकडकर दाहिने हाथसे उसने लम्बी और सीधी धारवाली अपनी कटार खीची और शिवाजीके बगलमे मारी। परन्तु शिवाजीके अगरखेके नीचे छिपे हुए कवचके कारण अफजलका यह आघात विफल हुआ। दबती हुई गर्दनके दर्दसे पहले तो शिवाजी कराह उठे, परन्तु दूसरे ही क्षण वह सम्हलकर अचानक आई हुई इस आपत्तिसे बचनेके लिए तत्पर हुए। खानकी कमरके पीछेसे अपना बायाँ हाथ डालकर शिवाजीने एक ही वारमे लोहेके उस तेज बघनखेसे अफजलके पेटको फाड डाला, जिससे अँतडियाँ बाहर निकल पडी, और तब शिवाजीने अपने दाहिने हाथसे अफजलकी बगलमे वह बिछुआ भी भोक दिया। घायल खानके ढीले बाहु-पाशसे शिवाजीने अपने आपको छुडा लिया, और उस मचसे नीचे कूदकर शिवाजी अपने साथियोकी ओर बाहर दौडे।

खान चिल्ला उठा, "धोखा! दगाबाजी! मार डाला! बचाओ! बचाओ!!!" दोनो पक्षके सेवक दौड पडे। सिद्धहस्त तलवार चलानेवाले सैय्यद बन्दाने, जो अफजलके साथ आया था, शिवाजीका सामना किया ओर अपनी लम्बी व सीधी तलवारके एक ही वारसे उसने शिवाजीकी पगडी काट डाली, और पगडीके नीचेके फौलादी टोपपर भी एक गहरा निशान बन गया। तब जीवमहलाने सैयदका दाहिना हाथ काट दिया और अन्तमे उसे मार डाला। शम्भूजी कावजीने अफजलका सिर उतारकर विजयके गर्वके साथ उसे शिवाजीके सामने पेश किया।

इस विपत्तिसे छुटकारा पाकर शिवाजीने अपने दोनो साथियो सहित प्रतापगढकी चोटीका रास्ता लिया और वहाँ पहुँचकर तोप छोडी। नीचेकी घाटियोमे छिपी हुई मराठा सेना इसी सकेतकी बाट जोह रही थी। मोरो त्रिम्बक और नेताजी पालकरकी सेनाएँ तथा हज़ारो मावले एकाएक चारो ओरसे बीजापुरी पडावपर टूट पडे। अफजलके कर्मचारी और सैनिक सभी अपने सेनानायककी इस मृत्युका समाचार सुनकर बहुत ही भयभीत हो रहे थे। इस अनजाने प्रदेशमे, जहाँकी हर एक झाडीमे जीवित शत्रु भरे हुए प्रतीत होते थे, वे इस आकस्मिक आक्रमणमे और भी अधिक घबडा उठे। बीजापुरी सेनाका पूर्ण सहार हुआ,

बहुत भयङ्कर हत्याकाण्ड हुआ, और पराजित सेनाका बहुत धन शिवाजी-के हाथ लगा।

१० नवम्बर १६५९को अफजलके वध और उसकी सेनाके संहार द्वारा प्राप्त विजयसे उन्मत्त मराठे अब दक्षिणी कोंकण और कोल्हापुरके जिलोंमें जा घुसे, पन्हालाके किलेपर उन्होंने अधिकार कर लिया, एक और बीजापुरी सेनाको हराया और दिसम्बर १६५९से लेकर फरवरी १६६० तक बड़ी दूर-दूरके प्रदेशोंको उन्होंने जीता।

९. शिवाजीका पन्हालाके क़िलेमें घिर जाना

सन् १६६० ई०के आरम्भमें आदिलशाह द्वितीयने अपने हबशी गुलाम सिद्दि जौहरको, जो अब सलाबतखाँ कहलाता था, एक सेना सहित शिवाजीको दबानेके लिए भेजा। सिद्दी जौहर द्वारा खदेड़े जानेपर शिवाजीने पन्हालामें आश्रय लिया (२ मार्च १६६०), तब तो १५,००० सैनिकोंको लेकर सिद्दी जौहरने पन्हालाको जा घेरा। परन्तु शिवाजीने लाञ्च देकर जौहरको अपनी ओर मिला लिया और तब यह घेरा केवल दिखानेके लिए ही चलता रहा। किन्तु मृत अफजलके पुत्र फजलखाँने तब भी पूर्ण शक्तिके साथ मराठोंपर आक्रमण किया। पासकी एक पहाड़ीपर अधिकार करके उसने पन्हालाकी रक्षा कर सकना सर्वथा असम्भव बना दिया। तब तो १३ जुलाईकी अँधेरी रातमें अपनी आधी सेनाको साथ लेकर शिवाजी किलेसे निकल गए और बीजापुरी सेनाके पीछा करनेपर भी वे सफलतापूर्वक बचकर विशालगढ़ जा पहुँचे, जो वहाँसे कोई २७ मील पश्चिममें है। परन्तु शिवाजीकी इस सफलताका श्रेय बाजी प्रभु और उसके सैनिकोंको था, जिन्होंने गजपुरकी घाटीमें शिवाजीका पीछा करनेवालोंका डटकर सामना किया और लड़ते हुए एक-एक कर प्राय वे सारे ही मारे गए। पन्हालामें पीछे रहे सैनिकोंने आत्मसमर्पण कर २२ सितम्बरको वह किला जौहरको सौंप दिया।

१०. शायस्ताखाँका पूना और चाकणपर अधिकार करना

दक्षिणी मुगल सूबेका नया सूबेदार शायस्ताखाँ सन् १६६० ई०के प्रारम्भमें शिवाजीपर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगा। उसने इस बातका प्रयत्न किया कि जब वह स्वयं उत्तरकी ओरसे शिवाजीपर आक्र-

मण करे उसी समय बीजापुर भी दक्षिणकी ओर मराठोके प्रदेशपर हमला करे। एक बडी सेनाके साथ २५ फरवरीको अहमदनगरसे रवाना होकर ९ मईके दिन शायेस्ताखाँने पूना नगरमे प्रवेश किया।

१९ जूनको पूनासे चलकर शायेस्ताखाँ २१ जूनको वहाँसे १८ मील उत्तरमे चाकणके पास पहुँचा, सैनिक दृष्टिसे उस किलेका बाहरी निरीक्षण किया और तब उस किलेकी दीवालोकी ओर खाइयाँ खुदवाने लगा। १५ अगस्तको चाकणके किलेपर मुगलोका अधिकार हो गया। किन्तु यह शाही विजय बहुत ही मँहगी पडी, कोई ३६८ सैनिक मारे गए और ६०० घायल हुए। चाकणको जीतकर अगस्त १६६० ई०के अन्तमे शायेस्ताखाँ पूना लौट आया। बरसात शुरू हो जानेसे अब वह अधिक कुछ नही कर सका और सारी वर्षा ऋतु उसे पूनामे ही बितानी पडी।

अगले वर्ष १६६१के आरम्भमे शायेस्ताखाँका ध्यान उत्तर कोकणके कल्याण जिलेकी ओर गया, जहाँ पिछले अप्रेलसे ही इस्माइलके नेतृत्वमे कोई ३,००० सैनिकोकी एक छोटी-सी मुगल सेना धीरे-धीरे आगे बढ रही थी। कल्याण, आदि वहाँके मुख्य नगर और किले तब भी मराठोके ही अधिकारमे थे, तथापि इस मुगल सेनाने उस प्रदेशके कुछ भागको जीत अवश्य लिया था। कारतलबखाँके नेतृत्वमे एक बडी मुगल सेनाने पूनासे चलकर जनवरी १६६१ ई०मे कोकणमे प्रवेश किया। जब यह सेना पेनसे कोई १५ मील पूर्वमे उमरखिण्ड पहुँची, तब बिना रुके बडी ही तेजीके साथ चलकर शिवाजी भी एकाएक वहाँ जा धमके और इस मुगल सेनाके आगे बढने या पीछे लौटनेके दोनो ही रास्ते बन्द कर दिए। कारतलबखाँकी सेनाको अब रुक जाना पडा और सारी सेनाका प्याससे मर जाना भी अवश्यम्भावी देख पडने लगा। तब तो निराश और विवश होकर कारतलबने पडावका सारा मालअसबाब वही छोड दिया और अपने छुटकारेके लिए शिवाजीको और भी बहुतसा द्रव्य देकर वह ३ फरवरी १६६१को अपनी सारी सेनाके साथ वहाँसे सकुशल निकल आया। यो इस बार तो शिवाजीने कल्याणके जिलेको शत्रुओके हाथसे मुक्त किया, परन्तु मई १६६१मे मुगलोने पुनः कल्याण मराठोसे छीन लिया और तब अगले नौ वर्ष तक उसपर मुगलोका ही अधिकार रहा। इन दो वर्षोकी चढाइयोका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि उत्तरी कोकणका ऊपरी भाग मुगलोके हाथोसे नही निकल सका, उधर दक्षिणी कोकण शिवाजीके ही अधीन रहा। मार्च १६६३मे मुगलोने शिवाजीके घुडसवारोके नायक

नेताजीका दूर तक दृढ़ताके साथ पीछा किया। नेताजी भाग निकला, किन्तु उसके ३०० घुड़सवार मारे गए और वह स्वयं भी घायल हुआ।

११. शायस्ताखाँपर शिवाजीका रात्रि-आक्रमण

शायस्ताखाँ पूनामें शिवाजीके बाल्यकालके साधारणसे निवास-स्थान लालमहलमें रहता था। उसके साथ ही उसका हरम भी था। उस महलके चारों ओर उसके अगरक्षकों और नौकरोंके रहनेके लिए स्थान, नौबत-खाना, दफ्तर, आदि थे, और उससे आगे दक्षिणकी ओर सिंहगढ़ जाने-वाली सड़ककी दूसरी तरफ शायस्ताखाँके प्रमुख अफसर महाराजा जस-वन्तसिंह और उनके १०,००० सैनिकोंका पड़ाव था। ऐसे स्थानमें शाय-स्ताखांपर अचानक ही आकस्मिक घात कर सकनेके लिए अत्यधिक चपलता और चतुराईके साथ ही अद्वितीय वीरता और अनुपम साहसकी भी पूरी-पूरी आवश्यकता थी। शिवाजीने नेताजी पालकर और पेशवा मोरोपन्तके अधीन एक-एक हजार मावले पैदल सैनिकों और घुड़सवारोंकी दो सहायक टुकड़ियां तैयार कर, उन्हें विस्तृत मुगल पड़ावकी बाहरी सीमाके दोनों ओर एक-एक मीलकी दूरीपर जा डटनेका आदेश दिया। रविवार, ५ अप्रेल १६६३ ई० को रात पड़ जानेके बाद चुने हुए ४०० सैनिकोंके साथ शिवाजीने स्वयं पूना नगरमें प्रवेश किया, और वहांके मुगल पहरेदारोंके पूछताछ करनेपर स्वयको शाही मुगल सेनाके दक्षिणी सैनिक बताया और यह भी कहा कि उनको दी गई चौकियोंको सभालनेके लिए वे जा रहे थे। उस मुगल पड़ावके किसी अंधेरे कोनेमें कुछ घंटो तक सुस्ता लेनेके बाद कोई आधी रातके समय शिवाजीका यह दल शायस्ताखाँके महलके पास पहुँचा। शिवाजीने अपना बाल्यकाल और यौवन इसी महलमें बिताए थे एव वे उस महलके कोने-कोनेसे पूर्णतया परिचित थे; उसी प्रकार पूना नगरकी गली-गली और वहांके घूम और मुड़े हुए सारे रास्तोंसे वे अच्छी तरह जानते थे।

उस दिन मुसलमानोंके उपवासके रमजान महीनेकी छठी तारीख थी। दिन भरके उपवासके बाद रातको भरपेट खाकर शायस्ताखाँके सारे नौकर चाकर गहरी नींद सो रहे थे। आग जलाकर सुबहके पहले ही रमजान मासमें आवश्यक प्रातःकालके भोजनको तैयार करनेके लिए कुछ रसोइये जग उठ गए थे, उन्हें मराठोंने चुपचाप मार डाला। इस बाहरी रसोईघर और भीतर अन्तःपुरके बीचकी दीवारमें छिद्र सुराख

एक दरवाजा था, जो अन्त पुरकी आडको पूरा करनेके लिए तब ईंट और मिट्टीसे बन्द कर दिया गया था। ईंटे निकालकर मराठोने फिरसे उस द्वारको खोल दिया। अपने विश्वस्त सेनापति चिमणाजी बापूजीको लेकर उसी द्वारसे पहिले शिवाजी अन्त पुरमे घुसे, और तब पीछे-पीछे उनके २०० सैनिक भी वहाँ जा पहुँचे। जब शिवाजी खानके शयनागारमे जा पहुँचे, तब औरतोने भयभीत होकर शायेस्ताखाँको जगाया। किन्तु उसके शस्त्र सम्हाल सकनेके पहले ही शिवाजी उसपर टूट पडे और शिवाजीकी आघातसे उसका अँगूठा भी कट गया। बहुत करके इसी समय किसी बुद्धिमान् स्त्रीने उस कमरेके सारे ही दीपक बुझा दिए। अँधेरेमे दो मराठे पानीके हौजमे जा गिरे। इसी गडबडीमे दो दासियोने शायेस्ताखाँको एक सुरक्षित स्थानमे पहुँचा दिया। कुछ समय तक मराठे उस अन्धकारमे ही बराबर मारकाट करते रहे।

शिवाजीके साथके बाकी रहे २०० सैनिकोने, जिन्हे अन्त पुरके बाहर ही छोड दिया गया था, उस महलके मुख्य पहरेदारोपर हमला कर दिया, और "क्या इस तरह पहरा दिया जाता है" कह-कहकर वहाँ सोते तथा जागते हुए सभी पहरेदारोको मार डाला। तब वे नौबतखानेमे जा पहुँचे और शायेस्ताखाँका नाम लेकर उन्हे नौबत बजानेकी आज्ञा दी। नौबत और नगाडोकी उस तुमुल ध्वनिमे अन्त पुरका करुणक्रन्दन और पहरेदारो की चीख-चिल्लाहट डूब गई और मराठोकी रणहुँकारोने वहाँकी घबडाहट एव गडबडीको और भी बढा दिया।

दूसरोकी राह न देखकर शायेस्ताखाँका पुत्र अबुलफतेह अकेला ही सबसे पहले पिताकी रक्षाके लिए दौडा, किन्तु दो तीन मराठोको मारनेके बाद ही वह वीर युवक स्वय मारा गया।

अपने शत्रुओको पूर्णतया सजग और सशस्त्र होते देखकर शिवाजीने वहाँ अधिक देरी करना उचित न समझा। वे शीघ्र ही अन्त पुरसे निकले, अपने सारे सैनिकोको एकत्रित किया और सीधे रास्तेसे वे पडावके बाहर हो गए। उनका न किसीने पीछा किया और न उनको कोई हानि ही पहुँचाई। इस आकस्मिक आक्रमणमे कुल छ मराठे मरे और ४० घायल हुए। उधर मराठोने शायेस्ताखाँके एक पुत्र, एक सेनापति, चालीस नौकर और उसकी छ पत्नियो या दासियोको मार डाला था, तथा दूसरे दो पुत्रो, आठ अन्य स्त्रियो और स्वय शायेस्ताखाँको भी उन्होने घायल

किया था। जसवन्तसिंहके जान-बूझकर असावधानी करनेके कारण ही शिवाजीको अपने इस साहसपूर्ण कार्यमें ऐसी अनपेक्षित सफलता प्राप्त हो सकी, ऐसा दक्षिणकी जनताका दृढ़ विश्वास हो गया था।

अपने इस चतुराईपूर्ण साहसके फलस्वरूप उस मराठा वीरकी ख्याति तथा प्रतिष्ठा अधिक बढ़ गई। कई तो उसे शैतानका अवतार ही मानने लगे। उससे बच सकनेके लिए कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं समझा जाता था और शिवाजीके लिए कोई भी कार्य कर लेना किसी प्रकारका असम्भव नहीं माना जाता था। बादशाहने इस हारका समाचार सुना और अपने सूबेदारकी अयोग्यता और बेपरवाहीको इस दुर्घटनाका एकमात्र कारण बताया। दण्ड देनेपर ही तब अधिकारियोंकी नियुक्ति बंगालमें की जाती थी, एवं शायेस्ताखाँके प्रति अपनी अप्रसन्नता प्रदर्शित करनेके लिए दक्षिणसे बदल कर १ दिसम्बर १६६३ ई०को उसे बंगालका सूबेदार बना दिया। दक्षिणके नये सूबेदार शाहज़ादा मुअज्ज़मके वहाँ पहुँच जानेपर जनवरी १६६४का दूसरा सप्ताह बीतते-बीतते शायेस्ताखाँ दक्षिणसे बंगालके लिए रवाना हो गया।

१२. शिवाजीका सूरतको पहली बार लूटना

जिस समय औरंगाबादमें सूबेदारोंकी यह अदला-बदली हो रही थी, उसी समय शिवाजीने तब ही की गई उस आश्चर्यजनक आकस्मिक धावेसे भी अधिक साहसका एक और काम कर डाला। ६ जनवरी १६६४से लेकर पूरे चार दिन तक शिवाजीने मुगल साम्राज्यके सबसे सम्पूर्ण समृद्धिशाली बन्दरगाह सूरत नगरको जी भरकर लूटा। इस नगरकी सुरक्षाके लिए तब उसके चारों ओर कोई शहरपनाह न थी। वहाँ अपार सम्पत्ति एकत्रित थी। केवल शाही चुंगीसे ही वहाँ सामान्यतः प्रति वर्ष कोई बारह लाख रुपयेकी आमदनी हो जाती थी।

मंगलवार, ५ जनवरी १६६४को प्रातःकाल ही जब यह समाचार सूरत नगरमें फैल गया कि शिवाजी सूरतसे केवल २८ मील दूर [illegible] गणदेवी तक आ पहुँचे हैं और नगर लूटनेकी इच्छासे वह सूरतकी ओर बढ़ रहे हैं, तब वहाँ बड़ी घबराहट फैल गई। [illegible] पर आतंक छा गया और उसने नगर-वासियोंको [illegible] अभिमान तो त्यागी अपनी जान बचानेके लिए [illegible]।

किलेदारको रिश्वत देकर धनवान् व्यक्तियोने किलेकी शरण ली। नगरका शासन वहाँके किलेदारसे भिन्न इनायतखाँ नामक एक दूसरे ही व्यक्तिके हाथमे था। नगरको ईश्वरके भरोसे ही छोडकर इनायतखाँ स्वय भी किलेमे जा छिपा।

बुधवार, ६ जनवरीकी सुवहके कोई ११ वजे शिवाजी सूरत पहुँचे और वहाँ पूर्वी ओरके बुरहानपुरी दरवाजेसे बाहर कोई दो फर्लांगकी दूरीपर स्थित एक बागमे शिवाजीने अपना डेरा खडा किया। मराठे घुडसवार तुरन्त ही उस अरक्षित और प्राय उजडे हुए नगरमे जा घुसे और घरोको लूट-लूट कर उनमे आग लगाने लगे। इस प्रकार बुध-वारसे लेकर शनिवार तक लगातार लूटमार और विध्वस चलता रहा। प्रति दिन नये-नये स्थानोमे आग लगाई जाती थी और यो हजारो मकान जलकर खाक हो गए। शहरका लगभग दो तिहाई भाग नष्ट हो गया। डच फेक्टरीके पास ही उस समय ससारमे सबसे धनवान् समझे जानेवाले व्यापारी बहरजी बोहरेका विशाल महल खडा था। उसकी जायदाद ८० लाख रुपयोके लगभग की बताई जाती थी। शुक्रवारकी शाम तक मराठोने बहरजीके उस महलको अपनी इच्छानुसार दिनरात लूटा, उसका नीचेका फर्श तक खोद डाला, और अन्तमे उसे आग भी लगा दी। उधर अग्रेज फेक्टरीके पास ही हाजी सैयद बेग नामक एक धनी व्यापारीका गगन-चुम्बी मकान तथा बहुत बडे-बडे गोदाम थे। अपनी इस सारी सम्पत्तिको अरक्षित छोडकर यह हाजी भी भागकर किलेमे जा छिपा था। बुधवारकी शाम और रात भर तथा गुरुवारकी दोपहर तक मराठे वहाँके दरवाजो और तिजोरियोको तोड-तोडकर जितना भी धन उठाकर ले जा सके ले गए। किन्तु गुरुवारको तीसरे पहर अग्रेजोने सडकोपर घूमनेवाले लूटेरो-पर आक्रमण किया जिससे वे सब वहाँसे भाग खडे हुए। तब दूसरे दिन अग्रेज व्यापारियोने सैय्यद बेगके मकानपर अपने ही पहरेदार नियुक्त किए और उसके बाद वहाँ अधिक हानि नही हो पाई। सूरतकी इस लूटमारसे लगभग एक करोड रुपया मराठोके हाथ लगा।

सूरतका डरपोक शासक इनायतखाँ मगलवारकी रातको ही किलेमे आ छिपा था। अपने उस सुरक्षित आश्रयसे उसने एक निन्दनीय षड्-यन्त्र रचा। गुरुवारको उसने अपने एक युवा अनुचरको शिवाजीके पास भेजा। सन्धिका बातचीत करनेका तो एक बहाना-मात्र था, भेंटके समय शिवाजीकी हत्या करना ही उसका वास्तविक उद्देश्य था।

शिवाजीके सामने नंगी तलवार लिये खड़े हुए एक शरीर रक्षकने एक ही वारमें उस हत्यारेका हाथ काट डाला। पर उस आततायीने इतने वेगसे आक्रमण किया था कि वह रुक न सका और कटे हाथवाली खूनसे सनी बाँहसे शिवाजीपर आघात किया, जिससे दोनों ही लड़खड़ाकर धरतीपर गिर पड़े। रविवार १० जनवरीकी सुबहसे जब शिवाजीने सुना कि नगरकी सहायताके लिए एक मुगल सेना आ रही है, तब अपनी सेनाको लेकर दस बजते-बजते एकाएक शिवाजी सूरतसे चल पड़े।

सूरतके सारे व्यापारियोंसे एक वर्ष तक चुंगी वसूल न किए जानेकी आज्ञा देकर बादशाहने वहाँके लुटे हुए पीड़ित नगर-निवासियोंके प्रति सहानुभूति प्रगट की। अंग्रेज और डच व्यापारियोंने जो वीरता दिखाई थी, उसके पुरस्कारस्वरूप उनके मालपर वसूल किए जानेवाले सामान्य आयातकरमें भविष्यके लिए एक प्रतिशतकी कमी कर दी गई।

शायेस्ताखाँके रवाना होनेके बाद और जयसिंहके पहुँचनेसे पहिले जो वर्ष (१६६४ ई०) बीता, उसमें मुगलोंको कोई भी उल्लेखनीय सफलता न मिली। नया सूबेदार शाहजादा मुअज्जम औरंगाबादमें रहता था और शिकार और आमोदप्रमोदके सिवाय अन्य किसी बातकी उसे कुछ भी चिन्ता न थी।

१३. शिवाजीके विरुद्ध जयसिंहका भेजा जाना; पुरन्दर-विजय

शायेस्ताखाँकी हार और सूरतकी इस लूटसे औरंगजेब और उसके दरबारियोंको बहुत ग्लानि हुई। अपने सारे हिन्दू और मुसलमान सेनापतियोंमें सबसे अधिक सुयोग्य और दक्ष सेनानायक जयसिंह कछवाहा एवं दिलेरखाँको शिवाजीका दमन करनेके लिए भेजा।

मुगल शाही सेनाके साथ रहकर मध्य एशियामें स्थित बल्खसे लेकर सुदूर दक्षिणमें बीजापुर तक तथा पश्चिममें कन्धारसे लेकर पूर्वमें मुंगेर तक, साम्राज्यके हर एक भागमें जयसिंहने युद्ध किया था। शाहजहाँके दीर्घकालीन शासनकालमें कदाचित् ही ऐसा कोई वर्ष बीता था जब कि इस राजपूत राजाने किसी युद्ध या चढ़ाईमें भाग न लिया हो और अपनी सफल सेवाओंके पुरस्कारस्वरूप उसे कोई न कोई पदोन्नति न मिली हो। रणभूमिके [illegible] दिल्लीमें भी वही [illegible] [illegible], [illegible] राजनीतिज्ञ [illegible] निपुण माने [illegible]। जहाँ कहीं भी कोई कठिन या चतुराईपूर्ण [illegible] काम

करना होता था वहाँ बादशाह जयसिंहका ही मुँह ताकता था। युक्तिपूर्ण चातुरी और व्यवहार-कुशलताके साथ ही साथ अडिग धैर्य भी उसमे कूट-कूट कर भरा था। मुगल दरबारके समारोहोचित शिष्टाचारमे वह पूरी तरह पारगत था। राजस्थानी और उर्दू बोलियोके अतिरिक्त वह तुर्की और फारसी भाषाओका भी पूर्ण ज्ञाता था। इन्ही सब विशेषताओंके कारण ही दूजके चाँदसे अकित दिल्लीके शाही झण्डेके नीचे सगठित होनेवाली अफगान, तुर्क, राजपूत और हिन्दुस्तानी सैनिकोकी उस सम्मिश्रित मुगल सेनाका सेनापतित्व करनेके लिए वह सर्वथा उपयुक्त था। आवेशपूर्ण उदारता, सावधानी-विहीन साहसिकता, अव्यावहारिकतामय सिधाई और नीति-रहित शौर्य ही राजपूतोके चरित्रकी प्रमुख विशेषताएँ मानी जाती हैं, परन्तु इन सबके विपरीत जयसिंहमे अनोखी दूरदर्शिता, राजनीतिक धूर्तता, बातचीतमे मिठास और शान्तिपूर्वक सब-कुछ सोच-समझ-कर ही अपनी नीति निश्चित करनेकी प्रवृत्ति बहुतायतसे पाई जाती थी।

जयसिहने बडी ही चतुराईके साथ बीजापुरके सुलतानकी आशाओ और आशकाओसे पूरा-पूरा लाभ उठाया। यदि आदिलशाह मुगलोकी मदद कर यह सिद्ध कर देगा कि शिवाजीके साथ उसका कोई भी सम्बन्ध नही है तो आदिलशाहके प्रति औरगजेबकी अप्रसन्नताको दूर कर बीजापुरसे वसूल होनेवाली टाँकेकी रकममे भी वह कमी करवा सकेगा, इस बातकी जयसिंहने आदिलशाहको आशा दिलाई। शिवाजीके अन्य सारे शत्रुओको भी सगठित कर एक साथ ही सब ओरसे शिवाजीपर आक्रमणका आयोजन किया, जिससे कि शिवाजीका ध्यान और शक्ति इस प्रकार बँट जावे।

३१ मार्चको पुरन्दरसे ४ मील दूर एव पुरन्दर और सासवडके बीच जयसिंहने अपना स्थायी पडाव डाल दिया, और तब उसने पुरन्दरके किलेका घेरा डाला।

सासवडसे ६ मील दक्षिणमे पुरन्दरका अतिविशाल पहाड खडा है। उसकी सबसे ऊँची चोटी आसपासके समतल मैदानसे कोई २,५०० फुटसे भी अधिक ऊँची तथा कुल मिलाकर समुद्रकी सतहसे ४,५६४ फुट ऊँची है। वास्तवमे यह एक स्वाभाविक दुहरा किला है। इसके पूर्वमे लगी हुई पहाडीपर वज्रगढ नामक एक दूसरा ही स्वतन्त्र एव सुदृढ किला है।

पुरन्दरका मुख्य किला चारों ओरसे बहुत ही ऊँची कगारी चट्टानोंवाली पहाड़ीपर बना हुआ है; उससे कोई ३०० फुट या अधिक नीचे एक और परकोटा है जो 'माची' कहलाता है। पुरन्दरके ऊपरी किलेकी 'खड़कला' (अर्थात् गगन-चुम्बी) नामक उत्तर-पूर्वी बुर्जके तलेसे प्रारम्भ होकर 'भैरवखिण्ड' नामक एक ऊँची पहाड़ी पूर्वमें कोई एक मील तक पहाड़ी पर्वत श्रेणीके रूपमें चलनेके बाद दूसरे सिरेपर समुद्रसे ३,६१८ फुट ऊँचे एक छोटेसे पठारका स्वरूप ग्रहण कर लेती है, यहीं रुद्रमाल किला बना हुआ है, जो अब वज्रगढ नामसे सुप्रसिद्ध है। पुरन्दरके नीचेवाले माची किलेके उत्तरी भागमें ही सैनिकोंके रहनेके स्थान, आदि हैं। वज्रगढका किला पुरन्दरकी उस माचीके बिलकुल ही ऊपर पड़ता है। एक अच्छे सेनानायककी भाँति जयसिंहने भी पहिले-पहल, वज्रगढपर ही आक्रमण करनेका निश्चय किया।

लगातार गोलाबारी करके मुगलोंने वज्रगढकी सामनेकी बुर्जकी नीचेकी दीवालको तोड़-फोड़ डाला। १३ अप्रैलको आधी रातके समय दिलेरखांके सैनिकोंने उस बुर्जपर धावा कर मराठे शत्रुओंको किलेके पिछले भागमें खदेड़ दिया। दूसरे दिन (१४ अप्रैलको) विजयी मुगल उस पिछले भागके परकोटेकी ओर बढ़े, तब मुगलोंकी गोलाबारीसे त्रस्त होकर किलेके रक्षकोंने उसी दिन संध्या-समय आत्मसमर्पण कर दिया।

पुरन्दर जीतनेके लिए वज्रगढको पहिले ही अधिकारमें कर लेना पूर्णतया अत्यावश्यक था। अब दिलेरखां पुरन्दर किलेको जीतनेके लिए प्रयत्नशील हुआ और मराठा प्रदेशमें लूटमारके लिए सैनिकोंके दल भेजने-का जयसिंह आयोजन करने लगा। जयसिंहकी अधीनतामें नियुक्त कुछ अधिकारी विश्वासघाती थे, जिनकी मौजूदगीसे कुछ लाभ होना तो दूर रहा हानि ही अधिक होती थी। दाऊदखां कुरेशी किलेकी खिड़कीपर पहरा देनेके लिए नियुक्त किया गया था। किन्तु कुछ दिनों बाद पता लगा कि मराठोंके एक दलने उसी खिड़कीसे किलेमें प्रवेश किया था और दाऊदखांने उनके आन-जानका भी विरोध नहीं किया था।

वज्रगढपर अधिकार हो जानेके बाद वज्रगढको पुरन्दरसे जोड़नेवाली उन पर्वत श्रेणीके सहारे-सहारे दिलेरखां पुरन्दरकी ओर बढ़ा और पुरन्दर-के निचले भाग माचीको जा घेरा। दिलेरखांकी मोर्चाबंदी अब किलेके उत्तर-पूर्वी सिरेपर खड़कला बुर्जकी ओर आगे बढ़ने लगी।

३० मईको दिन डूबनेसे कोई दो घण्टे पहिले दिलेरखाँकी आज्ञा लिये बिना ही कुछ रुहेले सैनिकोने सफेद बुर्जपर हमला कर दिया। बडी घमासान लडाईके बाद बुरी तरह हारकर मराठे पीछे हटे और उन्होने काली बुर्जके पीछे आश्रय लिया। परन्तु दो दिन बाद उन्हे वहाँसे पीछे हटना पडा। इस प्रकार नीचे माची किलेके पाँच बुर्ज और एक कठघरेपर मुगलोका अधिकार हो गया। अब पुरन्दर किलेका पतन भी सुस्पष्ट देख पडने लगा।

घेरेके आरम्भमे ही ५,००० अफगानो और अन्य जातियोके दूसरे कई सैनिकोको लेकर जब दिलेरखाँ पहाडीपर चढनेका प्रयत्न करने लगा, तब पुरन्दरके वीर किलेदार मुरारजी बाजी प्रभुने ७०० चुने हुए सैनिकोके साथ दिलेरखाँका सामना किया था। मुरार बाजी और उनके मावलोने अनेक वहेलिये पैदलोके अतिरिक्त ५०० पठानोको भी मारा, और तब ६० निर्भीक वीरोको साथ ले मार-काट करता हुआ वह स्वय दिलेरखाँकी ओर बढता गया। मुरार बाजीके इस अपूर्व साहसको देखकर दिलेरखाँ मुग्ध हो गया और जीवन-दानके साथ ही उसे अपने अधीन एक उच्च पदपर नियुक्त करनेका वादा कर आत्मसमर्पण करनेके लिए उसे कहा। परन्तु अतिक्रुद्ध मुरारने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, और दिलेरखाँपर आक्रमण करनेके लिए वह बढा, तब तो उसपर बाण चलाकर दिलेरखाँने उसे मार डाला। कुल मिलाकर कोई ३०० मावले मुरारके साथ उस दिन काम आए, और बाकी रहे वापस किलेको लौट गए।

२ जूनकी मुगल-विजयके बाद माची किलेका अधिकारसे निकल जाना अवश्यम्भावी देख पडने लगा, तब शिवाजीको विवश होकर अपना भावी कार्य-क्रम निश्चित करना पडा। मराठे अधिकारियोके सारे कुटुम्बी पुरन्दरमे ही आश्रय लिये बैठे थे। पुरन्दरपर मुगलोका अधिकार हो जानेके परिणामस्वरूप वे सब कैद हो जावेंगे और तब उनको अपमानित भी किया जावेगा। अतएव जयसिहसे भेंटकर मुगलोके साथ सन्धि करनेका शिवाजीने निर्णय किया।

१४. पुरन्दरकी सन्धि, १६६५.

११ जूनको प्रात कालमे ९ बजे पुरन्दरके नीचे अपने तम्बूमे जब जयसिंह दरबार लगाए बैठा था, तब शिवाजी उसके पास पहुँचे। यथोचित सम्मानके साथ जयसिहने उनका स्वागत किया।

स्थायी सन्धिकी शर्तोंको लेकर दोनों पक्षवालोंमें उस दिन कोई आधी रात तक बातचीत चलती रही। "बहुत-कुछ वाद-विवादके बाद अन्तमें हम इस समझौते पर पहुँचे —(१) शिवाजीके किलोंमें ४ लाख हूणकी वार्षिक आमदनीवाले २३[1] किले मुगल साम्राज्यमें मिला दिए जावें। (२) राजगढ़के किलेको भी गिनते हुए एक लाख हूण की वार्षिक आमदनी-वाले कुल बारह किले इसी शर्तपर शिवाजीके अधिकारमें रहने दिए जावें कि वह मुगल साम्राज्यके प्रति राजभक्त बना रहे और साम्राज्यकी सेवा भी बराबर करता रहे।" अन्य राजाओं और सरदारोंकी तरह उसे भी सम्राट्के शाही दरबारमें निरन्तर रहनेकी आवश्यकतासे मुक्त किए जानेके लिए शिवाजीने विशेषरूपसे प्रार्थना की। मुगल सम्राट्के दक्षिण आनेपर उसके दरबारमें उपस्थित होने एवं दक्षिणके मुगल सूबेदारके साथ स्थायी रूपसे रखे जानेवाले उसके ५,००० सवारोंके नेतृत्वके लिए अपने प्रति-निधिके रूपमें अपने पुत्रको भेजनेका शिवाजीने प्रस्ताव किया। उन ५,००० सवारोंको तनख्वाह, आदिके चुकानेके लिए जागीर दी जानेका भी निश्चय हुआ।

इन सारे निश्चयोंके अतिरिक्त शिवाजीने अपनी विशेष शर्तोंके साथ मुगलोंसे एक और समझौता यह भी किया :—"यदि कोंकणकी तराई में ४ लाख हूणकी वार्षिक आयका प्रदेश मुगल सम्राट् मुझे दे दे, तथा शाही फरमान द्वारा मुझे यह पूर्ण आश्वासन दिया जावे कि मुगलों द्वारा अपे-क्षित बीजापुर-विजयके बाद भी यह सारा प्रदेश मेरे ही अधिकारमें रहने दिया जावेगा, तो मैं १३ वार्षिक किस्तोंमें ४० लाख हूण सम्राट्को भेंट करूँगा।" मराठों द्वारा समर्पित अन्य पांच किलोंपर अधिकार करनेके लिए शिवाजीके आदमियोंके साथ ही मुगल अधिकारी भी वहां भेजे गए।

---

१. पुरन्दरकी सन्धिके अनुसार निम्नलिखित मराठे किले मुगलोंको सौंपे गए थे —

दक्षिणमें—(१) रुद्रमाल अथवा वज्रगढ़, (२) पुरन्दर, (३) कोंढाना, (४) रोहिरा, (५) लोहगढ़, (६) ईसागढ़, (७) तुंग, (८) तिकोना, (९) [illegible] पासवाला [illegible],

कोंकणमें—(१०) माहुली, (११) मुरंजन, (१२) खिरदुर्ग, (१३) भण्डार-दुर्ग, (१४) तुलसीखुल, (१५) नरदुर्ग, (१६) मानगढ़ अथवा [illegible], (१७) मार्गगढ़ अर्थात् [illegible], (१८) कोहेज, (१९) वसन्त, (२०) नंग, (२१) करनाला, (२२) सोनगढ़, (२३) मानगढ़। (शि० ना०, पृ० ६०५)।

१५. आगरामें शिवाजीकी औरंगजेबसे भेंट, १६६६

बीजापुरकी चढाईका अन्त हो जानेके बाद शिवाजीको मुगल दरबार मे भेजनेका उत्तरदायित्व जयसिंहने लिया था। अतएव शिवाजीको बडे बडे पुरस्कारोकी आशा देकर फुसलाया और आगरा जानेके लिए उसे तैयार करनेके हेतु हजारो साधनोसे काम लिया'। उत्तरी भारत जानेपर अपनी अनुपस्थितिमे अपने इस दक्षिणी राज्यके शासनका जो प्रबन्ध शिवाजीने किया उससे उनकी दूरदर्शिता और शासन-सगठनकी शक्तिका ठीक-ठीक पता लगता है। अपनी अनुपस्थितिमे अपने स्थानीय प्रतिनिधिको वहाँके शासन-सम्बन्धी पूरे-पूरे अधिकार दे दिए गए थे, जिसके फलस्वरूप उसे बारम्बार शिवाजीकी आज्ञा लेने या निर्देश प्राप्त करते रहनेकी आवश्यकता न पडे। अपनी माँ जीजाबाईको राज्यका अभिभावक बनाकर वहाँकी ऊपरी देख-रेखका काम उन्हे सौपा। तब ५ मार्च १६६६को शिवाजी अपने ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजीको साथ लेकर उत्तरी भारतकी यात्रापर चल पडे। कुछ विश्वस्त सरदार और १,००० शरीर-रक्षक सैनिक भी उनके साथ थे। इन दिनो सम्राट् औरगजेबका शाही दरबार आगरामे ही भरता था, एव ११ मई १६६६को शिवाजी आगरा नगरसे केवल एक ही मजिल की दूरी तक जा पहुँचे।

१२ मईके दिन ही शिवाजीके शाही दरबारमे उपस्थित होनेका निश्चय हुआ था। चान्द्र तिथि-गणनाके अनुसार औरगजेबकी ५०वी वर्ष-गाँठका उत्सव भी उसी दिन पडता था। अतएव उस उत्सवके उपलक्षमे आगरेका किला बहुत ही सजाया गया था। दस मराठा अधिकारियो और अपने पुत्र शम्भाजीके साथ शिवाजीको कुँअर रामसिह दीवान-खासमे लिवा ले आया। मराठा राजाकी ओरसे बादशाहको १,००० सोनेकी मुहरे नजर की गई और न्योछावरके लिए ५,००० रुपये भेट किए गए। लेकिन बादशाहने शिवाजीकी सलामके जवाबमे एक बात भी नही कही। तब मन्त्रीने शिवाजीको तख्तके सामने ले जाकर उन्हे पाँच-हजारी मनसबदारोकी कतारमे खडा कर दिया। दरबारका काम चलने लगा, मानो सब कोई शिवाजीकी बात ही भूल गए। यह हुआ शिवाजीका दूसरा अपमान।

कितना आदर और सत्कार पानेकी आशासे शिवाजी आगरा आए थे, और उन सब आशाओका यह अन्त एव परिणाम था। दरबारमे आनेसे

पहले ही उनके मनमें दुःख और सन्देह होने लग गए थे। पहली बात तो यह थी कि आगरेसे बाहर आकर किसी बड़े उमरावने उनका स्वागत नहीं किया। सिर्फ कुँअर रामसिंह (ढाई-हज़ारी मनसबदार) और मुख़लिसख़ाँ (डेढ़-हज़ारी मनसबदार) मध्यम श्रेणीके ये दो उमराव कुछ ही दूर बढ़ कर शिवाजीको अपने साथ लिवा लाए थे। दरबारमें भी उन्हें पाँच-हज़ारी मनसबदारोंमें खड़ा किया गया।

उसके बाद सालगिरहके उत्सवके पान सब उमरावोंको दिए गए, शिवाजीको भी पान मिला। तब इस जलसेकी खिलअतें और सिरोपाव सिर्फ शाहज़ादों, वज़ीर जाफरख़ाँ और महाराजा जसवन्तसिंहको (जोधपुर) दिए गए, शिवाजीको खिलअत नहीं मिली। उधर घण्टे भरसे दरबारमें खड़े रहनेके कारण शिवाजी थक गए और अब इस तीसरे अपमानको वे बरदाश्त नहीं कर सके। वे शोकाकुल होकर गुस्सेसे लाल हो गए, उनकी आँखें डबडबा आईं। यह औरंगज़ेबकी नज़रसे छिपा न रहा, उसने रामसिंहसे कहा—"शिवासे पूछो कि उनकी तबियत कैसी है?" कुँअर शिवाजीके पास आया, तब शिवाजी कहने लगा "तुमने देखा है, तुम्हारे बापने देखा है, तुम्हारे बादशाहने भी देखा है, कि मैं कैसा आदमी हूँ कि जान-बूझकर मुझे यों खड़ा रखा जावे? मैं तुम्हारा मनसब छोड़ता हूँ। यदि खड़ा ही रखना था तो ठीक स्थानपर खड़ा करते।" तब वहींसे एकाएक मुड़कर बादशाहकी तरफ पीठ किए शिवाजी चल पड़े। रामसिंहने शिवाजीका हाथ पकड़ा पर वे हाथ भी छुड़ाकर चले और जाकर एक ओर बैठ गए। रामसिंहने वहाँ आकर उन्हें फिर समझाया, परन्तु शिवाजीने एक न सुनी, वह कहने लगा,—"मेरी मौत आई है या तो तुम मुझे मारोगे या मैं आत्मघात कर लूँगा। मेरा सिर काटकर ले जाना चाहो तो तुम ले जाओ, मैं तो बादशाहकी सेवामें अब नहीं आता"। जब शिवाजीने एक न मानी तो रामसिंहने आकर बादशाहकी सेवामें सब हाल अर्ज़ किया। तब बादशाहने मुल्तफितख़ाँ, आक़िलख़ाँ और मुख़लिसख़ाँको हुक्म दिया कि "तुम जाकर शिवाको दिलासा दो और सन्तुष्ट कर उसे ले आओ"। शिवाजीने जवाब दिया—'बादशाहने मुझे जान-बूझकर जसवन्तसिंहसे नीचे खड़ा किया है, इसलिए मैं सिरोपाव नहीं पहनता"। तब इन उमरावोंने जाकर बादशाहसे यह बात अर्ज़ की। बादशाहने हुक्म दिया—"कुँअर! अभी तो तुम उसको अपने साथ ले जाओ और डेरेपर ले जाकर शान्त करो"। रामसिंह शिवाजीको लेकर डेरे आया और बहुत

कुछ समझाया, परन्तु उन्होने फिर भी एक न मानी। एक आध घडी अपने पास रखकर रामसिहने उन्हे उनके डेरेपर भेज दिया।

उधर बादशाहकी सेवामे कितने ही उमराव ऐसे थे जो शिवाजीको चाहते न थे। उन्होने बादशाहसे अर्ज की–"शिवाजीने बेअदबी की और हजूर उसे दर-गुजर करते है।" सैयद मुर्तजाखाँने कहा–"वह तो हैवान है, सिरोपाव आज नही पहना तो कल पहनेगा। केवल मिर्जा राजाका ही खयाल है, इसकी तो कोई चिन्ता नही।"

सालगिरहके दरबारके बाद दो-एक दिन तक सबको उम्मीद थी कि शिवाजी शान्त होकर फिर दरबारमे आवेगा, अपनी बेअदबीके लिए क्षमा माँगेगा और खिलअत पहनकर देशको लौट जानेके लिए रुखसतके लिए अर्ज करेगा लेकिन शिवाजीने दरबारमे जानेसे बिलकुल इन्कार कर दिया, सिर्फ अपने पुत्र शम्भाजीको रामसिहके साथ भेजा।

दूसरी तरफ बेगम साहिबा, जयसिहके प्रतिद्वन्दी जसवन्तसिह और दो-एक उमरावोने बादशाहकी सेवामे अर्ज की कि "शिवाजी एक छोटा भूमिया, गँवार आदमी है। उसने खुले दरबारमे हुजूरके सामने इतनी गुस्ताखी की। आप क्यो सब बरदाश्त करते है? अगर उसको सजा नही दी जावेगी तो और भूमिया ऐसा ही बेअदबी करेगे।" यह सब सुनते-सुनते अन्तमे बादशाहको भी यही ठीक जान पडा कि या तो शिवाजीको मरवा डाले या कैद कर दे। शिवाजीको मारनेका हुक्म देनेसे पहले बादशाहने जयसिहको लिखवाकर यह पुछवाया कि आगरा भेजते समय क्या-क्या शपथ-सौगन्दे खाकर उसने शिवाजीको तसल्ली दी थी।

मिर्जा राजा जयसिह उस समय दक्षिणमे था, और उसका उत्तर आने मे काफी समय लगेगा, यह खयाल कर औरगजेबने हुक्म दिया कि तब तकके लिए शिवाजीको आगरेके किलेके किलेदार राद-अन्दाजखाँको सौप दिया जावे। यह रामसिहको मजूर नही था। उसने जाकर मत्री आमिन-खाँसे कहा,–"मेरे पिताके कौलपर शिवाजी आगरा आए है। मै उनकी जानका जिम्मेदार हूँ। बादशाहको अर्ज कीजियेगा कि पहले हमको मार डाले, मेरे मरनेके बाद जो आप चाहे शिवाजीके साथ करे।" यह सब सुनकर औरगजेबने शिवाजीको रामसिहके ही सिपुर्द कर दिया, और रामसिहने मुचलका लिखकर बादशाहकी सेवामे पेश कर दिया कि यदि शिवाजी भाग जाय या आत्मघात कर डाले तो उसके लिए रामसिह जबाबदार होगा। परन्तु इतनेसे भी बादशाहको सन्तोष न हुआ।

आगरा शहरके कोतवाल सिद्दी फौलादखांने शाही हुक्मसे शिवाजीके डेरेके चारो तरफ तोपें रखवाकर सरकारी फौजें बैठा दी। डेरेके अन्दर भी आम्बेरी सेनाके तीन-चार अफसरो और कछवाही फौजोंका पहरा लगता था। मराठा राजा सचमुच कैद हो गया, अब उसका घरसे निकलना भी बन्द हो गया।

पहले तो शिवाजीको उम्मीद थी कि वजीर जाफरखां और दूसरे बडे दरबारियोंको रुपया देकर वह अपना कुसूर माफ करवा लेंगे, और इसी कारण बादशाहसे सिफारिश करनेके लिए शिवाजीने उनकी मिन्नतें भी की। परन्तु अब तक शिवाजीका सूरत बन्दर लूटना और अपने मामा शायस्ताखांका शिवाजीके हाथो घायल होना औरंगजेबने भूला न था, उसने किसी की भी कोई बात न सुनी।

शिवाजीने यह भी अर्ज करवाई कि "अगर बादशाह मुझको छोड देंगे तो मैं देश पहुँचकर अपने अधिकारके सारे किले बादशाही अफसरोको सौंप दूँगा। मेरा दक्षिण जाना जरूरी है, क्योंकि मेरे किलेदार सिर्फ मेरे खतको पढकर ही मेरा हुक्म न मानेंगे।" लेकिन औरंगजेब ऐसी बातोंसे भुलावेमें आनेवाला न था। बादशाही दरबारमें एक बार यह भी निश्चय हुआ कि शिवाजीको रामसिंहकी अधीनतामें नियुक्तकर काबुल भेज दे, परन्तु बादमें यह निश्चय भी रद्द ही रहा।

अन्तमें हताश होकर शिवाजीने औरंगजेबकी सेवामें एक अर्जी पेश की कि "यदि आज्ञा मिले तो फकीर होकर मैं किसी तीर्थमें अपना बाकी जीवन बिता दूँ"। औरंगजेबने कुटिल हँसी हँसकर जवाब दिया—"बहुत अच्छा। फकीर होकर प्रयागके किलेमें रहो, तुम्हें वहाँ भेज देंगे, वह बहुत बडा पुण्य तीर्थ है। वहाँ मेरा सूबेदार बहादुरखां तुमको बहुत हिफाजतसे रखेगा।"

शाही दरबारमें शिवाजीके पहुँचनेका यह परिणाम जयसिंहके लिए सर्वथा अनपेक्षित ही था। आगरामें होनेवाली इन घटनाओंका विवरण सुनकर जयसिंह बडी ही दुविधामें पड गया। शाही दरबारमें अपने प्रतिनिधि, अपने ज्येष्ठ पुत्र कुँअर रामसिंहको बारम्बार लिखकर उसे यह ताकीद करने लगा कि इन दोनो राजपूत पिता और पुत्र द्वारा शपथोंके साथ शिवाजीको दिए गए आश्वासन कहीं झूठे न हो जावे, तथा इस बातका भी पूरा-पूरा प्रयत्न किया जावे कि शिवाजीका जीवन किसी प्रकार सङ्कटमें न पड जावे।

१६. शिवाजीका आगरासे निकल भागना

अपने छुटकारेके लिए शिवाजीने अब अपनी ही सूझ-बूझका सहारा लिया। जो अन्य मराठा सरदार और सैनिक उसके साथ दक्षिणसे आए थे, उन्हे वापस भेज देनेके लिए उसे आज्ञा मिल गई। अपने इन अनुयायियोकी सुरक्षाकी चिन्ता से मुक्त होकर शिवाजी अपने उद्धारके लिए तरकीब ढूँढने लगे। बीमार होनेका ढोग कर वे प्रतिदिन सध्या-समय अपने निवास-स्थानसे ब्राह्मणो, सन्यासियो, भिक्षुको और राजदरबारियोके लिए बडे-बडे टोकरोमे रखकर मिठाई भेजने लगे। दो कहारोके कधोपर रखे हुए एक मोटे बाँसके डडेसे लटकाकर हर एक टोकरेको ले जाते थे। प्रारम्भमे तो वहाँके पहरेदार प्रत्येक टोकरेकी पूरी-पूरी देख-भाल करते थे। परन्तु कुछ दिन बाद बिना किसी जाँच-पडतालके ही ये टोकरे वहाँसे निकलने लगे। अब तक शिवाजी इसी अवसरकी ताकमे था। १९ अगस्त १६६६के दिन तीसरे पहर शिवाजीने अपने पहरेदारोको कहला भेजा कि सख्त बीमारीके कारण वे बिस्तरमे पडे हुए थे, अतएव वे उनको न छेडे। तब शिवाजीका अनौरस भाई, हीराजी फरजन्द, जो देखनेमे बहुत-कुछ शिवाजी जैसा ही था, सारे शरीरपर चादर ओढकर शिवाजीकी खाटपर लेट गया। उस चादरसे बाहर केवल उसका दाहिना हाथ निकला हुआ था, जिसपर हीराजीने शिवाजीका सोनेका कगन पहन लिया था। उधर शिवाजी और उनका पुत्र दो टोकरोमे दबकर बैठ गए। सध्याके बाद इन टोकरोको बिना किसी रोक-टोकके उन पहरेदारोके सामनेसे ही निकालकर वहाँसे बाहर ले गए। उनके आगे और पीछेके टोकरोमे सचमुच ही मिठाई भरी हुई थी, जिससे पहरेदारोको यत्किचित् भी कोई आशका नही हुई।

शहरसे बाहर एक निर्जन स्थानमे जब वे टोकरे पहुँच गए, तब उनको ढोनेवालोको वहासे बिदा कर दिया। फिर शिवाजी और उनके पुत्र उन टोकरोमेसे बाहर निकले और दोनोने आगराने ६ मीलकी दूरीपर स्थित एक गाँवका रास्ता लिया, जहाँपर उनका विश्वासी न्यायाधीश नीराजी रावजी घोडो सहित उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। एक जगलमे पहुँचकर उन्होने जल्दी-जल्दी सलाह की और तब वह दल दो टुकडियोमे बँट गया। शिवाजी, उनके पुत्र शम्भाजी तथा उनके तीन अधिकारियो, नीराजी रावजी, दत्ता-त्रिम्बक एव रघुमित्र नामक नीचवशीय मराठेने

हिन्दू संन्यासियोका-सा वेश कर अपने सारे बदनपर राख मल ली, और वे सब तत्परताके साथ मथुराकी ओर चल पडे। बाकी रहे मराठोने अपने घरकी राह ली।

उधर आगरामे उस सारी रात भर और दूसरे दिन प्रातःकालमे भी कुछ समय तक हीराजी शिवाजीके बिस्तरपर लेटा रहा। सवेरे पहरेदारो ने खिडकीसे झाँका और यह देखकर उन्हे सन्तोष हुआ कि शिवाजीका सोनेका कगन पहने कैदी सो रहा था और नौकर बैठा उसके पाँव दबा रहा था। इसके कुछ देर बाद हीराजी और वह नौकर वहाँसे बाहर निकले और फाटकपर पहरेवालोको ताकीद करते गए—"शोर कम करो। शिवाजी-के सिरमे दर्द है। हम दवा लेने जाते है।" कुछ समयके बाद पहरेवालोको सन्देह होने लगा। तब तक चार घडी दिन बीत चुका था, फिर भी सदैव-की भाँति शिवाजीसे भेट करनेके लिए उस दिन कोई भी नही आया। भीतरसे कोई आवाज नही आ रही थी, किसीके चलने-फिरनेकी आहट भी नही मिलती थी। वे सब कमरेमे घुसे और देखा कि चिडिया उड गई थी और पिंजडा सूना पडा था। उन्होने दौडकर कोतवाल फौलादखाँको भौंचक कर देनेवाला यह आश्चर्यजनक समाचार सुनाया। फौलादखाँने बादशाहको इसकी सूचना दी और अपनी निरपराधता प्रमाणित करनेके लिए जादू-टोने द्वारा ही शिवाजीका यो भाग सकना सम्भव बताया। परन्तु शिवाजीको भागे तब तक २४ घण्टेसे भी अधिक समय बीत चुका था, जिससे उनका पीछा करनेवालोंसे बच निकलनेके लिए उन्हे पूरा अवसर मिल गया। बादशाहको सन्देह हुआ कि शिवाजीके भागनेके इस षड्यन्त्रमे रामसिहका भी हाथ होगा, अतएव उस राजपूत कुँवरका शाही दरबारमे आना बन्द कर दिया और उनका मनसब तथा मासिक वेतन घटाकर उसे दण्ड दिया।

राहमे अनेको कष्ट झेलते हुए बडी ही तेजीसे चलकर १२ सितम्बर १६६६ को शिवाजी सकुशल राजगढ पहुँचे। यो आगरासे लौटनेपर शिवाजीने देखा कि दक्षिणी भारतकी सारी राजनैतिक परिस्थिति ही पूर्णतया बदल गई थी। मराठोंके विरुद्ध पहिले प्राप्त की गई अपनी उन सफलताओंको अब पुन दुहराना मुगल सूबेदार जयसिहके लिए कदापि सम्भव नही रह गया था। कुछ माह बाद जयसिहको बदलकर शाहजादा मुअज्जम दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया गया, एव मई १६६७मे दक्षिणकी सूबे-दारीका यह शासन-भार मुअज्जमको सौंपकर जयसिह उत्तरी भारतको

लौट पडा। किन्तु वयोवृद्ध, जीवन भरके अनवरत परिश्रमसे जर्जरित, निराशामे डूबे हुए, घरेलू चिन्ताओसे व्यथित और वीजापुरकी पिछली लडाईमे विफल होनेके कारण अपने सम्राट् द्वारा तिरस्कृत मिर्जा राजा जयसिंह २८ अगस्त १६६७को वुरहानपुरमे ही मर गया।

आलसी एव शक्तिहीन मुअज्जम तथा शिवाजीसे मित्रता रखनेवाले जसवन्तके हाथोमे दक्षिणका शासन-प्रवन्ध चले जानेके फलस्वरुप मई १६६७के वाद शिवाजीको मुगलोकी ओरसे कोई भी डर नही रह गया। उधर घमण्डी रुहेला सेनानायक दिलेरखाँ, मुअज्जमके दाहिने हाथ तथा विश्वस्त सलाहकार महाराजा जसवन्तसिहका खुले-आम अपमान करने लगा। तव तो कुछ समय तक मुगलोके इस दक्षिणी पडावमे आपसी गृह-युद्ध छिड गया, जिससे शिवाजीके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नही की जा सकी।

अपनी ओरसे मुगलोके साथ युद्ध छेडनेको शिवाजी स्वय उत्सुक न थे। आगरासे घर लौटनेके वाद उन्होने तीन वर्ष शान्तिपूर्वक विताए और विरोधके लिए मुगलोको पुन उत्तेजित कर सकनेवाली हर वातको वे टालते रहे। अपने शासन-प्रवन्धको सुसगठित करनेके लिए किलोकी मरम्मत कर उनमे आवश्यक युद्ध-सामग्री एकत्रित करने तथा पश्चिमी तटपर वीजापुर राज्य और जजीराके सिद्दियोको पराजित कर अपनी शक्ति वढानेके लिए शिवाजीने कुछ समय तक मुगलोके साथ शान्ति वनाए रखना ही ठीक समझा। शिवाजीने जसवन्तसिहसे प्रार्थना की कि वह वीचमे पडकर उनके तथा मुगल साम्राज्यमे सन्धि करवा दे। उसने जसवन्तसिहको लिखा—"मेरे सरक्षक मिर्जा राजा मर चुके है। आपकी सिफारिशपर यदि मुझे क्षमा प्रदान कर दी जावेगी तो शम्भूको शाहजादेकी सेवामे भेज दूँगा। वह शाही मनसवदार वनकर मेरे सैनिकोके साथ आपकी आज्ञानुसार शाही सेवा करता रहेगा।"

शाहज़ादे मुअज्जम और जसवन्तसिहने शिवाजीके इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर शिवाजीके लिए औरगजेवसे सिफारिश की, जिसपर औरगजेवने भी अपनी अनुमति दे दी। सन् १६६८ ई०के प्रारम्भमे औरगजेवने शिवाजीका राजा कहना स्वीकार कर लिया, किन्तु मराठो द्वारा समर्पित किलोमेसे चाकणके सिवाय दूसरा कोई किला उसे वापस नही लौटाया। इस प्रकार की गई यह सन्धि अगले दो वर्षों तक वरावर कायम रही।

अध्याय ११

शिवाजी

(१६७०–१६८०)

१. शिवाजीका मुगलोंसे विरोध और उनका अपने क़िलोंको वापिस जीत लेना

मुगलोंके साथ हुई इस नई सन्धिकी शर्तोंके अनुसार शिवाजीने अगस्त १६६८में प्रतापराव और नीराजी रावजीकी अधीनतामें एक मराठा सेना औरंगाबाद भेजी। शम्भूजीको पुनः पचहज़ारी मनसब दे दिया गया। मनसबकी जागीरें उसे बरारमें दी गई। १६६७से लेकर १६६९ तकके इन तीन वर्षोंमें शिवाजी मुगलोंके आश्रित राजा बनकर बिलकुल ही शान्त रहे। बीजापुरके साथ भी उनके सम्बन्ध बड़े शान्तिपूर्ण रहे। वास्तवमें इन तीन वर्षों तक शिवाजी बहुत ही व्यस्त थे। इस कालमें उन्होंने बड़ी ही बुद्धिमानीके साथ सारी व्यवस्था बनाकर अपने राज्यके शासन-संगठनकी नींव बहुत गहरी और सुदृढ़ बना दी।

किन्तु दोनों ही पक्षवालोंके लिए यह सन्धि एक अल्पकालीन अस्थायी युद्ध-विराम मात्र थी। औरंगज़ेबको सदैव अपने पुत्रोंके प्रति सन्देह बना रहता था। शिवाजी और मुअज़्ज़मकी इस मित्रताको भी उसने अपने राज्य-सिंहासनके लिए एक भावी खतरेका प्रारम्भ ही समझा। अतएव उसने शिवाजीको पकड़ने या कमसे कम उनके लड़के और सेनापतिको कैद कर उन्हें धरोहरके रूपमें अपने अधिकारमें रखनेका बहुत गुप्त रूपसे दूसरी बार षड्यन्त्र किया। सन् १६६६ ई०में शाही दरबारमें आनेके लिए

शिवाजीको उधार दिए गए एक लाख रुपए वसूल करनेके लिए बरारमें दी गई शिवाजीकी नई जागीरका कुछ भाग कुर्क कर औरगजेबने पूरी कजूसी दिखाई। अपनी जागीरकी इस ज़ब्तीका समाचार मिलनेपर सन् १६६९ ई०के अन्तमे शिवाजी पुन बागी बनकर मुगलोंसे लडनेको तत्पर हुए।

शिवाजीने पूरी शक्तिके साथ मुगल साम्राज्यपर अपने आक्रमण आरम्भ किए और उन्हे तत्काल सफलता भी मिली। दूर-दूर तक धावा करनेवाले उनके दल मुगल प्रदेशको लूटने लगे। पुरन्दरकी सन्धिके अनुसार औरगजेबको समर्पित अपने अनेको किलोको उन्होने एक-एक कर वापिस ले लिया। ४ फरवरी १६७०को राजपूत किलेदार उदयभानको हराकर कोण्डाना किला छीन लेना उनकी सबसे अधिक महत्त्वकी सफलता थी। उस किलेसे पूर्णतया परिचित कुछ कोली मार्ग-दर्शकोकी सहायतासे एक अधेरी रातमे तानाजी मालसुरे ३०० चुने हुए अपने मावले पैदलोंके साथ कल्याण-दरवाजेके पासकी कम ढालवाली पहाडीकी ओरसे रस्सियोंके सहारे किलेकी दीवाल फाँद गया। किलेकी सेना जी-जानसे लडी, परन्तु "हर हर महादेव"की रण-हुकार करते हुए मावलोने शत्रु सेनामे सर्वत्र प्रलय मचा दी। दोनो विरोधी सेनाओके नेताओने एक-दूसरेको ललकारा और दोनो ही अकेले द्वन्द्व-युद्ध करते हुए कट मरे। १,२०० राजपूत उस दिन काम आए। पहाडीपरसे नीचे उतरकर भाग निकलनेका विफल प्रयत्न करते हुए बहुतसे राजपूत मर गए। सिहके समान वीर तानाजीकी स्मृतिमे शिवाजीने उस किलेका नाम 'सिहगढ' रक्खा।

अप्रेल १६७०के अन्त तक शिवाजीने अहमदनगर, जुन्नर और परेण्डाके आसपासके ५१ गाँवोको भी लूट लिया था।

२ मुअज्जम और दिलेरमें विरोध

१६७०ई०के प्रारम्भिक छ महीनो तक दक्षिणके मुगल सूबेदार शाह-आलम और उसके प्रमुख सेनापति दिलेरखाँमे पारस्परिक विरोध चलता रहा। दिलेरखाँको इस बातका पूरा-पूरा डर था कि यदि वह मुअज्जम-की सेवामे उपस्थित हुआ तो वह कैद कर लिया जावेगा या छलसे उसकी हत्या कर दी जावेगी। दिलेरकी इस अवज्ञाकारितासे क्रुद्ध होकर मुअज्जम तथा उसके प्रमुख सलाहकार जसवन्तसिहने दिलेरखाँके विद्रोही हो जाने

की शिकायत औरंगज़ेबसे की। उधर दिलेरखाँने पहिले ही औरगजेबको मुअज्ज़मके विरुद्ध लिख भेजा था और यह भी सूचना दी थी कि मुअज़्ज़म शिवाजीसे मिला हुआ था। मुअज्ज़मके अपनी मनमानी ही करने और शासन-कार्य सम्बन्धी शाही आज्ञाओंका पालन न करनेके कारण इन दिनों औरगजेब अत्यधिक चिन्तित हो गया था। दक्षिणकी सर्वसाधारण जनताको इस वातका पूर्ण विश्वास हो गया था कि मराठोंकी सहायतासे मुअज़्ज़म अपने पिताके राज्य-सिंहासनपर अधिकार करनेका षड्यन्त्र कर रहा था, और इसी कारण वह अकर्मण्य बैठा मराठोंके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नही कर रहा था, जिससे शिवाजीका साहस बढ गया और प्रारम्भसे ही मुगल प्रदेशोपर मराठोंके आक्रमण सफल होते जा रहे थे।

दक्षिणमे अपनी परिस्थिति सर्वथा असहनीय देखकर शाहआलमकी अनुमति प्राप्त किए विना ही दिलेरखाँ शाही दरबारको लौट जानेके लिए बहुत ही व्यग्र हो गया। गुजरातका सूबेदार बहादुरखाँ दिलेरका समर्थक बन गया और अब दिलेरकी स्वामिभक्ति तथा उसकी पिछली सेवाओंकी भरसक प्रशसासे भरा हुआ एक पत्र औरगज़ेबको लिखा और साथ ही यह भी सिफारिश की कि उसकी ही अधीनतामे दिलेरको काठियावाडका फौजदार नियुक्त किया जावे। बादशाहने बहादुरखाँका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इधर अपने पिताका आदेश पाकर मुअज्ज़मने भी तुरन्त ही उसका पालन किया और सितम्बर १६७०के अन्त तक वह वापस औरंगाबादको लौट आया।

इन आपसी झगडोंके कारण मुग़लोकी सैनिक शक्ति बहुत ही कुण्ठित हो गई थी। इस सुवर्ण अवसरसे शिवाजीने पूरा-पूरा लाभ उठाया। मार्च १६७०मे सूरतके अंग्रेज व्यापारियोंने लिखा—"पहिले शिवाजी चोरकी तरह चुप-चाप जल्दी-जल्दी चलते थे परन्तु अब उनकी हालत बदल गई है। तीस हज़ार सैनिकोंकी एक बडी फौजको साथ लिये वे देशपर देश जीतते हुए आगे बढते जाते हैं, और शाहज़ादेके इतने नज़दीक होते हुए भी वे उसकी कोई परवाह नही करते है।" ३ अक्तूबर १६७०को शिवाजीने दूसरी वार सूरत लूटा।

३. सूरतका दूसरी वार लूटा जाना

२ अक्तूबरको वारम्बार सूरत समाचार पहुँचने लगे कि १५,०० घुड़सवारो और पैदलोंको लेकर शिवाजी सूरतसे २० मीलकी दूरीपर आ

पहुँचे हैं। शहरके सारे भारतीय व्यापारी और सरकारी कर्मचारी एक रात और एक दिन पहले ही वहाँसे भाग चुके थे। ३ अक्तूबरको शिवाजीने नगरपर आक्रमण किया। औरगजेबकी आज्ञासे इस समय तक नगरके चारो ओर नई शहरपनाह बन गई थी। कुछ समय तक सामना करनेके बाद शहरके रक्षक भी किलेकी ओर भाग गए। तब अग्रेज डच और फरासीसी व्यापारियो की कोठियाँ, तुर्की और ईरानी व्यापारियोकी बडी नई सराय, और अग्रेजो तथा फरासीसियोके मकानोके बीचमे स्थित तातार सराय, जिसमे मक्काकी तीर्थ-यात्रासे कुछ ही दिन पहिले लौटा हुआ काशगरका सिहासनच्युत बादशाह अब्दुल्लाखाँ रहता था, आदि कुछ स्थानोको छोडकर मराठोने सारे शहरपर अधिकार कर लिया। आक्रमण-कारियोको बहुमूल्य उपहार देकर फरासीसियोने तो उन्हे अपने पक्षमे कर लिया। अग्रेज व्यापारियोको कोठी खुले मकानमे थी, फिर भी स्टेशनशम मास्टर और ५० नौ-सैनिकोने डटकर उसकी रक्षा की।

तातारोने दिन भर बहादुरीसे मराठोका सामना किया, परन्तु जब सफलतापूर्वक अधिक विरोध कर सकना असम्भव देख पडा तो अपने बादशाहको साथ लेकर रात्रिके समय वे किलेमे जा पहुँचे। उनके उस मकान और उनकी उस भारी बहुमूल्य सामग्रीको लुटेरोसे बचानेवाला वहाँ कोई भी नही रह गया। उधर नई सरायमे तुर्कोने सफलतापूर्वक अपनी रक्षा की, और आक्रमणकारियोको बहुत-कुछ हानि भी पहुँचाई। मराठोने सुविधापूर्वक शहरके बडे-बडे मकान लूटे और लगभग आधे शहरको जलाकर राख कर दिया। ५ अक्तूबरको ही वे सूरतसे वापिस लौटे।

सरकारी जाँच द्वारा निश्चित रूपसे ज्ञात हुआ कि शिवाजी कुल मिलाकर कोई ६६ लाख रुपयेका माल सूरतसे लूट ले गए थे। परन्तु मराठो द्वारा लूटे गए मालके मूल्यके इस आँकसे ही सूरतकी वास्तविक हानिका पूरा पता नही लग सकता था। भारतके इस सबसे धनवान् बन्दरगाहका सारा व्यापार ही इस लूटके फलस्वरूप बहुत-कुछ चौपट हो गया। शिवाजीके वापस लौट जानेके कई वर्ष बाद तक मराठा सेनाके उस ओर कुछ ही पडावोकी दूरी तक आ जानेकी सूचना पाकर या उनके आक्रमणकी सम्भावनाके झूठे समाचारोके फैलने मात्रसे ही यदा-कदा सूरत नगर भयसे आतकित हो उठता था। ऐसे अवसरपर हर बार व्यापारी जल्दी-जल्दी अपना सामान जहाजोपर रख आते थे, नागरिक

गांवोमे भाग जाते थे और युरोपीय व्यापारी शीघ्रताके साथ सुवाली पहुँचकर वहाँ आश्रय लेते थे। यो मराठोके आक्रमण तथा लूटके आतंक और त्रासके कारण सूरतसे सारा विदेशी व्यापार पूर्णतया लोप हो गया।

४. डिण्डोरीमें दाऊदखाँको हराकर (१७ अक्तूबर, १६७०) शिवाजीका वरारपर आक्रमण करना

सूरतको यो दूसरी वार लूटकर शिवाजी अव वगलाना पहुँचे और मुल्हेरके किलेकी तलहटी मे वसे हुए गावोको लूटा। मराठा आक्रमणकारियोका सामना करनेके लिए दाऊदखाँको वुर्हानपुर भेजा गया था, एव वह वगलानासे नासिक जानेवाले मार्गके पहाड़ी भागमे स्थित चांदोर नामक नगरमे जा पहुँचा। १६ अक्तूवरके वादकी आधी रातके समय उसके गुप्तचरोंने दाऊदखाँको खवर दी कि शिवाजी पहले ही उस घाटीमेसे गुजरकर अपनी आधी सेनाके साथ शीघ्रतापूर्वक नासिककी ओर जा रहा था और वाकी रही आधी सेना घाटीकी राह रोककर पीछे रह जानेवालोको इकट्ठा कर रही थी। तव तो उस रातके समय ही दाऊदखांने एकदम ससैन्य प्रस्थान किया। इखलासखां मियाना मुगल सेनाके हरोलका नेतृत्व कर रहा था। सूर्योदयके समय शत्रु-सेना उसे देख पडी। अपनी सारी सेनाके आ पहुँचनेके लिए भी न ठहरकर उसने शत्रुओंपर दुस्साहसपूर्ण आक्रमण कर दिया। इखलासखां वहुत शीघ्र घायल होकर घोडेसे गिर पड़ा। कुछ समय वाद वहुतसे सैनिकोंके साथ दाऊदखां भी वहाँ आ पहुँचा, जिससे मुगलोंके पक्षको वल प्राप्त हुआ। कई घण्टो तक वहाँ डटकर घमासान युद्ध होता रहा। 'दक्षिणी वारगियोंके समान मुगल सेनाके चारो ओर मडरा-मडराकर' मराठे दूरसे ही लडते रहे। मुगल सेनाके वुन्देले पैदल सैनिकोंने अपनी वन्दूकें और तोपें चला-चलाकर मराठोंको अपने पास नही आने दिया। दोपहरमे युद्ध कुछ थम-सा गया। मध्याके समय मराठोंने पुन. हमला किया परन्तु मुगलोंकी गोलावारीसे विवश होकर उन्हें पीछे हटना पड़ा। हेमन्त ऋतुकी वह ठण्डी रात मुगलोने गुल्मेमे ही विताई। अपने पडावके चारो ओर खाइयां खोदकर मुगल मृत सैनिकोंको गाड़ने और घायलोंकी सेवा-शुश्रूषामे लगे रहे। मराठोंने मुगलोंका पुन सामना नही किया और वे कोंकणको वापस लौट गए। एक सप्ताह वाद पेशवाने नासिक जिलेमें स्थित त्रिम्वक किलेको जीत लिया।

डिंडौरीके इस युद्धका परिणाम यह हुआ कि उसके वाद एक माह तक मुगलोसे कुछ भी करते-धरते न वन पडा। नवम्बर माहमे दाऊदखाँ अहमदनगर चला गया। दिसम्वर माहके प्रारम्भमे स्वय शिवाजीके नेतृत्वमे एक मराठा सेनाने राहमे अहिवन्त तथा वगलानाके तीन और किलोको जीतनेके वाद खानदेशपर आक्रमण कर दिया। तेज़ीसे आगे वढकर शिवाजीने वुरहानपुरसे केवल दो मीलकी ही दूरीपर स्थित वहादुरपुरा गाँवको लूटा। और जव वहाँ उनके पहुँच जानेका खयाल तक किसीको नही हो सकता था, तव वरारमे पहुँचकर शिवाजीने कारजाके धन-धान्यपूर्ण सुसमृद्ध नगरको वुरी तरह लूटा। महीन कपडा, सोना-चाँदी, आदि कुल मिलाकर कोई एक करोड रुपयेका माल वहाँ लूटमे मराठोके हाथ लगा, जिसे चार हजार वैलो और गधोपर लादकर वे ले गए।

जिस समय शिवाजी वरारमे इस प्रकार कारजाको लूट रहे थे, उसी समय मोरो त्रिम्वक पिंगलेकी अधीनतामे मराठोका एक दल पश्चिमी खानदेश और वगलानाको लूट रहा था। शिवाजीके वरारसे लौटनेपर मराठोका यह दूसरा दल भी साल्हेरके पास उनके साथ आ मिला। तव मराठोको इस सम्मिलित सेनाने साल्हेरके किलेका घेरा डाला। दाऊदखाँ ससैन्य मुल्हेर तक जा पहुँचा था, परन्तु वहाँसे आगे वह नही वढ सका, क्योकि उस दिन तव तक रात पड गई थी और दाऊदखाँकी सेना भी वहुत पिछड गई थी। उचित समयपर दाऊदखाँके आवश्यक सहायता न दे सकनेके फलस्वरूप ५ जनवरी १६७१ ई० के दिन साल्हेर किलेपर शिवाजीका अधिकार हो गया।

७. मुग़ल सेनापतियोंकी चढ़ाइयाँ; १६७१-७२

मराठोके हाथो इन पराजयो और विफलताओका विवरण सुनकर औरगजेवने पूर्णतया जान लिया कि दक्षिणकी परिस्थिति सचमुच ही वहुत गम्भीर हो गई थी। उसने महावतखाँको दक्षिणकी सारी मुगल सेनाओका सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया और जनवरी १६७१मे वहुत अधिक सैनिक, धन और धान्य तथा युद्ध-सामग्री वगलाना भेजे।

जनवरी १६७१के अन्तमे महावतखाँ चाँदोरके पास दाऊदखाँके साथ सम्मिलित हो गया। दोनोने मिलकर शिवाजी द्वारा जीते हुए किले अहिवन्तका घेरा डाला। एक माहके वाद वहाँकी सेनाने आत्मसमर्पण कर

दिया। अहिवन्तकी रक्षाके लिए एक सेना छोडकर महावतखांने तीन माह नासिकमे विताए। फिर वर्षा ऋतुके (जूनसे सितम्बर) माह काटनेके लिए वह अहमदनगरसे २० मील पश्चिममे पारनेर नामक स्थानपर चला गया।

इस चढाईमे महावतखांको विशेष सफलता नही मिली और वह वहुत समय तक चुपचाप ही वैठा रहा, जिस कारण औरगज़ेव महावतखांसे वहुत ही असन्तुष्ट हो गया और उसको यह भी सन्देह होने लगा कि कही महावतखांने शिवाजीके साथ कोई गुप्त समझौता तो नही कर लिया था। अतएव आगामी जाडेके दिनोमे औरगज़ेवने वहादुरखां और दिलेरखांको भी दक्षिण भेजा। वे गुजरातसे वगलाना आए और उन्होने साल्हेरके किलेका घेरा डाला, जो तव भी मराठोंके ही अधिकारमे था। इखलासखां मियाना, राव अमरसिह चन्द्रावत और अन्य सेनानायकोको यह घेरा चलाए रखनेके लिए वहां छोडकर वे अहमदनगरकी ओर वढे। दूर-दूर तक धावा करनेवाले सैनिकोंके एक दलको लेकर दिलेरखांने दिसम्वर १६७१के अन्तमे पूनापर पुन अधिकार कर लिया और नौ वरससे अधिक आयुवाले वहांके सारे निवासियोको तलवारकी धार उतार दिया। परन्तु उधर प्रतापरावके नेतृत्वमें मराठोकी एक वडी सेनाने साल्हेरका घेरा डाले वहां पडी हुई मुगल सेनापर आक्रमण किया। मुगल सेनाने डट कर युद्ध किया। किन्तु अन्तमे मराठोने घेरेके उस सारे पडावपर पूर्णत. अधिकार कर लिया। इसके कुछ समय वाद मोरो पन्तने मुल्हेर भी जीत लिया। जनवरी माहके अन्त तथा फरवरी १६७२का पहला हफ्ता वीतते-वीतते यह सव हो गया। इन सफलताओंके फलस्वरूप शिवाजीकी प्रतिष्ठा वहुत वढ गई और उनकी शक्तिमे लोगोंका अगाध विश्वास हो गया।

६. मराठोंका कोली प्रदेशपर अधिकार कर सूरत नगरसे चौथ मांगना; १६७२

५ जून १६७२को मोरो त्रिम्बक पिंगलेके नेतृत्वमे मराठोंकी एक सेनाने कोली राजा विक्रमशाहकी राजधानी जव्हारपर अधिकार कर लिया, वहां १७ लाख रुपयोंका माल मराठोंके हाथ लगा। तव वहांसे उत्तरकी ओर आगे वढकर जुलाईके पहिले सप्ताहमे रामनगरके सिसोदिया राज्यको भी उन्होंने अपने अधिकारमे कर लिया।

रामनगर और जव्हारपर उनका अधिकार हो जानेसे अब कल्याणसे सूरत जानेको मराठोके लिए उत्तरी कोकणमे होता हुआ यह सीधा, सुरक्षित और सुगम्य रास्ता खुल गया था, जिससे सूरतके बन्दरगाहको दक्षिणकी ओरसे होनेवाले ऐसे आक्रमणोसे किसी भी प्रकार बचा सकना सर्वथा असम्भव हो गया। अब सूरत नगरमे मराठोंके सम्भावित आक्रमणका आतक फैल जाना प्रतिदिनकी एक साधारण बात हो गई।

रामनगरके पासके पडावसे मोरो त्रिम्बक पिंगलेने एकके बाद दूसरा यो कुल तीन पत्र सूरतके अधिकारी तथा वहाँके प्रमुख व्यापारियोको भेजे और उनसे सूरतकी चौथके चार लाख रुपयोकी माँग की तथा रुपये न देनेकी हालतमे सूरतपर चढाई करनेकी भी धमकी दी।

कोली प्रदेशके अपने इस पडावसे चलकर एक बडी सेनाके साथ मोरो त्रिम्बकने पश्चिमी घाटको सरलतासे पार किया और जुलाई १६७२का महीना आधा बीतते-बीतते वह नासिक जिलेमे जा पहुँचा और उस जिलेके उत्तरी एव दक्षिणी परगनोके मुगल थानेदार जादवराव एव सिद्दी हलालको हराकर उस जिलेको लूटा। उनकी इस सफलताके लिए जब बहादुरखाँने इन दोनो थानेदारोको खूब फटकारा तब क्रुद्ध होकर वे दोनो मराठोमे जा मिले।

७. १६७३में मराठोंकी हलचलें

अगले नवम्बरमे शिवाजीने अपने घुडसवारोको बरार और तेलगानेपर आकस्मिक धावा करनेके लिए भेजा। उनका पीछा कर उनको रोकनेके प्रयत्नमे मुगल सेनापति विफल हुआ, तथापि इस बार मुगलोंने प्रशसनीय कार्यकारिता दिखाई, जिससे सन् १६७० ई०के प्रथम आक्रमणसे विपरीत खानदेश और बरारका यह मराठा आक्रमण पूरी तरह विफल हुआ।

सन् १६७३मे चमारगुण्डासे आठ मील दक्षिणमे भीमा नदीके उत्तरी तटपर स्थित पेडगाँवमे बहादुरखाँने अपना पडाव डाला। अगले कई वर्षो तक बहादुरखाँकी सेनाके वही बने रहनेसे धीरे-धीरे उस छावनीके आसपास एक किला बन गया और एक शहर भी बस गया। बादशाहकी आज्ञा लेकर बहादुरखाँने उसका नाम बहादुरगढ रख दिया।

पेडगाँव एक बहुत ही सामरिक महत्त्ववाले स्थानपर बसा हुआ है। पूनाके पूर्वमे बडी दूर तक गए हुए लम्बे पहाडके बाद फैले हुए समतल

मैदानमे ही यह कस्बा बसा हुआ है। उत्तरी पूना जिलेमे मूला और भीमा नदीकी घाटियोकी रक्षा करनेके हेतु इस पर्वत श्रेणीके उत्तरमे, तथा उस जिलेके दक्षिणी भागोमे नीरा और बारामती नदियोकी घाटियोकी देख-भाल करनेके लिए उन पहाडियोके दक्षिणमे इच्छानुसार ससैन्य घूमनेके लिए यह स्थान बहुत ही सुविधापूर्ण था।

इसी वर्ष शिवाजीने प्रयत्न किया था कि घूस देकर जुन्नरके किले शिवनेरको अपने अधिकारमे कर ले। परन्तु वहाँका मुगल किलेदार अब्दुल अजीजखाँ, जो जन्मसे ब्राह्मण था और बादमे धर्म परिवर्तन कर मुसलमान हो गया था, औरगजेबका बहुत ही स्वामिभक्त तथा सम्माननीय अधिकारी था, उसने शिवाजीके इस प्रयत्नको विफल कर दिया।

२४ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाहकी मृत्यु हो गई और तब उसका चार बरसको आयुवाला बेटा गद्दीपर बैठा, जिससे कुछ ही महीनोमे बीजापुरका शासन पूर्णतया अस्तव्यस्त और शक्तिहीन हो गया। शिवाजीके लिए यह सुवर्ण अवसर था। रिश्वत देकर उन्होने ६ मार्च १६७३को दूसरी बार पन्हालापर अधिकार कर लिया और ऐसे ही साधनो द्वारा २७ जुलाईके दिन उन्होने सताराके पहाडी किलेको भी ले लिया। मई माहमे प्रतापराव गूजरकी अधीनतामे उनके सैनिक बीजापुरी कनाडाके भीतरी भागो तकमे जा घुसे तथा वहाँ हुबली और अन्य समृद्धिपूर्ण नगरोको लूटा, किन्तु बीजापुरी सेनापति बहलोलखांने उनका दृढतासे सामना किया जिससे वे आगे न बढ सके।

दशहरेके दिन १० अक्तूबर १६७३को २५,००० वीर सैनिकोके साथ शिवाजी स्वय बीजापुरी प्रदेशमे जा पहुँचे। उन्होने अनेक शहरोको लूटा। तब अधिक लूटके लिए वे कनाडा पहुँचे और दिसम्बरके पहले पखवाडे तक वे वहाँ व्यस्त रहे।

बीजापुरियोने पन्हाला प्रदेशपर आक्रमण किया, तब शिवाजीका और भी ध्यान बटानेके लिए जनवरी १६७४के अन्तमे एक मुगल सेनाने कोकणमे उतरनेका प्रयत्न किया परन्तु उधरके रास्तो तथा पहाडी घाटियोकी तोड-फोड कर और उन राहोके विभिन्न दुर्गम स्थानोपर सैनिकोका कडा पहरा बिठाकर शिवाजीने मुगलोके लिए वह रास्ता ही बन्द कर दिया था, जिससे उन्हे विफल मनोरथ ही लौटना पडा।

इसके कुछ ही दिनो बाद दक्षिणमे मुगलोकी शक्ति बहुत ही घट

गई। खैवरमे अफगानोका विद्रोह इतना प्रवल हो उठा था कि ७ अप्रैल १६७३के दिन औरगजेव स्वय हसन अवदालके लिए दिल्लीसे चल पडा। दक्षिणमे शिवाजीके साथ मुगलोका युद्ध बन्द-सा पड गया। तव शिवाजीने वडी ही धूमधाम और समारोह तथा पूरी वैदिक विधिके साथ ६ जून १६७४को रायगढमे अपना राज्याभिषेक किया।

८. वहादुरखॉके पडावका लूटा जाना तथा वहादुरखॉके साथ शिवाजीकी वनावटी सधि-चर्चा; १६७४-७५ ई०

राज्याभिषेकमे किए गए अमित व्ययके कारण शिवाजीका खजाना खाली हो गया था। उधर अपने सैनिकोको वेतन देनेके लिए शिवाजीको धनकी आवश्यकता हुई। आधी जुलाई १६७४के लगभग कोई २,००० मराठे घुडसवारोने पेडगाँवके मुगल पडावपर आक्रमणका ढोग रचा और उनके चक्करमे पडकर उनका पीछा करता हुआ वहादुरखॉ पेडगाँवसे कोई ५० मीलकी दूरी तक निकल गया। उसी समय ७,००० सवारोके एक और दलको लेकर शिवाजी दूसरी राहसे पेडगाँव पहुँचकर उस अरक्षित पडावपर टूट पडे और वहाँसे २०० अच्छे घोडे तथा एक करोड रुपयेका माल लूट ले गए। अक्तूवरके पिछले दिनोमे पश्चिमी घाट पार कर शिवाजी एक वडी सेनाके साथ दक्षिणी पठारपर जा पहुँचे, वहादुरखॉके पडावके निकटसे गुजरकर उन्होने औरगावादके पासके कई नगरो को लूटा और तव वगलाना तथा खानदेशमे जा धमके।

सन् १६७५ ई०के प्रारम्भमे शिवाजीने वहादुरखॉके साथ सन्धि करने का ढोग रचा और मार्चसे लेकर कोई तीन माह तक मुगलोको सन्धिकी झूठी आशाओके चक्करमे ही फँसाए रखा। किन्तु जुलाई माहमे गोआकी सीमापर फोण्डा किलेको हस्तगत करनेके वाद शिवाजीने अपने इस ढोगका अन्त कर मुगल दूतोको ताने सुनाकर वडी वेइज्जतीके साथ वहाँसे भगा दिया।

जनवरी १६७६मे शिवाजी सख्त वीमार पड गए और अगले तीन माह तक वे सतारामे ही रोग-शय्यामे पडे रहे। उधर सन् १६७५के अन्तिम महीनोमे वहलोलखॉ स्वय वीजापुर राज्यका अभिभावक वन वैठा था, जिसके फलस्वरूप वहाँके दक्षिणी और अफगान दलोमे पारस्परिक युद्ध शुरू हो गया था। शिवाजीके लिए यह एक अच्छा अवसर था, एव उस

लम्बी बीमारीसे स्वस्थ होते ही शिवाजी बिना किसी प्रकारकी रोक-टोक या कुछ भी खतरेके बीजापुर राज्यमे दूर-दूर तक धावे मारकर सर्वत्र लूट-मार करने लगे।

९. कर्नाटकपर चढ़ाईकी तैयारीके लिए शिवाजीको राजनैतिक चालें

जनवरी १६७६मे शिवाजीने अपने जीवनकी सबसे बडी चढाई, कर्नाटकपर आक्रमण, करनेके लिए प्रस्थान किया। पास-पडोसके सभी राज्योंकी राजनैतिक परिस्थिति तब शिवाजीकी इस योजनाके लिए बहुत ही अनुकूल थी। मुगल साम्राज्यकी सब सुसज्जित वीर सेनाएँ तब भी अफगानी सीमापर विद्रोही पहाडी कबायलियोको दबानेमे लगी हुई थी। उधर दक्षिणके मुगल सूबेदारने खुले तौरपर बीजापुरके दक्षिणी दलका पक्ष लिया और ३१ मईको उसने बीजापुरपर चढाई कर युद्ध छेड दिया, जो एक वर्षसे भी अधिक समय तक चलता रहा। इधर कुछ समयसे बहादुरखाँने शिवाजीके साथ मैत्रीपूर्ण समझौता करनेकी बातचीत छेडी थी, एव अपनी चतुराईपूर्ण कूटनीति द्वारा शिवाजीने अब बहादुरखाँपर पूर्ण विजय प्राप्त की। बीजापुरपर चढाई करते समय मई १६७६मे बहादुरखाँ उत्सुक था कि अपने दाहिने बाजूपर स्थित शिवाजीके साथ मैत्री स्थापित कर ले। उधर शिवाजी भी चाहते थे कि मुगलोके साथ समझौता होकर वे तटस्थ बन जावे, जिससे कर्नाटककी चढाईके समय पीछेसे मुगलोके आक्रमणकी आशका भी मराठोको न रह जावे। अतएव शिवाजीने अनेको बहुमूल्य भेटें लेकर अपने प्रधान न्यायाधीश नीराजी रावजीको बहादुरखाँके पास भेजा, और कर्नाटकपर चढाईके समय महाराष्ट्रसे कोई एक वर्ष भरकी अपनी अनुपस्थितिके समय उसके तटस्थ बने रहनेका वचन बहादुरखाँसे ले लिया।

गोलकुण्डासे घनिष्ठ मित्रता स्थापित कर उस राज्यका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लिया गया। उस समय अबुलहसन कुतुबशाहका वजीर मादन्ना पण्डित ही गोल्कुण्डाका सर्वेसर्वा था, और शिवाजीने उसके साथ एक सहायक सन्धि कर ली थी। गोल्कुण्डा राज्यकी रक्षा करनेके बदलेमे एक लाख हूण प्रति वर्ष करके रूपमे शिवाजीको देनेका वायदा किया गया था। प्रह्लाद नीराजी नामक विचक्षण कूटनीतिज्ञको अपना राजदूत बनाकर शिवाजीने उसे हैदराबादमे नियुक्त किया। जीते हुए प्रदेशोका एक भाग गोल्कुण्डा राज्यको भी देनेके वादेपर शिवाजीने उस चढाईके लिए आव-

श्यक द्रव्य तथा सहायतार्थ गोलकुण्डा राज्यकी सेनाके सेना भेजे जानेकी भी माँग की।

१०. गोलकुण्डाके साथ शिवाजीकी संधि तथा कर्नाटक-विजय

जनवरी १६७७के शुरूमे शिवाजीने रायगढसे प्रस्थान किया। ५०,००० सशस्त्र सैनिको सहित नियमित गतिसे पूर्वकी ओर बढते हुए शिवाजी फरवरीके आरम्भमे हैदराबाद पहुँचे। कुतुबशाही राज्यमे प्रवेश करते ही उन्होने अपने सैनिकोको सख्त हिदायत कर दी कि वहाँके किसी भी निवासीको न तो लूटा जावे और न उन्हे किसी भी प्रकारका कष्ट दिया जावे। इस आदेशको न माननेवालोको कडी सजाएँ देनेका भी प्रबन्ध किया गया।

अपने सुलतानके इस महत्त्वपूर्ण मित्र और रक्षकका हार्दिक स्वागत करनेके लिए हैदराबाद नगरके निवासियोने अपने नगरको बडे ही उत्साह और उल्लासके साथ सजाया था। सुव्यवस्थित क्रमानुसार शहरके मार्गोमेसे गुजरकर मराठा सेना दाद महलके सामने पहुँची और वहाँ रुक गई। अपने पाँच अधिकारियो सहित शिवाजी ऊपर गए और वहाँ तीन घण्टे तक सुलतानसे मैत्रीपूर्ण बाते होती रही। शिवाजीके व्यक्तिगत आकर्षणसे सुलतान बहुत अधिक प्रभावित हुआ, तथा उनके चरित्र, अनुशासन एव सगठनसे प्रसन्न होकर अबुलहसनने अपने वजीरको आदेश दिया कि शिवाजीकी सारी माँगे पूरी कर दी जावे। कुछ वाद-विवादके बाद दोनोमे आगामी चढाई सम्बन्धी एक गुप्त समझौता हो गया। सुलतानकी ओरसे शिवाजीको ३,००० हूण प्रतिदिन या साढे चार लाख रुपया प्रति माह सहायतार्थ दिए जाने एव कर्नाटक-विजयमे सहयोग देनेके लिए गोलकुण्डा राज्यकी ओरसे ५,००० सनिकोके साथ वहाँके 'सार-इ-लश्कर' मिर्जा मुहम्मदको शिवाजीके साथ भेजनेका निश्चय हुआ। इस सहायताके बदलेमे शिवाजीने वचन दिया कि कर्नाटकके जीते हुए वे सारे प्रदेश, जो पहले कभी उनके पिता शाहजीके अधिकारमे नही रहे थे, गोलकुण्डा राज्यको दे दिये जावेगे। विधिवत् शपथ-सौगन्दे लेकर मुगलोके आक्रमणके विरुद्ध आत्मरक्षणकी सन्धिको पुन सुदृढ किया गया। मुगलोके आक्रमणसे उसकी रक्षा करते रहनेके बदलेमे शिवाजीको प्रति वर्ष एक लाख हूणका कर देने और अपने दरबारमे मराठोके राजदूतको रहने देनेका कुतुबशाहने वादा किया।

कर्नाटकके समतल मैदानमे बीजापुरकी ओरसे दो स्थानीय सूबेदार नियुक्त थे। एक तो था बीजापुरके पिछले मन्त्री खान मुहम्मदका पुत्र नसीर मुहम्मदखाँ, जो जिंजीमे रहता था। दूसरा था बहलोलखाँका शेरखाँ नामक एक आश्रित आफगान, जिसका प्रधान केन्द्र जिंजीसे दक्षिणमे किन्तु त्रिचनापल्ली जिलेके उत्तरी भागमे स्थित वलीकण्डपुरम् नामक स्थान था। उसमे और आगे दक्षिणमे था तजोरका राज्य, जिसे सन् १६७५ ई०मे शिवाजीके सौतेले भाई व्यकोजीने जीतकर स्थापित किया था। तजोरके इस हिन्दू राज्यके बाद मदुराका एक और हिन्दू राज्य पडता था। ये सारे विभिन्न राज्य आपसमे लडकर एक दूसरेको हडपनेके लिए तुले हुए थे।

एक माह तक हैदराबादमे ठहरनेके बाद शिवाजी वहाँसे दक्षिणकी ओर करनूल, श्रीशैलम, अन्नापुर, तिरुपति, कालाहस्ती होते हुए ७ मईको मद्राससे ७ मील पश्चिममे स्थित पेड्डापोलम् पहुँचे। नसीर मुहम्मदके साथ समझौता कर शिवाजीने जिंजीके किलेपर अधिकार कर लिया और तब वेलूरके किलेको जा घेरा। चौदह मास तक वीरतापूर्वक उसका बचाव करनेके बाद विवश हो पर्याप्त पुरस्कार पानेपर ही वेलूरके किलेदार अब्दुल्लाखाँने २१ अगस्त १६७८को आत्मसमर्पण किया।

एक बाढकी तरह फैलकर आक्रमणकारी मराठा सेनाने कर्नाटकके सारे मैदानपर अधिकार कर लिया था। इने-गिने किलोंके अतिरिक्त कहीं भी किसीने उनका सामना नही किया। मराठोंके उस ओर बढनेकी सूचना मिलते ही वहाँके धनी नागरिक या तो जगलोमे जा छिपते थे या समुद्र तटपर बने हुए युरोपीयोके किलोमे आश्रय लेते थे। २६ जून १६७७को कडलोरसे कोई २३ मील पश्चिममे तिरुवाडीमे शेरखाँ लोदीकी पराजय हुई और विवश होकर उसे अपने अधिकारका सारा प्रदेश शिवाजीको दे देना पडा। तब वहाँसे चलकर शिवाजी कोलेरुण नदीके उत्तरी तीरपर स्थित तिरुमलवाड़ी नामक नगरमे पहुँचे और भेट करनेके लिए व्यकोजी-को वहाँ आमन्त्रित किया। शिवाजीने प्रयत्न किया कि उनकी मृत्युके समय जो भी प्रदेश शाहजीके अधिकारमे था उनका तीन चौथाई भाग वे व्यकोजीसे छीन ले। परन्तु चतुराईसे व्यकोजी २३ जुलाईको वहाँसे भाग-कर तजोर लौट गए। तब शिवाजी महाराष्ट्रको लौट पडे और राहमे पडने-वाले अनेको तीर्थोके दर्शन किए। सुव्यवस्थित ढगसे लूट द्वारा एव बल-पूर्वक धन छीनकर शिवाजीने कर्नाटकको बिलकुल ही नगा-भूखा कर दिया।

१६७७-७८ ई० के इन दो वर्षोंमे शिवाजीने कर्नाटकमे ६० योजन लम्वा और ४० योजन चौडा प्रदेश जीता, जिसके अन्तर्गत कोई सौ किले पडते थे और जिसकी वार्षिक आय ३० लाख हूण थी।

नवम्वर १६७७के आरम्भमे ही शिवाजी मद्रासके मैदानको छोडकर मैसूरके पठारपर चढे और वहाँ उन्होने उसके पूर्वी और मध्यके भागोको जीत लिया। मैसूर राज्यके वीचोवीच स्थित सेरा नामक स्थानसे वे महाराष्ट्रकी ओर लौटे तथा कोपल, गदग, वकापुर, वेलगॉव जिलेमे स्थित वेलवाडी और तुरगल होते हुए अप्रेल १६७८के पहले सप्ताहमे वे अपने सुदृढ किले पन्हालामे आ पहुँचे।

११. मुग़ल साम्राज्य, वीजापुर राज्य और शिवाजी; १६७८-७९

अव शिवाजी और कुतुवशाहमे मनमुटाव हो गया। वडे ही धीरजके साथ पूरे सोच-समझके वाद मादन्ना पण्डितने जो राजनैतिक व्यवस्था की थी, उसके सारे ही सूत्र एकदम टूट गए। यह देखकर कि कर्नाटककी इस चढाईमे गोलकुण्डा राज्यकी सहायतासे भी शिवाजीने केवल अपना ही स्वार्थ सिद्ध किया, शिवाजीके प्रति कुतुवशाहका रोप निरन्तर वढता ही जा रहा था। अतएव अवुलहसनने वीचमे पडकर वीजापुर राज्यके नये अभिभावक सिद्दी मसूद और उसके प्रतिद्वन्द्वियोमे विशेपतया शर्जाखाँके साथ मेल करवा दिया। वेतन न मिलनेपर विद्रोह करनेवाले उसके सैनिकोशान्त करनेके लिए अपने पासमे आवश्यक द्रव्य देकर अवुलहसनने सिद्दी मसूदकी सहायता की। इस सवके वदलेमे अवुलहसनने सिद्दी मसूदसे वादा करवाया कि वह शिवाजीके विरुद्ध चढाई कर उसे कोकणसे वाहर वढने न देगा। परन्तु उसी समय वीजापुरपर आक्रमण कर दिलेरखाँने अवुलहसनके इस सारे आयोजनको ही मटियामेट कर डाला।

उनका ज्येष्ठ पुत्र शम्भूजी, शिवाजीकी इस वृद्धावस्थामे अपने पिताके लिए एक अभिशाप वना। यह इक्कीस-वर्षीय नवयुवा दुस्साहसी, स्वेच्छाचारी, अस्थिर-चित्त, अविवेकी और अत्यधिक व्यभिचारी था। एक विवाहित ब्राह्मण स्त्रीके साथ वलात्कार करनेपर उसे पन्हालाके किलेमे कैद कर दिया गया था। किन्तु अपनी पत्नी येशुवाई और अपने कुछ साथियोके साथ पन्हालासे भागकर शम्भूजी दिलेरखाँके साथ जा मिला (१३ दिसम्वर १६७८)। अपने इस महत्त्वपूर्ण मित्रके साथ दिलेरखाँ वहादुरगढमे ५०

मील दक्षिणमे अकलूज नामक स्थानपर कुछ समय तक ठहरकर वीजापुर-पर चढाईकी तैयारी करता रहा।

इस आपत्तिके समय अपने समझौतेके अनुसार सिद्दी मसूदने शिवाजीसे सहायता माँगी। वीजापुरकी सहायताके लिए शिवाजीने भी ६–७ हज़ार घुडसवार भेज दिए। किन्तु मसूद अपने इस मराठा मित्रका पूरा विश्वास कर ही नही सकता था। कुछ समय वाद शिवाजीने उधर अपना असली स्वरूप दिखाया और वे पुन आदिलशाह राज्यके प्रदेशमे लूटमार कर उसे वरवाद करने लगे। तव तो मसूदने दिलेरखांके साथ सन्धि कर ली। एक मुगल सेनाको वीजापुरमे आमन्त्रित किया गया और वहाँ उस सेनाका शाही स्वागत भी हुआ।

अव दिलेरखाँ जथसे २० मील उत्तर-पश्चिम और पण्ढरपुरसे ४५ मील दक्षिण-पश्चिममे स्थित भूपालगढके किलेकी ओर वढा। मुगलोसे युद्ध करते समय आसपासके प्रदेशमे रहनेवाली अपनी प्रजाके कुटुम्बोके आश्रय-के लिए एव अपनी सम्पत्ति तथा भण्डारको सुरक्षित रूपेण रखनेके लिए ही शिवाजीने यह किला वनवाया था। २ अप्रेल १६७९को प्रात कालमे कोई ९ वजे इस किलेपर आक्रमण प्रारम्भ हुआ। दुपहर तक मुगल वडे ही साहस और वीरताके साथ लडते रहे, तव कही उस किलेपर वे अधि-कार कर पाए। इस युद्धमे दोनो ही पक्षक वहुत अधिक सैनिक काम आए। इस किलेमे सग्रहीत वहुत-सा धान्य और प्रचुर सम्पत्ति मुगल विजेताओके हाथ लगी। मुगलोने वहुतसे लोगोको कैद भी कर लिया। युद्धमे वच जानेवाले सात सौ दुर्ग-रक्षक सैनिकोका एक-एक हाथ काटकर उन्हे छोड दिया। वाकी रहे सव कैदी दास वनाकर वेच दिए गए होगे।

१२. शिवाजीकी अन्तिम चढाई

१८ अगस्त १६७९को दिलेरखाँने वीजापुरसे कोई ४० मील उत्तरमे धूलखेडके पास भीमा नदीको पार किया और मसूदपर पुन चढाई की। वीजापुर राज्यके इस अभिभावकने विवश होकर शिवाजीसे सहायताकी भीख मांगी, और शिवाजीने वडी तत्परताके साथ सहायता देना स्वीकार कर लिया। उधर दिलेरखाँके पाससे भागकर शम्भूजी ८ दिसम्वर १६७९-को वापस पन्हाला लौट आया।

४ नवम्वर १६७९को शिवाजीने वीजापुरसे ५५ मील पश्चिममे स्थित

सेलगुर नामक स्थानसे प्रस्थान किया। इस समय उनके साथ १८,००० मराठे घुडसवार थे, जो दो विभागोमे बँटकर शिवाजी एव आनन्दरावकी अधीनतामे समानान्तर दूरीपर उत्तरी दिशामे बढे और मुगलोके अधीन दक्षिणी प्रदेशके जिलोमे जा घुसे। राहमे पडनेवाले प्रत्येक स्थानको लूटा और जला दिया, और यो बहुतसा द्रव्य तथा अमित माल उन्हे लूटमे मिला। यही महीना आधा बीतते-बीतते औरगाबादसे ४० मील पूर्वमे जालना नामक एक बहुत आबादीवाले व्यापारी शहरपर अधिकारकर उसे लूटा। पहुँचे हुए फकीर सैयद जान मुहम्मदकी कुटिया यहीके उपनगरमे थी। अपना-अपना रुपया पैसा और बहुमूल्य रत्नोको साथ लेकर जालनाके अधिकाश धनी निवासियोने इसी कुटियामे शरण ली थी। मराठे आक्रमणकारियोको शहरकी लूटमे बहुत ही कम माल मिला, तब अपने मालमतेके साथ धनिकोंके उस कुटीमे जा छिपनेकी बात सुनकर वे आक्रमणकारी वहाँ जा पहुँचे और वहाँ घुसे हुओको लूटा तथा कईको घायल भी कर दिया। उस फकीरने उन आक्रमणकारियोसे प्रार्थना की कि वे ऐसा न करें, उन्होंने उसकी एक न सुनी, उलटे उसे गालियाँ दी तथा बहुत कुछ धमकाया भी। तब उस तपस्वी सन्तने शिवाजीको शाप दिया। सर्वसाधारण जनताका दृढ विश्वास था कि उस फकीरकी वाणी निरर्थक नही हो सकी, एव इस शापके कोई पाँच महीने बाद ही जब शिवाजीका देहान्त हो गया, तब उन्होने शिवाजीकी मृत्युको इस शापकी परिणति माना।

पूरे चार दिनतक जालनाको अच्छी तरह लूटने और उसे नष्ट-प्राय करनेके बाद जब मराठे लूटमे मिले अनगिनित सोना-चाँदी, हीरे, कपडे, घोडे, हाथी और ऊँटो सहित लौट रहे थे तब रणमस्तखाँ नामक एक साहसी मुगल अधिकारीने मराठी सेनाके पिछले भागपर आक्रमण कर दिया। ५,००० मराठोको अपने साथ लेकर शिवोजी निम्बालकरने रणमस्तखाँको तीन दिन तक रोका, किन्तु अन्तमे अपने अनेक साथियो सहित वह मारा गया। उसी समय केसरीसिह और सरदारखाँके नेतृत्वमे औरगाबादसे एक बडी सहायक मुगल सेना रणमस्तखाँकी सहायतार्थ चली आ रही थी। जब उस युद्ध-क्षेत्रमे केवल छ मीलकी दूरीपर पहुँचकर इस नई सेनाने पडाव डाला, तब हिन्दू भाई होनेके नाते केसरीसिहने शिवाजीको गुप्त सन्देश भेजा कि चारो ओरसे घेरकर मुगल सेना उनको पकड पावे उससे पहिले ही शिवाजी वहाँसे निकल भागे। अपने विश्वस्त गुप्तचरोंजी द्वारा दिखाए दुरूह अज्ञात रास्तोपर तीन दिन और रात तक

व्यग्रतापूर्वक लगातार चलकर ही मराठा सेना वहांसे किसी प्रकार वच निकली। किन्तु लूटका वहुतसा माल उन्हे वही छोड देना पडा। उनके ४,००० घुडसवार मारे गए और सेनापति हम्वीररगव घायल हुआ। इस दुर्भाग्यपूर्ण चढाईसे लौटकर कोई २२ नवम्वरके लगभग शिवाजी पट्टागढ पहुँचे, जहाँ उनकी थकी हुई त्रस्त सेनाने कुछ दिन विश्राम किया, और तव सितम्वरके प्रारम्भमे वे रायगढको लौट गए। नवम्वरके अन्तिम सप्ताहमे एक मराठा सेनाने खानदेशपर आक्रमणकर धारनगाँव, चोपरा और उनके आसपासके कई एक वडे-वडे नगरोको लूटा तथा जला दिया।

अपने ज्येष्ठ पुत्रके दुश्चरित्रको देख-देखकर शिवाजी अपने राज्यके भविष्यके लिए वहुत ही चिन्तित हो उठे थे। शम्भूजी एक वहुत ही क्रूर, अस्थिर-चित्तवाला, व्यभिचारी युवक था। उसमे सद्‌गुणो, देशभक्ति और धर्म-प्रेमका पूर्ण अभाव ही था। शिवाजीके अन्तिम दिन निराशापूर्ण चिन्तामे ही वीते। २३ मार्च १६८०के दिन शिवाजीको ज्वर हो आया और उन्हे रुधिरके दस्त होने लगे। वारह दिन तक यह वीमारी चलती रही और अन्तमे मराठा जातिको जाग्रतकर नवजीवन प्रदान करनेवाला वह नरपुगव रविवार, ४ अप्रेल, १६८०के दिन दोपहरमे इस लोकसे चल वसा। उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी, और अभी शिवाजीने अपने जीवनका ५३वाँ वर्ष भी पूरा नहीं किया था।

१३. शिवाजीका राज्य, उनकी सेना और आय

उत्तरमे सूरतके अन्तर्गत रामनगरसे (वर्तमान धरमपुर राज्यसे) लेकर दक्षिणमे वम्बई प्रान्तके कनाड़ा जिलेमे कारवार या गंगावती नदी तकके इस भू-भागमे पुर्तगालियो द्वारा अधिकृत परगनोको छोड़ते हुए वाकी सारा प्रदेश उनकी मृत्युके समय शिवाजीके ही राज्यमे था। उनके राज्यकी पूर्वी सीमा उत्तरमे वगलानाको सम्मिलित करती हुई दक्षिणमे नासिक और पूनाके परगनोके वीच टेढी-मेढी होती दक्षिणकी ओर वढती थी और सताराका सारा परगना तथा कोल्हापुर परगनेका वहुतसा हिस्सा भी शिवाजीके राज्यमे ही पड़ता था। उन्होंने लगा वेल्गांवसे लेकर मद्रास प्रान्तके वेलारी परगनेके सामनेवाले तुङ्गभद्राके तटतक फैला हुआ कर्नाटक अथवा कन्नड़ देशका पश्चिमी भाग था, जिसे कुछ ही समय पहिले जीतकर शिवाजीने स्थायी रूपसे अपने राज्यमें मिला लिया था।

कोपलके पास तुङ्गभद्राके तटसे लेकर वेलोर और जिजी तकके प्रदेशको, जिसके अन्तर्गत वर्तमान मैसूर राज्यका उत्तरी, मध्यका एव पूर्वी भाग, तथा मद्रास प्रान्तके वेलारी, चित्तूर और अर्काटके परगने पडते थे, शिवाजीने कुछ ही वर्ष पहिले जीता था, तथा अब तक वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित नही हो सकी थी, जिससे सन् १६८० ई०मे वहाँ मराठा सेना नियुक्त थी।

अपने राज्यके इन सुव्यवस्थित प्रदेशोके अतिरिक्त निरन्तर घटने-बढनेवाली एक बहुत चौडी पट्टी ऐसे प्रदेशकी भी थी, जहाँ यद्यपि शिवाजीकी आज्ञाएँ मान्य होती थी, फिर भी उसपर उनका एकाधिपत्य नही था। जब-जब भी नियमित रूपसे प्रतिवर्ष मराठा सेनाएँ वहाँ पहुँच जाती थी, तब-तब वहाँसे निश्चित कर, जिसे मराठी भाषामे 'खण्डणी' कहते थे, वसूल हो जाता था। उस प्रदेशके निश्चित लगानका चौथाई भाग ही मराठे यो वहाँसे वसूल करते थे, एव मराठोको दिया जानेवाला यह कर साधारण बोलचालमे "चौथ" भी कहलाने लगा। चौथ दे देनेसे उस प्रदेशमे मराठे सैनिको या मराठे कर्मचारियोकी अवाछनीय उपस्थितिसे छुटकारा पानेके अतिरिक्त उस प्रदेशवासियोको और कोई लाभ नही होता था, उस प्रदेशमे उठनेवाले आन्तरिक उपद्रवोको दबाने, बाह्य आक्रमणोमे उसे बचाने या ऐसा और कोई भी उत्तरदायित्व शिवाजीपर नही आता था। शिवाजीके दरबारी सभासदकी गणनाके अनुसार उनकी आय कुल मिलाकर एक करोड हूणके लगभग होती थी, और यदि पूरी-पूरी चौथ वसूल हो जाती तो उससे अस्सी लाख हूण और प्राप्त हो जाते थे।

अपने उपयोगकी सारी आवश्यक सामग्री जुटानेके लिए शिवाजी नियमित रूपसे प्रति वर्ष अपनी सेना विदेशी राज्योमे भेजते थे। वर्षा ऋतुमे (जूनसे सितम्बर तक) सारी मराठा सेना अपने राज्यके ही सैनिक पडावोमे विश्राम करती थी। (अक्तूबर माहमे) ठीक दशहरेके दिन पडावोसे निकलकर इस सेनाको अपने राजा द्वारा बताए गए राज्य-पर कूच कर देना पडता था। अगले आठ महीनो तक दूसरे राज्योके प्रदेशोमे ही रहकर अपना भरण-पोषण करना तथा वहाँसे कर वसूल करना उसका प्रधान कार्य होता था। मराठा सेनाके साथ कोई भी स्त्री, नाचनेवाली या वेश्या नही जा सकती थी। यदि कोई सैनिक इस नियमका

उल्लंघन करता था तो सिर काटकर उसको मृत्यु दण्ड दिया जाता था। केवल मनुष्य ही कैद किए जा सकते थे, स्त्रियो या बालकोको कैद नही किया जाता था। ब्राह्मणोके साथ न तो कोई अत्याचार ही किया जा सकता था और न बन्ध मुक्ति द्रव्य वसूल करनेके लिए उन्हे शरीर-बन्धक ही किया जा सकता था। अपने घरको लौट आनेपर प्रत्येक सैनिकको अपनी लूटका माल राज्यको दे देना पडता था।

१४. शिवाजीका केन्द्रीय शासन

"अष्ट प्रधान" नामक आठ मन्त्रियोकी एक परिषद्की सलाह और सहायतासे ही शिवाजी शासन करते थे। ये आठ प्रधान थे —(१) मुख्य प्रधान अथवा पेशवा, जो प्रधान मन्त्री होता था, (२) मजमुआदार अर्थात् अमात्य, जो जमा-खर्चका लेखा रखता था, (३) वाकयानवीस अथवा मन्त्री, जो राजाकी दिन भरकी गति-विधि तथा राजदरबारकी घटनाओका दैनिक व्योरा रखता था, (४) सुरनिस अथवा सचिव, जो पत्र-व्यवहारका कार्य सम्भालता था, (५) दबीर अथवा सुमन्त, जो विदेश मन्त्री होनेके साथ ही जासूसी विभागका भी प्रधान होता था, (६) सर-ए-नौबत अर्थात् सेनापति, जो राज्यकी समस्त सेनाओका सचालक था, (७) पण्डितराव, जो अकेला ही मुसलमानी राज्यके सद्र और मुहतसिब दोनो ही अधिकारियोका काम सम्भालता था, वह धार्मिक मामलो और जात-पांतके झगडोको निवटाने, अधार्मिक और भ्रष्टाचारियोको दण्ड देने तथा राजकीय दान-विभागमे विद्वान् ब्राह्मणोको दक्षिणा देनेका काम करता था, (८) न्यायाधीश, जो राज्यके सारे न्यायाधीशोका प्रधान होता था। किन्तु यह "अष्ट प्रधान" परिषद् वास्तवमे राजाकी आज्ञानुसार कार्य करनेवाले सचिवोका ही दल था, आधुनिक 'केबिनेट' अर्थात् मन्त्री-मण्डलोके साथ उसकी कोई भी समानता नही थी।

१५. शिवाजीका चरित्र तथा इतिहासमें उनका स्थान

जिन विभिन्न उपायो और साधनोके द्वारा शिवाजीने यह सफलता प्राप्त की, वे नैतिक दृष्टिसे भले ही मान्य नही हो, परन्तु शिवाजीकी यह सफलता एक ज्वलन्त वास्तविक सत्य थी। मुगल साम्राज्य तथा दक्षिण

सारे साधन एक जागीरदारके इस बेटेको दबानेमे निष्फल हुए। यह देख कर कि उसके सारे ही बडे-बडे सुप्रसिद्ध सेनापति दक्षिणमे विफल हुए थे, औरगजेब स्वय भी निराश हो गया था और शिवाजीका दमन कर सकनेका कोई भी उपाय उसे सूझ नही रहा था।

उस युगमे जब कि हिन्दुओपर किए जानेवाले अत्याचारोका पुन आरम्भ हो रहा था, हिन्दू जनताको शिवाजी उनके धर्मकी लाज रखनेवाला तथा उनकी भावी नई आशाओका एकमात्र सितारा-सा देख पडा।

बहुत ही सुदृढ और ऊँची नैतिकता ही शिवाजीके व्यक्तिगत जीवन की प्रधान विशेषता थी। वे एक मातृभक्त पुत्र, स्नेहपूर्ण पिता और कर्तव्यपरायण पति थे। बाल्यकालसे ही वे अत्यधिक धार्मिक थे। स्वभाव एव अभ्यास दोनोसे ही वे जीवन-पर्यन्त सयमी, दुर्गुण-रहित और साधु-सन्तोके भक्त रहे। साधु-सन्तोके मामलेमे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही धर्मावलम्बियोके प्रति वे उदारतापूर्ण सहनशीलता दिखाते थे, जिससे उनकी धार्मिक उदारता सुस्पष्ट रूपेण प्रमाणित हो जाती है। स्त्रियोके प्रति सम्मान और अपने सैनिक पडावोके लिए सदाचार-सम्बन्धी कठोर नियम बनाना, उस युगकी एक आश्चर्यजनक विशेषता थी। खफीखाँ जैसे उनके कट्टर-विरोधी आलोचको तकको विवश होकर उनके इस कार्यकी प्रशसा करनी पडी।

एक जन्मजात नेताका-सा व्यक्तिगत आकर्षण शिवाजीमे था और जिस किसीका भी उनके साथ परिचय हुआ, वह शिवाजीके प्रति मन्त्र-मुग्ध-सा हो जाता था। देशके सारे ही सुयोग्य व्यक्ति आप-ही-आप उनके पास खिचे चले आते थे। शिवाजीके कर्मचारी तन, मन, धनसे अपने स्वामीकी सेवा करते थे, तथा शिवाजीकी चकाचौंधित करनेवाली विजयो और उनके मुखपर सदैव खेलनेवाली मनमोहक मुस्कराहटसे मुग्ध होनेवाले उनके सैनिकोकी आँखोके वे तारा बन गए थे। मानव-चरित्रको परखनेकी उनकी अचूक राजोचित क्षमता ही उनकी अनोखी सफलताका प्रधान कारण थी। सेनापतियो, अधिकारियो, राजनीतिज्ञो, मन्त्रियो तथा कर्मचारियोके चुनावमे उन्होने कभी भूल नही की। उनके सैनिक-सगठनकी कार्यकुशलता अनुकरणीय थी, प्रत्येक वस्तुके लिए पहिलेसे ही प्रबन्ध कर दिया जाता था और वह एक उपयुक्त निरीक्षककी देखरेखमे निश्चित स्थानपर सदैव तैयार रहती थी। उनका गुप्तचर विभाग बहुत ही कार्य

कुशल था, और जिधर भी चढाई करनेको वे सोचते थे, उस प्रदेशकी छोटी-से-छोटी बातोका पूरा-पूरा पता उन्हे पहिलेसे ही मिल जाता था। बहुत दूरीपर होते हुए भी उनकी सेनाके विभिन्न दल उनकी इच्छाके अनुसार सम्मिलित या अलग हो जाते थे, और इसमे कभी कोई चूक नही हुई। पीछा करनेवाले या विरोधी शत्रुओका उपयुक्त रीतिसे सामना किया जाता था, और यह सब होते हुए भी लूटका सारा माल-असबाब बिना किसी हानिके बहुत जल्दी सकुशल घर पहुँचा दिया जाता था। अपने सैनिकोकी जातीय प्रवृत्तियो तथा विशेषताओ, तद्देशीय भौगोलिक परिस्थिति, वहाँ तब काममे आनेवाले अस्त्र-शस्त्रो तथा शत्रु पक्षकी आन्तरिक दशाको समझ-बूझकर उनके उपयुक्त युद्ध-शैलीको वे सहज बुद्धिसे अपना लेते थे, जिससे उनकी जन्मजात सैनिक प्रतिभा सुस्पष्ट हो जाती है। तीव्र गतिसे चलनेवाले पैदलोकी सहायता पाकर दूर-दूर तक धावा मारनेवाले चपल मराठा घुडसवार औरगजेबके शासन-कालमे सर्वथा दुर्दमनीय हो गए थे।

राजनैतिक मौलिकता या दूरदर्शिताकी अपेक्षा शिवाजीका महत्त्व उनके चरित्र और उनकी व्यवहार-कुशलतामे था। दूसरोंके चरित्रको समझनेकी अचूक सूक्ष्म दृष्टि, अनोखी प्रबन्ध-क्षमता, लाभदायक और व्यावहारिक बातोको स्वाभाविक सहज बुद्धिसे जान लेनेकी उनकी शक्ति, आदि ही उनके जीवनकी सफलताके मुख्य कारण थे। बिखरे हुए मराठों-को एकत्रित करके उन्हे एक सगठित जातिमे परिणत कर देना उनके जीवनकी एक चिरस्थायी सफलता थी। स्वतन्त्रताकी जो प्रेरणा उन्होंने अपने देशवासियोंमे फूँक दी थी, वह उनकी एक बहुमूल्य देन है। और यह सब करनेमे उन्हे मुगल साम्राज्य, बीजापुर, पुर्तगालियोंमे भारतीय राज्य और जजीराके हबशियो जैसे चार शक्तिशाली राज्योंके सम्मिलित विरोधका सामना करना पडा था।

आधुनिक कालके किसी भी अन्य हिन्दूने संगठन कर सकनेकी ऐसी प्रतिभा नही दिखाई है। अपने उदाहरण द्वारा शिवाजीने यह सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू जाति भी राष्ट्रिय नवनिर्माण कर सकती है, राज्यकी स्थापना करना जानती है, तथा शत्रुओको पराजित करना भी उसके लिए असम्भव नही; अपनी आत्मरक्षाका भी पूर्ण आयोजन कर सकती है, साहित्य, कला, व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी रक्षा ही नही कर सकती

है किन्तु उनको प्रोत्साहन देकर उनकी उन्नति करना भी उसे आता है, जल-सेनाका सगठन करनेके साथ ही महासिन्धुओको पार कर सकनेवाले अपने ही जहाज़ी बेडे बनवाना और विदेशियोके साथ होनेवाले जल-युद्धोमे उनके साथ भी बराबरीकी टक्कर लेना उसके लिए कदापि कठिन नही। शिवाजीने आधुनिक हिन्दुओको अपनी उन्नतिसे उच्चतम शिखरपर चढनेका महत्त्वपूर्ण पाठ पढाया।

०

अध्याय १२

बीजापुरका पतन और उसका अन्त

१. जयसिंहका बीजापुरपर आक्रमण ; १६६५-१६६६

बीजापुरके सुलतानसे औरंगजेबके क्रुद्ध हो जानेका एक विशेष कारण था। मुगलोंके उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्धसे लाभ उठाकर आदिल-शाह अगस्त १६५७में की हुई सन्धिकी शर्तोंका उल्लघन करने लगा था। शिवाजीके विरुद्ध चढाई करते समय जयसिंहको यह पता लगा कि बीजा-पुरके अधिकारी गुप्त रूपसे मराठा नायकके साथ मित्रता कर उसे धरती, धन तथा अन्य सारी वस्तुएँ देकर उसकी सहायता करने लगे थे। पुन शिवाजीके साथ चलनेवाले युद्धके सन् १६६५ ई०में समाप्त हो जानेके बाद जयसिंहकी अधीनतामें सगठित यह बहुत बडी सेना दक्षिणमें निरुद्योग हो गई थी। दक्षिणकी इस सुसज्जित सेनाको किसी-न-किसी लाभदायक उद्योगोंमें लगाए रखना अत्यावश्यक जान पडा, इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए बीजापुरपर आक्रमण करना ही सबसे उपयुक्त साधन देख पड़ा।

पुरन्दरकी सन्धि द्वारा मराठा नेता शिवाजीने वादा किया था कि बीजापुर नियोजित आक्रमणके समय शाही मनसबदार होनेके नाते उसके पुत्र शम्भूजीको सेनाके दो हजार घुड़सवार मुगलोंके सहायतार्थ पहुँचेंगे, और स्वयं भी अपने सात हजार चुने हुए कुशल पैदल सैनिकोंको लेकर मुगलोंके साथ सम्मिलित हो जावेगा।

बीजापुरके आश्रित अन्य राज्योंके साथ जयसिंहने इसी प्रकारका षड्यन्त्र किया और उन्हे पत्र लिखकर दिल्लीके मुगल साम्राज्यकी अधीनतामें उन्हे मनसब देनेका प्रलोभन दिया था।

अन्तमे सारी तैयारियाँ पूरी हो जानेपर १९ नवम्बर १६६५को जयसिंह पुरन्दरके किलेके नीचेवाले अपने पडावसे रवाना हुआ। उसके साथ ४०,००० शाही सैनिक थे। इनके अतिरिक्त नेताजी पालकरके नेतृत्वमे २,००० मराठे घुडसवार और ७,००० पैदल सिपाही भी उसके साथ थे। इस चढाईके पहिले माहमे जयसिंहकी सेना बिना किसी रोक-टोकके बराबर सफलतापूर्वक आगे बढती ही गई। बीजापुरकी राहमे पडनेवाले बीजापुरी किले पलटन, थथवाडा, खटाव और अन्तमे बीजापुरसे केवल ५२ मील उत्तरमे स्थित मगलविडे भी क्रमश एक-एककर या तो खाली कर दिए गए या मुगल सेनाके वहाँ पहुँचते ही उन्होने आत्मसमर्पण कर दिया। बीजापुरियोके साथ मुगल सेनाकी पहली लडाई २५ दिसम्बर १६६५को हुई। शिवाजी और दिलेरखाँके नायकत्वमे शाही सेनाके एक दलने शाही पडावसे दस मील आगे बढकर बीजापुरके यशस्वी सेनापति शर्जाखाँ और खवासखाँके अधीन १२,००० बीजापुरी सेना तथा उनके मराठे साथी, कल्याणीके जादवराव तथा शिवाजीके सौतेले भाई व्यकोजीके साथ उस दिन युद्ध किया। बीजापुरी सेना दिल्लीके तगडे घुडसवारोके सीधे आक्रमणसे बचनेका ही प्रयत्न करती रही, और कज्जाकोकी युद्ध-शैलीका अनुसरणकर उन्हे हानि पहुँचाने तथा विभिन्न चार दल बनाकर वे दौडते-भागते उखडी हुई लडाई लडते रहे। बहुत देरकी कशमकशके बाद अपने अथक परिश्रम और दृढ साहससे दिलेरखाँने शत्रुको विचलित कर दिया, तथा उसके निरन्तर आक्रमणोका सामना न कर सकनेके कारण सध्या पडने-पडते बीजापुरी युद्धक्षेत्रसे हट गए। किन्तु ज्योही विजयी मुगल सेना अपने पडावकी ओर लौटने लगी, बीजापुरी सेनाके दल पुन एकाएक वहाँ आ पहुँचे और उन्होने मुगल सेनाके दोनो बाजुओ और पृष्ठ भागपर आक्रमणकर बहुत मारकाट की। उधर बिना रुके चलकर २८ दिसम्बरके दिन प्रात कालमे शर्जाखाँ ६,००० घुडसवारोके साथ मगलविडेके किलेके पास जा पहुँचा था। जयसिंहकी आज्ञाका उल्लघनकर शर्जाखाँके साथ लडनेके लिए मगलविडेका मुगल किलेदार सरफराजखाँ किलेसे बाहर निकला और लडता हुआ काम आया, तब तो बाकी रही मुगल सेनाने भागकर किलेमे आश्रय लिया।

दो दिन रुकनेके बाद जयसिंह पुन आगे बढने लगा तथा २८ दिसम्बरको दूसरा युद्ध हुआ। सदैवकी तरह इस बार भी दक्षिणी घुडसवारोने मुगलोको घेर लेनेका प्रयत्न किया और अलग-अलग दलोमे बँटकर वे

शाही सेनाके पास मडरा-मडराकर अपने पासकी मुगल सेनामे जव यत्किञ्चित् भी कमजोरी या गडवडी देख पडती तव वहाँ आक्रमण कर देते थे। अन्तमे मुगलोने शत्रुपर सीधा आक्रमण किया, तव दक्षिणी युद्धक्षेत्रमे भाग निकले, पूरे छ मील तक मुगलोने उनका पीछा किया किन्तु भागते हुए दक्षिणी वहां भी मुगलोका विरोध करते ही जाते थे। दूसरे दिन २९ दिसम्वरको जयसिह वीजापुरके कोई १२ मील पास तक जा पहुँचा। इस वार इससे आगे वढना जयसिहके भाग्यमे वदा न था। क्योकि इन दिनोमे अली आदिलशाह द्वितीयने सारी आवश्यक युद्ध-तैयारी कर ली थी और अव आक्रमण कर उसकी राजवानी वीजापुर तथा उसके उपनगरोपर अविकार कर लेना सर्वथा असम्भव हो गया था।

विभिन्न दलोकी आपसी फूटके कारण पूर्णतया अशक्त एव सर्वथा अरक्षित वीजापुरपर एकाएक आक्रमण कर वहां अविकार कर सकनेके इस अभूतपूर्व अवसरसे पूर्ण लाभ उठानेको उत्सुक जयसिह तेजीसे वढता हुआ मगलविढे तक जा पहुँचा। परन्तु तव भी वडी-वडी तोपो और घेरा डालनेके लिए अत्यावश्यक अन्य युद्ध-सामग्रीको उसने परेण्डाके किलेमे नही मगवाया था, जिससे अव उसकी परिस्थिति वहुत ही सकटापन्न हो गई थी। आदिलशाहकी सहायताके लिए गोल्कुण्डासे एक वडी सेना आ रही थी, और इवर आक्रमणकारी मुगल सेनाके भूखो मरनेकी नौवत आ गई थी।

२. जयसिहका वाध्य होकर वीजापुरसे वापस लौटना; १६६६

अतएव ५ जनवरी १६६६को मुगल सेनापतिने पीछे लौटना आरम्भ किया। वीजापुरी तव भी उसके पीछे लगे रहे। २७ जनवरीको वह परेण्डासे १६ मील दक्षिणमे सीना नदीपर स्थित सुल्तानपुर नामक स्थान-पर पहुँचा।

जनवरीके इस माहमे मुगलोको चार वडी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओका सामना करना पडा। सबसे पहले १२ जनवरीके लगभग जव फतेहजगका भाई सिकन्दर नामक एक साहसी अफगान नायक जयसिहकी सेनाके लिये खाद्य तथा युद्ध-सामग्री ले जा रहा था, तव शर्जाखांके नेतृत्वमे एक वडी वीजापुरी सेनाने परेण्डाके किलेसे कोई आठ मील दक्षिणमे एकाएक उस-पर आक्रमणकर वह सारी वहुमूल्य सामग्री लूट ली।

उधर शिवाजीके प्रस्तावको स्वीकार कर उन्हे एक बडी सेनाके साथ पश्चिममे पन्हालाके किलेपर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया था। परन्तु १६ जनवरीके दिन पन्हालापर किए गए धावेमे शिवाजीके कोई एक हजार सैनिक काम आए और फिर भी उनका यह प्रयत्न पूर्णतया विफल ही रहा। २० जनवरीके दिन एक और दुस्समाचार वहाँ पहुँचा। बहुत करके अपनी बहुमूल्य सेवाओ तथा वीरतापूर्ण विजयोका समुचित पुरस्कार और सम्मान न मिलनेके कारण ही शिवाजीका प्रधान अधिकारी नेताजी अपने स्वामीसे बहुत ही असन्तुष्ट हो गया था। अब बीजापुरियोसे चार लाख हूण रिश्वत लेकर वह उनसे जा मिला और मुगल प्रदेशपर आक्रमण करनेवाले दलोका नेतृत्व करने लगा। कई एक प्रलोभनपूर्ण पत्र लिखकर तथा नेताजीकी सारी बडी-बडी मॉगें स्वीकार कर २० मार्च १६६६को जयसिंहने उसे पुन अपने पक्षमे मिला लिया। आदिलशाहके सहायतार्थ गोलकुण्डाके सुलतानने १२,००० घुडसवार तथा ४०,००० सैनिक भेजे थे, जो मुगलोके लिए चौथी दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी।

बीजापुर नगरके उपान्तसे लौटते समय घास-दाना एकत्रित करनेवाले मुगल सैनिकोकी दैनिक मुठभेडोके अतिरिक्त ११ तथा २२ जनवरीके दिन जयसिंहको बीजापुरियोके साथ डटकर दो लडाइयाँ भी लडनी पडी। अतएव २० फरवरीको सुलतानपुरवाले अपने पडावसे चलकर जयसिंह सीधा पूर्वमे अशान्तिपूर्ण प्रदेशकी ओर बढा।

इस चढाईका जब तीसरा दौर प्रारम्भ हुआ, जो अगले जून माहमे परेण्डासे १८ मील उत्तर-पूर्वमे भूम नामक स्थानपर जयसिंहके लौट आनेके बाद ही समाप्त हुआ। जयसिंहने मगलविडे और पलटनके किले भी खाली कर दिए। इस चढाईके प्रारम्भमे मुगलो द्वारा जीते हुए बीजापुरी किलोमेसे अब एक भी मुगलोके अधिकारमे नही रह गया था।

३१ मार्चको जयसिंह उत्तरकी ओर लौटनेके लिए वापस चल पडा, और २६ नवम्बरको ही वह सीधा औरगाबाद पहुँचा। युद्ध करते-करते दोनो ही पक्ष थक गए थे। अब शान्ति स्थापनाके लिए उत्सुक थे, एव सन्धिके लिए बातचीत प्रारम्भ हुई। जब मुगल सेना अपनी राज्य-सीमाके अन्दर जा पहुँची तब बीजापुरी भी अपने राज्यको लौट गए।

३. जयसिंहकी विफलता और मृत्यु

सैनिक दृष्टिसे बीजापुरपर जयसिंहकी यह चढाई सर्वथा विफल ही

रही। मुगल सेनाकी इस हार तथा बीजापुरके इस आक्रमणमे होनेवाली धन-हानिके कारण औरंगजेब जयसिंहसे बहुत अप्रसन्न हो गया। अक्टूबर १६६६मे इस अभागे सेनापतिको औरंगाबाद लौटनेका हुक्म मिला, तथा अगले २३ मार्च १६६७को वह दिल्ली वापिस बुला लिया गया। शाहजादे मुअज्जमको दक्षिणका सूबेदार बनाया गया और उसकी सहायताके लिए जसवन्तसिंह नियुक्त हुआ। अनेको लडाइयोमे भाग लेनेवाले इस वीर राजपूतने औरंगाबादमे अपने उत्तराधिकारीको शासन अधिकार सौंप दिया (मई, १६६७), और तब अपमानसे क्षुब्ध और निराशासे भरे हुए जयसिंहने उत्तरी भारतकी राह ली। बीजापुरके युद्धमे जयसिंहने एक करोडके लगभग अपना निजी द्रव्य व्यय किया, जिसमेसे एक पैसा भी उसके स्वामीने उसे वापिस नही चुकाया था। निरादर और नैराश्यने उसका दिल तोड दिया था। वृद्धावस्था तथा रोगमे जीर्ण जयसिंह २८ अगस्त १६६७को बुरहानपुरमे मर गया।

इस चढाईके समय जयसिंहको कभी अपना पूर्ण युद्धकौशल काममे लेनेका पूरा-पूरा अवसर नही मिला था। इतने बडे धनी राज्यको जीतनेके लिए उसकी सेना बहुत ही थोडी और सर्वथा अनुपयुक्त थी। उसके पास रसद तथा खाद्य-सामग्री केवल एक-दो माहके लिए ही पर्याप्त थी। घेरा चलानेके लिए अत्यावश्यक एक भी तोप उसके पास न थी।

४. बीजापुर राज्यपर शासन करनेवाले सामन्त-सरदार

घरेलू सैनिक विद्रोह बीजापुर राज्यके प्रधान अभिशाप थे। राजकीय सत्ताके निर्बल हो जानेपर सारा राज्य अनेको सैनिक-जागीरोमे बँट गया था। राज्यका शासन सैनिक आधिपत्य मात्र था। राज्यके सारे ही महत्त्वपूर्ण विश्वसनीय पदो तथा अधिकारपूर्ण कार्योको कुछ गिने-गिने धन-लोलुप सेनापतियोने ही आपसमे बांट लिया था और राजकी सारी सत्ता इन्ही कुछ व्यक्तियोके हाथमे केन्द्रित थी। राज्यपर आधिपत्य करनेवाले ये सैनिक सामन्त चार विभिन्न जातियोके थे। सर्वप्रथम तो अफगान थे, जिनकी जागीरे पश्चिममे कोपलसे लेकर बंकापुर तक फैली हुई थी। दूसरे हबशी थे, जो पूर्वमे कर्नूल परगने और रायचूर दोआबके एक भाग-वाले प्रदेशपर शासन करते थे। तीसरे महदवी सम्प्रदायके सैयद नेता थे और चौथे कोंकणके नवायत वर्गके अरब मुसलमानोका भी वहां निरंतर

महत्त्व था। उस राज्यके हिन्दू पदाधिकारी तथा वहाँके आश्रित हिन्दू राजा दोनोकी गणना पददलित जातियोमे होती थी। राज्यपर आधिपत्य करनेवाले सारे ही राजकीय अधिकारी विदेशी थे, जो वापस अपने देश जानेका विचार तक छोड कर यहाँ ही वस गए और अव वश-परम्परागत सामन्त सरदार वन वैठे थे। प्रत्येक दलवाले अपनी ही जातिमे शादी-विवाह करते थे, जिससे वे कभी यहाँकी स्थानीय आवादीमे सम्मिलित नही हो सके। विदेशी शासक-अधिकारियोका यह दल कभी राज्य-शासन-का एक अविभाज्य भाग नही वन सका। उनका एकमात्र उद्देश्य निजी स्वार्थ-लाभ ही था, और जहाँ तक उनका वेतन और पेशन उन्हे वरावर मिलते रहते थे, इस वातकी चिन्ता उन्हे कभी नही सताती थी कि नाम-मात्रके लिए भी वे जिस प्रदेश और राज्यके अग थे, उसपर कौन व्यक्ति शासन कर रहा था। यह देश उनका अपना न था, एव उनमे देश भक्ति-की भावनाका पूर्ण अभाव ही था। वे सचमुचमे राजनैतिक खानावदोश और हृदयमे अनाथ ही थे, वे वेघरवारके ऐसे व्यक्ति थे जो भारतमे रहकर भी यहाँके न थे। ऐसे अधिकारियोकी राजभक्तिके आधारपर स्थित राज्य वालूकी नीवपर वने हुए घरके समान था। विदेशियोकी विजयसे केवल जनताके शासकोमे वदला-वदली होती थी, जनताके जीवनपर उसका कुछ भी प्रभाव नही पडता था।

५. आदिलशाही सुलतानोंका पतन तथा राज्याभिभावक पदके लिए कशमकश

मुहम्मद आदिलशाहके शासन-कालमे वीजापुर राज्यका विस्तार अपनी चरम सीमापर पहुँच गया था। अरव सागरसे लेकर वगालकी खाडी तक सारे भारतीय प्रायद्वीपमे वह फैला हुआ था। अपने अधीन जमीदारो और राजाओसे वसूल होनेवाले टाकेके सवा पाँच करोड रुपयोके अतिरिक्त वीजापुर राज्यकी अपनी वार्षिक आय भी ७ करोड ८८ लाख रुपये थी। वीजापुरकी सेनामे ८०,००० घुडसवार और २,५०,००० पैदल सैनिकोके साथ ही ५३० युद्ध कुशल हाथी भी थे।

२८ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाह द्वितीयकी मृत्युके साथ ही वीजापुर राज्यका सारा गौरव भी विलीन हो गया। जव उसके चार-वर्षीय पुत्र सिकन्दरको सिहासनपर वैठाया गया और वीजापुरमे स्वार्थी

राज्याभिभावकोका शासन प्रारम्भ हुआ, जिससे अन्तमे उस सल्तनतका सर्वनाश हुआ।

सन् १६७२से लेकर सन् १६८६मे इस राजघरानेका अन्त होने तकका बीजापुरका इतिहास वास्तवमे वहांके वज़ीरोकी कार्यवाहियोका ही विवरण है। विभिन्न विरोधी सरदारोमे निरन्तर होनेवाले आन्तरिक गृह-युद्ध, प्रादेशिक अधिकारियो द्वारा अपनी स्वाधीनताकी घोषणाएँ, राजधानी तकमे राज्यके केन्द्रीय शासनका लुप्तप्राय हो जाना, यदा-कदा होनेवाले मुगलोंके अनिर्णायक आक्रमण तथा मराठोके साथ गुप्त रूपेण सन्धि होते हुए भी ऊपरी दिखावेमे उनके साथ शत्रुता बनाए रखना ही इन चौदह वर्षोकी प्रधान विशेषताएँ थी।

२४ नवम्बर १६७२को अली आदिलशाह द्वितीय मर गया। तब दक्षिणी मुसलमानोके दलके हबशी नेता खवासखांने तुरन्त ही राजसत्ता अपने हाथोमे लेकर आदिलशाह वंशके अन्तिम सुल्तान बालक सिकन्दरको राज्य-सिंहासनपर बैठाया। दूसरे सरदारोंके साथ किए गए वादोको भगकर निश्चित किले उन्हे सौंपनेसे नये प्रधान मन्त्रीने इकार कर दिया। तब तो सुयोग्य अनुभवी भूतपूर्व वज़ीर अब्दुल मुहम्मद खिन्न होकर राजदरबारसे चल दिया। "सुल्तानकी बाल्यावस्था तथा राज्याभिभावककी अयोग्यताके कारण राज्य-तन्त्रका पतन होने लगा और राज्यमे सर्वत्र उपद्रव उठ खडे हुए।"

बीजापुरी सेनामे आधेसे अधिक सैनिक अफगान थे। उनका नेता अब्दुल करीम था, जो अब बहलोलखां द्वितीय कहलाता था, उनकी जागीर बंकापुरमे थी। ये अफगान अपने चढ़े हुए वेतनके लिए सख्तीके साथ मांग करते थे, और खुलकर राज्य सत्ताका विरोध भी करते थे, एव उन अफगानोको दबाने या उनका समूल उच्छेदन करनेके लिए खवासखांको बाध्य होकर गुप्त रूपसे मुगल सूबेदारकी सहायता मांगनी पड़ी। अतएव भीमाके तट तक आगे बढकर १९ अक्तूबर १६७५को मुगल सूबेदार बहादुरखांने खवासखांसे भेंट की और बीजापुरके अफगान दलको दबाने और शिवाजीके साथ युद्ध करने सम्बन्धी आवश्यक शर्तें तय की।

६. राज्याभिभावक बहलोलखाँ; १६७५-१६७७

बीजापुरी सेनाका प्रधान सेनापति बहलोलखां "प्राय सवा लाख

सितम्वरमे दिलेरखाँ और वहलोलने गोलकुण्डापर चढाई की। अन्तिम मुगल थाने कुलवर्गासे चलकर वहाँसे २४ मील पूर्वमे गोलकुण्डाके प्रथम सीमान्त दुर्ग मालखेडकी ओर वे वढे। उसे उन्होने एक ही दिनमे जीत लिया। किन्तु कुतुवशाही राजधानीसे ८० मील दूर मालखेडके पास ही शत्रुओकी एक वडी भारी सेनाने मुगलोके आक्रमणकी इस वाढको रोक दिया। दो माह तक लगातार युद्धके वाद भी उसका कोई निर्णायक परिणाम नही निकला। कुतुवशाही सेना वीजापुरियो और मुगलोंके प्रदेशोमे दूर तक जा घुसी और आक्रमणकारियोको खाद्य-सामग्री पहुँचाने-वाले सारे दलोका रास्ता ही रोक दिया गया। उधर वहलोलखाँ एक एक घातक वीमारीसे ग्रस्त हो चल वसा और भूखो मरनेसे अपने आपको वचानेके लिए उसके अनुयायी यहाँ-वहाँ विखर गए। तव दिलेरखाँ कुल-वर्गाकी ओर लौट पडा। वहाँ राहमे उसे वहुत वडी हानि उठानी पडी। उसे चारो ओरसे घेरकर शत्रु नित्य प्रति उसपर आक्रमण करने लगे।

कुलवर्गामे मसूद दिलेरखाँसे मिला और मुगलोके साथ उसने सन्धि कर ली। यह तय हुआ कि मसूद वीजापुरका वजीर वनकर औरगजेवकी आज्ञाओका पालन तथा शिवाजीके विरुद्ध सदैव मुगलोकी सहायता करता रहेगा। पुन आदिलशाहकी वहन शहरवानू वेगमका (जो पादशाह वीवीके नामसे विख्यात थी) विवाह औरगजेवके किसी शाहजादेसे किए जानेका भी निश्चय हुआ। इसके वाद दिलेरखाँ उत्तरकी ओर लौट गया।

८. मसूदका राज्याभिभावक वनना, अफगानोंका विद्रोह तथा वीजापुरके प्रान्तोंमें विप्लव

वहलोलखाँ २३ दिसम्वर १६७७को मर गया। गोलकुण्डाकी सेनाके साथ अगली फरवरीमे मसूद वीजापुर पहुँचा और वहाँका राज्याभिभावक वन वैठा। किन्तु खजाना विल्कुल खाली था, एव वह अफगान सैनिकोको चढा हुआ वेतन नही चुका सका, जिससे क्रुद्ध होकर वे अफगान उपद्रव करने लगे। उन्होने वहलोलखाँके अनाथ वच्चो, विधवाओ और अन्य सम्वन्धियोके घरोपर अधिकार कर लिया तथा अपना वाकी रहा रुपया चुका देनेके लिए उन्हे वाध्य करनेको उनका खुले-आम अपमान किया। धनवान माने जानेवाले सभी नागरिकोको पकडकर अफगानोने उन्हे तरह-तरहकी यन्त्रणाएँ दी। राज्यके विभिन्न प्रान्तोमे भी नये राज्या-

भिभावककी आज्ञाओंका पालन ठीक तरहसे नही होता था। अतएव जब मुगल भी उससे रुष्ट हो गए तब उसका दुर्भाग्य चरम सीमाको पहुँच गया। वर्षा समाप्त होनेपर अक्तूबर १६७८मे पेडगांवसे रवाना होकर दिलेरखां अकलूजमे जा डटा।

उसी समय सन्धिकी शर्तोके अनुसार शिवाजीने बीजापुरकी रक्षा तथा मसूदकी सहायतार्थ अपने ६,००० लोह-कवचधारियोकी सेना भेजी। किन्तु शिवाजी और मसूदमे किसी भी प्रकार हार्दिक मित्रता होना एक असम्भव बात थी। कपटसे बीजापुरपर अधिकार करनेका शिवाजीने प्रयत्न किया। प्रतिदिन दोनोमे वैमनस्य बढता ही गया। अन्तमे खुले रूपमे उनमे झगडा हो गया। शिवाजी फिरसे बीजापुर राज्यको लूटने लगे। मराठोंकी सेना शहरकी ओर बढी और उन्होने दौलतपुरके उपनगर खवासपुर खुसरुपुर और जुहरापुरके आसपासके प्रदेशोको लूटा। अपने खुले शत्रुओंकी अपेक्षा मसूदको अपने इन कपटी मित्रोसे अधिक भय मालूम हुआ, एव उसने दिलेरखांका आश्रय चाहा और बीजापुरमे मुगल सेनाका सहर्ष स्वागत किया।

उधर दिलेरखांने शिवाजीके सुदृढ किले भूपालगडको २ अप्रैल १६७९के दिन जीतकर उसे पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर डाला तथा उस किलेकी सहायताके लिए आनेवाली १६,००० मराठा सेनाको भयकर मारकाटके बाद हराकर वहांसे भगा दिया। दिलेरखांकी इन सफलताओंके फलस्वरूप बीजापुरपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंका ध्यान उधरसे हट गया। परन्तु अन्तमे मसूदकी दुरंगी चालसे दिलेरखांका धैर्य छूट गया। धूलखेडके पास भीमा नदीको पार कर दिलेरखां बीजापुरसे केवल ३५ मील उत्तरमे स्थित हलसगी तक जा पहुँचा। आदिलशाही सत्ता पूर्णरूपेण विलीन हो चुकी थी, और मसूद तथा शर्जाखांके आपसी झगडेके फलस्वरूप सारे प्रदेश और राजधानीमे भयकर अराजकता फैली हुई थी। अब बीजापुरके परस्पर-विरोधी विभिन्न दलोमे समझौता करानेके लिए मुगल सूबेदार ही एकमात्र मध्यस्थ बन गया।

औरगजेबका आदेश था कि सुल्तानकी बहन शहरबानू उर्फ पादशाहबीबीको शाही हरममे भेज दिया जावे। उस शाहजादीके प्रति बीजापुरके राजघराने तथा वहांकी जनताको भी समान रूपसे अत्यधिक स्नेह था। अतएव अपना शेष जीवन एक धर्मान्ध मुगलके महलोमे बितानेके लिए जब १ जुलाई १६७९को वह शाहजादी अपनी जन्मभूमिकी राजधानीसे

रवाना हुई, तब बीजापुरके राजदरबारी तथा वहाँकी जनताने रोते-कलपते ही उसे बिदा दी।

९ दिलेरखाँकी बीजापुरपर चढाई और शिवाजीका आदिलशाहकी सहायता करना; १६७९

उस शाहजादीके इस बलिदानसे भी उस अस्तप्राय राजघरानेको कोई लाभ न हुआ। मुगलोकी तृष्णा किसी भी प्रकार शान्त होनेवाली न थी। अब दिलेरखाँने यह माँग पेश की कि मसूद राज्याभिभावकका अपना पद छोडकर अपनी जागीरको लौट जाए और बीजापुरका शासन मुगलो द्वारा नियुक्त अधिकारी द्वारा होता रहे। मसूदने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर अपनी बुद्धिमानीका परिचय दिया। अपने आदेशोकी यो खुले तौरपर पूर्ण अवहेलना होते देखकर दिलेरखाँने बीजापुरके साथ युद्ध घोषित कर दिया। मसूदने शिवाजीके पास अब एक दूत भेजा और इस कठिनाईके समयमे आदिलशाहकी रक्षाके लिए सहायता भेजनेकी प्रार्थना की। शिवाजीने तत्काल ही मसूदकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया, तथा १०,००० मराठे घुडसवार मसूदको सहायतार्थ भेजे और २,००० बैलोपर लादकर खाद्य-सामग्री भी बीजापुर पहुँचाई।

सितम्बर १६७९मे मुगलोने बीजापुरसे ५२ मील उत्तरमे स्थित मगलविढे किला जीत लिया, तथा भीमा नदी और उस किलेके बीचके सारे प्रदेशपर भी अधिकार कर लिया। तब उन्होने सलोतगी, काशीगाँव और जलमलापर आक्रमण किए और अकलूजका भी घेरा डाला। किन्तु वहाँ कही भी उन्हे कोई सफलता न मिली। ७ अक्तूबरको दिलेरखाँ राजधानीसे ६ मील उत्तर-पूर्वमे बरतगी नामक स्थानपर पहुँचा। किन्तु शाहजादे शाहआलमका विरोध उसके लिए नई बाधाएँ उत्पन्न कर रहा था। बीजापुर-विजयमे देरी होनेके कारण औरगजेब उसकी भर्त्सना करने लगा था, और उसके निजी सलाहकार और साथी भी आपसमे झगड रहे थे एवं दिलेरखाँको सर्वत्र विफलताका ही पूर्ण अंधकार दिखाई पडने लगा। १०,००० वीर सैनिकोके साथ शिवाजी स्वयं पन्हाला और बीजापुरके बीचमे सेलगुर नामक स्थान तक आ पहुँचे थे। उधर आनन्दराव भी इतनी ही और सेना लेकर ३१ अक्तूबर १६७९को शिवाजीसे आ मिला था, जिससे शिवाजीकी सेना दुगुनी हो गई। ८ नवम्बरको शिवाजीने

अपनी सेनाको दो भागोमे बाँट दिया। अपने साथ ८,५०० वीर सैनिकोको लेकर वह स्वयं मूसला और अलमला होता हुआ उत्तर-पूर्वकी ओर चला। आनन्दरावके अधीन १०,००० सैनिकोकी दूसरी टुकडी सगुन्लाकी राह उत्तर-पश्चिम दिशामे चलकर मुगल प्रदेशमे जा घुसी।

अब मराठा सेना कुल मिलाकर कोई ३०,००० घुडसवारोसे भी अधिककी हो गई थी। चारो ओर लुटेरोका जाल सा छा गया था। भीमा नदीसे लेकर उत्तरमे नर्मदा नदी तकके सारे मुगल प्रदेशपर शिवाजीने हरएक दिशासे आक्रमण कर दिया और वहाँ सर्वत्र लूटने, जलाने तथा मारकाट करने लगा।

१०. बीजापुरके आसपासके प्रदेशोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिलेरका राजधानीपर आक्रमण करना

बादशाहके उलहनोंसे उत्तेजित होकर दिलेरखाँ पुन युद्धके लिए तत्पर हुआ। घेरा डालकर या एकाएक प्रबल आक्रमण द्वारा बीजापुर नगरको जीतनेकी दिलेरखांको कोई भी आशा नहीं रह गई थी। पुन घेरा डालनेके लिए खाइयां खोदनेपर पीछेसे शिवाजीके आक्रमणका डर भी बना हुआ था। एव मीरज-पन्हाला प्रदेशपर चढाई करनेके उद्देश्यसे वह १४ नवम्बरको बीजापुर नगरके पाससे लौटकर पश्चिमकी ओर चल पडा। अब सबसे पहिले पागलोकी-सी भयकर क्रूरताके साथ वह बीजापुर राज्यके प्रदेशमें सर्वनाश करने लगा। वहांके हिन्दू और मुसलमान सभी कैद किए जाकर गुलाम बना बेचे जाने लगे। अपने बच्चो सहित कुओंमे कूद-कूद कर स्त्रियोंने आत्महत्या की। तब दिलेरने दोण और कृष्णा नदीकी उपजाऊ हरी-भरी घाटियोपर धावा किया, और बीजापुरके धान्य-भण्डार कहे जानेवाले इस प्रदेशके जो भी उपवन, खेत और गांव राहमे पडे उन्हे बरबाद कर दिया।

बीजापुरके किलेके सामने दिलेरखांका अब आगे डटे रहना अत्यधिक कठिन हो गया। उसकी सेनाने भी उसकी आज्ञा मानना अस्वीकार कर दिया था। इसलिए बीजापुरके किलेके सामने निरर्थक ही पूरे ५६ दिन बितानेके बाद २९ जनवरी १६८०के दिन बेगम हौजके पासने अपना पडाव उठाकर दिलेरखाँ वापिस लौट चला। तब कुछ दिन तक पागल कुत्तेकी तरह यत्र-तत्र घूमता हुआ राहमे क्रूरतापूर्ण हत्यायें और लूट-

मार करने लगा। तदनन्तर दिलेरने बेरड प्रदेशपर आक्रमण किया। सागर ही उस प्रदेशकी राजधानी था, और तब वहाँ पाम नायक शासन करता था। २० फरवरीको दिलेर गोगी पहुँचा, किन्तु जब दिलेरखाँने गोगीसे ८ मील दक्षिणमे मागरपर धावा करनेका प्रयत्न किया, तब उसने बुरी तरह मुँहकी खाई।

चपल बेरडोके पीछेसे आक्रमण कर देनेपर शाही घुडसवार त्रस्त हो वहाँसे भाग खडे हुए और बडी ही दीनताके साथ दया-याचना करने लगे। उस दिन मुगल पक्षके कोई १,७०० सैनिक काम आए। मुगल सैनिकोका सारा साहस विनष्ट हो गया और शत्रुके पुन सामना करनेपर प्रत्येक सैनिकको ५,००० रुपये पारितोपिक देनेका प्रलोभन भी उन्हे युद्धके लिए तत्पर नही कर सका।

११. दिलेरखाँको पदच्युतकर वापस बुला लेना, १६८०

अब औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हो उठा, एव उसने दिलेरखाँ और शाहआलम दोनोको ही दक्षिणसे वापिस बुला लिया। बहादुरखाँको, जो अब खान-इ-जहाँ कहलाता था, उसने दूसरी बार दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया। मई १६८०मे खान-इ-जहाँके औरगाबाद पहुँचनेपर शाह-आलमने दक्षिणी सूबेकी सूबेदारी उसे सौंप दी।

१२. बीजापुरके प्रति औरगजेबकी नीति, १६८० से १६८४ ई० तक

दिलेरखाँकी विफलता और फरवरी १६८०मे उसके वापस लौट जानेके चार वर्प वाद तक मुगल बीजापुरके विरुद्ध कोई भी निर्णायक कार्यवाही नही कर सके, क्योंकि वे तब शम्भूजीके साहस और वीरतापूर्ण अनपेक्षित कार्योके कारण बहुत ही चिन्तित और व्यग्र थे। १३ जुलाई १६८१को औरगजेबने बीजापुरके मुख्य सेनापति शर्जाखाँको एक मैत्रीपूर्ण पत्र लिखा। शम्भूजी द्वारा अधिकृत बीजापुर प्रदेशको वापिस लेनेके लिए शम्भूजीके विरुद्ध मुगलोकी सहायता करनेके हेतु उसने शर्जाखाँसे विशेष आग्रह किया। शाहजादे आजमसे विवाहित बीजापुरी शाहजादी शहरबानूने भी १८ जुलाईके दिन शर्जाखाँके नाम इसी आशयका एक व्यक्तिगत

पत्र लिखा। परन्तु सहयोगके लिए की गई औरगजेबकी इस प्रार्थनाका किसी भी आदिलशाही अधिकारीने कोई उत्तर नही दिया। बीजापुरियो-की ओरसे मराठोको मिलनेवाली मददके सुस्पष्ट प्रमाण औरगजेबको बारम्बार मिलते गए इसलिए औरगजेबने बीजापुरियोंके विरुद्ध भी युद्ध छेडकर अपने राज्यकी रक्षाके लिए ही अपने सारे साधनोको एकत्रित करनेके लिए उन्हे बाध्य करनेका निश्चय किया, जिससे कि शम्भूजीपर अधिक दबाव पड सके। बीजापुर राज्यमे जा घुसनेके लिए अप्रेल १६८२ मे शाहज़ादे आज़मकी अधीनतामे एक बडी सेना वहाँ भेजी गई। आज़म-ने सीमान्त प्रदेशको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और बीजापुरसे १४० मील उत्तर-मे स्थित धरूरके किलेपर अधिकार कर लिया।

अब बीजापुरकी दशा अत्यन्त निराशापूर्ण हो गई थी। आदिलशाहके पतित राज-दरबारमे पूरे पाँच साल तक वज़ीरी करके अब सिद्दी मसूद वहाँसे बिलकुल ऊब उठा था। अतएव २१ नवम्बर १६८१को वह राज-दरबार छोडकर चल दिया, और अपने किले अडोनीमे पहुँचकर उसने अपने वज़ीर पदसे त्याग-पत्र दे दिया। तब १९ मार्च १६८४को आका खुसरु बीजापुरका वज़ीर बनाया गया, किन्तु ६ माहके भीतर ही ११ अक्तूबरके दिन वह मर गया। इस समय राज्यकी रक्षाके लिए बहुत जोरोंसे आयोजन किए गए। ३ मार्च १६८४को यह कार्य सिकन्दरने अपने अत्यन्त साहसी सेनापति सैयद मखदूम उर्फ शर्ज़ाखाँको सौंपा। उसके आश्रित शासक वाकीनखेडाके पास नायकको लिखा गया था कि अपने बेरड सैनिकोंमे जो भी अच्छे निशानेबाज़ हो उन्हे साथ लेकर वह स्वय बीजापुर आवे।

३० मार्चके दिन आदिलशाहके पास औरगजेबका एक पत्र पहुँचा, जिसमे उसने आदिलशाहको अपनी अधीनता स्वीकार करने, मुगलोंकी शाही सेनाको तत्काल रसद पहुँचाने, बिना रोक-टोकके अपने राज्यमेंसे होकर मुगल सेनाको निकलने देने, मराठोंके साथ चलनेवाले युद्धमे मुगलोंको सहायतार्थ ५-६,००० घुडसवारोंको भेजने, तथा शम्भूजीको सहायता या आश्रय न देनेकी मांग की थी। सिकन्दरने इस पत्रका बहुत ही करारा उत्तर दिया। तब तक मुगलो द्वारा जीते गए बीजापुर राज्यके सारे प्रदेश तथा बीजापुरसे वसूल किए हुए टाँकोकी सारी रकम लौटानेके लिए उसने औरगजेबको लिखा। उसने यह भी मांग की कि बीजापुर राज्यमें स्थापित सारी मुगल चौकियां उठा ली जावें, तथा आगे हो

राज्यमे होकर मुगल शम्भूजीपर चढाई करें। शिवाजी या शम्भूजी द्वारा छीनी गई बीजापुर राज्यकी सारी धरती जब तक मराठोंसे जीतकर आदिलशाहको वापिस लौटा न दी जावे तब तक मुगल शम्भूजीके साथ सन्धि न करे इसकी भी उसने विशेष ताकीद की। अब दोनो ही पक्ष-वाले युद्धकी तैयारियाँ कर रहे थे। १ अप्रेल १६८५को मुगलोने पहली खाइयाँ खोदी और यो बीजापुरका घेरा प्रारम्भ हुआ।

१३. बीजापुरके घेरेका प्रारम्भ

बीजापुर शहरकी दीवारे लगभग अढाई वर्गमील जमीन घेरे हुए हैं। शहरपनाहका यह घेरा अण्डाकार है। ४० से ५० फुट चौडी खाई पार करनेके बाद हमे मजबूत विशाल-काय दीवारें मिलती हैं, जिनकी ऊँचाई ३० फुटसे बढकर कही-कही तो ५० फुट की है। उनकी औसत चौडाई लगभग २० फुटकी है। इस शहरपनाहको सुदृढ बनाने और उसकी सुरक्षाका ठीक प्रबन्ध करनेके लिए दरवाजोके पासकी दस बुर्जोंके अतिरिक्त अन्य दूसरी ९६ बुर्जे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिमकी शर्जी बुर्जकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर औरगजेबने दक्षिणवाली लण्डा-कसब बुर्जपर ही अपनी सब तोपोकी जोरोसे गोलाबारी की थी, जिससे उस बुर्जके पास शहरपनाह टूट गई। इस लण्डा-कसब बुर्ज और फिरगी बुर्जके बीचमे मगली दरवाजा है। बीजापुर नगरपर अधिकार हो जानेके बाद विजयी औरगजेबने इसी दरवाजेसे होकर उस नगरमे प्रवेश किया था, एव तदनन्तर उसका नाम बदलकर फतेह दरवाजा रख दिया गया।

शहरके बीचमे किला आर्क नामक एक और भीतरी दुर्ग है, जिसके भी चारो ओर किलेबन्दी की हुई है तथा जिसका घेरा कोई एक मील लम्बा है। आदिलशाहोके सारे राजमहल तथा सरकारी दफ्तर इसी भीतरी गढके अन्दर बने हुए थे।

१ अप्रेल १६८५को मुगलोने बीजापुरका घेरा डाला। एक बडे तालाब-को अपने पीछे रखकर शहरके उत्तर-पश्चिममे शाहपुरकी तरफ शहर-पनाहसे कोई आधे मीलकी दूरीपर रुहुल्लाखाँ और कासिमखाँने अपनी-अपनी खाइयाँ खोदी। उधर पश्चिममे जुहरापुर या रसूलपुर उपनगरके पास खान-इ-जहाँने अपनी सेनाके आगे बढनेका प्रयत्न किया। १८ जूनको शाहजादा आजम एक बडी सेनाके साथ वहाँ पहुँचा, और नगरसे दक्षिणमे

बेगम हौज़में पडाव डालकर उस घेरेके संचालनका नेतृत्व उसने अपने हाथमें ले लिया।

घेरा डालकर किला लेनेमे मुगलोकी अयोग्यता, ढिलाई तथा अव्यवस्था लोक-प्रसिद्ध थी। साथ ही बीजापुर नगरके आस-पासकी धरती बहुत ही पथरीली और कठोर है। एक-दो फुट खोदनेपर ही ठोस चट्टानें निकल आती हैं, अतएव मुगल बडी मिहनत तथा कठिनाईसे बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ पाते थे।

इस संकटके समय उसके साथी और सहायक आदिलशाहके पास एकत्रित होने लगे। १० जूनको सिद्दी मसूदकी सेना आई। तब १४ अगस्तको गोलकुण्डाका सैनिक-दल आया, और अन्तमे १० दिसम्बरको हम्बीररावके नेतृत्वमे शम्भूकी सेनाकी दूसरी टुकडी भी आ पहुँची।

२९ जून १६८५को शाहज़ादा आज़म बीजापुर किलेके बिल्कुल ही पास पहुँच गया। किन्तु इस एक माहसे भी कम समयमे उसको शत्रुके साथ तीन भयंकर युद्ध करना पडे थे। पहली जुलाईको अब्दुर् रऊफ और शर्ज़ाखांने उसकी खाइयोंपर धावा किया। बहुतसे मुगल सेनानायक घायल हुए और कई मारे गए। घेरा डाले हुई पडी मुगल सेनाके पडावमें खाद्य-सामग्री तथा अन्य सामान लानेवाले दलोंपर दूसरे दिन दक्षिणियोंने हमलाकर बहुत करके उन्हें भी मुगल पडाव तक पहुँचनेसे रोक दिया।

१४. फिरोजजंगका खतरेमें पड़े हुए शाहजादे आजमको बचाना

अब मुगल पडावमे अकाल-सा पड गया। बीजापुरके आसपासके प्रदेशपर इतने अधिक आक्रमण हो चुके थे, और वह इतनी बार बरबाद किया जा चुका था कि वहां कही भी कोई खाद्य-सामग्री मिल सकना असम्भव था। उत्तरकी ओरसे वहां जानेवाले सारे रास्ते मराठोंके उपद्रवोंके कारण बन्द थे, और अब बरसातके प्रारम्भ हो जानेसे सब नदियोंमे बाढ आ गई थी। "पडावमे अब धान्य पन्द्रह रुपये सेर बिकता था और फिर भी बहुत ही थोडी मात्रा प्राप्य होती थी।"

ससैन्य बीजापुरसे लौटनेके अतिरिक्त आज़मके बचावका दूसरा कोई उपाय औरंगजेबको नहीं सूझा, एव औरंगजेबने आज़मको ऐसा आदेश दिया अपने सारे सेनापतियोंको एकत्रित कर शाहज़ादेने उनकी सलाह पूछी,

तव उन सवने भी वापिस लौट जानेकी ही राय दी। किन्तु अव आजमको आवेश आ गया। उसका प्रतिद्वन्द्वी भाई शाहजादा शाहआलम कुछ ही समय पहिले पराजित हो कोकणकी चढाईसे निराश विफलमनोरथ लौटा था। आजम नही चाहता था कि शाहआलमकी-सी उसकी भी दुर्दशा हो।

तव तो औरगजेव आजमको सहायता पहुँचानेके लिए तत्काल प्रयत्नशील हुआ। ५,००० वैलोपर लादकर खाद्य-सामग्री भेजी गई। सैकडो खाली घोडोपर वहुत-सा द्रव्य तथा गोला-वारूद भी शाहजादेके लिए रवाना किया गया। इन सवको शाहजादेके पडाव तक सकुशल पहुँचा देनेके लिए गाजीउद्दीन वहादुर फिरोजजगके नेतृत्वमे एक सशक्त सेना ४ अक्तूवर १६८५को शाही पडावसे रवाना हुई। इन्दीके पास शर्जाखाँको हराकर राह भर लडता-भिडता फिरोजजग भूखो मरती मुगल सेना तक जा पहुँचा। फिरोजजगके वहाँ पहुँचते ही "मुगल पडावमे अव दुर्भिक्षके स्थानपर हर वस्तु वहुतायतसे मिलने लगी और भूखो मरते सैनिकोको जीवन-दान मिला"। उधर प्रत्येकके सिरपर धान्यका एक थैला उठवाए ६,००० पैदल वेरड सैनिकोको लेकर रात्रिके समय पाम नायकने प्रयत्न किया कि वह सारा धान्य किसी भी तरह बीजापुर किलेमे पहुँचा दे, किन्तु फिरोजजगने इस दलको पराजित कर मार भगाया। यह उसकी दूसरी उल्लेखनीय सफलता थी।

उधर कुतुवशाहके गोलकुण्डा किलेमे जा छुपनेपर अक्तूवर १६८५के आरम्भमे शाहजादे शाहआलमने विना किसी विरोधके गोलकुण्डा राज्यकी राजधानी हैदरावादमे प्रवेश किया। कई कुतुवशाही अधिकारी शाहआलम-के साथ जा मिले। किन्तु बीजापुर और मराठोके साथ मैत्रीपूर्ण नीति वनाए रखनेका पक्षपाती, कुतुवशाही प्रधान मन्त्री मादन्ना पण्डितके मार्च १६८६मे मारे जानेके वाद ही कही कुतुवशाही राज्यपर मुगलोका यह अधिकार स्थायी हो सका।

१७. बीजापुरका घेरा चलाते समय मुगलोंके कष्ट और कठिनाइयाँ

बीजापुरका घेरा डाले जून १६८६मे पन्द्रह माह पूरे होनेको आए, फिर भी उसका कोई निर्णायक परिणाम नही निकल रहा था।

मतभेद और पारस्परिक ईर्ष्याके कारण मुगल सेनापतियोमे फूटने उग्र रूप धारण कर लिया था। औरगजेवने महसूस किया कि जव तक

वह स्वय जाकर इस घेरेके सचालनको अपने हाथमे न लेगा तब तक उस किलेको जीतना सम्भव नहीं। अतएव १४ जून १६८६के दिन वह शोलापुरसे रवाना हुआ और २ जुलाईको बीजापुरके किलेके पश्चिममें रसूलपुरके पास जा पहुँचा। घेरेको दृढताके साथ चलाकर शत्रुको दबानेके लिए तत्काल ही आदेश दिए गए।

इस वर्ष वर्षाके अभावके कारण दक्षिणमे जो दुर्भिक्ष पडा, उसने घेरा डालनेवालोके कष्ट बहुत बढ गए थे। परन्तु बीजापुर नगरमे घिरे हुओंके कष्ट तो उनसे भी कही दस गुना अधिक थे। "किलेमे अनगिनत मनुष्य और घोडे मरे।" घोडोकी कमीके कारण ही शत्रुके चारो ओर मडराने और भटक जानेवालो तथा यातायातके साधनोको छिन्न-भिन्न कर देनेकी अपनी परम्परागत प्रिय युद्ध-शैलीका प्रयोग दक्षिणी इस बार नहीं कर सके। घेरा जब बहुत ही कडाईके साथ चल रहा था, तब मुसलमान मुल्लाओका एक दल बीजापुर नगरसे निकला और मुगल पडाव मे पहुँचकर औरगजेबकी सेवामें उपस्थित हुआ। उन्होने निवेदन किया, आप कट्टर मुसलमान है, धार्मिक कानूनका आपने पूर्ण अध्ययन किया है, कुरानकी सम्मति तथा मौलवी-मुल्लाओंके आदेशोंके विरुद्ध आप कभी कुछ नही करते। कृपा कर हमे यह बतावें कि हमारे समान मुसल्मान भाइयोंके विरुद्ध आपने यह जो अधार्मिक युद्ध छेडा है, उसे किस प्रकार आप न्यायोचित प्रमाणित कर सकते है।" औरगजेबके पास उत्तर तैयार था; उसने तत्काल ही कहा—"तुमने जो कुछ भी कहा वह अक्षरश सत्य है। तुम्हारे राज्यका मुझे लोभ नही है। परन्तु उस नारकीय काफिरका वह काफिर बेटा—औरगजेबका सकेत शम्भूजीकी ओर था—तुम्हारे साथ है, और तुम उसे आश्रय भी देते हो। यहांसे लेकर दिल्लीके दरवाजो तक वह मुसलमानोको कष्ट दे रहा है, और रात दिन उनकी शिकायते मेरे पास पहुँचती है। उसे मेरे हवाले कर दो, मै दूसरे ही क्षणमे अपना घेरा उठा लूंगा।" निरुत्तर हो बेचारे मुल्लाओको चुप रह जाना पडा।

औरगजेबका निजी डेरा अब तक खाइयोसे कोई दो मील पीछे था। ४ सितम्बरको उसे वहांसे हटाकर खाइयोके ठीक पीछे ला खडा किया। अस्त्र-शस्त्रसे पूरी तरह सुसज्जित हो घोडेपर बैठकर एक टूटी हुई सुन-सान गलीकी राह औरगजेब अपने डेरे तक पहुँचा और वहां घेरा चलाने-वाले सेनापतियोकी सलामी ली। तब घोडेपर चढा हुआ वह खाईके

पास पहुँचा और किलेकी वुर्जपर गोलावारी करनेको चढाई हुई तोपोकी देखभाल की, तथा वहाँ उसने स्वय यह समझनेका प्रयत्न किया कि किस कारणसे किलेको जीतनेमे अव तक इतनी देरी हो रही थी।

१६. वीजापुरके अन्तिम सुलतानका पतन और अन्त

उस दिनसे एक सप्ताह वाद ही वीजापुरका पतन हुआ, किन्तु आक्रमण करके वीजापुर नही जीता गया था। किलेमे घिरे हुए सैनिक पूर्णतया हताश हो चुके थे। आदिलशाही राज्यको वचा सकनेकी कोई आशा अव नही रह गई थी। सुलतान स्वार्थी सरदारोंके हाथमे कठपुतली बना हुआ था। वाहरसे किसी भी प्रकारकी सहायता पानेकी सारी आशाएँ तव तक टूट चुकी थी। भविष्य अव सर्वथा अन्धकारपूर्ण देख पडता था। नगरके रक्षक दलमे अव केवल २,००० सैनिक ही वच रहे थे। ९ सितम्वरकी रातको दो प्रमुख वीजापुरी नेताओ नवाब अव्दुर् रऊफ और शर्जाखांके कामदार फिरोज़जगकी सेवामे पहुँचे और वीजापुर नगरके आत्म-समर्पण सम्वन्धी समझौतेकी वातचीत प्रारम्भ की। औरगजेबके सम्मुख उपस्थित होनेपर उसने अव्दुर् रऊफ और शर्ज़ाखाँके प्रति विशेप कृपा दिखाई।

रविवार, १२ सितम्वर १६८०के दिन वीजापुर राजघरानेका पूर्ण पतन हो गया। उस दिन दोपहरमे कोई एक वजे जब आदिलशाही सुलतानोका अन्तिम वशज सिकन्दर अपने वश-परम्परागत राज्यसिंहासनको छोडकर राव दलपत वुदेलेकी देख-रेखमे वीजापुरके राजमहलोसे निकला, तव उसके मार्गके दोनो ओर उसके प्रजा-जन पक्ति वाँधे खडे रो-रोकर विलाप कर रहे थे। वहाँसे चलकर सिकन्दर रसूलपुरमे औरगजेवके पडावमे गया।

गद्दीसे उतारे हुए इस सुलतानको मुगल मनसव देकर उसे 'खान' की उपाधि दी गई और उसको एक लाख रुपया पेंशन भी नियत की गई। वीजापुरके सव ही अधिकारियोको मुगल साम्राज्यकी नौकरीमे रख लिया गया।

१९ सितम्वरको उस मुगल विजेताने एक पालकीनुमा सिहासनपर बैठकर रफितनवाली खाइयोके पास होते हुए मगली दरवाजे नामक दक्षिणी दरवाजेसे वीजापुरमे प्रवेश किया। किलेपर आक्रमणके लिए भी

पहिले इसी मार्गका निश्चय हुआ था। तब सारी राह अपने दाएँ-बाएँ सोने-चाँदीकी मोहरे लुटाता हुआ औरगज़ेब नगरके विभिन्न मार्गोंसे गुज़रा तथा किलेकी दीवारो, बुर्जो और राजमहलोका भीतरसे निरीक्षण किया। तब वह जुम्मा मसजिदमे पहुँचा और अपने ऊपर की गई ईश्वरीय कृपाओंके लिए उसने ईश्वरसे दुहरी प्रार्थना की। सिकन्दरके राजमहलमे उसने कुछ घण्टो तक विश्राम किया तथा अपनी विजयके उपलक्षमे सिकन्दरके राजदरबारियोकी अभिनन्दक भेंटे स्वीकार की। जीवित व्यक्तियोंके चित्र बनाकर मनुष्यको ईश्वरके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करनी चाहिए, कुरानके इस आदेशके विरुद्ध जो कोई भी चित्र वहाँ दीवारोंपर बने हुए थे उन सबको खुरेद देनेका हुक्म दिया गया, और औरगज़ेबकी इस विजयकी बात सुप्रसिद्ध तोप 'मलिक-इ-मैदान' पर खुदवाई गई।

स्वतन्त्र राज्य तथा राजघरानेके पतनके बाद बीजापुर नगर पूर्णतया चौपट हो गया। वह उजड गया और सर्वत्र भयकर नीरवता तथा उदासीनता छा गई।

कैदीकी ही दशामे सतारा किलेके बाहर ३ अप्रैल १७००को सिकन्दर-की मृत्यु हो गई। तब उसकी उम्रके ३२ वर्ष भी पूरे नहीं हो पाए थे। उसकी अन्तिम इच्छाके अनुसार उसके शवको बीजापुर ले जाकर उसके आध्यात्मिक गुरु शेख फहीमुल्लाकी समाधिके तले बिना छतवाले एक प्राकारमे गाड दिया गया।

अध्याय १३

कुतुबशाहीका पतन और अन्त

१. अबुलहसन कुतुबशाहका राज्यारोहण; १६७२

गोलकुण्डाका छठवाँ सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह जब अपने पिताके बाद सन् १६२६ ई०मे गोलकुण्डाके सिंहासनपर बैठा, तब उसकी उम्र १२ वर्षकी थी। उसने ४६ वर्ष राज्य किया, परन्तु अपने सारे शासन-कालमे वह दूसरोंके हाथकी कठपुतली ही बना रहा। ४० वर्षसे भी अधिक काल तक तो उसकी माँ हयातबख्श बेगम ही वास्तवमे शासन करती रही। वह एक दृढ चरित्रवाली स्त्री थी। सन् १६६७मे उसकी मृत्यु हो जानेपर अब्दुल्लाके ज्येष्ठ दामाद सैयद अहमदने राज्यभारको सम्हाला। अब्दुल्ला जीवन पर्यन्त आलसी और प्राय अशक्त बुद्धिहीन ही रहा। राज्यकी परम्पराके अनुसार न्याय करने या जनताको दर्शन देनेके लिए वह कभी खुले दरबारमे नही बैठता था। गोलकुण्डाके किलेकी चहार-दीवारीके बाहर जानेका भी उसने कभी साहस नही किया। इस प्रकारकी परिस्थिति-के स्वाभाविक अनिवार्य परिणामस्वरूप गोलकुण्डा राज्यमे कुप्रबन्ध और अस्त-व्यस्तता सदैव बना रही।

अब्दुल्लाके कोई पुत्र न था। उसके केवल तीन लडकियाँ थी। दूसरी लडकीका विवाह औरगजेबके पुत्र मुहम्मद सुलतानके साथ हुआ था। पहली सैयद अहमदको ब्याही थी, जो स्वयको मक्काके एक बहुत ही उच्च घरानेका वशज बताता था। अपनी योग्यतासे वह प्रधान मन्त्री-के पदपर पहुँचकर राज्यका यथार्थ शासक भी बन गया था। सैयद सुल्तानके साथ तीसरी शाहजादीके विवाहका प्रस्ताव था। किन्तु जिस दिन विवाह होनेवाला था उसी दिन सैयद अहमदने अब्दुल्लासे कहा—

"यदि आपने अपनी लडकीका विवाह सैय्यद मुलतानके साथ किया तो मैं तत्काल ही राज्य छोडकर चला जाऊँगा"। तब तो बडी ही तत्परताके साथ शाहज़ादीके लिए दूसरा वर खोजा गया। राजमहलके अधिकारियोंने अब अबुलहसनको चुना। इस युवकका पिता कुतुबशाही घरानेका ही वंशज था। पीर सैय्यद राजू कत्तलका शिष्य बनकर इस अबुलहसनने अपने जीवनके १६ वर्ष एक फकीरके समान आलस्यपूर्ण तथा चिन्तारहित ही बिताए थे। अब उसीको राजमहलोंमे ले जाकर तुरन्त ही शाहजादीके साथ उसका विवाह कर दिया गया।

२१ अप्रैल १६७२को अब्दुल्लाका देहान्त हो गया। अब एकाएक राज्यके उत्तराधिकारके लिए झगडा उठ खडा हुआ। कुछ अव्यवस्था तथा आपसी युद्धके बाद महलदार मूसाखाँ तथा अन्त पुरके अन्य अधिकारियोंकी सहायतासे उच्च-कुलीन ईरानी नायक सैय्यद मुहम्मदने सैय्यद अहमदको घेरकर बलपूर्वक कैद कर दिया। तब अबुलहसनको राजगद्दीपर बैठाकर उसका राज्याभिषेक किया और मुज़फ्फर उसका प्रधान मत्री बना। अब मुज़फ्फरका सब कुछ काम करनेवाले ब्राह्मण नौकर मादन्ना पण्डितको लोभ देकर अबुलहसनने अपनी ओर कर लिया, तथा उसके द्वारा मुज़फ्फरके निजी शरीर-रक्षकोंके कई नायकोंको भी प्रलोभन देकर बहका दिया, और तब एक दिन बिना किसी उपद्रवके मुज़फ्फरको वज़ीरके पदसे हटा दिया। अब अबुलहसनने मादन्नाको सूर्यप्रकाशरावकी उपाधि देकर गोलकुण्डाका वज़ीर बनाया। वज़ीरोकी यह बदला-बदली सन् १६७२में हुई, उसके बाद उस राज्यके पतनसे कुछ ही पहिले सन् १६८६में उसकी हत्या होने तक मादन्ना ही वज़ीर बना रहा। मादन्नाका भाई आकन्ना गोलकुण्डाका प्रधान सेनापति बना, उसके वीर और विद्वान् भतीजे योगन्नाको, जो रुस्तमराव कहलाता था, गोलकुण्डाकी सेनामे उच्च पद दिया गया। अपने आश्रित मुहम्मद इब्राहीमको मादन्नाने गोलकुण्डाका सर्वोच्च अमीर बनाया।

मादन्नाके इस बारह-वर्षीय मन्त्रित्वकालमे भी राज्यके आन्तरिक शासनमें अब्दुल्लाके शासन-कालकी-सी अव्यवस्था तथा वैसे ही अत्याचार निरन्तर चलते रहे, स्वभावतया परिस्थिति दिनोदिन बिगडती ही रही। अतएव अपने राज्यकी सुरक्षाके लिए मादन्नाको एकमात्र उपाय सदा विजयी होनेवाले मराठा राजाके साथ घनिष्ठ मैत्री स्थापित करना

ही देख पड़ा, और इसी कारण गोलकुण्डाकी रक्षाके निमित्त उन्हे प्रति-वर्ष एक लाख हूण देते रहनेका भी उसने वायदा किया था।

२. गोलकुण्डा सुलतानके प्रति मुगल नीति

औरंगजेब जानता था कि जब तक बीजापुर राज्य विद्यमान था, गोलकुण्डा सुरक्षित ही रहेगा, अतएव गोलकुण्डापर पहिले अधिकार करनेका उसने प्रयत्न नही किया।

अपने वजीर मादन्नाको ही सारा राजकीय शासन-कार्य सौंपकर सुलतान अबुलहसन अपने राजमहलोंमे बन्द अपनी अनगिनित रखेलियों तथा नर्तकियोंके साथ पड़ा जीवन बिताता था। सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाहके शासन-कालमे हैदराबाद भारतीय भोग-विलासियोंके लिए तीर्थ बन गया था। वहाँ कोई २० हजार वेश्याएँ थी, जो प्रत्येक शुक्रवारको सार्वजनिक चौकमें सुलतानके सामने नृत्य करती थी, और जिनके घरोंके पासके अनगिनित शराबखानोमे प्रतिदिन कुल मिलाकर ताड़ीकी कोई १,२०० बड़ी-बड़ी पखाले खाली हो जाती थी। किन्तु साथ ही अब्दुल्लाने विलासिताको बढानेवाली कई एक ललित कलाओंको भी प्रोत्साहन दिया था। आर्थिक सहायता देकर उसने अपनी राजधानीमे कई एक ऐसे चतुर कारीगरोंको बसाया था, जिनकी बनाई हुई अत्यधिक सुन्दर वस्तुएँ सारे भारतवर्षमे सुप्रसिद्ध थी। सुलतान अब्दुल्ला स्वयं भी बहुत ही उच्चकोटिका संगीतज्ञ था। उसे 'तानशाह' अर्थात् सरस सुलतान कहते थे, जो सर्वथा सार्थक ही था।

सुलतानको पौने तीन करोड़ रुपयोंकी स्थायी आय थी। औरंगजेबके गद्दीपर बैठनेके कोई ३० वर्ष बाद तक गोलकुण्डा राज्य मुगल आक्रमणोंसे बचा रहा। शिवाजी और उनके सहायक आदिलशाहके साथ उलझे रहनेके कारण गोलकुण्डाकी ओर मुगल ध्यान न दे सके।

सन् १६६५-६६ ई०मे जयसिंहके सेनापतित्वमे, सन् १६७९ मे दिलेर-खाँ द्वारा किए गए, तथा सन् १६८५मे शाहजादे मुहम्मद आजमके नेतृत्वमे जब-जब मुगल सेनाने बीजापुरपर आक्रमण किया, तब-तब विपत्तिमे पड़े अपने इस नातेकी सहायतार्थ अपनी सेनाएँ भेजकर गोलकुण्डाके सुलतानने खुले तौरपर बीजापुरको मदद दी थी। किन्तु औरंगजेबकी दृष्टिमे काफिरोंके साथ भाई-चारा स्थापित करना ही कुतुबशाहका सबसे भयंकर

अपराध था। सन् १६६६मे शिवाजीके आगरासे भाग निकलनेके बाद उन्हे युद्ध-सामग्री, आदि लेकर कुतुबशाहने शिवाजीकी पर्याप्त सहायता की थी, जिसके फलस्वरूप उन्होने अपने सारे किले मुगलोंके पाससे वापिस छीन लिए। पुन १६७७मे जब शिवाजी हैदराबाद गए थे, तब कुतुबशाहने बडे ही आनन्द और उत्साहके साथ उनका स्वागत किया था, शिवाजीके घोडेके गलेमे रत्नोका हार डालकर तथा अपने राज्यकी सुरक्षा के निमित्त प्रति वर्ष एक लाख हूण कर देनेका वायदा कर शिवाजीके एक विनीत आश्रितकी तरह कुतुबशाहने उनके प्रति व्यवहार किया था। यही नही, उसने मादन्ना और आकन्ना जैसे ब्राह्मणोको अपना प्रधान मन्त्री बनाया तथा यो अपने राज्य-शासनमे हिन्दुओके प्रभावको प्राधान्य प्राप्त करने दिया था।[1]

३. मुग़लोंके साथ युद्ध तथा उनका हैदराबादको विजय करना; १६८५.

इसपर औरंगजेबने तत्काल ही शाहजादे शाहआलमको हैदराबादपर आक्रमण करनेके लिए एक बडी सेनाके साथ रवाना किया। किन्तु जब शाही सेनाका अग्रभाग मालखेडसे ८ मील पूर्वमे सेरूमके पास पहुँचा, तब उसने देखा कि गोलकुण्डाकी सेना उसका मार्ग रोके हुए थी। मुगल अब आगे नही बढ सके। शाही सेनाने पीछे लौटकर मालखेडमे पड़ाव

---

१ गोलकुण्डा राजदरबारमें अपने राजदूतको औरंगजेबने लिखा था—"इस अभागे नराधमने (अर्थात् अबुलहसन कुतुबशाह) अपने राज्यकी सर्वोच्च सत्ता एक काफिरको दे रखी है, और सैय्यदो, शेखो तथा विद्वानोको भी उसके अधीन कर दिया है। (शराबखाने, वेश्यालय और जुआघर जैसे) सब तरहके पापो और दुराचारोको उसने (अपने राज्यमे) सार्वजनिक रूपसे प्रचलित होने दिया है। अपनी राज्य-सत्ताके मदमे चूर वह स्वय भी दिन-रात भयकर पापोमे लीन रहता है, जिससे इस्लाम और काफिरी, न्याय और अत्याचार तथा पाप और पुण्यके भेदोको वह नही पहिचान सकता है। ईश्वरकी आज्ञाओ तथा निषेधोका पालन करनेसे इन्कार करके, काफ़िर राज्योको सहायता देकर और अभी-अभी उस काफ़िर शम्भूजीको एक लाख हूण देकर उसने ईश्वर तथा मानवके सामने समान रूपसे स्वयको निन्दनीय अपराधी सिद्ध कर दिया है।"

(सरकार भाग २, पृ० ३२८)।

किया। शत्रुके साथ प्रति दिन छोटी-मोटी लडाइयाँ होने लगी। मालखेडमे अपने पडावके चारो ओर खान-इ-जहाँने दीवाले खडी कर दी, और वहाँ एक प्रकारके घेरेका सामना करने लगा।

कुछ समयके बाद और भी अधिक सेना लेकर शाहजादा वहाँ आ पहुचा। मालखेडमे अपना सामान, आदि छोडकर मुगलोने पुन खान-इ-जहाकी अधीनतामे, अपनी सेनाके अग्रभागको बलपूर्वक हैदराबादका रास्ता खुलवानेके लिए भेजा। दक्षिणी सैनिकोकी सख्या इनसे तिगुनी थी, और उनके साथ बार-बार युद्ध होते रहते थे। बिना युद्ध किए माल-खेडके पास ही पडे रहकर मुगल सेनापतियोने पूरे दो माह व्यर्थ ही बिताए। तब औरगजेबकी कडी फटकार पानेके साथ ही शाहजादेके पडावपर शत्रुके बहुत ही साहसपूर्ण आक्रमणने भी उन्हे पुन युद्ध करनेके लिए उत्तेजित किया। एक बडी घमासान लडाईके बाद दक्षिणियोको पीछे अपने पडावकी ओर हटना पडा। दूसरे दिन प्रात काल पता चला कि वे हैदराबादकी ओर भाग गए थे। गोलकुण्डाके प्रधान सेनानायक तथा उसके सहायक शेख मिनहाजमे पारस्परिक मतभेद हो जाने तथा मुगलोके प्रलोभन देनेपर मुहम्मद इब्राहीमके उनके साथ आ मिलनेके फलस्वरूप ही दक्षिणियोके विरोधका यो एकाएक अन्त हो गया था। अब शाहजादा तेजीसे निर्विरोध बढता हुआ हैदराबादकी ओर चला।

प्रधान सेनापतिके यो भाग जानेसे हैदराबादके सारे ही आयोजन ढीले पड गए। अब वह किसपर विश्वास करे, कुतुबशाहके लिए यह एक अन-बूझ पहेली हो गई, अतएव हैदराबादसे भागकर उसने गोलकुण्डाके किलेमे आश्रय लिया। गोलकुण्डा भागनेमे कुतुबशाहको ऐसी हडबडी पड गई थी कि उसकी सारी सम्पत्ति हैदराबादमे ही छूट गई। जब हैदरा-बादके नगर-निवासियोको पता लगा कि उनके शासक अधिकारियोने नगर छोड दिया है, तथा शत्रु उनके सिर पर आ पहुँचा है, तब किलेमे जा छुपनेके लिए पागलोकी-सी भाग दौड प्रारम्भ हुई। कुछ समय बाद वहा सर्वत्र लूट-मार भी होने लगी, जिससे भी वहाँ गडबडी बहुत बढ गई। अनेको हिन्दू-मुसलमान स्त्री-बच्चोको लोग भगा ले गए और कुछके साथ बलात्कार भी किया गया।

हैदराबादके नागरिकोकी रक्षाके लिए शाहआलमने दूसरे दिन एक सैनिक-दल भेजा, किन्तु ये मुगल सैनिक भी हैदराबादकी इस लूटमे

सम्मिलित हो गए। दो दिन वाद नगरकी रक्षाके लिए शाहजादेने खान-इ-जहाँको नियुक्त किया। शहरमे शान्ति स्थापित करनेमे उसे कुछ हद तक सफलता भी मिली। तव ८ अक्तूवर १६८५के लगभग मुगल सेनाने यो दूसरी वार हैदरावाद नगरमे प्रवेश किया। उधर शाहजादेके पास वारम्वार अपने वकील भेजकर कुतुवशाह उसके साथ सन्धि की जानेके लिए विवशतापूर्ण प्रार्थना कर रहा था। कुतुवशाहके साथ सन्धि कर लेनेकी शाहजादेकी सिफारिश १८ अक्तूवरको औरगजेवके पास पहुँची, तव उसे स्वीकार कर निम्नलिखित शर्तोपर अवुलहसनको क्षमा प्रदान करनेकी औरगजेवने स्वीकृति दी। (१) सारे पुराने कर्जेके चुकानेके लिए एक करोड २० लाख रुपया दे और साथ ही दो लाख हूणका वार्षिक टाँका भी देता रहे। (२) मादन्ना और आकन्नाको पदच्युत कर दिया जावे। (३) मालखेड और सेरुम मुगलोने जीत लिए थे एव उनपर अपने अधिकारके दावेको कुतुवशाह छोड दे।

४. मादन्नाकी हत्या; १६८६

कुछ महीनो तक शाहआलम वही ठहरा रहा। पहले तो गोलकुण्डाके पास ही उसका पडाव था, किन्तु वादमे कुतुवशाहकी प्रार्थनापर वह वहांसे ४८ मील उत्तर-पश्चिममे कुहीर नामक स्थानपर चला गया, और युद्धका हर्जाना वसूल करनेके लिए वहां टिका रहा। जव तक भी हो सके तव तक मादन्नाको अपना मन्त्री वनाए रखनेके उद्देश्यसे अवुलहसन उसको पदच्युत करनेके औरगजेवके आदेशको टालता ही रहा, जिससे असन्तुष्ट अमीरोका धैर्य अव छूट गया, क्योकि मुगलोंके हाथों आनेवाली अपनी सारी आपत्तियोका एकमात्र कारण वे मादन्नाको ही मानते थे। गोलकुण्डा सुल्तानके अन्त पुरमे निरकुशतापूर्ण शासन करनेवाली अब्दुल्ला कुतुव-शाहकी विधवाओ, सरूमा और जानी साहिबाने तथा शेख मिनहाजके नेतृत्वमे सारे असन्तुष्ट मुसलमान अमीरोने मिलकर मादन्नाके विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। मार्च १६८६के प्रारम्भमे एक रातको जब मादन्ना अपने स्वामीके पाससे वाहर निकला, तव उसका पीछा करके जमशेद तथा अन्य मुगलोंने गोलकुण्डाकी गलियोमे उसकी हत्या कर दी। आकन्नाको भी वहीं घटनास्थलपर ही मार डाला गया। उनके और [illegible] भतीजे रुस्तमरावका उसके घर तक पीछा कर वहां उसका वध किया गया।

मादन्नाके सब ही घर लूट लिए गए, तथा उपद्रवकारियोंकी भीडने किले-मे हिन्दुओंके मुहल्लोपर हमला कर दिया, जिससे "उस रात कई दूसरे ब्राह्मणोको भी अपनी जान और मालसे हाथ धोने पडे"। तब राजमाता मुल्तानाने अपनी ओरसे सन्धिकी सर्वश्रेष्ठ भेंटके रूपमे उन दोनो अवांछनीय मन्त्रियोके कटे हुए सिर औरगज़ेबके पास भेजे, जिसपर औरगजेबने शाहआलमको अपने पास वापिस शोलापुर बुलवा लिया। शाहजादा ७ जून १६८६को औरगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ, और मुगलोने गोलकुण्डाके प्रदेशको पूर्णतया छोड दिया। उसी वर्ष १२ सितम्बरके दिन बीजापुरका पतन हुआ, और उसके बाद मुगल सेनाको पूरा अवकाश मिला कि वे कुतुबशाही राज्यके साथ अन्तिम बार सर्वदाके लिए निपट लें।

५. औरगजेबका गोलकुण्डाको घेरना; १६८७

२८ जनवरी १६८७को औरगजेब गोलकुण्डासे दो मीलकी दूरी तक जा पहुँचा। उधर इस बार भी अबुलहसन अपनी राजधानीसे भागकर उसी किलेमे जा छिपा था, और तीसरी तथा अन्तिम बार मुगलोने हैदराबाद नगरपर अधिकार किया।

हैदराबाद नगरके दोनो भागोको जोडनेवाले, मूसी नदीपर बने हुए पत्थरके पुलसे दो मील पश्चिममे गोलकुण्डाका यह किला है। एक असमान चतुर्भुजके आकारवाले इस किलेकी उत्तर-पूर्वी तरफ साथ ही लगा हुआ असम पचकोण आकारका नया किला है। लगभग ४ मील लम्बी और कठोर चट्टानोकी बनी हुई अत्यधिक मोटाईवाली दीवाल इस किलेको घेरे हुए है, जिसमे स्थान-स्थानपर गोली चलानेके लिए आवश्यक मोर्चे भी बने हुए है। एक-एक टनसे भी अधिक वजनवाली बडी-बडी कठोर ठोस चट्टानोको चूने-मसालेके द्वारा एक दूसरेसे जोडकर ५०से ६० फीट ऊँची बनाई गई ८७ अर्धचन्द्राकार बुर्जोके कारण भी यह किला अत्यधिक सुदृढ तथा सुरक्षित बन गया था। सत्रहवी शताब्दीमे प्राप्य तोपखानोकी सफलतापूर्वक उपेक्षा कर सकना उस किलेके उन सुदृढ मोटे-मोटे आठ दरवाजोके लिए कोई विशेष बात न थी। किलेके बाहर ५० फुट चौडी एक गहरी खाई थी, जिसमे पानी भरा रखनेके लिए पत्थरकी दीवाल भी बनी हुई थी। किन्तु वास्तवमे गोलकुण्डाके इस एक ही किलेमे एक-

दूसरेसे सम्बद्ध तथा एक ही परकोटेमें साथ घिरे हुए सर्वथा विभिन्न चार किले हैं।

मूसी नदीके उत्तरी तथा दक्षिणी, दोनो किनारोपर चलकर मुगल सैनिक किलेके दक्षिणमें पहुँचे और वहाँ किलेकी दक्षिणपूर्वीय तथा दक्षिणी दीवालोंपर उन्होंने आक्रमण किया। किलेके उत्तर-पूर्वी दरवाजेपर मुगलोंकी गोलाबारी शत्रुको धोखा देनेके उद्देश्यसे एक दिखावा-मात्र था।

गोलकुण्डाके पास पहुँचते ही औरगजेबने अपने सेनापतियोको आदेश दिया कि किलेकी दीवालोंके नीचे सूखी खाईमें एकत्रित शत्रु-सेनापर आक्रमण कर उसे भगा दिया जावे। किलेका घेरा डालनेका विधिवत् कार्य ७ फरवरी १६८७को ही प्रारम्भ हुआ।

६. शाहआलमका क़ैद किया जाना

किन्तु मुगल पडावमे व्यक्तिगत कटु ईर्ष्याके फैलनेके कारण इस घेरेके प्रारम्भसे ही शाही सेनाकी सारी गतिविधि स्थगितसी हो गई थी। शाहजादा शाहआलम स्वभावसे ही सुकोमल एवं विलास-प्रिय था, अपनी शारीरिक स्थितिके कारण कड़ी मिहनत करना या वीरतापूर्ण दुष्कर कार्य करना उसको बहुत ही अप्रिय था। अबुलहसन जैसे एक स्वाधीन सुलतान बन्धुको सम्पूर्णतया विध्वस होते देखना भी उसे कदापि रुचिकर नही था। किन्तु इस उदारतापूर्ण सद्भावनाके साथ उसकी लोभमय कुत्सित वृत्ति भी सम्मिलित थी। यदि उसके द्वारा ही सन्धिका प्रस्ताव करनेके लिए वह अबुलहसनको राजी कर सका तो शाही सूचनाओंमें उसे ही गोलकुण्डाका विजेता घोषित किया जावेगा। बहुमूल्य उपहार लेकर अबुलहसनके वकीलोने गुप्तरूपसे शाहआलमके साथ भेंट की, और शाहआलमसे प्रार्थना की कि औरगजेबसे निवेदनकर अपने निजी प्रभाव द्वारा वह अबुलहसनके राज्य तथा राजघरानेको किसी भी प्रकार बचा ले। शाहजादेका उत्तर बहुत ही आश्वासनपूर्ण था।

किन्तु औरगजेबने बडी तत्परताके साथ सारी कार्यवाही की। शाहजादेके पडावके चारों ओर तत्काल ही शाही सेनाका पहरा बैठा दिया गया। दूसरे दिन २१ फरवरीको प्रातःकाल शाहआलमको उसके सारे पुत्रों सहित औरंगजेबके डेरेमें मन्त्रणाके लिए बुलाया गया। कुछ देर तक उनके साथ बातचीत होनेके बाद उन्हें वज़ीरने बन्दी [illegible]

कुछ गुप्त आदेश सुननेके लिए पासके ही एक कमरेमे वे उसके साथ चले आवे। वहाँ जानेपर बडी ही नम्रतापूर्वक उन्हे बताया गया कि वे सब स्वयको कैदी ही समझे और अपनी तलवारे दे दे। शाहज़ादेके सारे ही कुटुम्बको कैद कर उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त कर ली गई तथा उसके अधीन सेनाएँ दूसरे-दूसरे सेनापतियोके साथ नियुक्त कर दी गई।

७. गोलकुण्डाके घेरेमें औरंगजेबकी कठिनाइयाँ

घेरा डालनेवाले पडावमे गडबडी डालनेवाला व्यक्ति अकेला शाह-आलम ही न था। भारतके एकमात्र शिया राज्यके यो समूल नष्ट हो जानेकी यह सम्भावना शिया धर्मावलम्बी अनेको शाही सेवकोको अत्यधिक अप्रिय था। शियाओने ही नही, कई कट्टर सुन्नियोने भी अबुलहसनका विध्वस करनेके लिए ही छेडे गए इस युद्धको मुसलमानोके ही आपसमे अकारण छिड जानेसे पापपूर्ण बताकर उसकी निन्दा की थी। सरल वृत्ति-वाले साधु-चरित्र प्रमुख न्यायाधीश शेख-उल्-इस्लामने भी सम्राट्को सलाह दी थी कि दक्षिणकी इन दोनो सल्तनतोपर वह आक्रमण न करे, अतएव जब उसकी सलाहको औरंगजेबने न सुना तब अपने उच्चपदको त्यागकर उसने मक्काकी राह ली। तदनन्तर उसी पदपर नियुक्त होने-वाले काजी अब्दुल्लाने भी सम्राट्को यही अप्रिय परामर्श दिया था, जिससे वहाँसे रवाना कर उसे दक्षिणके शाही केन्द्रीय अड्डेमे भेज दिया गया।

शियाओके प्रति औरंगजेबका स्वाभाविक अविश्वास उसके सारे कार्योमे निरन्तर बाधक ही सिद्ध हुआ। प्रारम्भमे तो घेरा चलानेवालोमे एकमात्र उल्लेखनीय उच्च अधिकारी फिरोजजग था। तोपखानेका प्रधान नायक सफशिकनखाँ था। वह स्वय ईरानी था, एव उसके तुर्क होनेके कारण ही फिरोजजगके उच्चाधिकार तथा उसके प्रति सम्राट्की विशेष कृपाका वह द्वेषी बन गया। कुछ समय तक सिनहनके साथ काम करते रहनेके बाद केवल 'फिरोजजगके साथ अपना वैर निकालनेके लिए' उसने त्यागपत्र दे दिया। तब उसके स्थानपर सरबराहखाँ नियुक्त हुआ, किन्तु वह अपना काम ठीक तरह नही कर सका, और कुछ समयके बाद वह भी उस पदसे अलग हो गया। तोपखाने का नायकत्व अब गैरतखाको मिला, किन्तु उसकी ही बेपरवाहीके कारण एक दिन उसपर अचानक

हमला कर शत्रु उसे कैदी बना ले गए। अब तोपखानेके नायकत्वके उस पदको स्वीकार करनेके लिए कोई भी तैयार नहीं होता था, एवं कुछ समय तक वह रिक्त ही रहा, जिससे घेरा लगानेके कार्यमें बहुत हानि पहुँची। अन्तमें सफशिकनखाँको ही कैदसे निकालकर २२ जून १६८७के दिन उसे पुनः उस पदपर नियुक्त किया गया।

किलेकी दीवार तोडकर आक्रमण करनेके ये सब आयोजन जब धीरे-धीरे चल रहे थे, तब प्रधान सेनापति फिरोजजंगने किलेकी दीवालोंपर चढकर अन्दर जा पहुँचने तथा यों किलेपर अधिकार करनेका भी प्रयत्न १६ मईके दिन किया। रातके नौ बजे चुपचाप अपने डेरेसे निकल कर वह एक गुम्बजके पास पहुँचा, जहाँ नियुक्त शत्रुओंके पहरेदार सोए पडे थे। दीवालके सहारे एक सीढी लगाकर उसने अपने दो सैनिकोंको शहर-पनाह पर चढा दिया। दो और सीढियाँ भी वह अपने साथ ले गया था, किन्तु वे दोनों ही लम्बाईमें छोटी पडीं, अतएव दरवाजेके सिरेपरसे रस्सीकी एक सीढी बाँधी गई। दुर्भाग्यसे उस समय एक आवारा कुत्ता दीवालपर खडा, नीचे खाईमें पडी लाशोंको खानेके लिए उत्सुक नीचे उतरनेके लिए समुचित राह खोज रहा था। अनजान व्यक्तियोंको वहाँ आते देखकर वह कुत्ता चौंककर जोर-जोरसे भौंकने लगा जिससे किलेके पहरेवाले सैनिक जाग गए और उन्होंने मुगलोंको वहाँसे खदेड दिया। मुसलमान कुत्तेको एक अशुद्ध जानवर मानते हैं, किन्तु उस दिन तो एक कुत्तेने ही राजधानीकी रक्षा की थी। अपने उस रक्षक-श्वानको अबुल्-हसनने पुरस्कारके रूपमें एक सोनेकी जंजीर दी, रत्नजटित सोनेका पट्टा उसके गलेमें डाला और सुनहरी जरवाले वानका एक कोट भी उसे पहनाया। पुनः फिरोजजंगके खान, बहादुर और जंगके तीनों खिताबोंकी विडम्बना करनेके उद्देश्यसे अब उस श्वानको भी 'सेह तबका' (तीन उपाधि-वाले अमीरका) खिताब दिया और अबुल्हसनने हँस कर कहा—"इस पशुने जो कुछ किया वह (फिरोजजंगके कार्यसे) किसी भी प्रकार कम महत्त्वका नहीं था"।

अब मुगलोंको आपत्तिने आ घेरा। दक्षिणी तथा उत्तरी मराठा सेना-यक रास्तोंपर उपद्रव करने लगे और मुकुन्द फजावार रसद ले जाना भी रोक दिया। तब जून माहमें घनघोर वरसात हुई, नदी-नालोंमें बाढ आ जानेसे उन्हें पार करना असम्भव हो गया तथा सारे रास्ते दलदलोंमें

परिणत हो गए। घेरा डालनेवालो तक कुछ भी रसद पहुँचना सर्वथा असम्भव बात हो गई। जूनके मध्यकी लगातार वर्षाने घेरेका सारा काम चौपट कर दिया। तोप चलानेके लिए बनाए हुए ऊँचे चबूतरे गिरकर कीचडके ढेर-मात्र रह गए। खाइयोकी दीवाले गिर गई, जिससे उनमे आने-जानेके रास्ते भी रुक गए। पूरा पडाव एक जलाशय बन गया, जिसमे खडे हुए सफेद तम्बू फेनके बुदबुदोके समान दिखाई पड रहे थे।

८. मुगल पडावपर दक्षिणियोंके आक्रमण तथा उनसे मुगलोंकी भारी हानि

शत्रुओने इस अवसरसे पूरा लाभ उठाया। १५ जूनकी रातको उन्होने मुगलोके आगे बढे हुए तोपखाने और खाइयोपर धावा बोल दिया। तोपखानेके प्रधान नायक गैरतखाँ, सरबराहखाँ और अन्य बारह उच्च पदाधिकारियोको वे पकडकर ले गए तथा उन्हे कैद कर दिया। तीन दिन तक लगातार युद्ध करनेके बाद ही शत्रुओको खदेडकर अपने क्षत-विक्षत तोपखानेपर मुगल फिरसे अधिकार कर सके। कैद मुगल अधिकारियोके साथ अबुलहसनने बहुत ही कृपापूर्ण व्यवहार किया, तथा उन्हे औरगजेबके पास वापिस भेज दिया। इस पिछली दुर्घटनासे हुई हानिकी पूर्ति तथा अपने आक्रमणको पूर्णतया सफल बनानेके लिए मुगल बडे जोरोसे प्रयत्न करने लगे।

स्वय देखभाल करनेके लिए औरगजेब फिरोजजगकी खाइयोमे जा पहुँचा। २० जूनको सुबहमे जल्दी ही पहली सुरग दाग दी गई, किन्तु वह बाहरकी तरफ ही फूटी जिससे किलेकी दीवालको कोई क्षति नही पहुँची, उल्टे शाही सेनाके ही कोई १,१०० सैनिक मारे गए। घबडाए हुए मुगलोपर आक्रमण कर शत्रुओने उनकी खाइयो तथा चौकियोपर अधिकार कर लिया, जिन्हे वापिस जीतनेमे मुगलोको बहुत समय तक लडना पडा, तथा उनको बहुत हानि भी उठानी पडी। यह होते ही दूसरी सुरग चलाई गई और उसका भी परिणाम पहिलीकी ही तरह मुगलोके लिए हानिकारक हुआ। शत्रुओने तब दूसरी बार आक्रमण कर मुगलोकी इन खाइयो तथा आश्रय-स्थानोपर अधिकार कर लिया। तब उनके लिए भयकर युद्ध शुरू हुआ जिसमे फिरोजजग स्वय तथा दूसरे दो सेनापति घायल हुए और बहुतसे सैनिक मारे गए।

इस संकटपूर्ण रुकावटकी सूचना मिलते ही शत्रुओं द्वारा बुरी तरह दबाए हुए अपने सैनिकोंकी सहायताके लिए अपने अधिकारियोंको लेकर औरंगजेब स्वयं चल पड़ा। उसके पालकीनुमा सिंहासन "तख्त-ए-रवां" के आसपास चारों ओर तोपके गोले पड़ने लगे, फिर भी पूरी शान्तिके साथ वह अपने स्थानपर डटा ही रहा, और अपनी वीरताके उस अनुकरणीय प्रदर्शन द्वारा वह अपने सैनिकोंको उत्साहित करता रहा।

जिस समय यह युद्ध चल रहा था, तब ही वहाँ मैदानमें तूफान आ गया, बड़े जोरके आंधी आई और भयंकर गर्जनाके साथ मूसलाधार पानी बरसने लगा। तब तो शत्रुओंने उसी दिन तीसरी बार आक्रमण किया तथा और भी आगेवाली मुगलोंकी खाइयां छीन ली। शाम पड़ जानेपर हारे हुए मुगल अपने डेरोंको लौट आए। वह रात औरंगजेबने फिरोजजंगके पड़ावमें ही बिताई।

९. मुगलोंकी विफलता; अकाल और महामारी

दूसरे दिन २१ जूनको सुबहसे औरंगजेब तीसरी सुरंगको चलवाने तथा अपनी ही देख-रेखमें आक्रमण करवाकर अपना भाग्य परखनेके लिए आगे बढ़ा। किन्तु वह सुरंग फूटी ही नहीं। बादमें ज्ञात हुआ कि पहिलेसे ही उसका पता लगाकर शत्रुओंने उस स्थानपर पानी भर दिया था। खाद्य-सामग्रीका अभाव अब और भी अधिक बढ़ गया था तथा अकालके साथ ही अनिवार्य रूपेण प्रगट होनेवाली महामारी भी वहाँ फैल गई। हैदराबाद नगर पूर्णतया निर्जन हो गया, मकानों, नदी तथा मैदानमें सर्वत्र मुर्दे ही पड़े हुए थे। मुगल पड़ावकी भी यही दुर्दशा थी। रातके समय लाशोंका ढेर लग जाता था। कुछ महीनोंके बाद जब बरसात बन्द हुई, नरकंकालोंके ये ढेर दूरसे बर्फकी छोटी-छोटी पहाड़ियोंके समान देख पड़ते थे।

किलेके रक्षकोंको भूखों मारकर आत्मसमर्पण करनेके लिए लाचार करनेके उद्देश्यसे दारुण दृढ़ताके साथ औरंगजेब वहाँ डटा ही रहा। "गोलकुण्डाके किलेके चारों ओर लकड़ी और मिट्टीकी एक दीवार बनाने-का औरंगजेबने निश्चय किया। कुछ ही समयमें यह दीवार बनकर पूर्ण हो गई तथा उसके दरवाजोंपर पहरेवाले बैठा दिए गए और परवाना

दिखाए बिना किसीका भी बाहर निकलना या भीतर जाना पूर्णतया रोक दिया गया।" इसी समय औरंगजेबने एक विशेष घोषणा द्वारा हैदराबाद राज्यको मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया, जिससे कि किलेका बचाव करनेवालोको भविष्यमे खाद्य-सामग्री नही मिल सके। राज्यके सभी स्थानोपर उसने अपने ही काजी, फौजदार और दीवान नियुक्त कर दिए। औरंगजेबके नामसे खुतबा पढा गया और हैदराबादमे भी मुहतसिब अर्थात् जनताके सदाचारोकी देख-रेख करनेवालेकी नियुक्ति हुई।

१०. विश्वासघात कर एक सरदारका गोलकुण्डाका क़िला मुगलोंको सौंपना

आठ माहके लगभग घेरा डाले रहनेके बाद भी घूसके द्वारा ही २१ सितम्बर १६८७ ई०के दिन गोलकुण्डाके किलेपर मुगलोका अधिकार हो सका। अब्दुल्ला खानी नामक अफगानने, जो अब सरदारखाँ कहलाता था, पहिले बीजापुरी सेनामे भागकर मुगलोकी सेवा स्वीकार की थी, और फिर मुगलोको भी छोडकर वह अबुलहसनके पास जा पहुँचा था, अब उसी सरदारखाँने मुगलोसे घूस लेकर अपने इस अन्तिम स्वामीको भी बेच दिया। किलेके पिछले दरवाजेकी खिडकी उसने खुली छोड दी, और उसके ही बुलावेपर २१ सितम्बर १६८७को पिछली रातको तीन बजे रुहुल्लाखाँकी अधीनतामे मुगल सैनिकोका एक दल बिना किसी रोक-टोकके किलेमे जा घुसा। वहाँ अपना अधिकार बनाए रखनेके उद्देश्यसे कुछ सैनिकोको वही नियुक्त कर उन्होने किलके मुख्य दरवाजेके किवाड खोल दिए, जिससे होकर आक्रमणकारी मुगल सेनाने उमडती बाढकी तरह किलेमे प्रवेश किया। शाहजादा आजम भी अपने सहायकोके साथ नदीके पाससे आगे बढकर किलेकी दीवालके नीचे तक जा पहुँचा।

गोलकुण्डाके उन विश्वासघातियोमे एक व्यक्ति ऐसा था, जो तब भी अबुलहसनके प्रति स्वामि-भक्त बना रहा, वह था अब्दुर्-रज्जाक लारी उर्फ मुस्तफाखाँ। घेरेके प्रारम्भमे ही उसने औरंगजेबके सारे प्रलोभनोको तिरस्कारके साथ ठुकरा दिया था। एक बार जब उसे छ हजार सवारोंका मुगल मनसब देनेका प्रस्ताव किया गया, तब उसने कहा था—"कर्बलामे इमाम हुसेनपर विजय प्राप्त करनेवाले २२,००० द्रोहियोंकी

अपेक्षा उनके साथ जान देनेवाले स्वामि-भक्त बहत्तर साथियोंमें ही अपनी गिनती करवाना मुझे अधिक प्रिय होगा।" "जब तक मैं जीवित हूँ तब तक कम-से-कम एक व्यक्तिके प्राण अवश्य अबुल्हसनकी रक्षाके लिए बलिदान होंगे।" यह कहता हुआ वह अकेला ही आक्रमणकारियोंके बढ़ते हुए सैनिक दलपर टूट पड़ा। कोई ७० विभिन्न घावोंसे उसका शरीर जर्जरित हो गया, एक आँख भी जाती रही थी, पुनः अनेकों घावों तथा बहुत-सा रुधिर बह जानेके फलस्वरूप उत्पन्न निर्बलताके कारण उसका घोड़ा भी लड़खड़ा रहा था। अब्दुर्-रज्ज़ाकको अपने सामनेका मार्ग भी अब नहीं दिखाई देता था, फिर भी वह किसी-न-किसी तरह घोड़ेपर टिका ही रहा और अब उसने घोड़ेकी लगाम भी ढीली कर दी। तब तो घोड़ा उस लड़ाईके स्थानसे बच निकला और किलेके पासवाले नगीना बागमें पहुँचा, जहाँ मूर्च्छित होकर अब्दुर्-रज्ज़ाक नारियलके एक वृक्षके नीचे गिर पड़ा। अब्दुर्-रज्ज़ाकको वहाँसे उठाकर मुगल पड़ावमें ले गए और औरंगजेबकी आज्ञानुसार वहाँ उसकी सेवा शुश्रूषा कर उसको मृत्युके मुखसे निकाल लिया।

११. अबुलहसनका कैद होना

उधर जब आगे बढ़ते हुए मुगलोंके कोलाहलको अबुल्हसनने सुना, तब वह बाहर निकलकर अपने राजदरबारके दालानमें आया और वहाँ अपने राजसिंहासनपर बैठकर वह बिना बुलाए ही आ घुसनेवाले इन अतिथियोंकी बड़ी ही शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। अन्तमें जब अपने दलके साथ रूहुल्लाखाँने वहाँ प्रवेश किया, तब अबुल्हसनने बड़ी ही नम्रताके साथ उनका स्वागत किया, और इस करुण प्रसंगके आरम्भसे अन्त तक उसका सारा आचरण सर्वथा राजकीय गौरवके अनुरूप ही था। तब स्वयंको कैद करनेके लिए आए हुए इन व्यक्तियोंको भी उसने अपने साथ जलपानके लिए आमन्त्रित किया तथा अपना भोजन हो जानेके बाद ही वह अपने राजमहलसे निकला। उस दिन सन्ध्या समय आज़मने उसे औरंगजेबके सम्मुख उपस्थित किया। कुछ दिनोंके बाद उसे दौलताबाद भेज दिया गया, और वहीं उसकी मृत्यु हुई। इस बन्दी जीवनमें उसे ५०,००० रुपयोंकी वार्षिक पेंशन दी जाती थी।

अपना राजसिंहासन छोड़कर सभी ऐसी यातनाएँ भुगतनेके लिए

अपने कट्टर शत्रुके हाथोमे स्वयको सौपते समय अबुलहसनने जो सयम और गौरव दिखाया, उसे देखकर उसको कैद करनेवाले भी आश्चर्यचकित रह गए। उनकी आदरपूर्ण आश्चर्यभरी ध्वनिको सुनकर उसने उन्हे कहा कि यद्यपि उसका जन्म राजघरानेमे हुआ था, उसका यौवन दारिद्र्यपूर्ण कठिनाइयोमे ही बीता था, एव वह जानता था कि सुख और दुख दोनोको ही ईश्वर की देन समझकर समान निस्सगताके साथ कैसे स्वीकार करना चाहिए। "ईश्वरने ही मुझे पहिले भिखारी बनाया था, बादमे उसने सुल्तान बना दिया, और अब मुझे पुन भिखारी बनाया है। अपने दासोकी भलाईका ध्यान उसे सदैव बना रहता है, और भोजनका निश्चित अश वह प्रत्येक मनुष्यके पास बराबर पहुँचा देता है।"[1]

---

१ खफीखाँ, २, पृ० ३६३–३६४। किन्तु चर्चिल कृत "व्यायेजेस"में (भाग ४, पृ० २८९) डा० करेरी तथा मनुची (भाग २, पृ० ३०६–३०७) लिखते है कि जब उसे औरगजेबके सम्मुख ले गए तब वहाँ उसको अपमानित कर पीटा गया था। ईश्वरदासने एक विलक्षण कहानी लिखी है कि जब अबुलहसनको कैद किया गया तब वह नर्तकियो और गायकोके साथ बैठा आनन्दोत्सवमे लीन था। शत्रुओके आ घुसनेपर जब डरके मारे नर्तकियाँ नाचते-नाचते रुक गई तब चिल्लाकर उसने कहा "पहिलेके ही समान नाचती रहो। जो भी क्षण मैं आनन्द बिता सकता हूँ वही मेरे लिए बहुत बडा लाभ है।" फिरोजजगने उसे उसके सिंहासनसे उठाया और घोडेपर बैठाकर अपने पीछे पीछे औरगजेबके पास ले गया। तब कोर्निश या सलाम न कर बिना झुके ही अबुलहसन औरगजेबके सम्मुख जा खडा हुआ। सम्राट्ने उससे पूछा—"तुम कैसे हो?" उसने उत्तर दिया—"मुझे न तो कोई हर्ष है और न विषाद ही। किन्तु उस रहस्यपूर्ण अज्ञेय पर्देके पीछेसे निकलकर जो कुछ भी मेरे सामने प्रत्यक्ष हुआ है, उसे देखकर मैं आनन्दित हूँ।" (पत्र स० ९३ अ–ब)

फोर्ट सेण्ट जार्जकी अंग्रेजी डायरीमे १२ नवम्बर १६८७के दिन जो सूचना लिखी गई, वह खाफीके विवरणसे अधिक विश्वसनीय है। उसमे लिखा गया था—"फर्मानों, खत तथा अन्य पत्रोंमे ये समाचार मिले कि (सर्वोचित [illegible] अनुसार) गत महीनेकी [illegible] तारीखको आधी रातके समय विश्वासघातके द्वारा मुगलोंने गोलकुण्डाका किला ले लिया। तब गोलकुण्डाके सुल्तानने मुगल (सम्राट्) के समक्ष साष्टांग प्रणाम किया, तब सम्राट्ने उसके दुराचारपूर्ण शासनकी विस्तृत आलोचना की और उसे बताया कि ब्राह्मणोंको

गोल्कुण्डाको जीतनेपर वहांके किलेसे सोने-चांदीके वर्तनों, रत्नों तथा जड़ाऊ सामानके अतिरिक्त सात करोड़ रुपये नक़द भी मिले। जीते हुए राज्यकी आमदनी २ करोड़ ८७ लाख रुपयेकी थी।

प्रोत्साहन देकर तथा दूसरी ओर उनके धर्म और देशके प्रति [illegible] मुसलमानोंको स्वीकार कर अपने उत्तरदायित्वके प्रति उनमें [illegible] विश्वासघात किया था, क्योंकि परम्परासे इन आरोपित [illegible] उसने [illegible] शिरपर ले लिया था। तब उसने आदेश दिया कि उसे ([illegible]) [illegible] जायँ, ऐसा कहा जाता है कि वे [illegible] दूसरे [illegible] दिन [illegible] गई थी।"

अध्याय १४

शम्भूजीका राज्य-काल; १६८०–१६८९

१. उत्तराधिकारके लिए कशमकश; शम्भूजीका स्वय राजा बन बैठना

शिवाजीकी मृत्यु होनेपर उनका नव-निर्मित मराठा राज्य आन्तरिक फूटके कारण बहुत ही छिन्न-भिन्न तथा बिलकुल ही अस्त-व्यस्त हो गया, और उसका भविष्य भी अत्यधिक अनिश्चित देख पडने लगा। शिवाजीके ज्येष्ठ पुत्र शम्भूजीके व्यभिचारी उच्छृङ्खल जीवनके कारण उसका भावी राज्य-काल दु खपूर्ण ही दीख पडा। उधर अपने धर्म तथा राज्यके घातक शत्रुके साथ उसके जा मिलनेके कारण सारे विचारवान् लोगोकी दृष्टिमे वह बहुत ही गिर गया था। शम्भूजीके सुधारके लिए विफल प्रयत्न करनेके बाद अपने जीवनके अन्तिम दिनोमे उसके सुविज्ञ पिताने अवश्य ही उसे पन्हालाके किलेमे नजरबन्द रक्खा था। अतएव शिवाजीकी दाह-क्रियाके बाद अन्नाजी दत्तोके सुझावपर रायगढमे उपस्थित मन्त्रियोने उनके दस वर्षीय छोटे लडके राजारामको मराठोका राजा घोषित कर दिया।

राजारामको राजा घोषित करते ही मराठोमे फूट पड गई। शम्भूजीके पक्षका समर्थन करनेवालोका तत्काल ही एक दल बन गया। शिवाजीके शासन-कालमे लडनेके लिए लालायित रहनेवाली सेनाको इस नए राजाकी नियुक्तिके शुभ अवसरपर भी वेतन वगैरह कुछ नही मिला था, एव अपनी विवशतापूर्ण परिस्थितिके कारण बेपरवाह होकर अपने पक्षको सबल बनानेके लिए जब शम्भाजी चाहे जो वादे करने लगा तब प्रलोभनमे

पटकर सेना भी उसका साथ देनेको उत्सुक हो गई। उधर रायगढमें जो राज्याभिभावक-मण्डल नियुक्त किया गया उसमें सब ही ब्राह्मण थे, और मराठा सेनानायक राजमहलोंके उन ब्राह्मण राजगुरुओंके आदेश माननेको कदापि तैयार नहीं थे।

परिणाम यह हुआ कि शिवाजीकी मृत्युके एक सप्ताह बादसे ही प्रति दिन अधिकाधिक सैनिकोंके दल शम्भूजीके पक्षमें होने लगे। तब तो रायगढमें स्थापित मराठा राज्य-शासन की अवहेलना कर शम्भूजीने पन्हालामें सारे राज्याधिकार खुल्लम-खुल्ला अपने हाथमें ले लिए।

अपने शासन-कालके प्रारम्भिक कार्योंमें शम्भूजीने जो चातुर्य तथा समयोचित तत्परता दिखाई वह उसकेसे चरित्रवाले व्यक्तिसे सर्वथा अनपेक्षित ही थी। पन्हालापर अपना पूर्णाधिपत्य स्थापित कर उसने दक्षिणी मराठा देश तथा दक्षिणी कोकणके अपने प्रदेशोंपर अधिकार सुदृढ किया, और उसके बाद ही उत्तरमें स्थित राजधानीवाले अपने प्रतिद्वन्द्वीकी सेनाके साथ युद्ध छेडनेका उसने साहस किया।

उधर २१ अप्रेलके दिन रायगढमें अन्नाजी दत्तोने राजारामको राज-सिंहासनपर बैठा दिया, और उसके कुछ ही समय बाद पन्हालाके किलेपर अधिकार कर शम्भूजीको कैद करनेके उद्देश्यसे वह पेशवाको साथ लेकर पन्हालाके लिए रवाना हुआ। किन्तु शम्भूजीकी सफल कार्यवाहीका विवरण सुनकर वे हताश हो गए और शम्भूजीपर आक्रमण करनेसे हिच-किचाने लगे। किन्तु सेनाने दुरंगी नीतिसे चलनेवाले उन स्वार्थी मन्त्रि-योंको अधिक समय तक इस दुविधामें न रहने दिया। मई मासके अन्तमें सेनापति हम्बीरराव मोहितेने अन्नाजी और मोरोपन्तको कैद कर लिया और कैदीके ही रूपमें उन्हें शम्भूजीके पास पन्हालामें ले गए। वहां एकत्रित सारे ही सेनापतियोंने शम्भूजीको अपना राजा स्वीकार कर लिया।

हम्बीरजी और सैनिकोंने जकडकर अन्नाजीको कैदखानेमें डाल दिया। अवसर रहते ही पश्चात्ताप और क्षमा प्रार्थना कर पेशवाने शम्भूजीकी कृपा भी प्राप्त कर ली, किन्तु वह उसका विश्वासपात्र नहीं बन सका। तब वह नया राजा रायगढके लिए चल पडा, और वहां पहुंचनेतक उसकी सेना बढकर कोई २०,०००के लगभग हो गई। १८ जूनको राजधानीने भी उसके लिए अपने द्वार खोल दिए। राजारामने कोई भी विरोध नहीं किया, क्योंकि वैसा करना उसके लिए सम्भव भी नहीं था।

सिहासनच्युत किए जानेपर भी राजारामके साथ दयालुतापूर्ण व्यवहार किया गया, क्योकि वह तो अन्यषड्यन्त्रकारियोके हाथमे एक साधनमात्र था ।

शम्भूजी २० जुलाईको प्रथम बार राजसिहासनपर बैठा, किन्तु उसका विधिवत् राज्याभिषेक तथा तत्सम्बन्धी सारे सस्कार बडे ही ठाट-बाटके साथ १६ जनवरी, १६८१को हुए। १८ मई, १६८२को शम्भूजीके एक पुत्र तथा उत्तराधिकारी उत्पन्न हुआ, पूरे तीस वर्ष बाद मराठा राजा बनकर उस पदका पुनरुत्थान करना इसीके भाग्यमे बदा था। वह था शिवाजी द्वितीय, जो राजा शाहूके नामसे लोक-प्रसिद्ध हुआ ।

२. शम्भूजीका मुगलोंसे फिर युद्ध आरम्भ करना

राज्यारोहणके बाद पर्याप्त काल तक नये राजाको बाहरी आक्रमणोका सामना करनेकी चिन्ता नही करनी पडी। उस समय राजपूतोके साथ युद्धके लिए मुगल साम्राज्यके सारे सैनिक साधन औरगजेबके ही सम्मुख राजस्थानमे एकत्र थे। अक्तूबर, १६८०के अन्तमे सदैवकी भाँति दशहरेके बाद मराठा सेनाएँ राज्यसे बाहर जानेके लिए चल पडी। पैदल और घुडसवारोके एक दलको सूरतकी ओर जाना था, तथा दूसरेको बुरहानपुरकी तरफ। तीसरा दल औरगाबादके पास दक्षिणके नये सूबेदार बहादुरखाँके (जो अब खान-इ-जहाँ बना दिया गया था) पडाव तक जा पहुँचा और उसे तब तक वही उलझाए रखा। किन्तु मराठोके इन आक्रमणोकी सूचना मिलते ही यह मुगल सेनानायक तत्परताके साथ २५ नवम्बरके लगभग खानदेशमे जा पहुँचा। तब तो मराठे उस प्रान्तको छोडकर, कुछ ही समयके लिए क्यो न हो, वहाँसे चल दिए।

अतिशयोक्ति होते-होते शाहज़ादे अकबरके विद्रोहके समाचार औरगज़ेबके पतनकी गप्पमे परिणत होकर सर्वत्र फैलने लगे थे, एव उनसे भी प्रोत्साहित होकर जनवरी, १६८१के अन्तमे आक्रमणकारी पुन वहाँ जा पहुँचे। हम्बीररावके नेतृत्वमे एक दलने धारनगाव तथा उत्तरी खानदेशके अन्य नगरोको लूटा, और वहाँसे पूर्वकी ओर बढकर उनके इधर आनेका पता किसीको लगे उससे पहिले ही ३० जनवरीके दिन उन्होने बुरहानपुरके बहादुरपुरा नामक उपनगरपर हमला कर दिया और वहाँकी उनकी दूकानो और घरोको लूटकर अपरिमित माल एकत्र कर ले गए। शहर-

पनाहके बाहर बसे हुए ऐसे ही सत्रह अन्य पुरोको भी उन्होंने उसी तरह लूटा। आक्रमण इतना आकस्मिक हुआ था कि बचाव या विरोधके लिए कोई भी आयोजन नहीं हो सके।

बिना किसी भी बाधा या विरोधके मराठोंने तीन दिन तक इन उपनगरोको भी जी भरकर लूटा, और उन्होंने प्रत्येक घरका फर्श तक खुदवा डाला, जिससे पिछली कई पीढ़ियोंका संचित माल भी उनके हाथ लगा। वहां पहुँचनेमे खानजहाँने बहुत ही सुस्ती की, और तब भी आक्रमणकारियोंके लौटनेकी ठीक-ठीक राहका निश्चय करनेमे वह चूक गया, जिससे सारे कैदियों और लूटके मालको लेकर वे बिना रोक-टोकके निकल गए।

सदैवकी तरह अक्तूबर, १६८१मे भी दशहराके बाद विभिन्न दिशाओं-मे विचरनेके लिए मराठे घुड़सवार चल पड़े। दिलेरखां द्वारा कैद की गई शम्भूजीकी पत्नी और बहन इस समय अहमदनगरके किलेमे बन्द थी, अतएव उन्हें छुड़ानेके लिए उत्सुक मराठोंने अक्तूबरके अन्तमे उस किले-पर आक्रमण कर उसे लेनेका भी सचमुच प्रयत्न किया था। वेश बदलकर जिन मराठा सैनिकोंने किलेमे प्रवेश किया था, उनका पता लग जानेपर किलेदारने उन्हें मरवा डाला और दूसरोंको एक युद्धके बाद मार भगाया।

३. शाहजादे अकबरका शम्भूजीकी शरणमें जाना

सत्यवादी राठोड वीर दुर्गादासके निर्देशनमे औरंगजेबके विद्रोही पुत्र शाहजादे मुहम्मद अकबरने ९ मई, १६८१को अकबरपुरके पास नर्मदा नदीको पार किया और तब उसने महाराष्ट्रकी राह ली। मुगल साम्रा-ज्यकी सीमाएं पार करनेके बाद शम्भूजीके अनेकों उच्चाधिकारियोंने उसका स्वागत किया और १ जूनके दिन उसे ससम्मान पाली ले गए।

शाहजादेके साथ ८०० घुड़सवार, पैदल सैनिकोंका एक छोटा-सा दल जिसमे कुछ मुसलमानोंके अतिरिक्त अधिकांश राजपूत ही थे, और बारबरदारीके लिए कोई ५० ऊँट थे।

४. शम्भूजीके विरुद्ध षड्यन्त्र; कविकलशका शम्भूजीका स्नेह-भाजन बनना

१८ जून, १६८०को रायगढ़पर अधिकार कर लेनेके बाद शम्भूजीने अपने प्रमुख शत्रुओंको उनके नेता अन्नाजी दत्तो और पेशवा मोरेश्वर

त्रिम्बकके पुत्र नीलकण्ठ मोरेश्वर पिंगले समेत कैद कर लिया। अक्तूबरके प्रारम्भमे मोरेश्वर मर गया, तब शम्भूजीने उसके पुत्र नीलकण्ठको छोड दिया और अपने प्रधान मन्त्रीका रिक्त पद उसे दिया। प्रमुख विद्रोही अन्नाजी दत्तोको छोडकर शम्भूजीने उसे मजमुआदारके पदपर नियुक्त किया।

किन्तु अगस्त, १६८१मे सोयराबाई, हीराजी फरजन्द और कई दूसरे प्रमुख व्यक्तियोके साथ मिलकर अन्नाजी दत्तोने शम्भूजीकी हत्या कर शाहज़ादे अकबरके सरक्षणमे राजारामको गद्दीपर बैठानेके लिए एक षड्यन्त्र रचा। उनका इरादा था कि भोजनमे विष मिलाकर शम्भूजीको मार डाले।

परन्तु इस षड्यन्त्रका भण्डा-फोड हो गया और शम्भूजीने तत्काल ही विद्रोहियोको पकडवाकर कैदखानेमे डाल दिया और उन्हे भयकर यातनाएं दी गई। अन्नाजी दत्तो, उसका भाई सोमजी, हीराजी फरजन्द, बालाजी आवजी प्रभु, महादेव अनन्त और तीन अन्य व्यक्तियोको बेडियॉ पडे हुए ही हाथियोके पैरोसे कुचलवाकर मरवा डाला। दूसरे बीस अपराधियोको बादमे मृत्यु-दण्ड दिया गया। राजारामकी मॉ, सोयराबाईपर यह अभियोग लगाया गया कि अपने पतिको विष देकर उसने (डेढ वर्ष पहिले) उनकी हत्या की थी, और अब शम्भूजीने सोयराबाईको विष देकर या भूखो मारनेका कष्टपूर्ण मृत्यु-दण्ड दिया। ये सारी घटनाएँ अक्तूबर, १६८१मे घटी। तब शम्भूजी सोयराबाईके पिताके शिरके घरानेका उत्पीडन करने लगा, उस घरानेके कई व्यक्तिको उसने मरवा डाला और बाकी रहे भागकर मुगलोमे जा मिले।

भोसले घरानेका इलाहाबादमे रहनेवाला वश-परम्परागत पण्डा, जो कनौजिया ब्राह्मण था, शम्भूजीके भव्य राज्याभिषेकमे कुछ ही पहिले रायगढ आ पहुँचा। बहुत ही जल्दी उसने शम्भूजीपर अपना प्रभाव जमा लिया, और उसका परम विश्वासपात्र बनकर कविकलश (कवियोमे श्रेष्ठ) उपाधिसे भूषित हो सारे राज्य-शासनका भी एकमात्र कर्ता-धर्ता वही बन गया। उधर शम्भूजी दिनो-दिन अधिकाधिक विलासी होने लगा और आँख बन्दकर अपने मन्त्री कविकलशकी सलाह माननेके अतिरिक्त राज्य-कार्यकी ओर यत्किचित् भी ध्यान नही देता था। यदा-कदा उमड पडनेवाले अस्थायी मानसिक जोशके अतिरिक्त शम्भूजीका सारा समय सुरा और सुन्दरियोकी उपासनामे ही बीतता था।

एक अज्ञात गांवमें शरण लिए शाहज़ादा अकबर वहां भी अपने सीमित साधनों द्वारा जहां तक भी सम्भव था एक समानान्तर-सा दिखावा बनाए रखता था। नौकरी-पेशा घुड़सवार निरन्तर उसकी सेनामें भरती होते जा रहे थे और अगस्त, १६८१में उसके पास लगभग २,००० घुड़सवार एकत्र हो गए थे। अपनी सारी सेना तथा अपने सारे सरदार और सेवकोंको साथ लेकर १३ नवम्बर, १६८१के दिन शम्भूजीने पादिशाहपुरमें (पालीमें) शाहज़ादे अकबरसे भेंट की। तब अकबरके साथ दुर्गादास भी था। किन्तु मुगल साम्राज्यपर आक्रमण कर वहां सफलता प्राप्त करनेका अकबरका एकमात्र अवसर अब तक निकल चुका था। १३ नवम्बर १६८१को औरंगजेब स्वयं बुरहानपुर आ पहुँचा था। यों आधा नवम्बर महीना बीतते-बीतते साम्राज्यके सारे सैनिक-साधन दक्षिणमें ही औरंगजेब स्वयं, उसके तीनों शाहज़ादों तथा सर्वश्रेष्ठ सेनापतियोंके नेतृत्वमें एकत्र हो गए थे। प्रारम्भमें तो औरंगज़ेबने भी शम्भूजी तथा अकबरके प्रति सजग ताकते रहनेकी नीतिको ही अपना कर सतोष कर लिया था।

५. औरंगजेबका युद्ध-कौशल सम्बन्धी स्व-सेना-विन्यास: १६८२

अपनी ही देश-रेखमें जंजीरापर प्रचण्ड आक्रमण करनेमें शम्भूजी जनवरी (१६८२) महीने भर व्यस्त रहा। औरंगजेबको यह सुअवसर मिल गया। जुन्नरसे चलकर सैयद हसनअली उत्तर कोंकणमें उतर गया और २० जनवरी, १६८२के लगभग उसने कल्याणपर अधिकार कर लिया, किन्तु मई माहमें इस प्रान्तको छोड़कर वह वापस लौट गया।

२२ मार्च, १६८२को औरंगजेब औरंगाबाद पहुँचा, तब उसने आज़मशाह और दिलेरखांको अहमदनगर भेजा, तथा दलपतरायके साथ शहाबुद्दीनखांने नासिकसे ७ मील उत्तरमें स्थित रामसेज किलेपर घेरा डाला। किन्तु एक चतुर किलेदारके नेतृत्वमें वहांके वीर मराठा सैनिकोंने डटकर किलेका बचाव किया, जिससे मुगलोंकी वहां एक न चली। सात-महीनों भी कोई सफलता न मिली, तब अक्तूबर १६८२में यह घेरा उठा लिया गया।

तब औरंगजेबने सब ओरसे शम्भूजीपर चढ़ाई करनेका निश्चय किया। १४ जूनको उसने शाहज़ादे आज़मको बीजापुरकी ओर भेजा कि

शाही सेनाके डरसे वह राज्य मराठे दलोको कोई भी सहायता या आश्रय न दे। सितम्बर माहमे उसे एक स्वाधीन सेनापति बनाकर रणमस्तखाँ-की उन्नति की गई और उसे कोकणपर चढाई करनेका आदेश दिया गया। कोककणमे घुसकर उसने नवम्बर, १६८२ ई०के पिछले दिनोमे कल्याणपर अधिकार कर लिया। रूपाजी भोसले और पेशवाने रणमस्तखाँका सामना किया, कई युद्ध भी हुए जिनमे अनेको मारे गए, परन्तु उन्हे कोई सफलता न मिली।

उधर औरगाबादसे २५ मील दक्षिणमे गोदावरीके तीरपर रामदू नामक स्थानमे खान इ-जहाँ शाहजादेकी सेनामे आ मिला और तब पूर्वमे नान्देर तथा वहाँसे बीदर तक बढा चला गया। तदनन्तर उसने चान्दा और गोलकुण्डाकी सीमाओ तक आक्रमणकारियोका पीछा किया।

जून, १६८२मे आदिलशाही राज्यके प्रदेशपर आक्रमणकर शाहजादे आजमने बरारपर अधिकार कर लिया। तब अपनी पत्नी जहाँजेब बानूको, जो साधारणतया जानी बेगम कहलाती थी, राव अनिरुद्धसिह हाडा और उसके राजपूतोके सरक्षणमे अपने ही पडावमे पीछे छोडकर शाहज़ादेने शम्भूजीके राज्यमे प्रवेश किया। इसपर बहुत बडी सख्यावाले एक मराठा दलने इस बेगमके पडावको आ घेरा। तब दाराशिकोहकी यह वीर पुत्री हाथीपर कसे पडदेवाले अपने हौदेपर बैठकर शत्रुओका सामना करनेके लिए आगे बढी।

अनिरुद्धसिहको बुलाकर उसने कहा—"राजपूतोके लिए चगताइयो-की मान-प्रतिष्ठा अपनी ही है[1]। मै तुम्हे अपना बेटा बनाती हूँ। अपनी इस थोडी-सी ही सेनासे यदि ईश्वरने हमे विजय प्रदान कर दी तो बहुत ही अच्छा। नही तो, तुम भरोसा रखना कि (शत्रुके हाथो कैद न होनेके उद्देश्यसे ही) मै अपना काम तमाम कर डालूँगी।" तब एक घमासान युद्ध हुआ। घायल हो जानेपर भी अन्तमे अनिरुद्धसिह ही विजयी हुआ। नीराके तीरपर कुछ समय बितानेके बाद जून, १६८३मे आजम वापस शाही दरबारमे बुला लिया गया।

६ मुगल प्रयत्नोकी असफलता : सम्राट्की व्यग्रता तथा आशकाएँ

२३ मार्च, १६८३को [illegible]ने कल्याण खाली कर दिया। वहाँसे

१ फारसीमे—"शर्म-इ-चग्ताइया वा राजपूतिया [illegible]"।

वापस लौटते समय रूपाजी भोंसलेके नेतृत्वमें एक मराठा सेनाने उसकी राह रोकी और कल्याणसे सात मील उत्तर-पूर्वमें तितवालके पास पीछेसे मुगलोंपर आक्रमण किया।

इस प्रकार दक्षिण पहुँचनेके बाद नवम्बर, १६८१से अप्रेल, १६८२ तकके एक वर्षमें भी अधिक समयमें उसके अत्यधिक साधन होते हुए भी औरंगजेबको कोई सफलता नहीं मिली। सच बात तो यह थी कि इस समय उसका जीवन घरेलू तथा मानसिक उलझनोंवाले एक कठिन संकट-कालमेंसे बीत रहा था। अपने कुटुम्बियोंमें उसका रहा-सहा विश्वास भी पूर्णतया डांवाडोल हो चुका था। किसपर वह विश्वास करे और कहाँ रहना उसके लिए निरापद होगा, यह कुछ भी उसे सूझता नहीं था। अतएव कुछ काल तक उसकी नीतिमें बहुत ही अधिक उलट-पुलट होती रही, शंकक होनेके कारण वह पूरी-पूरी सावधानी बरतता था, जिससे ऊपरी तौरपर देखनेमें उसकी नीति अस्थिर और परस्पर-विरोधी ही जान पड़ती थी।

७. मराठोंकी जल-सेना और सिद्दियोंके साथ उसके युद्ध; १६८०–१६८२

अंग्रेजोंके साथ भी मराठोंका स्थायी मेल नहीं रह सकता था, क्योंकि सिद्दियोंका जहाजी बेड़ा तथा यदा-कदा वहाँ आनेवाले मुगलोंके सूरत-वाले बेड़ेके जहाज भी प्रति वर्ष मईसे लेकर अक्तूबर तकके तूफानी बरसातवाले महीने बम्बई बन्दरगाहके सुरक्षापूर्ण संरक्षणमें ही बिताते थे। सिद्दियोंको अपने बन्दरगाहसे निकाल देनेके लिए शम्भूजी अंग्रेजोंको धमकाता था, और उनके शम्भूजीके आदेशोंका पालन करनेकी हालतमें उनके साथ मैत्री करनेका भी प्रस्ताव वह यदा-कदा करता था। किन्तु अनेकों उपायों द्वारा अंग्रेजोंने दोनोंके ही साथ मेल बनाए रखा।

बरसातके दिनोंमें जमकर युद्ध करनेका मराठोंके जहाजोंको कभी साहस नहीं हुआ। दोनों दलोंके विरोधी जलयानोंमें यदा-कदा झड़पें हो जाती थीं, किन्तु उनमें सिद्दियोंका ही पलड़ा भारी रहता था और समुद्रके उन भागोंमें मराठोंके व्यापारी जहाजोंका आना-जाना भी प्रायः बन्द रहता था।

७ दिसम्बर, १६८१के दिन पनवेलसे दस मील दक्षिणमे पतालगगा-पर स्थित आप्ताके नगरको सिद्दियोने जला दिया। इसपर उत्तेजित हो १८ दिसम्बरको शम्भूजी दण्डा आए और पूरे तीस दिन तक निरन्तर जजीरापर गोलाबारी की। किन्तु उत्तरी कोकणपर चढाई कर जब मुगलो-ने ३० जनवरीके लगभग कल्याणपर अधिकार कर लिया, तब शम्भूजीको विवश होकर वापस रायगढको लौटना पडा।

जुलाई, १६८२मे मराठोने जजीराके टापूपर अपने पाँव जमानेके लिए प्रयत्न किए किन्तु वे विफल ही रहे। ४ अक्तूबरके दिन कोलाबासे ८ मील दक्षिणमे कलगाँवके सामने मराठोंके सेवक सिद्दी मिश्रीने सिद्दी कासिमके जहाज़ी बेडेको युद्धके लिए ललकारा। किन्तु युद्धमे सिद्दी मिश्री-की हार हुई, बुरी तरहसे घायल हो वह कैद हो गया और उसके सात जहाज़ोंके साथ उसे भी बम्बई ले गए।

८. पुर्तगालियोंके साथ शम्भूजीका युद्ध; १६८३

अब शम्भूजीका क्रोध पुर्तगालियोपर उतरा। कारवारके दक्षिणमे स्थित अजदीवके टापूपर अधिकार कर तथा अप्रेल, १६८२मे वहाँ किले-बन्दी कर उन्होने शम्भूजीको उत्तेजित किया था। उधर कल्याणके पर-गनेको उजाड रहे मुगल सेनापति रणमस्तखाँ तथा उसकी सेनाके लिए रसद लेकर आनेवाले मुगल जहाजोको दिसम्बर, १६८२मे पुर्तगालियोंके वाइसरायने अपने थानाके किलेके नीचे होकर कल्याण तककी खाडीमे जाने दिया था। पुन मराठोंके उत्तरी कोकणके जिलोपर आक्रमण करनेके लिए भी उसने पुर्तगालियोके दमनवाले उत्तरी जिलेमेसे होकर मुगल सेनाको बेरोक-टोक गुजरने दिया था। ऐसे कार्यो द्वारा अपनी तटस्थताको भग करनेपर ही अब शम्भूजीने पुर्तगालियोसे बदला लेनेका दृढ निश्चय किया। ५ अप्रेल, १६८३को उसने उनपर अपना आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। उसने चढाई कर तारापुर तथा दमनसे लेकर बसीन तकके अन्य सारे ही नगरोंको जला दिया। ३१ जुलाईको पेशवाने चौलका घेरा डाला, किन्तु कई महीनोंके घेरेके बाद भी मराठे चौलको नही जीत सके।

मराठोंका ध्यान बँटानेके उद्देश्यसे गोआके वाइसरायने फोण्डाके किलेका घेरा डालनेका आयोजन किया और २२ अक्तूबरको वहा पहुँच गया। उस किलेकी भीतरी दीवालोंमे पडी हुई दरारोंमे घुसनेका कुछ

भी प्रयत्न कर सकनेके पहिले ही २० अक्तूबरको उस किलेकी सहायताके लिए शम्भूजीके सेनापतित्वमें एक बड़ी मराठा सेना वहाँ आ पहुँची। तब तो पुर्तगाली सेना घेरा उठाकर लौट पड़ी और १ नवम्बरके दिन वह दुरवत्ता पहुँची। दुरवत्तासे आगे लौटते समय पुर्तगालियोंको अनेकों विकट आपत्तियोंका सामना करना पड़ा। बड़े ही दृढ़ निश्चयके साथ मराठा घुड़सवारोंने पुर्तगाली पैदल सैनिकोंपर आक्रमण किया, तब तो घबड़ाकर पुर्तगाली सेना तितर बितर हो गई और वहाँसे भाग खड़ी हुई।

८. शम्भूजीका गोआपर आक्रमण करना

फोण्डासे चल कर शम्भूजी गोआ नगरकी ओर बढ़े। १४ नवम्बरकी रातके समय गोआसे दो मील उत्तर-पूर्वमें पहाड़की चोटीपर बने हुए किलेकी दीवालें फाँदकर अन्दर जा पहुँचे। शीघ्र ही उनकी सहायतार्थ और भी चार हज़ार सैनिक वहाँ आ धमके।

दूसरे दिन प्रातःकालमें ७ बजे गोआका वाइसराय सेण्टो इस्टेवाओके टापूपर जा उतरा और मराठे पैदल सैनिकोंपर बड़े जोरोंसे आक्रमण किया, किन्तु उसे हारकर ही वापस लौटना पड़ा। उसी दिन तीसरे पहर नावमें बैठकर वह उस टापूसे चल दिया। किन्तु दूसरे दिन १६ नवम्बरको मराठे भी बड़ी ही शीघ्रतासे उस टापूको छोड़कर वहाँसे चल दिए।

पहली दिसम्बरको एक हज़ार मराठा घुड़सवार तथा तीन हज़ार पैदल सालसिट और बार्डेसके परगनोंमें पहुँचे और कोई एक माह तक वहाँ यत्र-तत्र घूमकर लूट-मार की। युद्धके उत्तरी क्षेत्र, दमनके ज़िलेमें भी पुर्तगालियोंकी बुरी तरह पराजय हुई और २२ दिसम्बरके दिन दमनसे दस मील दक्षिण-पूर्वमें स्थित कारिजाके टापूपर शम्भूजीने अधिकार कर लिया। किन्तु उसके कुछ ही समय बाद ५ जनवरी, १६८५को शम्भूजीने राजपके महत्त्वपूर्ण नगर बिचोलिमपर शाहआलमने अधिकार कर लिया, और उसके तीन दिन बाद मुग़लोंका एक ज़बरदस्त जहाज़ी बेड़ा गोआके बन्दरगाहमें पहुँचा। उधर २३ दिसम्बरको ही शम्भूजी मराठा-को भाग गए थे। पुर्तगालियोंसे सन्धिकी बातचीत करनेके लिए शम्भूजीने अकबरके साथ कविकलशको भी वहाँ पीछे छोड़ दिया था। मुग़लोंके गोआ आ पहुँचनेपर उनसे बचनेके लिए कविकलश और अकबरने पीछे गोआसे २८ मील पूर्वमें भीमगढ़के जंगल तथा बादम फोण्डामें आश्रय

लिया। अन्तमे पुर्तगाली राजदूत मेन्युअल एस० द अलवुकर्कके साथ जीते हुए प्रदेशो तथा लूटके मालको परस्पर लौटाने तथा भविष्यमे एक दूसरेके तटस्थताकी नीति बरतनेकी शर्तोपर मराठोने २० जनवरी, १६८४के लगभग सन्धि कर ली। किन्तु यह सन्धि तो एक सारहीन क्षणिक समझौता ही था। पुर्तगालियोके साथ थोडा बहुत विरोध तो शम्भूजीके शासन-कालके अन्त तक बराबर चलता ही रहा।

१०. मराठोंके राजदरबारमें शाहजादे अकबरके आयोजन और उसकी निराशाएँ

सूरतके अँग्रेज व्यापारियोने दिसम्बर, १६८३मे ठीक ही विवेचन किया था कि लूट-मारके लिए ही यत्र-तत्र छोटे आक्रमण करके या सिद्दियो और पुर्तगालियोके साथ लाभविहीन युद्धोमे उलझकर शम्भूजी अपनी सारी शक्ति यो ही क्षीण कर रहे थे, और साथ ही अनेको मामलोमे उलझे रहनेके कारण कोई भी काम सफलतापूर्वक पूरा करना उसके लिए अत्यधिक कठिन हो रहा था।

शाहजादे अकबरको एकमात्र चिन्ता इसी बातकी थी कि किस प्रकार वह दिल्लीके राजसिंहासनको प्राप्त कर ले। अपने आयोजनके एक साधनके रूपमे ही वह शम्भूजीका महत्त्व आंकता था। महाराष्ट्रमे बीतनेवाला उसका प्रत्येक दिन उसकी आशाओको उतना ही आगे टालता था, तथा उसके जीवनका वह एक और दिन इन अनभ्यस्त असुविधापूर्ण परिस्थितियोमे ही बीतता था। महाराष्ट्र छोड देनेपर ही वह पुन सभ्य ससारको लौट सकता था।

हृदयको मसोस करनेवाली प्रतीक्षा, आशाओके निरन्तर टलते रहने तथा वचन पूरा करनेमे टालमटोलका पूरे अठारह महीनो तक कटु अनुभव करनेके बाद ही अकबरको शम्भूजीके चरित्र तथा उसकी नीतिका ठीक-ठीक पता लगा, और उससे किसी भी प्रकारकी सहायता पानेकी उसे कोई आशा न रही। अतएव उसने महाराष्ट्रसे चल देनेका ही निश्चय किया। अपने राठौड रक्षकोंको लेकर वह दिसम्बर, १६८२मे अपने आश्रय-स्थान पालीसे चल पडा और सावन्तवाडीमे वादा नामक स्थानमे जा ठहरा। यद्यपि यह वादा मराठा राज्यके अन्तर्गत ही था किन्तु गोआ वहांसे २५ मील उत्तरमे रह जाता था।

सितम्बर माहमें अकबर बांदासे चलकर शम्भूजीके ही राज्यके अन्तर्गत बिचोलिम नामक नगरमें पहुँचा, जहाँसे गोआ केवल १० मीलकी ही दूरीपर था। शम्भूजीसे पूर्णतया ऊब ताकर भ्रममें रहनेवाले उस बेचारे शाहजादेने अन्तमें ८ नवम्बरके लगभग ईरान जानेकी इच्छासे विगुर्लामें एक जहाज मोल लिया। किन्तु कविकलश बड़ी ही शीघ्रताके साथ राजापुरसे वहां पहुँचा और दुर्गादास राठौड़को लेकर उसने जहाजपर अकबरसे भेंट की और भारतमें ही शम्भूजीकी ओरसे उसे सैनिक सहायता दिलवानेका वादाकर वापस थलपर आनेके लिए अकबरको फुसला लिया। उसके बाद पुर्तगालियोंके साथ मराठोंका युद्ध छिड़ गया जिसमें अकबर मध्यस्थ बना था।

फरवरी, १६८४के बाद अकबर पूरे एक वर्ष तक रत्नागिरी जिलेमें साखरपे तथा मल्कापुरमें ठहरा रहा और भावी कार्यवाहीकी योजना बनानेके लिए उससे मिलनेके हेतु बारम्बार कविकलशको बुलाता रहा।

११. शम्भूजीके विरुद्ध विद्रोह तथा जुलाई, १६८३के बादकी मुगलोंकी चढ़ाइयाँ

जुलाई, १६८३के बाद दक्षिणके इन युद्धोंमें मुगलोंकी सफलताओंकी सम्भावनाएँ निरन्तर बढ़ने लगी। शम्भूजीके साथ अकबरका वैमनस्य हो गया था, तथा अब अकबर भारतसे चल देनेकी सोच रहा था। मराठे पुर्तगालियोंके साथ एक दीर्घकालीन युद्धमें उलझ रहे थे। इन सारी परिस्थितियोंसे मुगलोंने लाभ उठाया। औरंगजेबकी अनिश्चितता तथा सावधानीपूर्ण निष्क्रियताका भी अन्त हो गया, तथा अनेकों दिशाओंसे एक साथ ही जोरोंसे मुगलोंके आक्रमण प्रारम्भ हुए।

शम्भूजीके व्यभिचारों, अस्थिर चित्तवृत्ति तथा क्रूरतापूर्ण अत्याचारोंके कारण उसके अधिकारियों तथा सामन्तोंमें सर्वत्र असन्तोष फैल गया था। औरंगजेबकी रिश्वतोंने असन्तोषकी इस आगमें घीका काम किया और लोग मराठोंकी नौकरी छोड़-छोड़कर मुगलोंके साथ जा मिलने लगे। २६ जुलाई १६८३को शिवाजीका मुन्शी काज़ी हैदर औरंगजेबके पास जा पहुँचा और उसे खानकी उपाधि तथा दो हजारी मनसब मिला। सन् १७०६में वही सारे साम्राज्यका काज़ी नियुक्त हुआ था।

फुलाजीके मामा तथा शम्भूजीके एक अनन्त सेन सामन्तने सम्भू-

सागरमे पूर्णतया डुबो दिया। युद्ध-क्षेत्रमे सेना-सचालन करने तथा अपने पूज्य पिता द्वारा उपस्थित वीरता और अथक परिश्रमके अनुकरणीय आदर्शका अनुसरण न कर, अब शम्भूजीका सारा समय सुरा, सुन्दरी, सगीत तथा मनोरजनमे ही बीतता था।

जनवरी, १६८५ आधा बीतते-बीतते सहाबुद्दीनने भोरघाटकी राह कोकणपर आक्रमण किया और रायगढके तले पचाड गाँवको जलाया, और 'अनेको काफिर राजाओको मारा, उनकी धन-सम्पत्तिको लूटा, अनेकोको कैद किया और यो उसने एक बडी विजय प्राप्त की।' उसकी इस महत्त्वपूर्ण सफलताके पुरस्कारस्वरूप उसे खान बहादुर फिरोजजगकी उपाधि प्रदान की गई।

अनेको मराठा सेनानायकोको फिरोजजगने फुसलाया, जिससे वे शम्भूजीका साथ छोडकर शाही पक्षमे हो गए। दिसम्बरके प्रारम्भमे अब्दुल कादिरने कोण्डानाके किलेपर अधिकार कर लिया।

१४. मुगलोंका बीजापुर राज्यके परगने जीतना

१२ सितम्बर, १६८६को बीजापुर किलेके आत्म-समर्पणके बाद अपने इस नये जीते हुए प्रदेशके विभिन्न भागोंके किलोपर अपना अधिकार करने, वहाँका माली बन्दोबस्त करने तथा वहाँ शान्ति बनाए रखनेके लिए औरगजेबने अपने सेनापतियोको वहाँके विभिन्न भागोमे भेजा। किन्तु अगले वर्ष फरवरीसे लेकर सितम्बर तक सारी मुगल सेना गोलकुण्डाके घेरेके लिए ही वहाँ एकत्रित रही और २१ सितम्बर १६८७के दिन गोल-कुण्डाके किलेके पतनके बाद ही शाही सेनानायकोको अवकाश मिला कि पुराने आदिलशाही राज्यके परगनोमे जाकर वहाँ वे आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ कर सके।

कृष्णा और भीमा नदीके बीचमे स्थित प्रदेशपर राज्य करनेवाले बेरडोकी राजधानी सागरमे थी। मुगलोने सबसे पहले इन्ही बेरडोपर चढाई की। एक ही वर्षमे बीजापुर और गोलकुण्डाके दोनो किलोके आत्म-समर्पण कर देनेके कारण मुगल सेनाका आतक तब बहुत फैल गया था, तब बेरडोके शासक पाम नायकने २७ नवम्बर, १६८७को अपना किला सौंपकर मुगलोकी अधीनता स्वीकार कर ली, और २७ दिसम्बर, १६८७को वह स्वय औरगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ। किन्तु उसके

पांच ही दिन बाद पाम नायक एकाएक मर गया; तब उसका राज्य मुगल साम्राज्यमे मिला लिया गया।

इन नये जीते हुए दक्षिणी राज्योके पूर्व और दक्षिणके प्रदेशोंकी ओर मुगल सेनानायकोंने अब ध्यान दिया। सिद्दी मसूद स्वतन्त्र बनकर तुंगभद्रासे दक्षिणमे स्थित अडोनीके किलेमे बैठा कर्नूलके जिलेपर शासन कर रहा था, एवं फिरोजजंगने उसपर चढ़ाई की, तब बाध्य होकर सिद्दी मसूदने ६ अगस्त, १६८८के दिन आत्म-समर्पण किया। अडोनीके इस किलेपर मुगलोंने अधिकार कर लिया और उस किलेका नाम पलट-कर इम्तियाजगढ़ रख दिया। सिद्दी मसूदको सात हजारीका मुगल मन-सब दिया गया।

उधर घेरा डालनेके बाद मार्च, १६८८के लगभग शाहजादे आजमने बेलगांवका सुदृढ़ किला जीत लिया। अन्य दिशाओंमे भी शाही सेनाने अनेकों किलोंपर अधिकार कर लिया।

२५ जनवरी, १६८८को हैदराबादसे रवाना होकर १५ मार्चको औरं-गजेब बीजापुर पहुंचा। किन्तु नवम्बर, १६८८के प्रारम्भमें बीजापुर नगर तथा शाही पड़ावमें एक भयंकर महामारी फैल गई। "पहिले तो कांख और जघांके अथवा सिरपर गांठे उठती थी, तब ज्वर बहुत बढ़ जाता और अन्तमें एकाएक बेहोशी छा जाती। इलाज या दवाईका कुछ भी असर नहीं होता था। कुछ बीमार तो दो दिनसे अधिक भी नहीं निकाल पाते थे। इस बीमारीसे मरनेवालोंमे विशेषरूपेण उल्लेखनीय थे—औरंगजेबकी बूढ़ी बेगम औरंगाबादी महल, महाराजा जसवन्तसिंहका बेटा कहा जानेवाला तेरह-वर्षीय मुहम्मदी राज, सदर फाजिलखां तथा कई अन्य अमीर। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मोके सध्यम वर्गवालों या दरिद्रियोंमेंसे जो मरे उनकी गणना नहीं की जा सकती, किन्तु अनुमान यह था कि उनकी संख्या एक लाखसे किसी भी प्रकार कम न होगी। फिरोजजंगकी आंखें भी इसी बीमारीमें चली गई।

किन्तु अपने पूर्व निश्चयके अनुसार औरंगजेब १४ दिसम्बर, १६८८-को बीजापुरसे सहसा चल पड़ा और उसने एक सप्ताह बाद [illegible] ओर कूच किया। बीजापुरसे ८५ मील उत्तरमें और [illegible] औरंगजेब अकलूज पहुंचा और उसने वहीं पड़ाव डाल दिया।

उधर पन्हालाके किलेका घेरा डालनेके लिए १६८८मे औरगजेबने मुकर्रबखॉ नामक एक सुयोग्य तथा उत्साही सेनापतिको ससैन्य रवाना किया था। जब उसके गुप्तचरोने उसे सगमेश्वरमे अरक्षित ही शम्भूजीके व्यभिचारमे रत होनेकी सूचना दी, तब कोल्हापुरके अपने पडावसे चलकर राहमे बिना रुके ही तत्परताके साथ वह उधर बढा। केवल ३०० सैनिकोको ही अपने साथ लिये ९० मीलकी दूरीको केवल दो या तीन दिनमे पार कर वह 'बिजली और हवाकी-सी तेज़ीसे' सगमेश्वर जा पहुंचा।

जब आक्रमणकारी नगरमे जा घुसे तब कविकलशने उनका सामना किया और युद्धमे घायल हुआ। अपने नेताके न रहनेसे तब मराठा सेना बिखरकर भाग खडी हुई। शम्भूजी और उसके मन्त्रीने उस मन्त्रीके मकानके एक तलघरमे आश्रय लिया। किन्तु मुगल सैनिकोने उनके लम्बे-लम्बे बालोके द्वारा खीचकर उन्हे वहाँसे निकाला और पकडकर बाहर हाथीपर सवार अपने सेनापतिके पास उन्हे ले गए। १ फरवरी, १६८९ को यो शम्भूजी पकडा गया। शम्भूजीके मुख्य अनुचरोमे से कोई २५ आदमी अपनी पत्नियो तथा पुत्रियोके साथ उस दिन वहाँ पकडे गए।

शम्भूजीके पकडे जानेका समाचार शीघ्र ही शाही पडावमे अकलूज पहुँच गया, और तब साम्राज्यके सब ही विभिन्न भागोमे आनन्द और उल्लासकी लहर-सी फैल गई।

१५ फरवरीको शाही पडाव बहादुरगढ पहुँचा और तब ये कैदी भी वहाँ लाए गए। औरगज़ेबकी आज्ञासे दक्षिणके इस प्रजापीडकको जनसाधारणके उपहासका लक्ष्य बनाया गया। धीमी चालसे चलाकर कैदियोको सारे पडावमे घुमाया गया, और तब उन्हे औरगजेबके सम्मुख ले गए, जो इस अवसरके उपलक्ष्यमे पूरा दरबार लगाए बैठा था। कैदी शम्भूजीको देखते ही औरगजेब अपने राजसिहासनसे उतर पडा और नीचे कालीन पर घुटने टेककर बैठ गया तथा धरतीपर सिर झुकाकर इस आशातीत विजयके उस दाताके प्रति उसने अपनी दुहरी कृतज्ञता प्रकट की।[1] सम्राट्के सलाहकारोका सुझाव था कि शम्भूजीको जीवन-

[1] इस परम्परागत [illegible] उल्लेख करते हुए खफीखाँने लिखा है कि जब औरगजेब इस प्रकार प्रार्थना कर रहा था, तब तत्काल ही हिन्दीके कुछ छद बनाकर कविकलशने शम्भूजीको सुनाए, जिनमे उसने कहा था—"ओ राजा! औरगजेब भी तुम्हारे सामने राजसिहासनपर बैठनेका साहस नही कर

दान देकर सारे मराठा किले शान्तिपूर्वक मुगलोंको सौंप देनेकी आज्ञा अपने अधिकारियोंको देनेके लिए उसे बाध्य किया जावे। किन्तु सार्वजनिक रूपसे अपमानित किए जानेके कारण उनकी आत्मामें भर जानेवाली तीव्र कटुतासे क्षुब्ध तथा अब बिलकुल ही निराश होकर शम्भूजीने जीवनदानके इस प्रस्तावको ठुकरा दिया।

मराठा राजाके अपराध सर्वथा अक्षम्य थे। उसी रात शम्भूजीकी आँखें फोड़ दी गईं और दूसरे दिन कविकलशकी जीभ काट डाली गई। इस्लाम धर्मवेत्ता मुल्लाओं और काजियोंने फतवा दिया कि शम्भूजीको मृत्यु-दण्ड दिया जाना चाहिए, जिसे औरंगजेबने स्वीकार किया। एक पखवाड़े भर निरन्तर अत्याचार और अपमान भुगतनेके बाद ११ मार्चको कोरेगाँवमें भयंकर पीड़ाकारक क्रूरताके साथ इन कैदियोंको मृत्यु-दण्ड दिया गया।

१८. सन् १६८९ ई०का युद्ध; रायगढ़पर मुगलोंका अधिकार होनेपर शम्भूजीके सारे कुटुम्बका कैद होना

शम्भूजीके पतनके बाद उनके छोटे भाई राजारामको कैदखानेमेंसे निकालकर रायगढ़में उपस्थित मराठा मन्त्रियोंने उसे ८ फरवरीको राज-सिंहासनपर बैठाया, क्योंकि शम्भूजीका पुत्र शाहू उस समय निरा बालक था, और जब कि औरंगजेब जैसे शत्रुके साथ राज्यके जीवन-मरणकी भयंकर लड़ाई चल रही थी, तब एक बालकको राजा बनाना उचित प्रतीत नहीं हुआ। कुछ ही दिनों बाद इतिकादखाँके नेतृत्वमें एक शाही सेनाने आकर मराठा राजधानीको घेर डाला, किन्तु राजाराम तो घेरेको भेद करके ५ अप्रैलके दिन वहाँसे निकल भागा। पता लगनेपर मुगलोंने उसका पीछा किया, किन्तु उसके साथियोंने मुगलोंकी राह रोकी और युद्ध कर उन्हें उलझाए रखा, तब कहीं बड़ी कठिनाईसे भाग नाग-

---

करता है, किन्तु तुम्हारे सम्मुख घुटने टेककर तुम्हारा अभिवादन करता है'।

(खफीखाँ, भाग २, पृ० ३८८)।

ईश्वरदासका कथन है कि औरंगजेबके सामने पहुँचकर उस प्रकार करनेके लिए प्रेरित किए जानेपर भी शम्भूजीने ऐसा नहीं किया। (ईश्वरदास पृ० १५५ ब)।

राम उनसे वच सका। कुछ समय तक वह वर्तमान मैसूर राज्यके शिमोगा ज़िलेके वेदनूरकी रानीके राज्यमे आश्रय लिए छिपा रहा। अन्तमे जव उस रानीने उसे जाने दिया तव वहाँसे चलकर वह १ नवम्बरके दिन जिजी पहुँचा।

मुगल साम्राज्यके प्रधान मन्त्री असदखाँके पुत्र इतिकादखाँने वहुत दिनो तक चलनेवाली कशमकशके वाद १ अक्तूवर, १६८९के दिन रायगढके किलेपर अधिकार कर लिया। तव वहाँ शिवाजीकी जीवित विधवाओ, शम्भूजी तथा राजारामकी पत्नियो, पुत्रियो और पुत्रोको, जिनमे शम्भूजीका सप्त-वर्षीय पुत्र शाहू भी था, इतिकादखाँने पकड लिया। उनके लिए आवश्यक पडदेका प्रवन्ध कर मराठा राजघरानेकी इन स्त्रियोको पूरे आदरके साथ अलग तम्वुओमे रखा गया। शाहूको राजाकी उपाधि देकर ७ हज़ारीका मनसव दिया गया, किन्तु फिर भी शाही डेरोके पास ही वह कैद रखा जाता था।

यो सन् १६८९के अन्त तक औरगजेव उत्तरी भारतके साथ ही दक्षिणका भी प्रतिद्वन्द्वी-विहीन एकछत्र सम्राट् वन गया। आदिलशाह, कुतुवशाह और राजा शम्भूजी, तीनो हीका पतन हो चुका था, तथा उनके राज्य मुगल साम्राज्यमे सम्मिलित हो गए थे।

"ऐसा प्रतीत होने लगा था कि औरगजेवने अव सव कुछ प्राप्त कर लिया था, परन्तु वास्तवमे वह सव कुछ खो वैठा था। उसके अव पतनका प्रारम्भ यहीसे हुआ। मुगल साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया था कि किसी एक व्यक्तिका या केवल एक ही केन्द्रसे उसपर शासन करना सर्वथा असम्भव वात थी। सव ही दिशाओमे उसके शत्रुओने सिर उठाया, वह उन्हे हरा सकता था, परन्तु सर्वदाके लिए उन्हे कुचल देना उसके लिए सम्भव न था। उत्तरी तथा मध्य भारतके वहुतसे भागोमे अराजकता फैली हुई थी। शासन-प्रवन्ध शिथिल और भ्रष्टाचारपूर्ण होता जा रहा था। दक्षिणके इस अनन्त युद्धके कारण खजाना खाली हो गया था। नेपोलियन प्रथम प्राय कहा करता था कि 'स्पेनके नासूरने मुझे वरवाद किया।' दक्षिणके इस विषैले फोडेने सचमुच ही औरगजेवको चौपट किया।' (यदुनाथ सरकार कृत 'स्टडीज़ इन मुगल इण्डिया', पृ० ५०)।

भाग ५

अध्याय १८

सन् १७०० ई० तक मराठोंके साथ संघर्ष

१. मराठोंका पुनरुत्थान : १६९०–१६९४

सन् १६८८ और १६८९ ई०के इन दो वर्षोंमें औरंगजेबको लगातार विजय ही मिलती रही। मराठोंकी राजधानी रायगढ तथा मराठोंके कई अन्य किलोंको जीतनेके अतिरिक्त उसकी सेनाओंने बीजापुर और गोल्कुण्डाके अधिकृत राज्योंमें बेरडोंकी राजधानी सागर, पूर्वमें रायचूर और अडोनी, मैसूरमें सेरा और बंगलौर, मद्रासी कर्नाटकमें वाण्डीवाश और कांजीवरम् तथा दक्षिण-पश्चिम सीमापर बंकापुर और बेलगाँव जैसे विभिन्न प्रान्तों और किलोंपर भी अधिकार कर लिया था। उत्तरी भारतमें भी मुगल सेनाओंको अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी, राजारामके नेतृत्वमें विद्रोह करनेवाले जाटोंको पूर्णतया दबाकर ४ जुलाई १६८८के दिन उनके नेताको भी मार डाला गया था।

परन्तु सन् १६८९के समाप्त होते-होते नये मराठा राजा राजारामके सकुशल जिंजी किलेमें जा पहुँचनेके समाचार सर्वत्र ज्ञात हो गए, और अब यह किला भारतके पूर्वी तटपर मराठोंके उद्योगोंका प्रमुख केन्द्र बन गया, तथा मराठोंके जो सर्दार महाराष्ट्रमें ही पीछे रह गए थे, वे अब वहाँ पश्चिममें भी मुगलोंके विरुद्ध विरोधका संगठन करने लगे। मराठोंके एक सर्वोपरि शासक तथा कोई केन्द्रीय शासनके न रह जानेसे अब औरंगजेबकी कठिनाइयाँ भी कई गुना बढ़ गईं। प्रत्येक मराठा सरदार या सेनानायक अपने सैनिकोंके साथ अपनी इच्छानुसार भिन्न भिन्न दिशामें आक्रमण कर वहाँ लूटना-पिटना था। अब महाराष्ट्रमें जन-आन्दोलन शुरू हो गया और अनेकों प्रयत्न करनेपर भी औरंगजेब उनका अन्त नहीं

कर सका, क्योकि उसपर आक्रमण कर नष्ट करनेके लिए अब वहाँ मराठा राज्यकी केन्द्रिय सत्ता या उसकी राजकीय सेना नही रह गई थी।

आदिलशाह और कुतुबशाहके वैधानिक उत्तराधिकारीके रूपमे उसके हाथो पडनेवाले पूर्व तथा दक्षिणमे सुदूर तक फैले हुए उन उपजाऊ प्रदेशोपर अपना एकाधिपत्य स्थापित करनेमे ही औरंगजेबने सन् १६९० और १६९१के पूरे दो वर्ष बिताए। मराठ राज्यका एक तरहसे विध्वस हो चुका था, यह सोचकर उसने अब मराठोकी शक्तिको स्पष्टतया नगण्य ही समझा। मराठा जनताकी शक्तिका ठीक-ठीक नाप-तोल तब भी उसे करना था।

सन् १६९१ ई०की पतझड तक जिंजीका घेरा लगानेवाली मुगल सेना-की स्थिति इतनी सकटपूर्ण हो गई थी कि औरंगजेबको उसकी सहायतार्थ एक बहुत बडी सेना वहाँ भेजनी पडी। सन् १६९२मे पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे मुगलोको कोई भी सफलता नही मिली, परन्तु इधर पूर्वी तटपर तो मुगल सेनाको बुरी तरह मुँहकी खानी पडी, दो उच्च मुगल सेनानी शत्रुके हाथो कैद हो गए, मुगल सेनाको जिंजीका घेरा उठा लेना पडा तथा शाहजादे कामबख्शको उसके ही साथी सेनानायकोने कैद कर लिया (दिसम्बर, १६९२–जनवरी, १६९३)। अतएव सन् १६९३ ई०के प्रारम्भ-मे सबसे पहला काम यही हो गया कि पूर्वी कर्नाटकमे बहुत अधिक सेना तथा पूरी-पूरी युद्ध-सामग्री भिजवाकर वहाँकी सैनिक स्थितिको सम्हाल लिया जावे। उधर पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे शाहजादे मुईज्जुद्दीनने अक्तूबर, १६९२मे पन्हालेके किलेका घेरा डाला और अगले सारे वर्ष भर यथाशक्ति प्रयत्न करनेके बाद भी उसे कोई सफलता नही मिली तथा अन्तमे मार्च, १६९४मे मराठाने उसे वहाँसे खदेड दिया। इसके साथ ही सन्ता घोरपडे, धन्ना जादव, नीमा सिंधिया, हनुमन्तराव आदि मराठा पक्षके अनेको सेनानायक निरन्तर आक्रमण कर रहे थे।

इसी समय बीदरसे लेकर बीजापुर तथा रायचूरसे मालखेड तक फैले हुए इस विस्तृत एव सामरिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण प्रदेशमे रहनेवाले बेरड जातिके पवर आदिवासियोका विद्रोह उन्हींके साहसी शासक पीडिया नामकके नेतृत्वमे इतना उग्र हो गया था कि जून, १६९१मे लेकर दिसम्बर, १६९२ तक एक उच्च कोटिके सेनापतिको एक बडी सेनाके साथ सागरमे रखना आवश्यक प्रतीत हुआ।

अन्तमे अप्रैल, १६९५मे जाकर ही कही औरंगजेबने अनुभव किया

कि आदिलशाही तथा कुतुबशाही राजधानियोंको जीतकर तथा वहांके राजघरानोंको मिटानेपर भी उसे वास्तवमे कोई लाभ नही पहुंचा। उसने देखा कि शिवाजीके कालकी तुलनामे अब मराठा समस्याका स्वरूप पूर्णतया बदल गया था, शम्भूजीके समयकी परिस्थितियोंके साथ भी उनका कोई साम्य नही पाया जाता था। अब मराठे एक लूट-मार करनेवाली जाति या स्थानीय विद्रोही-मात्र नही रह गए थे, किन्तु अब वे मुगल साम्राज्यके एकमात्र शत्रु तथा दक्षिणी भारतकी राजनीतिमे एक महत्त्वपूर्ण शक्ति बन गए थे। सारे भारतीय प्रायद्वीपमे बम्बईसे मद्रास तक फैला हुआ यह सर्वव्यापी शत्रु वायुके समान ही किसी भी प्रकार पकड़मे न आनेवाला था, उसका न तो कोई एक प्रमुख नायक था और न कोई शक्तिशाली केन्द्र ही कि जिनपर अधिकार हो जानेके फलस्वरूप शत्रुकी शक्तिका आप-ही-आप अन्त हो जावे। उनकी शक्ति बढ़ते-बढ़ते अब परिस्थिति बहुत ही भयकारक हो गई थी, क्योंकि केवल दक्षिणके ही नही, परन्तु मालवा, मध्यप्रदेश और बुन्देलखण्ड तकके मुगल साम्राज्यके सारे शत्रु तथा सार्वजनिक शान्ति और सुसगठित शासन-व्यवस्थाके सब ही विरोधी उनके मित्र बनकर अब उनका साथ देनेके लिए तत्पर होने लगे थे।

अतएव अब औरंगजेबके लिए वापस दिल्ली लौटना कदापि सम्भव नही था। दक्षिणमे उसका कार्य अभी अधूरा ही था, वास्तवमे तो अब उसका प्रारम्भ ही हो रहा था।

२. इस्लामपुरीमें औरंगजेबका निवास; १६९५-१६९९

अतएव मई, १६९५मे औरंगजेबने अपने ज्येष्ठ जीवित पुत्र शाह-आलमको अपने साम्राज्यके उत्तर-पश्चिमी भाग, पंजाब, सिन्ध तथा बादमे अफगानिस्तान सूबा भी सौंप दिए कि वह उत्तरी भारत तथा भारतके पश्चिमी सीमान्त प्रान्तोकी सुरक्षा करे; और वह स्वयं अगले साढ़े चार वर्षोंके लिए इस्लामपुरीमे जा टिका और बादमें भी अपनी सारी चढ़ाइयोंके लिए इसे ही अपना सैनिक अड्डा (बुनगाह) बनाया। औरंग-जेबके इस्लामपुरी-निवासकालमे (१६९५-१६९९) मराठोंका संकट अधिकाधिक पास आता गया और मुगलोंको विवश होकर रक्षात्मक युद्धनीति ही अपनानी पड़ी। औरंगजेबके स्थानीय अधिकारियोंको उनसे हार मानकर विवश हो मराठों या अन्य स्थानीय [illegible] [illegible]

प्राप्त किए बिना ही प्रति वर्ष वहाँकी मालगुजारीका चौथाई भाग चौथके रूपमे देनेका वादाकर मराठोंके साथ समझौता करना पडा। किन्तु मुगल अधिकारियोके पतनकी इतनेसे ही इतिश्री नही हुई। अपनी उजाड बरबाद जागीरोमे कोई लगान वसूल नही हो सकनेके कारण आर्थिक कठिनाइयाँ अनुभव करनेवाले कई शाही अधिकारी तो मराठोंसे मिलकर सम्राट्की ही प्रजा तथा बेचारे व्यापारियोको ही लूटकर धनी बननेका भरसक प्रयत्न करने लगे। मुगल शासन-व्यवस्था सचमुच ही विलीन हो चुकी थी। एक बडी सेनाके साथ स्वय सम्राट्की वहाँ उपस्थितिसे ही वहाँके सारे प्रदेशपर कुछ भी मुगल सत्ता बनी हुई थी, किन्तु अब तो यह सब भ्रमम डालनेवाली एक निस्सार कल्पना-मात्र रह गई थी।

इस्लामपुरी-निवासकालकी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थी—नवम्बर १६९५मे कासिमखाँ तथा जनवरी, १६९६मे हिम्मतखाँ जैसे दो प्रमुख सेनापतियोका सन्ताके हाथो अन्त, आपसी झगडेमे जून, १६९७मे सन्ताका मारा जाना, ७ जनवरी, १६९८को जिंजीके किलेपर मुगलोका आधिपत्य होना तथा उसीके फलस्वरूप तदनन्तर राजारामका महाराष्ट्रको वापस लौट आना।

३. औरंगजेबकी अन्तिम चढाइयाँ; १६९९-१७०५

इस अन्तिम घटनाके फलस्वरूप औरगजेबको अपनी सारी नीति ही बदल देनी पडी। पूर्वी तटवाले प्रदेशपर अब उसका पूर्ण एकाधिपत्य हो गया था एव उसने अपनी सारी सैनिक शक्तियाँ पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे ही केन्द्रित कीं। औरगजेबके जीवन-कालका अन्तिम पहलू अब प्रारम्भ हुआ, वह स्वय जाकर बारी-बारीसे एक-एक मराठा किलेका घेरा डालने लगा। उसके जीवनके इन आखिरी वर्षोमे (१६९९-१७०७ ई०) बारम्बार एक ही दुखद कहानीकी पुनरावृत्ति होती रही, अत्यधिक समय, शक्ति तथा धनकी बरबादीके बाद औरगजेबने जिस पहाडी किलेको जीता था कुछ ही महीनो बाद मराठोने वहाँके शक्तिहीन रक्षकोको पराजित कर उसी दुर्गको वापस छीन लिया, और तब एक या दो वर्ष बाद पुन मुगल उसी किलेका घेरा डालनेको वहाँ जा पहुँचे। चढी हुई नदियो, दलदलयुक्त रास्ता तथा ऊबड-खाबड पहाडी पगडण्डियोपर चलनेमे मुगल सैनिकोको निरन्तर अवर्णनीय कठिनाइयोका सामना करना पडा, मजदूर भाग खडे होते, बारबरदारीके पशु भूख और थकावटके मारे मर जाते,

और शाही सैनिक पड़ावमें सदैव ही धान्यकी बहुत बड़ी कमी बनी रहती। कभी समाप्त न होनेवाले इन उद्योगोंने शाही अधिकारियोंको पूर्णतया थका दिया। किन्तु जब कभी कोई औरंगजेबके सम्मुख उत्तरी भारतको लौटनेका सुझाव रखता तब वह क्रोधके मारे उबल पड़ता और उस अभागे प्रस्तावक अधिकारीको कायर तथा सुखजीवी होनेका उलाहना देता। स्पेनके युद्धमें जिस प्रकार नेपोलियनके सेनानायकोंकी आपसी ईर्ष्याके कारण फरासीसियोंके पक्षको अमित हानि पहुँची थी, उसी तरह मुगल सेनापतियोंकी पारस्परिक डाहने औरंगजेबके सारे प्रयत्नोंको बरबाद कर दिया था। अतएव यह अत्यावश्यक हो गया कि प्रत्येक चढ़ाईका सञ्चालन वह स्वयं करे, नहीं तो कोई भी काम होना सम्भव नहीं था। सतारा, पार्ली, खेलना, कोण्डाना, राजगढ़, तोरणा और वागिनखेडाके इन आठ किलोंका घेरा डालनेमें औरंगजेबको पूरे साढ़े पांच वर्ष (१६९९-१७०५) लगे।

८ फरवरीसे २७ अप्रैल, १७०५ तक चलनेवाला वागिनखेड़ाका घेरा ही इस अट्ठासी वर्षके बूढ़े सेना सञ्चालकका अन्तिम घेरा था। इन किलोंको जीतनेके बाद जब उसने देवपुरमें पड़ाव किया (मई-अक्तूबर, १७०५), तब वहाँ औरंगजेब बहुत ही सख्त बीमार पड़ गया। सारे पड़ावमें घबराहट और निराशा फैल गई। निकटतम आती हुई अपनी मृत्युके इन सकेतोंको देख औरंगजेबने अपने हितैषियोंकी प्रार्थनाको स्वीकार किया और २० जनवरी, १७०६को वह अहमदनगरके लिए लौट पड़ा, जहाँ एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु हुई।

४. अपने अन्तिम वर्षोंके उसके सताप और व्यथाएँ

औरंगजेबके जीवनके कुछ अन्तिम वर्ष बड़े कठोर हुए [illegible]। जन-साधारणके हृदयमें यह भावना अधिकाधिक स्पष्ट होने लगी थी कि अर्ध शताब्दीका यह लम्बा शासनकाल पूर्णतया निष्फल ही रहा। लगातार चलनेवाले दक्षिणके इन युद्धोंने शाही कोषको खाली कर दिया था; शासन दिवालिया हो गया था, प्रायः तीन-तीन वर्षोंका वेतन चढ़ जाता था, जिससे भूखों मरनेवाले सैनिक निरन्तर विद्रोह करते रहते थे, बंगालसे ईमानदार सुयोग्य दीवान मुर्शिदकुलीखां द्वारा नियमित भेजी हुई रकमोंके आनेसे ही शासनव्यवस्थाके इन दिनों अनेक शाही कुटुम्ब तथा

सेनाका बहुत-कुछ काम चलता था और उसके वहाँसे आनेकी बडी ही उत्सुकतापूर्वक बाट देखी जाती थी। दक्षिणमे अन्त तक मराठोका ही प्राधान्य बना रहा, और उधर उत्तरी तथा मध्य भारतके कई स्थानोमे पूर्ण अराजकताका दौरदौरा हो गया था। सुदूर दक्षिणमे पहुँचकर बूढा सम्राट् हिन्दुस्तानके अधिकारियोपर अपना नियन्त्रण नही रख सका और वहाँके शासनमे ढिलाई तथा भ्रष्टाचार दिनोदिन बढने लगे। स्थानीय शाही अधिकारियोकी उपेक्षा कर उस प्रदेशके राजा और जमीदार अपनी ही मनमानी करते थे, जिससे देशमे गडबडी फैलने लगी, और औरगजेब-की आँखे बन्द होनेसे पहिले ही दिल्लीके साम्राज्यमे भयकर अराजकताका प्रारम्भ हो गया।

अपनी-अपनी इच्छानुसार मुगल प्रदेशोपर निरन्तर आक्रमण कर अपनी उग्र छापा-मार युद्ध-शैली द्वारा मराठे सेनानायक शाही सेनाको दक्षिणमे अत्यधिक हानि पहुँचाते थे, वायुकी तरह सर्वव्यापी होते हुए ठगोके समान उन्हे भी कही पकड पाना सर्वथा असम्भव था। "लुटेरोको दण्ड देनेके लिए" शाही सैनिक केन्द्रमे बारम्बार भेजे जानेवाले चलते-फिरते सैनिक दल उधर कूच कर शत्रुओको बिना दबाए ही वापस लौट जाते थे। पतवारसे अलग हुए पानीकी ही तरह मराठे भी मुगल सेनाके वापस लौटते ही पुन एक हो जाते थे और पहिले ही समान फिर धावे करने लग जाते थे। और जब कभी शाही पडाव आगे बढता था या कही ठहर जाता था, तब उससे कोई तीन-चार मीलकी ही दूरीपर पीछे-पीछे सदैव एक बडी भयकारक उन्मत्त मराठा सेना लगी रहती थी।

लगभग बीस वर्ष तक चलनेवाले इस भयकर युद्धमे प्रति वर्ष मुगलोके पक्षके एक लाख सैनिक और अन्य अनुयायी तथा उससे तीन गुने घोडे, हाथी, ऊँट बैल, आदि व्यर्थ ही मर मिटते थे। शाही पडावमे महामारी सदैव बनी रहती थी, जिससे प्रति दिन मरनेवालोकी सख्या बहुत अधिक होती थी। दक्षिणका आर्थिक शोषण चरम सीमाको पहुँच चुका था। खेतोमे न तो वृक्ष थे और न किसी प्रकारकी फसले ही, उनके स्थानपर वहा पशुओ और मनुष्योकी हड्डियाँ ही सर्वत्र बिखरी देख पडती थी। सारा प्रदेश इतना अधिक बरबाद और वीरान हो चुका था कि तीन-चार दिन तक निरन्तर यात्रा करनेपर भी वहाँ आग या दीपक देखनेको नही मिलते थे।' (मनुची)।

५. राजारामके राज्यारोहणके समयके प्रमुख मंत्री और सेनापति

ऐसे भयंकर राष्ट्रीय संकटके समय जब कि शम्भूजीके लड़के कैद हो गए थे और उसके उत्तराधिकारीको मुगलोंने वहांसे भागनेको बाध्य किया, तब उनकी बुद्धि-सामर्थ्यने ही मराठा जनताको बचाया तथा उसकी स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखा, अतएव उस समयके उस राजा-विहीन राज्यके उन नेताओंको पूरी तरह जान लेना अत्यावश्यक हो जाता है। सन् १६९८ ई०के अन्तमें मराठा राज्यमें चार प्रमुख व्यक्ति थे, पेशवा नीलकण्ठ मोरेश्वर पिंगले, आमात्य रामचन्द्र नीलकण्ठ बावडेकर, सचिव शंकरजी मल्हार, और स्वर्गीय प्रधान न्यायाधीश नीराजी रावजीका पुत्र प्रह्लाद। यही प्रह्लाद गोलकुण्डामें मराठा राजदूत रह चुका था। इनके अतिरिक्त तीन और व्यक्ति ऐसे थे, जो पहिले निम्न श्रेणीके उपाश्रित पदों-पर काम कर रहे थे, परन्तु मराठा इतिहासके इस विषम संकट-कालमें अपनी प्रतिभा और साहसके ही बलपर वे मराठा राज्यके सर्वोच्च पदा-धिकारी तथा मराठा जनताके लोकमान्य नेता बननेमें सफल हुए। वे थे, सेनापति पदके लिए प्रतिद्वन्द्वी धना जादव और सन्ताजी घोरपड़े, तथा परशुराम त्रिम्बक जो अन्तमें प्रतिनिधि पदपर पहुँचकर सन् १७०१में राज्यका अभिभावक बना।

आमात्य रामचन्द्रने राजारामको सलाह दी थी कि जब उसके अन्य अधिकारी मुगलोंको दक्षिणी प्रायद्वीपके पश्चिमी भागमें उलझाए रखेंगे तब मराठोंके एक दलको लेकर पूर्वी कर्नाटकमें अपनी कार्यवाही प्रारम्भ कर देना चतुराईपूर्ण सैनिक चाल होगी, क्योंकि इससे मुगल सेनाको अपना ध्यान दो तरफ बांटनेको बाध्य होना पड़ेगा।

भावी कार्यक्रमकी योजना इस प्रकार तय की गई। पूर्वी प्रदेशमें शत्रुका सामना करनेके लिए राजारामको सकुशल जिंजी पहुँचा देना था। पुनः उसे 'हुकूमत-पनाह' अर्थात् सर्वमर्यादी नई उपाधि देकर अपने स्व-राष्ट्रीय प्रदेशका सारा शासन आमात्य रामचन्द्र नीलकण्ठ बावडेकरको सौंपा गया, तथा सचिव शंकरजी मल्हार और कुछ अन्य अधिकारी उसकी सहायताके लिए नियुक्त किए गए। पहिले विशालगढ़को तथा बादमें सातारेको उसका प्रधान केन्द्र-स्थान नियत किया गया। स्वराष्ट्रीय प्रदेशोंके सारे अधिकारियों तथा सेनानायकोंके लिए यह आवश्यक था कि सब आमात्य रामचन्द्रके आदेश लें और उसका आदेश पालन कर मानो वही राजा

राजा था। शासन करने तथा संगठन स्थापित करनेकी रामचन्द्रमें जन्म-जात प्रतिभा थी। सारे सुयोग्य सहकारियोंको उसने अपने पास एकत्रित कर लिया, और उसके निर्देशनमें परस्पर-विरोधी, झगडालू, छापा-मार मराठे सेनानायक भी मिलजुलकर यह कार्य करने लगे।

१ नवम्बर, १६८९को जिंजी पहुँचनेपर राजारामने हरजी महाडिककी विधवा एवं पुत्रके न चाहनेपर भी उनके पाससे सारी शासन-सत्ता अपने हाथोंमें ले ली, और घोर दारिद्र्यके होते हुए भी अपने पूरे राजदरबारका संगठन कर एक स्वाधीन राजाके समान वह वहाँ शासन करने लगा। पेशवा नीलकण्ठ मोरेश्वर पिंगले अपने स्वामीके साथ जिंजी पहुँचा था, किन्तु वहाँ सर्वोच्च सत्ता उसके हाथमें न रही। वहाँ प्रह्लाद नीराजी राजारामका प्रमुख सलाहकार बना तथा उसे राज्याविनायक 'प्रतिनिधि'-की उपाधि देकर राज्य-शासनके भी सर्वोच्च अधिकार सौंप दिए गए। यों उसका यह पद 'अष्ट प्रधान' मन्त्री-मण्डलसे विभिन्न तथा उनसे श्रेष्ठ था।

६. सन १६८९ ई०में औरंगजेबकी नीति तथा उसकी सफलताएँ

राजाराम महाराष्ट्रसे भागा उससे पहिले ही औरंगजेबने बहुतसे मराठा किले जीत लिए थे, और दूसरोंको भी बलपूर्वक या रिश्वत देकर बड़ी ही शीघ्रताके साथ जीतता जा रहा था। उत्तरी सीमान्तपर २१ फरवरी, १६८८को सोल्हेरका किला और ८ जनवरी, १६८९को त्रिम्बक मुगलोंने जीत लिए, मध्यमें नवम्बर, १६८८में सिंहगढ तथा १६८९में राजगढपर उनका अधिकार हो गया, और वह वर्ष समाप्त होनेसे पहिले ही रायगढ तथा पन्हाला भी जीत लिए जानेवाले थे, और उत्तरी कोंकणमें औरंगजेबके सुयोग्य सेनानायक मातबरखाने बहुतसे स्थानोंपर आधिपत्य जमा लिया था। यद्यपि मध्य तथा दक्षिणी कोंकणके भीतरी प्रदेशोंपर तब भी मराठोंका अधिकार था, किन्तु चाल बन्दरगाह मराठोंके अधिकारसे छिन जाने अपने द्वीप-केन्द्र उन्दरीके मराठों द्वारा खाली किए जाने तथा अपने नाविक बेड़ेके केन्द्रको घेरिया या विजयदुर्गसे दूर दाभोलमें ले जानेके बाद कोंकणके इस समुद्री तटपर मुगलोंका ही शासन हो गया था। सन् १६८९में मराठोंके और भी कई किले बड़ी ही सरलतासे औरंगजेबके हाथ आ गए।

७. मराठोंका पुनरुत्थान; मई, १६९०में रुस्तमखाँका कैद होना; पन्हालाका घेरा

अपने स्वर्गीय राजाके दारुण अन्तके फलस्वरूप मराठोंको जो धक्का लगा था, सन् १६९० तक उनका वह दुष्प्रभाव धीरे-धीरे दूर होने लगा, और मराठोंमें पुनरुत्थानके चिन्ह देख पड़ने लगे। २५ मई, १६९०को उन्होंने अपनी पहली महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की। सताराके किलेको किस प्रकार जीतकर शाही अधिकारमें लिया जावे, यह निश्चित करनेके लिए अपने कुटुम्ब तथा सेनाके साथ उस समय मुगल सेनापति रुस्तमखाँ उसके आसपास चक्कर लगा रहा था। तब रामचन्द्र, शंकराजी, सन्ता और धना, मराठा नेता मिलकर एक साथ उसपर टूट पड़े। कई घाव लगनेके बाद रुस्तम अपने हाथी परसे नीचे गिर पड़ा, तब मराठे उसे उठाकर ले गए और कैद कर लिया। कोई डेढ़ हजार मुगल उस दिन खेत रहे। सतारा किलेका मराठा सेनानायक भी अब बाहर निकला और रुस्तमखाँके कुटुम्बको पकड़कर किलेमें ले गया। इसके अतिरिक्त चार हजार घोड़े, आठ हाथी, और रुस्तमखाँका सारा पड़ाव तथा उसका सारा माल-असबाब मराठोंके हाथ लगा। सोलह दिनके बाद स्वयं ही एक लाख रुपए देनेका वादाकर रुस्तमखाँ वहांसे छूट सका। तब इसी वर्ष (१६९०) रामचन्द्र और शंकराजीने प्रतापगढ़, राजगढ़ और तोरणाके मोर्चेबन्द किलोंको वापस छीन लिया। इधर रायगढ़का किला मुगलोंके अधिकारमें चले जानेके बाद पन्हाला किलेके दुर्गरक्षक इतने हताश हो गए थे कि सितम्बर, १६८९के लगभग उन्होंने वह किला मुगलोंको सौंप दिया। किन्तु उस किलेके मुगल दुर्गरक्षकोंने उस किलेकी सुरक्षामें इतनी बेपरवाही की कि परशुरामके नेतृत्वमें एक मराठा सेनाने अगस्त, १६९२के लगभग अचानक आक्रमण कर उस किलेको वापस छीन लिया। अक्तूबर, १६९२में शाहजादे मुइज्जुद्दीनने पुनः पन्हालाका घेरा डाला, किन्तु सन् १६९४ ई० तक वहां डटे रहनेपर भी उसे कोई सफलता नहीं मिली।

मई, १६९०में रुस्तमखाँकी पराजयपूर्ण दुर्घटनाके बाद औरंगजेबको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि उसकी सतारा विजयके सम्पूर्ण अधिकार कर लिया जावे। अतएव सताराके २४, और उसके पूर्वमें स्थित मसूर नामक स्थानका थानेदार नियुक्त कर सुरक्षा व्यवस्था शाही दफ्तरने

सर्सैन्य भेजा गया। शत्रुने लुत्फुल्लाखाँपर भी आक्रमण किया था, किन्तु उसने उन्हे बुरी तरह हराकर मार भगाया।

सन् १६९०के अन्त तक कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना नही घटी, और मुगलोके कुछ मराठा सहकारी, नीमा सिंधिया, माणकोजी पाँढरे और नागोजी माने अपने-अपने सैनिकोको लेकर जिजीमे राजारामके साथ जा मिले।

सन् १६९२मे मराठोके उद्योग पुन प्रारम्भ हो गए, और कई क्षेत्रोमे उन्हे विशेष महत्त्वपूर्ण सफलताएँ भी मिली, जिनमे मुगलोके अधिकारसे मराठोका पन्हालाका किला वापस छीन लेना उल्लेखनीय है। सताराके उत्तर-पूर्वमे महादेवकी पहाडीपर सन्ताजी घोरपडेका अड्डा था और अपने इसी आश्रय-स्थानसे निकलकर वह पूर्वमे बीजापुरके विस्तृत मैदानोमे दूर-दूर तक बडी ही तेजीके साथ आक्रमण करता था। बडी-बडी सेनाएँ लेकर सन्ता और धन्ना दोनो ही दिसम्बर माहमे जिजीकी सहायतार्थ मद्रास गए, जिससे इस समय महाराष्ट्रमे कोई श्रेष्ठ सेनानायक एव सेना नही रह गई थी, और कुछ समय तक पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे मुगल शान्तिसे रहे।

८ सताजी घोरपड़े और धन्ना जादवके साथ कशमकश; १६९३–१६९४

सन् १६९३ ई०के पिछले महीनोमे मराठोने पश्चिमी युद्ध-क्षेत्रमे भी अपने उद्योग पुन प्रारम्भ किए। सन्ताजी घोरपडे जिजीसे वापस लौट आया था, और अक्तूबर, १६९३मे वह स्वराष्ट्रीय प्रदेशमे फिर आक्रमण करने लगा। हिम्मतखाने उसका पीछा किया और विक्रमहल्ली गाँवके पास १४ नवम्बरके लगभग सन्ताजी तथा उसके बेरड साथियोको उसने पूर्णतया पराजित किया। तब विभिन्न मुगल सेनापति आपसमे लड बैठे, हमीदुद्दीन और ख्वाजाखाने शत्रुका पीछा करना छोड दिया तथा वे दोनो कृष्णाकी ओर लौट गए। अब शत्रुका पीछा करनेको अकेला हिम्मतखाँ ही रह गया था। तब किसी भी प्रकारके खतरेकी आशका न रह जानेके कारण सन्ताने अपनी सेनाको दो दलोमे बाट दिया, अपने ४,००० सैनिकोको साथ लेकर उसने अमृतरावको बगरपर धावा करनेके लिए भेजा और बाकी रहे ६,००० घुडसवारोको लेकर सन्ता स्वय माल्खेटकी

ओर चला तथा चौथ एकत्रित करने लगा। कई माह तक बारम्बार व्यर्थ ही एक ओरसे दूसरी ओरको कूच करने तथा अव्यवस्थित युद्धोंके बाद भी मुगलोंके हाथ कुछ भी नही लगा।

सन् १६९४ और १६९५के वर्षोंमे यद्यपि दक्षिणके सारे ही पश्चिमी मराठोंके दल लगातार घूमते रहे और बेरडोंका उपद्रव बराबर बना रहा, फिर भी दोनो ही पक्षवाले कोई निश्चित उल्लेखनीय कार्यवाही नही कर पाए। किन्तु सन् १६९५ समाप्त होते-होते सन्ताने दो उच्चकोटिके मुगल सेनापतियो, हिम्मतखाँ और कासिमखाँको हराकर उन्हे मार डाला।

मराठोंका प्रश्न अब एक सीधी-सादी सैनिक समस्या मात्र नही रह गया था, किन्तु एक ओर मुगल साम्राज्य तथा दूसरी ओर दक्षिणकी स्थानीय जनतामे चलनेवाली कशमकशमे दोनो दलोकी क्षमता तथा उनके साधनोकी कडी परीक्षाका वह एक साधन बन गया था।

. .

९. पूर्वी कर्नाटक, उसके विभाग उसका इतिहास

पूर्वी या मद्रासकी ओरका कर्नाटक, बम्बई प्रान्तके कन्नड भाषा-भाषी प्रदेश अथवा पश्चिमी कर्नाटकसे, जिसे इस ग्रन्थमे कनाडा नामसे निर्देश किया है, सर्वथा भिन्न है। पूर्वी कर्नाटकका यह प्रदेश उत्तरमे १५° अक्षांशसे लेकर दक्षिणमे कावेरी नदी तक फैला हुआ है। ईसाकी १७वीं शताब्दीके पिछले अन्तमे यह प्रदेश पलार नदी या वेल्लूरसे मद्रास तक निकाली जानेवाली एक काल्पनिक रेखा द्वारा दो विभिन्न भागोमे विभक्त था। ये दोनो भाग क्रमश हैदराबादी कर्नाटक और बीजापुरी कर्नाटक कहलाते थे, और प्रत्येक भागके पुन दो विभाग थे, एक तो था ऊपरी पठार जो फारसीमे बालाघाट कहलाता था और दूसरा था नीचेका मैदान जिसे पाईंघाट कहते थे। हैदराबादी कर्नाटकके पठारके अन्तर्गत पडते थे, सिद्दौत, गण्डीकोटा, गुत्ती, गरमकोण्डा और कडप्पाके परगने। बीजापुरी पाईंघाट उत्तरमे मद्राससे (१२°३०' अक्षांश उत्तर) लेकर दक्षिणमे तंजोर तक फैला हुआ था। सन् १६७७-७८मे जब शिवाजीने आक्रमण कर इस प्रदेशको जीत लिया, तब उन्होंने जिंजीको राजधानी बनाकर दक्षिणी कर्नाटक जिलेमे मराठा शासन स्थापित किया था। रघुनाथ नारायण हनुमन्तेको अपना प्रतिनिधि बनाकर शिवाजीने अपने इन नये जीते हुए प्रदेशका शासन उन्हे सौंप दिया। राज्यारोहणके कुछ ही समय बाद

जनवरी, १६८१के प्रारम्भमे शम्भूजीने रघुनाथको पदच्युत कर कैद कर दिया और अपने बहनोई हरजी महाडिकको वहाँका शासक बनाकर जिंजी भेजा। हरजीने स्वयको महाराजा घोषित किया और उस प्रदेशकी अतिरिक्त आय उसने कभी अपने स्वामीके पास रायगढ नही भेजी।

अक्तूबर, १६८६मे शम्भूजीने केशो त्रिम्बक पिंगलेको १२,००० घुडसवारोके साथ जिंजी भेजा। यद्यपि बाहरी तौरसे शम्भूजीका उद्देश्य यही था कि पूर्वी कर्नाटककी मराठा सेनाको यो अधिक सशक्त बना दिया जावे, किन्तु पिंगलेको गुप्त आदेश यह दिया गया था कि वह विद्रोही राजा हरजीको पकडकर पदच्युत कर दे तथा शम्भूजीके नामसे जिंजीकी सारी शासन-सत्ता स्वय सम्हाल ले। ११ फरवरी, १६८७को केशो त्रिम्बक जिंजीके पास पहुँचा, परन्तु उसकी सारी आशाओपर पानी फिर गया। जिंजीके किलेको हरजीने अमोघ रूपसे अपने अधिकारमे कर लिया था तथा वहाँकी सारी स्थानीय सेना पूर्णतया उसकी ऐसी आज्ञाकारी बन गई थी कि उसको किसी भी प्रकार फुसलाना सम्भव नही था।

१०. पूर्वी कर्नाटकमें मुगलोंका प्रवेश; १६८७

गोल्कुण्डा जीत लेनेके बाद कुछ समय तक कुतुबशाही अधिकारियोको ही उनके पुराने पदोपर रहने देकर औरगजेबने बुद्धिमत्ताका परिचय दिया। अक्तूबर, १६८७मे इन्ही अधिकारियोने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर उसे अपना सम्राट् घोषित किया।[1] किन्तु कुछ ही समय बाद उसका विचार बदल गया, महाबतखांके स्थानपर रुहुल्लाखाको सूबेदारी दी गई, जनवरी, १६८८मे अली असकरके स्थानपर कासिमखाको नियुक्त कर उसे आदेश दिया गया कि कर्नाटकपर चढाई कर वहा मराठा सेनाके विरुद्ध बडे जोरोसे युद्ध करे।

पालार नदीके उत्तरवाले जिस प्रदेशपर पहिले गोल्कुण्डा राज्यका अधिकार था, और यद्यपि उसने अब मुगल अधीनता स्वीकार कर ली

---

१ "[illegible] अधिकारियोंने [illegible] चक्रके समान [illegible] दुनियां [illegible] [illegible] स्वामीपर [illegible] प्राप्त की गई [illegible] उसने भी [illegible] चढाई।" ([illegible] पृ० [illegible])।

थी, तथापि जहाँ अब तक आवश्यक मुगलोंकी रक्षक सेना नहीं पहुँची थी, उन प्रदेशमें लूट-मार करने तथा जीतकर उन्हें अपने अधिकारमें करनेके लिये हरजीने अपनी ही इच्छासे अपनी सेनाका एक दल वहाँ भेजा। उस प्रदेशके कई किलों तथा कोई एक सौ गाँवोंपर बड़ी ही सरलतासे हरजीका अधिकार हो गया। आक्रमण कर २८ दिसम्बर, १६८७को उसने आर्काट भी ले लिया। उस सारे प्रदेशमें फैलकर मराठे वहाँ सर्वत्र लूट-मार करने और धर्म-भेदका कुछ भी विचार किए बिना ही स्त्री-पुरुष सबपर वे अत्याचार भी करने लगे। मराठोंके उपद्रवोंसे अपने शरीरों और द्रव्यकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे कांजीवरम्के कई बड़े-बड़े ब्राह्मणोंने अपने बाल-बच्चोंको साथ लेकर २७ दिसम्बर, १६८७से १० जनवरी, १६८८ तक मद्रासमें आश्रय लिया। ११ जनवरी, १६८८को मराठे कांजीवरम् जा घुसे, उस नगरको उन्होंने लूटा, वहाँ कोई ५०० मनुष्योंको मार डाला, तथा घरोंको नष्ट कर दिया जिससे भयभीत होकर वहाँके निवासी भाग खड़े हुए। अपने सैनिक दलको लेकर केसो त्रिमल भी इसी [illegible] उद्योगमें लग गया, चिटपट और कावेरीपाकपर अधिकार करनेके बाद जनवरी, १६८८में उसने कांजीवरम्में अपना पड़ाव डाला।

किन्तु कांजीवरम्में मराठोंका आधिपत्य अल्पकालीन ही रहा। किसन [illegible] गोल्कुण्डा राज्यके चार उच्च पदस्थ सेनापतियों, [illegible] यावण्णा नायक, रुस्तमखाँ और मुहम्मद सादिकको औरंगजेबने आदेश दिया कि वे तत्काल कर्नाटकके मैदानमें पहुँचे और वहाँ मुगलोंके सरदारोंकी सहायता करें। ये सारे सेनानायक २५ फरवरी, १६८८को कांजीवरम् पहुँचे। तब तक मराठोंने उस नगरको खाली कर दिया था। मुगल सेनाके हरावलने उनका पीछा किया, उनके साथ युद्ध कर कावेरीपाकको [illegible] लिया तथा वहाँ अपना पड़ाव डाला। उधर [illegible] दक्षिणमें चिटपटमें मराठोंका पड़ाव था। [illegible] सेनाएँ केवल एक-दूसरेकी रखवाली करती [illegible] तक यों ही पड़ी रहीं। सन् १६८९ ई० के [illegible] अब तक वहाँकी अरक्षित जनताको [illegible] और अब उनपर उन्हें [illegible] विभिन्न [illegible] गया। [illegible] हो गया, [illegible]

लग गई, क्योंकि उन्हें अपने बचावके लिए दूसरा कोई स्थान नहीं देख पड़ा।

१९ सितम्बर, १६८९को हरजी महाडिककी मृत्यु हो गई। तदनन्तर हरजीके अल्पवयस्क पुत्रोके नामसे उनकी माता, शिवाजीकी पुत्री अम्बिकाबाई, उस किले तथा प्रान्तपर शासन करती रही।

११. जिंजीमें राजाराम

१ नवम्बर, १६८९को राजारामके जिंजी पहुँचते ही वहाँ एक शान्तिपूर्ण क्रान्ति हो गई। बलात् ग्रहण की गई जिस सत्ता एव स्थानीय स्वाधीनताका उन्होने पिछले आठ वर्षो तक उपभोग किया था, उसे यो छोड देनेको हरजीकी विधवा तथा उसके ब्राह्मण सलाहकार तैयार न थे। (एफ्० मार्टिन की डायरी देखो)। किन्तु राजारामके अधिकारको अस्वीकार करना कदापि सम्भव नही था। अतएव जिंजीकी शासनसत्ता उसके हाथमे आ गई। हरजीके पुत्रको कैद कर दिया गया, और उसके पतिके लम्बे शासन-कालके समयके उस प्रदेशकी आय-व्ययका लेखा दिखलानेके लिए कह कर उस स्वर्गीय शासककी विधवाको रुपया देनेके लिए वाध्य किया गया। राजारामको तीन लाख हूण तथा सन्ताजीको एक लाख हूण देकर उस विधवाको उनके साथ समझौता करना पडा। राजारामके प्रमुख सलाहकार प्रह्लाद नीराजीको 'प्रतिनिधि' अथवा राज्याधिनायकके एक सर्वथा नये पदपर नियुक्त किया गया। नीलो मोरेश्वर पिंगले तब भी पेशवा कहलाकर नाम-मात्रका प्रधान मन्त्री बना रहा। प्रतिनिधि प्रह्लाद नीराजीने 'राजारामको व्यभिचारपूर्ण जीवनमे रत कर दिया", तथा "गाजा और अफीमके नशेका आदि हो जानेपर वह नवयुवा राजा अब निरन्तर उन्हीके नशेमे चूर रहने लगा"। तब "प्रह्लाद नीराजीने सारी वास्तविक शासन-सत्ता अपने हाथोमे लेकर जिन-जिन ब्राह्मणोने हरजीके शासन-कालमे बहुत कुछ द्रव्य एकत्रित कर लिया था, उसका सारा धन और साज-सामान जब्त कर वह उनसे छीन लिया'।

परन्तु पिछले अधिकारियोसे यो धन वसूल करनेसे ही मराठा राज्य-शासनकी कभी पूरी न हो सकनेवाली आर्थिक कमियोकी समस्या हल होनेवाली न थी। अतएव अब जिंजीके मन्त्रियोने पूर्वी तट तककी युरो-

पीय वणियोंसे रुपया वसूल करनेकी सोची, वहाँके प्रत्येक धनी व्यापारीको ५,००० हूण या केवल १,५०० हूण ही उधार देनेके लिए कहा गया।

अगस्त, १६९०में मुगलोंका सर्वोच्च सेनापति जुल्फिकारखाँ कांजीवरम् आया और सितम्बर माह प्रारम्भ होते-होते वह जिंजीके पास तक जा पहुँचा। अब सारी सैनिक परिस्थिति उलट गई, धावा करनेवाले मराठा सैनिक दलोंको मुगलोंने पीछा मार भगाया, और अब मुगल "राजारामके राज्यपर भी चढ़ाई करनेकी धमकी देने लगे।' तब तो वहाँ घबराहट फैल गई और राजाराम जिंजी छोड़कर कर्नाटकमें और भी दक्षिणकी ओर अपने मित्र तंजोरके राजाके पास ही किसी सुरक्षित आश्रय-स्थानमें जा छिपा।

१२. जिंजीके घेरेका प्रारम्भ

जिंजीके पहाड़ी किलेमें केवल एक ही किला नहीं है। किन्तु वास्तवमें राजगिरि, कृष्णागिरि और चान्द्रायण-दुर्गकी किलेबन्दीवाली तीन पहाड़ियाँ उन किलेमें पड़ती हैं, जिन्हें सुदृढ़ परकोटोंकी पंक्तियाँ परस्परमें सम्बद्ध करती हैं और वो तीन मीलके घेरेका एक असम त्रिकोण सा बन जाता है। "ये पहाड़ियाँ चट्टानी तथा पथरीली हैं और उनपर इतनी बड़ी-बड़ी चट्टानें पड़ी हुई हैं कि उन पहाड़ियोंपर चढ़ना भी असम्भव-सा ही है। इन तीनों ही पहाड़ियोंपर पत्थरकी दीवारके द्वारा प्रत्येक ओर किलेबन्दीकी हुई है।' इन किलेके तीन फाटक हैं।

सितम्बर, १६९०के प्रारम्भमें ही जुल्फिकारखाँ जिंजी पहुँच गया था, किन्तु वहाँ वह उन किलेके सामने पड़ाव डाले केवल बैठा ही रहा। उसकी [illegible] सेनाओंकी इतने किलोंके इस विस्तृत समूहका पूरा-पूरा घेरा डालना जुल्फिकारखाँके लिए सर्वथा असम्भव था, पुनः उन किलोंपर गोलाबारी करनेके लिए उसके पास न तो बड़ी-बड़ी तोपें ही थीं और न पर्याप्त गोला-बारूद ही। किलेको पूरी तरह घेर सकना सम्भव नहीं होनेके कारण उन किलोंमें खाद्य-सामग्रीको पहुँचनेसे रोकना [illegible] उसके लिए सम्भव नहीं था। "मराठोंकी आकस्मिक छापामार टुकड़ियाँ जुल्फिकारखाँको निरन्तर सताने लगीं।' फरवरी १६९१में [illegible] भी [illegible] जिंजी छोड़ गया।

अप्रैलके बाद मुगलोकी सैनिक प्रबलता बडी ही तेजीसे क्षीण होने लगी और उधर निरन्तर आसपास घूमनेवाले मराठा दलोके उद्योगसे जुल्फिकारखॉंके पडावमे धान्य पहुँचना ही बन्द हो गया। अतएव शीघ्र ही सैनिक सहायता भेजनेके लिए उसने औरंगज़ेबसे प्रार्थना की। इस सेनापतिके पिता वजीर असदखॉं और वागिनखेडासे शाहजादे कामबख्श-को एक बडी सेनाके साथ भेजा गया, तथा १६ दिसम्बर, १६९१को वे जिंजी पहुँचे।

यो सन् १६९१ई० सारा बीत गया और फिर भी मुगलोको कोई सफलता नही मिली। अगले वर्ष भर भी मुगल कोई सफलता प्राप्त नही कर सके। सन् १६९२ ई०की वर्षा ऋतुमे मुगल पडावकी जो दशा थी, उसका वर्णन करते हुए एक प्रत्यक्षदर्शीने लिखा था—"घनघोर वर्षा हुई। अनाज बहुत ही महगा था। सैनिकोको कई-कई दिन और राते खाइयोमे ही बितानी पडती थी, जिनसे उन्हे बडी कठिनाइयोका सामना करना पडता था। पडावका सारा ही भाग एक झीलके समान दिखाई पडता था।"

१३. सन्ता घोरपडे और धन्ना जादवका अलिमर्दान और इस्माइलखॉंको पकडना; १६९२

शीत-कालमे तो मुगलोका वहॉं अधिक ठहरना बिलकुल ही असम्भव हो गया था। धन्ना जादव और सन्ता घोरपडेके नेतृत्वमे एक बहुत बडी मराठा सेना दिसम्बर, १६९२मे पूर्वी कर्नाटक पहुँची। जब सन्ताका सैनिक दल कावेरीपाकके पास पहुँचा तब कॉंजीवरम्‌का मुगल फौजदार अलिमर्दानखॉं उसका सामना करनेके लिए आगे बढा, किन्तु उसकी थोडी-सी सेनाको मराठोने सब ओरसे घेरकर, अलिमर्दानखॉंको उन्होने पकड लिया और १३ दिसम्बरको उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली गई। एक लाख हूण देनेपर ही उसको छुटकारा मिला।

धन्नाके नेतृत्वमे मराठा सेनाके दूसरे दलने जिंजीके चारो ओर घेरा डालनेके लिए लगाए गए पडावोपर आक्रमण किया। विभिन्न चौकियो वालोको जुल्फिकारखाने आदेश दिया कि वे प्रधान सेनाके साथ वापस आ मिले। इस्माइलखॉं किलेकी पश्चिमी ओर था, एव वहॉंसे लौटते

समय मराठोंने उसकी राह रोक ली। वह घायल हुआ और शत्रुओंने उसे कैद कर लिया।

१४. मराठोंके साथ शाहजादे कामबख्शके षड्यन्त्र: उसका कैद किया जाना

मराठोंके पुनः क्रियाशील हो उठने तथा आसपासके प्रदेशमें उनकी शक्तिकी प्रबलता होनेके कारण अब जिंजीके बाहर पड़ी हुई मुगल सेना भी सब ओरसे घिर गई, और उनके आपसी झगड़ोंके कारण उनकी परिस्थिति बहुत ही संकटपूर्ण हो गई। शाहजादे कामबख्शने अपने वयोवृद्ध प्रभावशाली अभिभावक वजीर असदखांको रुष्ट कर दिया था, और साथ ही उसने राजारामके साथ गुप्त पत्र-व्यवहार भी प्रारम्भ किया। जुल्फिकारखांको शाहजादेके इस भेदका शीघ्र ही पता चल गया, और उसने शाहजादेको कड़ी निगरानीमें रखनेके लिए सम्राट्की आवश्यक आज्ञा ले ली। दिसम्बर, १६९२में मुगलोंके इस सैनिक पड़ावका शाही दरबारके साथ सारा लगाव टूट गया। तत्काल ही अनेकों भयप्रद गप्पें उठने लगीं और कामबख्शने समझ लिया कि वह स्वयं बहुत ही संकटपूर्ण परिस्थितिमें था। राजारामके साथ समझौता कर मुगल पड़ावसे सकुटुम्ब निकल किलेमें जा पहुँचने तथा तब मराठोंकी सहायतासे दिल्लीके सिंहासनपर अधिकार करनेका प्रयत्न करना ही उसके बचावका एकमात्र उपाय था, इस बातका उसके अनुचरोंने कामबख्शको पक्का विश्वास दिला दिया।

कामबख्शके इस आयोजनकी सूचना असदखांको भी अपने जासूसोंसे मिल गई। शाही सेनाके सारे बड़े सेनापतियोंने एक स्वरसे मांग की कि शाहजादेको कड़ी नजरबन्दीमें रखा जावे तथा मोरचोंको छोड़कर सारी सेना पिछले भागमें ही एकत्रित रहे।

घेरा उठानेकी मोरचोंको छोड़कर वापस लौटते समय मुगल सेनाको भारी नुकसानी उठानी पड़ी। मुगलोंका सैनिक पड़ाव वहांसे कोई चार मील पीछे था। अतएव किलेके दुर्गरक्षक भी बाहर निकल आए और साथ आसपासके स्थानसे आये सैनिक साथियोंके साथ मिलकर उन्होंने मुगल सेनाको चारों ओरसे घेर लिया। उस दिन सन्ध्या होनेके बाद ही कहीं मुगल सैनिक असदखांके पड़ावपर पहुँच पाए।

इधर शाहज़ादेने अपने मूर्ख दरबारियोंके साथ मिलकर यह षड्यन्त्र रचा था कि जब अगली बार वे दोनो सेनापति उससे मिलने आवे तब उन्हे वहाँ ही कैद कर लिया जावे और यो वह वहाँकी सर्वोच्च सत्ताको अपने हाथमे ले ले। किन्तु उसके दूसरे षड्यन्त्रोकी तरह इसका भी भेद खुल गया था। सारी सेनाके बचाव तथा सम्राट्की प्रतिष्ठाको बनाए रखनेके लिए यह अत्यावश्यक हो गया था कि कुछ भी उपद्रव कर सकने-की शाहज़ादेकी शक्तिका पूर्णतया अन्त कर दिया जावे। अतएव काम-बख्शको कैद करनेके लिए जुल्फिकारखाँ और उसके पिता दोनो कामबख्शके डेरेपर गए और कैदी बना कर उसे असदखाँके निजी डेरेमे ले आए जहाँ उसके साथ पूरी भलमनसाहत बरती गई।

सन्ताजी घोरपडे भी अब जिजी आ पहुँचा और जुल्फिकारखाँका विरोध करनेमे उसने अपनी सारी शक्ति और बुद्धि लगा दी। प्रति दिन युद्ध होता था। "शत्रुओकी सख्या २०,०००से भी अधिक थी। इधर उनका सामना करनेका सारा भार जुल्फिकारखाँ और कुछ अन्य मनसब-दारोपर ही पडता था, जिनके साथ केवल २,००० घुडसवार थे।

१८. जुल्फिकारकी सेनामें अकाल तथा उसका जिंजीसे वाण्डिवाशको वापस लौटना

किन्तु अब मुगल सेना चारो ओरसे घिर गई थी। कुछ ही दिनोमे धान्यकी कमी पूर्ण अकालमे परिणत हो गई। "तब जुल्फिकारखाँ अपने सैनिक दलको लेकर वाण्डीवाशसे धान्य लेने चला।" जब ५ जनवरी, १६९३को वह वहाँसे वापस लौट रहा था तब देसूरके पास सन्ताने उसकी राह रोकी। दूसरे दिन मरहठोने पूरे वेगके साथ उसपर हमला किया, किन्तु मुगलोकी ओरसे दलपत अदम्य वीरतासे लडा जिससे विवश होकर मरहठोको पीछे हटना पडा। किन्तु जो खाद्य-सामग्री जुल्फिकारखाँ लाया था वह वैसी बडी सेनाके लिए बहुत ही कम थी। भूखो मरते मुगल सैनिकोकी हालत अधिकाधिक बिगडती जा रही थी।

बिना किसी बाधाके उसे वाण्डिवाश लौटने देनेके लिए राजारामको बहुतसा धन रिश्वतमे देकर उसके साथ समझौता करनेके लिए अब असदखाने गुप्त रूपसे बातचीत शुरू की। राजाराम भी इसपर राजी हो गया। उधर दूसरी ओर दलपत जुल्फिकारसे आग्रह कर रहा था कि

वह वहाँसे वापस न लौटे। किन्तु जुल्फिकारखाँके तोपखानेवाले अपना सारा सामान लादकर पड़ावसे वाण्डिवाशके लिए चल पड़े थे। अब शाहजादेके साथ दोपहरमें वहाँसे रवाना होनेके सिवाय जुल्फिकारखाँके लिए दूसरा कोई चारा नहीं रह गया था। जब मुगल सेना पड़ावसे निकली तब कोई एक हजार मराठे घुड़सवार उनके पीछे लग गए और उन्होंने मुगल सैनिकोंका सारा माल-असबाब लूट लिया। तीन दिनमें जाकर कहीं २२ या २३ जनवरी, १६९३को मुगल वाण्डिवाश पहुँचे। दस दिनके बाद सूचना मिली कि अलीमर्दानखाँके स्थानपर नियुक्त कांजीवरम्का नया फौजदार कासिमखाँ कड़प्पासे बहुतसी सामग्री लेकर एक बड़ी सेनाके साथ वहाँ आ रहा था। सन्ता घोरपड़ेने राहमें उसको रोकनेका प्रयत्न किया। उसके आक्रमण करनेपर कासिमखाँ कांजीवरम्के बड़े मन्दिरकी चहारदीवारीमें जा छिपा। दूसरे दिन जुल्फिकारखाँ उसकी मददपर आ पहुँचा, उसने मराठोंको मार भगाया, और कासिमखाँ-को साथ लेकर ७ फरवरीको वह वापस वाण्डिवाशको लौटा। अब पुनः मुगल पड़ावमें धान्य बहुतायतसे मिलने लगा तथा औरंगजेबके जीवित ही नहीं सकुशल भी होनेके समाचार मिलनेपर सैनिकोंकी पूरी तसल्ली हो गई। फरवरीसे लेकर मई, १६९३ तक चार महीनेके लिए जुल्फिकारखाँने वाण्डिवाशमें पड़ाव किया। कामबख्शको साथ लेकर असदखाँ ११ जूनके दिन शाही पड़ावमें पहुँचा जो तब गलगलेमें था। उसकी बहिन जीनतुन्निसाके बीच-बचाव करनेपर अन्तःपुरमें ही राज-बन्द अपने पिताके सामने उपस्थित हो सका।

१६. सन् १६९३-९८ ई०में कर्नाटकमें सैनिक हलचलें

मद्राससे लेकर दक्षिणमें पार्टो नोवो तकका पूर्वी कर्नाटक प्रदेश उस समय तीन विभिन्न सत्ताओंमें बँटा हुआ था, जिनमें आपसी रस्साकस्सी प्रायः चलती ही रहती थी।

ये तीन विभिन्न शक्तियाँ थीं :—सर्व प्रथम तो कर्नाटकके स्थानीय हिन्दू शासक तथा विजयनगर राज्यके वे अधिकारी जिन्हें बीजापुर और गोलकुण्डा राज्योंकी विजयी सेनाएँ भी पूरी तरह नहीं दबा सकी थीं, दूसरे, नये नष्ट हुए बीजापुर और गोलकुण्डा राज्योंके वे अधिकारी जो उनके नये मुगल शासकोंकी अधीनता स्वीकार करनेको तैयार न थे, और तीसरे शिवाजी तथा शम्भाजीके विजयोंके प्रतिनिधि मराठे आक-

मणकारी। याचप्पा नायक इनमेसे पहले वर्गका था। उसके पूर्वजोने वारंगलके राजा प्रतापरुद्रके मन्त्रियोसे वेलूरसे २६ मील पूर्वमे स्थित सतगढका किला प्राप्त किया था और वह स्वय भी एक बार गोलकुण्डाके स्थानीय सेहबन्दी सैनिकोका नायक रह चुका था। जब राजाराम जिंजी पहुँचा तो याचप्पा नायक उसके साथ आ मिला। मार्च, १६९३मे राजारामको छोडकर उसने पुन सतगढपर अधिकार कर लिया और उससे पूर्वके प्रदेशको अपने आधिपत्यमे लेने लगा। वह वर्ष समाप्त होते-होते उसे छ हजारीका मनसब दिलवाकर जुल्फिकारखाँने याचप्पाको अपने पक्षमे कर लिया।

उधर मराठा सेनानायकोमे आपसी कलह शुरू हो गया, सन्ताजीका स्वभाव असहनीय प्रमाणित हुआ, और क्रुद्ध होकर वह महाराष्ट्रको लौट गया, तब राजारामने सन्ताजीके स्थानपर धन्नाको सेनापति नियुक्त किया।

फरवरी, १६९४मे जुल्फिकारखाँ दक्षिणी अर्काट जिलेको जीतनेके लिए निकला। उसके अधीन दलपतके बुन्देलोने पहिले ही पहुँचकर पाण्डिचेरीसे १८ मील उत्तरमे स्थित पेरुमुक्कल किलेपर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। तब जुल्फिकारखाँ पूर्वी तटपर दक्षिणकी ओर बढा और तजोरके पास जा पहुँचा। तजोर राज्यका पडोसी एव उसका सदाका शत्रु त्रिचनापल्लीका नायक पहिले ही मुगलोसे मिल गया था, एव अब तजोरके महाराजा दूसरे शाहजीने जुल्फिकारखाँका विरोध करना सर्वथा निरर्थक समझा। इसलिए शाहजीको भी मुगलोके सामने झुकना पडा। २९ मईको शाहजीने एक पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए, जिसके द्वारा उसने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर भविष्यमे एक स्वामिभक्त सामन्तकी तरह सम्राट्के आदेशोका पालन करने, राजारामको किसी भी तरहकी सहायता न देने, पुराना बाकी प्रति वर्ष तीस लाख रुपये करके रूपमे देते रहने, और पालमकोटा तिनानूर एव तुगानूरके किलोके साथ ही उसके अधीन शाराराके परगने तथा अन्य कई स्थान मुगलोको सौंप देनेका वादा किया था। सितम्बर मासमे एक दरबारके समय जुल्फिकारखाने एकाएक याचप्पाको बन्द करवाकर राजद्रोहके अपराधमे उसका सिर कटवा डाला।

---

१ मनूचीने याचप्पाकी पत्नियो और बच्चोके आत्मघातका बहुत ही दारुण

१७. सन् १६९५ ई०में जुल्फ़िक़ारख़ाँके उद्योग

सन् १६९४ ई०के अन्तमें जुल्फिकारखाँने पुनः जिंजीका घेरा डाला, किन्तु यह तो औरंगजेबको धोखा देनेका एक दिखावा-मात्र था। उस प्रदेशमें सब हीको यह मालूम था कि जुल्फिकारखाँने मराठोंके साथ गुप्त रूपसे मेल कर लिया था।

१८. सन् १६९६ ई०में ज़ुल्फ़िक़ारख़ाँकी सैनिक हलचल

दिसम्बर, १६९५के अन्तमें धन्ना जादव वेलूरके पास पहुँचा, तब जुल्फिकारखाँने एकाएक घेरा उठा लिया, अपने पड़ाव तथा कुटुम्बको उसने अर्काट भेज दिया और वह स्वयं युद्धके लिए तैयार हुआ। मराठोंके दल उस प्रदेशके बहुतसे भागोंमें फैल गए, तब तक शाही सेनाकी संख्या कम हो जानेसे वे इतने अधिक स्थानोंकी मराठोंके हाथोंसे रक्षा नहीं कर पाए। बुद्धिमानी कर जुल्फिकारखाँने अपनी सेनाको एक ही स्थानपर केन्द्रित रखा। परन्तु द्रव्यके पूर्ण अभावके कारण १६९६ ई०के सारे वर्ष भर उसके सारे आयोजनोंमें बाधा ही पड़ती रही। मुगल सेनाकी शक्ति तब भी बहुत कम थी, एवं केवल अर्काटके जिलेके बचावके लिए ही वह प्रयत्नशील रहा। मराठे तो सर्वत्र स्वच्छन्द उसके चारों ओर मंडराते रहे।

१९. जिंजीका घेरा दोबारा लगनेपर उस किलेका पतन

नवम्बर, १६९७के प्रारम्भमें जुल्फिकारखाँने वहीं ही [illegible] साथ पुनः जिंजीका घेरा डाला। उसकी [illegible] सामने यह [illegible] हो उठा,

विस्तृत सविस्तार [illegible] है। इसका यह भी कहना है कि [illegible] पुत्र [illegible] जुल्फिकारखाँके [illegible] दो [illegible] कि [illegible] मराठोंके [illegible] जिंजीके [illegible] साल [illegible] इस किलेसे [illegible] मराठोंने [illegible] लिया था।

(भाग ३, पृ० ९३१–२)।

शैतानदरी दरवाजेके सामने रामसिह हाडाको नियुक्त किया, तथा जिंजीसे आधे मील दक्षिणमें चिक्कली-दुर्गके विरुद्ध दाऊदखाँको भेजा। उस किलेके बहुत ही पास पहुँच निडर हो आक्रमण कर दाऊदखाँने एक ही दिनमें चिक्कली-दुर्गको जीत लिया, तब वह वापस जिंजी ही चला आया और दक्षिणी दुर्ग चान्द्रायणगढके सामने खाइयोंमें डट गया। यदि जुल्फिकारखाँ सचमुच चाहता तो वह उस सारे किलेको दूसरे ही दिन जीत सकता था। किन्तु अपनी सारी सेनाको एकत्र रखने, अधिकाधिक द्रव्य पाते रहने और किसी नए युद्ध क्षेत्रसे भेजे जानेपर वहाँके सैनिक जीवनकी सारी कठिनाइयोंसे बचनेके लिए ही इस घेरेको अधिक समय तक चलाए जाना जुल्फिकारखाँकी गुप्त नीति थी।[१] उसने मराठोंको जता दिया कि उसके आक्रमण केवल दिखावेके लिए थे, और यों यह घेरा अगले दो महीनों तक चलता ही गया।

अन्तमें औरंगजेब द्वारा किए जानेवाले अपमान और दण्डसे बचनेके लिए किलेका जीतना जुल्फिकारखाँके लिए अनिवार्य हो गया। समय रहते पहिले ही राजारामको सूचना मिल गई थी एवं अपने प्रधान सरदारोंके साथ जिंजीसे निकलकर वह वेलूर जा पहुँचा, परन्तु अपने कुटुम्बको राजारामने जिंजीमें ही छोड दिया था। तब जुल्फिकारखाँने हमला करनेका आदेश दिया। कृष्णागिरिकी उत्तरी दीवालोंपर चढकर दलपतराव अन्दर जा पहुँचा और घमासान युद्धके बाद उसने बाहरी किला जीत लिया। तब दुर्ग-रक्षक काला-कोट कहे जानेवाले भीतरी किलेमें जाने लगे किन्तु इन मराठा सैनिकोंके साथ ही साथ दलपतरावके बुन्देले भी

---

१ ऊपरी दिखावा बनाए रखनेके लिए यह अत्यावश्यक था कि प्राय किए गए आक्रमणों तथा शत्रु द्वारा उनके पीछे हटाए जानेकी सूचना समय-समय-पर सम्राट्के पास भेजी जावें। दूसरी ओर जुल्फिकारखाँके बाद मुगल सेनाका द्वितीय प्रधान सेनापति दाऊदखाँ सर्वश्रेष्ठ युरोपीय मदिरा खूब पीता था और मदोन्मत्त हो [illegible] आवेशमें आकर वह सदैव काफिरोंका सर्वनाश करनेका दावा करता था। ऐसे अवसरोंके लिए किए गए दाऊदखाँके प्रस्ताव स्वीकार करना [illegible] अनिवार्य हो जाता था, किन्तु ऐसे आक्रमण कब [illegible] सूचना वह शत्रुओंके पास पहिले ही पहुँचा देता था। [illegible] बार प्रत्येक बार दाऊदखाँकी सेनाको विवश हो पीछे हटना पड़ता था। [illegible], भाग २, पृ० [illegible]।

कालाकोटमें घुस गए और उसपर भी अधिकार कर लिया। तब बाकी बचे मराठोंने जिंजीके सबसे ऊँचे किले राजगिरिमें आश्रय लिया। उधर दाऊदखाँ भी चान्द्रायणगढ़में जा पहुँचा और नगरमेंसे या जिंजी किलेके भीतरी नीचे मैदानमें होकर वह कृष्णागिरिकी ओर बढ़ा। नगर-निवासी कृष्णागिरिकी चोटीकी ओर भागे, परन्तु वहाँ भी बचावका कोई उपाय न देखकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया। ८ जनवरी, १६९८को सैकड़ों घोड़े और ऊँट तथा बहुतसा माल-असबाब लूटमें मुगलोंके हाथ लगा। राजारामका कुटुम्ब राजगिरिमें था एवं अब राजगिरिको घेरा। उनकी परिस्थिति निराशापूर्ण हो गई थी। राजगिरिके नलेकी खाईको दुर्गके पुलकी सहायतासे पार कर रामसिंह राजा राजगिरिके सिरेपर जा पहुँचा। मराठा राजघरानेको सुरक्षाका आश्वासन दिया गया, तब राजारामकी चार पत्नियां, तीन पुत्र और दो लड़कियां किलेसे बाहर निकलीं और उन्हें आदरपूर्वक कैदमें रख दिया गया। राजारामकी एक पत्नीने तो किलेकी चोटीपरसे नीचे गिरकर आत्महत्या कर ली और दो सगार मुगलोंकी कैदमें बंदी बन गईं। कुल मिलाकर कोई ८,००० मनुष्य, स्त्रियाँ और बच्चे तब किलेमें पाए गए, किन्तु उनमें सैनिक बहुत ही थोड़े थे।

जुल्फिकारखांने जिंजीसे गम्मकोण्डा तक राजारामका पीछा किया। किन्तु मराठा राजा बहुत पहिले ही वहांसे रवाना हो चुका था, अत वह उसको नहीं पा सका और राजाराम फरवरी, १६९८में सकुशल विशालगढ़ पहुँच गया। जिंजीके इतने लम्बे घेरे द्वारा सम्राट् जिस उद्देश्यको पूर्ण करना चाहता था, वह विफल ही रहा। चिड़िया पिंजरेसे निकलकर उड़ गई थी।

२०. सन्ता घोरपड़ेके हाथों कासिमखांकी पराजय तथा दुडेरीमें कासिमखांकी मृत्यु: १६९५

सन्ता घोरपड़े अब तक बीजापुर जिलेमें लूटमार कर रहा था। उसको पास लूटका बहुत अधिक धन प्राप्त हो गया था, अतः दक्षिण-पश्चिमी मैसूर प्रदेशमें स्थित अपनी जागीरोंमें उस विशाल धनराशिको ले जानेके लिए नवम्बर, १६९५में सन्ता चीतलदुर्गकी ओर चला।

तब औरंगजेबके प्रधान सेनानायकोंमें [illegible]

२२. सन् १६९७ ई० मुगलोंके सैनिक आयोजन

मार्च, १६९७मे सन्ता घोरपडे पूर्वी समुद्री तटसे वापस सतारा जिलेको लौट आया, तव उसका सामना करनेके लिए फिरोजजगको भेजा गया। किन्तु तव मराठा सेनापतियोमे आपसी युद्ध छिड गया था, जिससे सन् १६९७के पहिले छ महीनोमे मराठोकी शक्ति वहुत घट गई थी।

२३. सता घोरपड़े और धन्ना जादवमें आपसी युद्ध : सताकी मृत्यु

प्रथम श्रेणीके इन दो मुगल सेनापतियोपर पश्चिममे प्राप्त सुदूर तक सुविख्यात अपनी विजयोमे गर्वित सन्ता मार्च, १६९६मे राजारामके पास जिजी पहुँचा। उसके अहकार, उद्धत स्वभाव और अवज्ञाके कारण जिजीका राजदरवार उसके प्रति क्षुव्ध हो गया और अन्तने मई, १६९६मे काँजीवरम्‌मे खुल्लमखुल्ला विरोध प्रारम्भ हो गया। धन्ना और अमृतराव निम्बालकरको अपने हरोलमे रखकर राजारामने अपने इस दुर्दम सेनानायकपर आक्रमण किया। परन्तु इस वार भी सन्ताकी सैनिक चतुरता विजयी हुई, पराजित होकर धन्ना सीधा पश्चिमी भारतमे अपने घरको लौट गया। अमृतराव युद्धमे काम आया।

कई महीनो तक पूर्वी कर्नाटकमे चक्कर लगानेके वाद मार्च, १६९७मे सन्ता वापस अपने ही प्रदेशको लौट आया। अव यहाँ धन्नाके साथ उसका गृह-युद्ध प्रारम्भ हुआ और अन्य सारे मराठे सेनानायक एक या दूसरेके पक्षमे हो गए। मार्च, १६९७मे सतारा जिलेमे युद्ध हुआ। किन्तु अव भाग्य सन्ताका साथ छोड चुका था। सन्ताकी कडाई तथा उसके अपमानपूर्ण व्यवहारसे उसके सारे ही सेनानायक उससे रुष्ट हो गए थे, अतएव इस युद्धमे जो घायल या मारे नही गए, वे सव सन्ताका साथ छोडकर धन्नासे जा मिले। सेनाके यो छोड देनेपर अपना सव-कुछ गवाँ सन्ता कुछ इने-गिने अनुचरोके साथ युद्ध क्षेत्रसे नागोजी मानेके निवास-स्थान म्हासवडको भागा। इसी नागोजीके साले अमृतरावको पहिले सन्ताने मार डाला था। नागोजीने सन्ताको कुछ दिन आश्रय और भोजन दिया, तव उसे वहाँसे सकुशल विदा कर दिया। किन्तु नागोजीकी पत्नी राधावाई प्रतिहिंसाकी प्यासी थी, एव उसने अपने एकमात्र जीवित भाईको उसके पीछे-पीछे भेजा। तेजीसे कूच करते रहनेके कारण थक कर जव सतारा जिलेमे शम्भू महादेव पहाडीके पासवाले नालेमे सन्ता

नहा रहा था, तब उसका पीछा करनेवालोंने उसको जा दबाया। म्हासवड़के उस दलने इस विवशतापूर्ण अवस्थामें उसे पकड़कर उसका सिर काट डाला (जून, १६९७)।

एक विस्तृत क्षेत्रमें दूर-दूर तक फैले हुए, बड़े-बड़े सैनिक दलोंका कुशलतापूर्वक संचालन करने, शत्रुके बदलते हुए आयोजनों तथा परिस्थितियोंके अनुसार अपनी युद्ध-चालोंमें भी तत्परताके साथ फेरफार कर उनसे पूरा-पूरा लाभ उठाने तथा अपने विभिन्न सैनिक दलोंकी गतिविधिको सामूहिक रूपसे सुसंगठित करनेकी सन्ताजीमें असाधारण जन्मजात प्रतिभा थी। सन्ताकी सैनिक चालोंकी सारी सफलता प्रधानतया उसकी सेनाकी तीव्र गति और एक मिनटका भी अन्तर पड़े बिना ठीक निश्चित समयपर ही उसके सहकारियों द्वारा उसके आदेशोंके पालनपर ही निर्भर रहती थी। अतएव अपने अधिकारियों द्वारा उसकी आज्ञाओंके निर्विवाद पालनके लिए उसका विशेष आग्रह रहता था, और बहुत ही कठोर दण्डों द्वारा वह अपनी सेनामें कड़ा अनुशासन बनाए रखता था। अतएव "बहुतसे मराठा सरदारोंका उसका शत्रु बन जाना" स्वाभाविक ही था।

दूसरी ओर धनाकी तुलनामें सन्ता सभ्यता तथा उदारतासे पूर्णतया विहीन निरा असभ्य जंगली ही था। अपनी वासनाओंका नियन्त्रण करना या सुदूर भविष्यकी कुछ भी सोचना उसके लिए असम्भव था। जिन व्यक्तियोंसे भी वह मिलता था उनके साथ बहुत ही असादरपूर्वक बर्ताव करनेमें उसे विशेष आनन्द आता था, और इस बातमें वह राजारामका भी अपवाद नहीं करता था। वह न तो किसीके प्रति दया दिखाता था और न वह स्वयं ही किसीसे पानेकी अपेक्षा करता था। किसी दूसरेके साथ सहयोग करना उसके लिए स्वभावतया ही सर्वथा असम्भव था, और अपनी जातिकी आवश्यकताओंके लिए अपनी इच्छाको उत्सर्जित कर देनेके स्वदेशानुरागका उसमें अभाव ही था। मराठोंकी राजनैतिक [illegible] प्रवृत्ति या औरंगजेबकी चालोंसे मराठा परिस्थितिपर भी सन्ताका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। [illegible] आकाशमें सहसा प्रकाश करके उल्काकी तरह वह शीघ्र ही विलीन हो गया।

२४. राजारामका महाराष्ट्रको लौटना तथा सन् १६९८-९९में उसकी हलचलें

जींजीसे भाग आ जानेके [illegible] जनवरी १६९[illegible]को [illegible] और [illegible]-

पुरीके मुगल पडावोके बह जाने तथा उसके फलस्वरूप सर्वत्र कष्ट और बरबादी होनेके अतिरिक्त सन् १६९७के पिछले छ महीनोमे कोई महत्त्व-पूर्ण घटना नही हुई। किन्तु अगली जनवरीमे जिजी मुगलोके अधिकारमे आ गया। वहाँसे भागकर दूसरे महीनेमे राजाराम विशालगढ पहुँचा।

सन् १६९९ई०के प्रारम्भमे राजाराम कोकणकी देखभालके लिए दौरे-पर निकला, और सारे किलोकी निगरानी कर जूनके अन्तमे वह वापस सताराको लौट आया। खानदेश और बरारमे होकर एक विस्तृत आक्र-मण करनेका आयोजन बना २६ अक्तूबरके लगभग उसने सातारासे कूच किया।

सताराके किलेका घेरा डालनेके औरगजेबके निश्चयके भेदका पता अवश्य ही राजारामको लग गया होगा, क्योकि १९ अक्तूबरको औरग-जेबके इस्लामपुरीसे रवाना होते ही राजारामने अपने कुटुम्बको सतारासे खेलना पहुँचा दिया और सम्राट्के हाथोमे न पडनेके उद्देश्यसे ही वह स्वय भी २६ अक्तूबरको वहाँसे निकल पडा।

इस विरोधी सेनाका पीछा कर उसे हटानेके लिए तत्काल ही औरग-जेबने बेदारबख्तको अत्यावश्यक आदेश भिजवाया। परेण्डाके किलेसे चार मील आगे बेदारबख्तकी मराठोसे मुठभेड हो गई। एक भयकर युद्धके बाद १३ या १४ नवम्बरको उसने मराठोकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर अहमदनगरकी ओर उसे मार भगाया। २६ दिसम्बरको सूचना मिली कि सतारा किलेके नीचे शाही पडावसे कोई ३० मीलकी दूरीपर राजा-रामने विश्राम लिया था और तब वह विशालगढ जानेकी सोच रहा था। बरारपर मराठा राजाका वह आक्रमण प्रारम्भ होनेसे पहिले ही रोक दिया गया। किन्तु कृष्णा सावन्तके नेतृत्वमे एक मराठा दल धामुनीके पास कई स्थानोमे लूटमार कर वापस लौट आया। मराठा सेनाके नर्मदा पार करनेका यह सर्वप्रथम अवसर था।

२५. राजारामकी मृत्यु; ताराबाईकी नीति

सम्भवत इस चढाईकी कठिनाइयो तथा मुगलोके निरन्तर पीछा करनेके कारण ही राजारामको ज्वर हो गया था, जिससे २ मार्च, १७०० को सिहगढमे राजारामकी मृत्यु हो गई। उसका कुटुम्ब तब विशालगढमे था। धन्ना जादवकी सहायतासे राजारामके मन्त्रियोने तब तत्काल ही

राजारामके स्नेहभाजन उनके अनौरस पुत्र कर्णको गद्दी पर बैठाया, किन्तु शीतलासे पीड़ित हो वह भी तीन ही सप्ताह बाद मर गया। तब राजाराम-की स्त्री ताराबाईसे उत्पन्न उनके औरस पुत्रको पश्चिमी राज्यके राज्याभिभावक रामचन्द्रकी सहायतासे शिवाजी तृतीयके नामसे गद्दीपर बैठाया। अब राजारामकी दोनों जीवित विधवाओं, शिवाजी तृतीयकी माता ताराबाई तथा शम्भूजी द्वितीयकी जननी राजसबाईने अपने पुत्रका पक्ष लेकर गृह-युद्ध छेड़ दिया जिसमें विभिन्न अधिकारी तथा सेनानायक एक या दूसरे पक्षका समर्थन करने लगे। किन्तु अपनी योग्यता तथा साहसके कारण उनमें ज्येष्ठ पत्नी ताराबाईको ही राज्यमें सर्वोच्च सत्ता प्राप्त हो गई।

अपने पतिकी मृत्युके समाचार मालूम होते ही ताराबाईने औरंगजेब-की अधीनता स्वीकार करनेका प्रस्ताव किया, तथा राजारामके औरस पुत्रको ७ हजारी मनसब और दक्षिणमें देशमुखीके अधिकार दिए जानेकी मांग की, एवं उसके बदले ७ किले मुगलोंको सौंप देने और दक्षिणमें नियुक्त शाही प्रतिनिधिकी सेवामें ५,००० सैनिकोंका दल भेजते रहनेका भी सुझाव रखा। औरंगजेबने इन प्रस्तावको ठुकरा दिया। तब सन्धिके अन्तमें रामचन्द्रका प्रतिनिधि रामाजी पण्डित और परशुरामका प्रतिनिधि शम्भाजी शाहजादे आजमके पास पहुँचे, तथा चाहा कि मराठा किले मुगलोंको सौंप देनेपर राजारामके छोटे लड़केको जीवनदान देनेके लिए वह औरंगजेबसे विशेषरूपसे प्रार्थना करे। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रस्ताव विश्वसनीय नहीं थे, एवं उनका कोई परिणाम नहीं निकला।

२६. कोंकणमें युद्ध: १६८९-१७०४

शिवाजीने १६५७ से लेकर १६६३ ई० के बीच कोंकणको तथा १६७०-७३के वर्षोंमें दोनों प्रदेशोंको जीता था। उनकी मृत्युके बाद मुगल उत्तरी कोंकणमें उतर आए थे और [illegible] उन्होंने अधिकार कर लिया था, किन्तु दिसम्बर १६८३में मराठोंने कल्याणको वापिस ले लिया और अगले पांच वर्षों तक [illegible] मराठों-का निर्विघ्न अधिकार बना रहा। सन् १६८९के बाद, और [illegible] एवं सुरक्षित स्थानीय अधिकारियोंके प्रयत्न [illegible], [illegible] आगे बढ़ सके।

कल्याणके एक अरब सैय्यद मातवरखाँको जब नासिक जिलेका थानेदार नियुक्त किया, तब सन् १६८८मे प्रथम बार उसने अपने साहस और दूरदर्शिताका परिचय दिया, जिसमे उसकी ओर ध्यान आकर्षित होने लगा। पास-पडोसके कई जमीदारोको उसने अपने साथ कर लिया और शक्ति या लालच द्वारा उसने मराठोके कई किलोपर भी अधिकार किया। शम्भूजीका अन्त होनेके बाद यह विजयी मुगल सेनानी घाटोको पार कर कोकणमे उतर आया। इस प्रान्तमे अगस्त माहमे माहुलीको भी उसने ले लिया। इस प्रकार कोली प्रदेशसे लेकर नीचे दक्षिणमे बम्बईके अक्षाश तकका सारा उत्तरी कोकण मुगलोके अधिकारमे आ गया। वहाँ मातबरने शाही शासन स्थापित किया और शान्ति स्थापित कर उस प्रदेशमे खेती-बाडी तथा समृद्धि पुन प्रारम्भ करनेके हेतु उसने किसानोको ला-लाकर वहाँ बसाया।

इन सफल चढाइयोके बाद सन् १६९० ई०मे मातवरखाँ कल्याणको लौट गया और अगले कुछ वर्ष उसने वहाँ शान्तिपूर्वक ही बिताए। किन्तु १६९३के प्रारम्भमे मराठोने अपनी शक्ति पुन प्राप्त कर ली थी और विवश होकर मुगलोको रक्षात्मक नीति ही अपनानी पड रही थी। घूमने-वाले मराठोके लुटेरे दल मुगल प्रदेशोपर आक्रमण कर कुछ ही समय पहिले मराठोसे जीते हुए उनके किलोको मुगलोके अधिकारसे वापस लेने लगे। पुर्तगाली सूबेदारको रिश्वत देकर उत्तरी कोकणके अपने किलो और गाँवोमे आवश्यक खाद्य-सामग्री पहुँचाते रहनेके लिए मराठोने पहिले ही प्रबन्ध कर लिया था। अतएव मातबरखाँने पुर्तगाली प्रदेशके इस उत्तरी भागपर आक्रमण किया, जिससे विवश होकर गोआके वाइसरायने मुगलोके साथ सन्धि कर ली और औरंगज़ेबकी सेवामे उपहार भेजकर अपनी अधी-नताका प्रमाण भी दिया।

०

अध्याय १६

औरंगज़ेबके जीवन-कालके अन्तिम वर्ष

१. मराठा नेताओंकी राजनीति व चालें: १६८९–१६९९

शम्भाजीको गद्दीपर बैठनेके कुछ ही समय बाद जब मराठोंका नया राजा राजाराम जुलाई, १६८९में मद्रासके पूर्वी तटको भाग गया, तब महाराष्ट्र देशके शासन-प्रबन्धका सारा भार वहां पीछे रह जानेवाले उसके मन्त्रियोंपर ही आ पड़ा। 'हुकूमत-पनाह'की उपाधि देकर रामचन्द्र नीलकण्ठको इस पश्चिमी प्रदेशका राज्याभिभावक नियुक्त किया। राजा-विहीनके समान इस राज्यका सारा कामकाज उसने बड़ी ही बुद्धिमानी और कार्य-कुशलतासे चलाया। आगे बढ़ते हुए मुगलोंको भी उसने रोक दिया।

कर्नाटक पहुँचनेपर राजाराम वहां व्यभिचारमें लीन हो गया, किन्तु जन्मसे भी वह बहुत ही निर्बल मनका था। उसकी राजनैतिक स्थितिने उसे पूर्णतया शक्तिहीन बना दिया। राजा बन जानेपर भी न उसकी अपनी कोई सेना थी और न अपना निजी कोष ही, और न उसकी ऐसी प्रजा ही थी जिसपर उसका पूर्ण एकाधिपत्य हो। अपने साथ एक हजार या केवल पांच सौ सैनिक एकत्र करके कोई भी मराठा सेनानायक अपनी सेवाओं तथा आज्ञापालनके पुरस्कारस्वरूप उस नाममात्रके मराठा राजासे अपनी मांगें मनचाही शर्तें स्वीकार करवा सकता था। [illegible] उपाधियां देने और जीते हुए प्रदेशोंको भी बांटनेमें राजाराम बड़ी उदारता दिखाता था। सारे ही मराठा सरदार अपने [illegible] गए, जहाँ उसने उन्हें [illegible], सेनाओंका सेनापतित्व [illegible] ऐसे विभिन्न [illegible] दिए, जहाँ जाकर उनको लूटमार करना तथा चौथ वसूल करना

थी । जब उसका राज्य दिनोदिन घटता जा रहा था, तब भी उसके दिए हुए खिताबो और नए नियुक्त पदाधिकारियोकी सख्या दुगुनी हो गई, जिससे ही राजारामकी राजनैतिक नि सत्त्वता पूर्णतया प्रदर्शित हो जाती है। प्रत्येक अभिमानी स्वार्थी सरदार या नायककी इच्छापूर्ति किए विना राजारामका काम नही चल सकता था।

परन्तु शासकीय सत्ताका यह विकेन्द्रीकरण महाराष्ट्रकी तत्कालीन परिस्थितिके लिए सर्वथा उपयुक्त था। सारे मराठा सेनानायक अपने-अपने स्वार्थोसे प्रेरित होकर अपनी-अपनी इच्छानुसार मुगलोके विरुद्ध छापामार युद्ध करते रहते थे, जिससे मुगल प्रदेशमे अत्यधिक उपद्रव मचता था और आशातीत हानि पहुँचती थी। किस स्थान विशेषकी रक्षाके लिए प्रबन्ध किया जावे तथा शत्रुको पराजित करनेके लिए किस महत्त्वपूर्ण स्थानपर आक्रमण करना चाहिए यह शाही सेनानायकोको बिलकुल ही समझमे आता न था। तेजीके साथ घूमनेवाले मराठे सैनिकोंके दल दूर-दूरका धावा मारकर बिलकुल ही अनपेक्षित स्थानोपर अचानक आक्रमण करते थे, और मराठा लुटेरोंके ऐसे दल असख्य थे।

जिंजीके मराठा राजदरबारके तथा महाराष्ट्रमे पीछे रह जानेवाले मन्त्रियोमे पारस्परिक द्वेष और वैमनस्य चलते ही रहते थे। परशुराम त्रिम्बकने अपनी एक गुट बना ली और सन्ताजी घोरपडेको भी उसमे सम्मिलित कर लिया। जिसका एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि रामचन्द्र धन्ना जादवका पक्ष लेने लगा। सन्ताजी घोरपडे एव धन्ना जादवकी इस प्रतिद्वन्द्विताके फलस्वरूप सन् १६९६ ई०मे एक गृह-युद्ध छिड गया और उन दोनोके बीच तीन युद्ध हुए। जून, १६९७मे सन्ताके मारे जानेपर एक ओर उसके पुत्र राणोजी एव उसके भाई बहीरजी हिन्दूरावमे तथा दूसरी ओर धन्नाके पक्षवालोमे वशपरम्परागत शत्रुता हो गई जिसके दूर होनेमे बहुत समय लगा। किन्तु मराठोके इन आपसी झगडोंके कारण मुगलोको सुस्तानेके लिए कुछ अवकाश मिल गया।

२. राजमाता बनकर ताराबाईका शासन करना; मराठा राज्यमें आपसी फूट एवं वेमनाव

२ मार्च, १७००को राजारामकी मृत्यु हुई और उसके बाद तीन सप्ताह तक शासन कर जब उसका अनौरस पुत्र कर्ण भी मर गया, तब

ताराबाईने अपने ही औरस पुत्र दस-वर्षीय शिवाजीको गद्दीपर बैठाया और परशुराम त्रिम्बककी सहायतासे वह स्वयं शासन करने लगी। इस प्रकार राज्याभिभावककी देख-रेखमें दूसरी बार मराठा राज्यका शासन-प्रबन्ध प्रारम्भ हुआ। अब महाराष्ट्रका प्रमुख सूत्रधार कोई मन्त्री न था, किन्तु विधवा राजमाता ताराबाई मोहितेके ही आदेशानुसार सब कुछ सञ्चालित होता था। राजारामकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारके लिए छिड़नेवाले गृह-युद्ध तथा सन् १६९९ से १७०१ ई० तक होनेवाली औरंगज़ेबकी निरन्तर सफलताओंके फलस्वरूप मराठा जातिके लिए जो विषम संकट उपस्थित हुआ था, अपनी शासकीय योग्यता एवं चारित्र्यबलके द्वारा ताराबाईने मराठोंको उससे बचा लिया। विरोधी मुसलमान इतिहासकार खफीखाँको भी विवश होकर स्वीकार करना पड़ा कि वह बुद्धिमती, साहसी, शासनकलामें निपुण तथा सेनामें लोक-प्रिय रानी थी। "ताराबाईके निर्देशनमें मराठोंकी कार्यकारिता दिनोदिन बढ़ने लगी। सेनापतियोंकी नियुक्ति और उनकी बदला-बदली, देशमें सेनी-बाटी, तथा मुगल प्रदेशपर आक्रमणोंके आयोजन बनाने जैसे सारे ही महत्त्वपूर्ण कार्य उसने अपने हाथमें ले लिए। दक्षिणके छ सूबोंके साथ ही साथ मालवामें मन्दसौर और सिरोंज तक धावा मारकर वहाँ बरबादी करनेके लिए सेनाएँ भेजने तथा अपने अधिकारियोंको अपने प्रति स्वामि-भक्त बनाए रखनेके लिए उसने ऐसा प्रबन्ध किया कि मराठोंको दबानेके लिए अपने शासन-कालके अन्त तक किए गए औरंगज़ेबके सारे ही प्रयत्न विफल रहे।"

परन्तु यह प्रभुता प्राप्त करनेके लिए ताराबाईको कठिन संघर्षका सामना करना पड़ा था। कुछ सेनापति उसके आज्ञाकारी थे, परन्तु कुछ उसके आदेशोंको सुनते न थे। राजारामकी छोटी रानी एवं सम्भाजी द्वितीयकी जननी राजसबाईने अपने पुत्रको प्रतिद्वन्द्वी राजा बनाया तथा अपना एक विरोधी दल संगठित कर वह ताराबाईसे झगड़ने लगी। उधर मराठा सेनाओंमें एक तीसरा दल भी था, जो न्यायोचित शासन स्थापित करनेके लिए शिवाजीके वंशजोंमें ज्येष्ठतर शाखाके प्रतिनिधि होनेके नाते शाहूको राजा बनाना चाहता था। मराठा सेनापतियों, विशेषतया धना जादव और सन्ता घोरपड़े तथा उनके परिवारोंकी व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विताने इन राजकीय झगड़ोंको और भी उलझा दिया।

३. शाहूका क़ैदी जीवन, १६८९–१७०७ ई०

मुगलोंके मराठा सहयोगी

अक्तूबर, १६८९मे राजगढका किला मुगलोके अधिकारमे आनेपर सात वर्षकी उम्रमे ही शम्भूजीका ज्येष्ठ पुत्र मुगलोके हाथो कैद हो गया था। यद्यपि उसे सम्राट्के डेरेके पास ही रखते थे और उसके साथ बडी ही दयालुताका व्यवहार किया जाता था, उसपर बहुत ही कडा पहरा रहता था। उसकी माँ येशुबाई तथा उसके सौतेले भाई मदनसिह और माधोसिंह भी उसीके साथ रहते थे। सन् १७०० ई०मे शाहू बहुत ही सख्त बीमार पड गया, जिससे उसके शरीर और मस्तिष्क इतने अधिक जर्जरित हो गए थे कि वे जीवन भर बेकाम ही रहे।

जैसे-जैसे औरगजेबके चारो ओर कठिनाइयाँ वढती जा रही थी और ज्यो-ज्यो दक्षिणकी यह उलझन अधिकाधिक विकट होती जा रही थी, शाहूके द्वारा मराठा सेनापतियोसे झगडा निपटानेके आयोजन औरगजेब बनाने लगा। पहिले तो ९ मई, १७०३के दिन शाहूको मुसलमान वन जानेके लिए कहा गया, किन्तु शाहू धर्म-परिवर्तन करनेको तैयार नही हुआ। तब शाहूको कैदसे छुटकारा देकर मराठोमे आपसी फूट डालनेकी भी औरगज़ेबने सोची। शाहजादे कामबख्शके जरिए प्रमुख मराठा सेनापतियोके साथ सन्धि कर शाहूको छोडनेकी शर्तें तय होनेवाली थी। किन्तु यह चाल भी विफल हुई और "राजा शाहूको फिर गुलालबारमे नज़रबन्द कर दिया गया।"

औरगजेबने अपनी पूर्ण निस्सहायताको महसूस किया। अपने जीवनके अन्तिम वर्ष सन् १७०७मे उसने मराठोके साथ सन्धि करनेके लिए एक बार और प्रयत्न करनेका निश्चय किया, किन्तु उसका भी कोई नतीजा नही निकला। मराठोमे गृह-युद्ध छिड गया था, किन्तु उससे लाभ उठाने-की औरगज़ेबकी आशा इस बार भी निष्फल ही हुई।

इधर अनेकानेक विभिन्न हेतुसे कई प्रमुख मराठा घराने मुगलोकी सेवामे लगे हुए थे। सिदखेडके जादवरावका कुलीन घराना कई पीढियोंसे मुगलोके पक्षमे वना हुआ था। शम्भूजीके अत्याचारोमे पीडित कान्होजी शिर्के और उसके पुत्रोने भागकर मुगल सम्राट्का आश्रय लिया था। शिर्के घरानेके साथ ही नागोजी माने भी सदैव मुगलोंके प्रति स्वामिभक्त बना

रहा और बहुत समय तक उसने मुगलोंकी उल्लेखनीय सेवाएं कीं। औरंग-जेबके तीन अन्य भक्त मराठा सेवक थे आवजी अढल, रामचन्द्र और बहीरजी पांढरे।

मराठा सरदार सतवाजी डफले भी मुगल सेवक था। इस घरानेकी गणना पहिले आदिलशाही सुल्तानके सरदारोंमें होती थी। आदिलशाही घरानेका अन्त होनेपर मुगल विजेताने उन्हें अपनी सेवामें ले लिया। सन् १६९५में पहिले सतवाने स्वय तो मुगलोंके पक्षको छोड दिया था, परन्तु अगस्त, १७०१में उसे पचहजारी मनसब दिए जाने तथा १३ अप्रैल, १७००को सताराके घेरेके समय प्रदर्शित उसके स्वर्गीय पुत्रकी वीरता व आत्म-बलिदानके पुरस्कार-स्वरूप जथका परगना जागीरमें मिलनेपर वह पीछा औरंगजेबके पक्षमें हो गया।

कई हजार मराठा पहाडी पैदल सैनिक, मावले, औरंगजेबकी सेनामें नौकर थे। किन्तु इसका एकमात्र वास्तविक प्रभाव यही होता था कि ये कोई उपद्रव नहीं कर सकते थे।

४. औरंगजेबका सतारा किलेको घेरना

मराठोंके बडे ही सुदृढ किलोंपर चढाई करनेके लिए १९ अक्तूबर, १६९९को औरंगजेब इस्लामपुरीसे चला, औरंगजेबके जीवनके अगले छ वर्ष इन्हीं चढाइयोंमें लग जानेवाले थे। एक-एक कर उसने सतारा, पार्ली, पन्हाला, विशालगढ (खेलना), कोण्डाना (सिंहगढ), राजगढ और तोरणाके सुप्रसिद्ध पहाडी किले जीते, इनके अतिरिक्त पांच और दस महत्वके स्थानोंपर भी उसका अधिकार हो गया था। किन्तु यह बात विशेष रूपसे स्मरणीय है कि एकमात्र तोरणा छोडकर दूसरा कोई भी किला आक्रमण करके जीता नहीं गया। कुछ समयके उपरान्त ही इन अन्य किलोंने आत्मसमर्पण किया और उनके लिए भी कुछ-न-कुछ कीमत अवश्य ही चुकानी पडी थी, यहांके दुर्गरक्षकोंको अपना निजी माल सा-असबाब लेकर बेरोकटोक जाने दिया गया और अपने निगरानी अन्न न देनेके पुरस्कारस्वरूप वहांके किलेदारोंको बहुत-से इनाम दिए गए।

अपनी उदयपुरी बेगम, उसके पुत्र शाहजादे कामबख्श तथा अपनी बेटी शाहजादी जीनत उन्निसाको औरंगजेबने इस्लामपुर महल-असबाब,

अतिरिक्त अधिकारियो, सैनिकोके कुटुम्बो और छावनीके नौकरोके साथ इस्लामपुरीमे ही छोड दिया था। एक उपयुक्त सेना देकर वहाँकी देख-रेखका भार वजीर असदखाँको सौंपा गया। घेरा डालनेवाले मुगल सैनिक पडावके आसपास मण्डरानेवाले या इस्लामपुरीके उग केन्द्रपर आक्रमण करनेको उद्यत रणतत्पर मराठे सैनिकदलोके साथ युद्ध करनेका काम जुल्फिकारखाँको सौंपा गया, जिसे अब नसरतजगका खिताब मिला।

इस्लामपुरीसे चलकर शाही सेना ८ दिसम्बरको सताराके सामने जा पहुँची। किलेकी शहरपनाहसे कोई डेढ मील उत्तरमे स्थित करजा नामक गाँवमे उसने अपना पडाव डाला। अपने नौकरो तथा वारवरदारीके पशुओको एक ही स्थानपर पाँच मीलके घेरेमे एकत्रित कर शाही सेनाने अपने पडावके चारो ओर किलेवन्दीकी दीवाल खडी कर दी जिससे कि मराठा आक्रमणकारी शाही पडावमे न घुस सके। ९ दिसम्बरको किलेका घेरा डालनेका काम प्रारम्भ हुआ। उस पथरीली धरतीमे खोदनेका काम वहुत ही धीरे-धीरे और वडी ही कठिनाईसे हो पाता था। दुर्गरक्षक निरन्तर रातदिन सव तरहके अस्त्रोकी वौछार मुगल सेनापर करते रहते थे। किन्तु किलेको पूरी तरह घेरा भी नही जा सका था, जिससे इस घेरेका अन्त होने तक भी शत्रु सताराके किलेमे आते-जाते ही रहते थे।

दुर्गरक्षक सेना वारम्वार मुगलोपर आक्रमण भी करती थी, किन्तु हर वार थोडी वहुत हानिके साथ मुगल उन्हे विफल मनोरथ ही मार भगाते थे। किन्तु युद्धक्षेत्रमे उतरी हुई दूसरी मराठा सेनाएँ ही मुगलोंके लिए सवसे वडा खतरा सावित हुई, क्योकि घेरा डालनेवाली इस मुगल सेनाकी हालत भी उन्होने एक घिरे हुए नगरकी-सी कर दी। घास-दाना एकत्र करनेवाले मुगल सैनिक-दल भी प्रमुख मुगल सरदारोके सरक्षणमे विना शक्तिशाली रक्षकोके वाहर भी नही निकल सकते थे। धन्ना, शकरा तथा अन्य शत्रु सेनानायक सारे मुगल प्रदेशमे फैल गए और गाँवोपर आक्रमण कर मुगलोकी चौकियोको हटाने तथा वनजारोको भी इधर-उधर जानेसे रोकने लगे।

कडी मिहनतके वाद तरवियतखाँने २४ गज लम्वी एक सुरग खोद कर तैयार की जो किलेकी दीवालके नीचे तक पहुँच गई थी। किन्तु दीवाल तोडकर उसपर आक्रमण करना अनुचित समझा गया। तव २३ जनवरीको शाही सेनामे नौकर २,००० मावलोने अचानक किलेकी दीवाल

फादकर अन्दर जा पहुँचनेका प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिली। १३ अप्रैलको दो सुरंगें दागी गईं। पहिलीके चलनेसे कई दुर्गरक्षक मर गए और गिरी हुई दीवालके टेरके नीचे हवालदार प्रयागजी प्रभु दब गया, किन्तु उसे जीवित ही खोदकर निकाल लिया गया। दूसरी सुरंग बाहरकी ओर फूटी, एक बुर्ज उड़ गई और आक्रमणके लिए दीवालके नीचे एक साथ एकत्र हुए बहुतसे मुगल सैनिकोंपर वह गिरी, जिनसे कोई दो हजार मुगल सैनिक मर गए। इन धड़ाकोंसे दीवालमें कोई तीस गज चौड़ी दरार पड़ गई। कुछ वीर शाही सेनानायक और विशेषतया बीजापुर जिलेमें स्थित जत राज्यके संस्थापक सतवा डफलेका बेटा बाजी चव्हाण डफले शहरपनाहके सिरेकी ओर दौड़ पड़े और "ऊपर चले आओ! यहां दुश्मन नहीं है।" चिल्ला-चिल्लाकर अपने साथियोंको भी बुलाने लगे। किन्तु किसी भी मुगल सैनिकने उनका साथ नहीं दिया। इन धड़ाकोंसे आई हुई आपत्तिसे बच जानेवाले मुगल सैनिक इतने स्तब्ध और भयभीत हो गए थे कि उनमेंसे कोई भी अपनी खाईमेंसे नहीं निकला। अचानककी इन घटनासे उत्पन्न हुई दुर्गरक्षकोंकी घबराहट तब तक दूर हो चुकी थी, वे अब तत्परताके साथ उस टूटी हुई दीवालकी ओर झपटे और मुगलोंकी एकमात्र आशा उस वीर सेनापतिको भी उन्होंने मार डाला।

अन्तमें हताश होकर सताराके किलेदार सुभानजीने शाहजादे आजम-के द्वारा औरंगजेबसे शर्तें कर लीं। २१ अप्रैलको उसने अपने किलेपर शाही झण्डा चढ़ा दिया और दूसरे दिन अपने अन्य साथी दुर्गरक्षकोंके साथ ही उसने किला खाली कर दिया। शाहजादे मुहम्मद आजमके सम्मानार्थ इस किलेका नाम बदलकर 'आजमतारा' रखा गया।

५. पार्लीके किलेको जीतना

इसके कुछ ही दिनों बाद सतारासे छ मील पश्चिममें स्थित पार्ली किलेको घेरा डालकर मुगलोंने वहां छावनी डाली। यह किला शिवाजीके गुरु रामदास स्वामीका निवास-स्थान था, और जब मुगल सताराके किलेको घेरे हुए थे तब मराठा शासनका प्रधान केन्द्र इसी किलेमें था। राजारामकी मृत्यु तथा सताराके किलेके पतनके बाद तमाम मराठा शासनका प्रमुख [illegible] पार्लीके किलेमें [illegible] परन्तु इसके अधीन [illegible] किले ही [illegible] मुगलोंसे [illegible]

रहे। अन्तमे वहाँके किलेदारसे शर्तें कर ली गई और घूस देकर ९ जूनको पार्ली किला भी खाली करवा लिया गया।

इन दोनो घेरोमे शाही सेनाके बहुत अधिक आदमी, घोडे और बार-बरदारीके पशु व्यर्थ ही मर गए। शाही कोष खाली था, सैनिकोकी तीन वर्षकी तनख्वाह चढी हुई थी, जिस कारण वे भूखो मर रहे थे। पहिले कभी न हुई ऐसी मूसलाधार वर्षा मईके प्रारम्भसे ही होने लगी, जो जुलाईके अन्त तक होती ही रही। वापस भूषणगढको लौटनेके लिए २१ जूनको शाही सेना वहाँसे चल पडी, किन्तु इस यात्रामे बेचारे सैनिकोकी कठिनाइयाँ असहनीय हो गई। बारबरदारीके प्राय सारे ही पशु घेरेके दिनोमे मर चुके थे। ४५ मीलका यह रास्ता तय करनेमे मुगल सेनाको ३५ दिन लगे। तब ३० अगस्त, १७००ई०को शाही पडाव वहाँसे ३६ मील दूर मान नदीपर स्थित खवासपुर ले गए और वहाँ उस नदीके दोनो ही किनारो तथा नदीके मध्यमे सूखे भागपर भी शाही सैनिकोने पडाव किया। तब ऊपर पहाडोमे असमय ही घनघोर वर्षा हो जानेसे अक्तूबरकी एक रातके समय जब सब सैनिक गहरी नीद सो रहे थे, नदीमे एकाएक भयकर बाढ आई, जिससे उसका पानी दोनो किनारोसे भी ऊपर चढकर आसपासके मैदानोमे फैल गया। कई आदमी और पशु इस बाढमे मर मिटे और उससे भी अधिक सैनिक तथा कई सरदार भी बिलकुल दरिद्री तथा नगे हो गए, प्राय सारे ही तम्बू तथा अन्य माल-असबाब बरबाद हो गए।

आधी रातसे कुछ ही पहिले जब प्रथम बार बाढका पानी पडावमे जा घुसा तब सारी सेनामे बडे जोरोसे कोलाहल मच गया। सम्राट्को भय हुआ कि मराठे पडावमे घुस आए है, अतएव वह घबडाकर उठा, किन्तु ठोकर खाकर गिर पडा, जिससे उसका दाहिना घुटना उखड गया। इस जोडको हकीम पीछा ठीक तरह नही जमा सके, जिससे शेष जीवन भर वह उस पैरसे कुछ लँगडाता ही रहा। शाही-दरबारके चापलूस इसे सम्राट्के पूर्वज विश्व-विजेता तैमूरलगकी विरासत बताकर औरगजेबको दिलासा देते थे।

शाही सेनाके इन सारे दुर्भाग्योसे मराठोने पूरा-पूरा लाभ उठाया।

६. पन्हालाका घेरा, १७०१ ई०

अब पन्हालापर आक्रमण हुआ। ९ मार्च, १७०१को औरगज़ेब वहाँ

पहुँचा, और पन्हाला तथा उसके साथ ही उनके पड़ोसी किले पावनगढ़को भी पूरी तरह घेरकर कोई १४ मीलकी लम्बाईमें यह घेरा डाला। "जहाँ कहीं भी वे सिर उठावें वहीं उन्हें दबा देनेके लिए" एक घूमने-फिरने सैनिक-दलके साथ नसरतजंगको वहाँसे रवाना किया। किन्तु पथरीले स्थानमें सुरंग खोदनेका काम बहुत ही धीरे-धीरे चलना अवश्यम्भावी था, और साथ ही भयकारक वर्षा ऋतु भी दिनोदिन पास आ रही थी। जहाँ सम्राट्के दोनों सर्वोच्च सेनापतियों नसरतजंग और फिरोजजंगमें इतनी उत्कट प्रतिस्पर्धा घर कर गई थी कि दोनोंको साथ ही एक स्थान-पर किसी कार्यमें लगाना सर्वथा असम्भव हो गया था, वहीं अब तर-बियतखाँ और फतेहउल्लाखाँमें भी प्रतिद्वन्द्विता छिड़ गई तथा तब ही आगे बढ़े हुए गुजरातके एक नये सुयोग्य अधिकारी मुहम्मद मुरादसे सारे ही पुराने अधिकारी ईर्ष्या करने लगे। सेनापतियोंके इस आपसी वैमनस्य और द्वेषके कारण उनका एक-दूसरेसे सहयोग करना सर्वथा असम्भव हो गया। उलटे एक-दूसरेके कार्यमें बाधा डालते रहनेका ये गुप्त रूपसे भरसक प्रयत्न करते थे। बरसात शुरू होनेसे पहिले ही पन्हालापर अधिकार कर लेनेके लिए वहाँके किलेदार त्रिम्बकको बहुत बड़ी रिश्वत दी गई, तब २८ मई, १७०१को उसने वह किला मुगलोंको सौंप दिया।

७. खेलनाका घेरा

तब औरंगजेब खेलनाके (अथवा विशालगढ़के) किलेको जीतनेके लिए निकला। पन्हालासे तीन मील पश्चिममें समुद्रसे ३,३५० फुट ऊँची सह्याद्रि पर्वतकी चोटीपर स्थित इस किलेके पश्चिममें दूर तक कोंकणके मैदान फैले हुए हैं। इस जिलेमें काफी जंगल रहते हैं और यहाँ पानी भी बहुत बरसता है, [illegible] चट्टानोंसे यहाँकी पहाड़ियाँ, वृक्षों और घनी झाड़ियोंसे पूरी तरह ढकी हुई थी।

पर्लीगढ़से ७ नवम्बर, १७०१ ई०को रवाना हो [illegible] १८ पड़ाव करनेपर औरंगजेब मल्कापुरके पास पहुँचा। यहाँ [illegible] तय कर [illegible] रहा और तब तक आगेकी राह ठीक करनेको उसने मजदूरों आदि-को वहाँ भेजा। अभी [illegible] आगे सेनाके लिए [illegible] बनाना था। अनेकों रास्ता बनानेवालों और पत्थर [illegible] लगातार सब यहाँ [illegible] निरन्तर [illegible] दिन-रात काम [illegible]

इस कठिन कार्यको किसी तरह पूरा किया। तब घेरा डालनेके लिए २६ दिसम्बरके दिन अहमदखाँको भेजा गया। १६ जनवरी, १७०२को औरगजेबने भी खेलनासे एक मीलकी ही दूरीपर पहुँच वहाँ अपना डेरा लगाया। उस घाटीको पार करने तथा उसके पडाव और माल-असबावको किलेके नीचे तक पहुँचानेमे औरगज़ेबके अनुयायियोको अत्यधिक कठिनाइयाँ और हानि उठानी पडी।

जनवरीसे लेकर जून, १७०२ तक पूरे पाँच माह यह घेरा चलता ही गया। और तब बम्बईके समुद्री तटकी भयकारक वर्षा ऋतु प्रारम्भ होकर आज्ञाकारी मुगल सेनाको तर-बतर करने लगी। वेदारवख्तसे बहुत बडी रिश्वत लेकर ४ जूनको किलेदार परशुरामने किलेके परकोटेपर शाहज़ादेका झण्डा चढाया और ७ जूनकी रातको दुर्गरक्षकोने वह किला खाली कर दिया।

खेलनासे लौटते समय मुगल सेनाने जो दुःख उठाए थे वे सर्वथा अवर्णनीय थे। उसी हालतमे ३८ दिनमे ३० मीलका रास्ता पार कर १७ जुलाई, १७०२को यह दुर्दशापन्न सेना पन्हालाके पास पहुँची। अन्तमे १३ नवम्बर, १७०२को मुगल भीमा नदीके उत्तरी तीरपर वहादुरगढ अथवा पेडगाँव पहुँचे।

८. कोण्डानाके (सिंहगढ), राजगढ़ और तोरणाके घेरे

केवल १८ दिन ही विश्राम करनेके बाद २ दिसम्बरको औरगजेब कोण्डाना (सिंहगढ) जीतनेके लिए चल पडा और २७ दिसम्बरके दिन वहाँ पहुँचा। शाही कुटुम्ब, दफ्तर और सारा भारी माल-असबाव बहादुरगढ भेज दिया गया। घेरा प्रारम्भ हुआ, परन्तु जी लगाकर कोई भी व्यक्ति प्रयत्न नही करता था एव पूरे तीन माह इसी तरह व्यर्थ ही बरबाद हुए। उधर वर्षा ऋतु भी निकट आ रही थी, एव सम्राट्के अधिकारियोने किलेदारको बडी घूस देकर ८ अप्रेल, १७०३ ई०को किलेपर अधिकार कर लिया।

कोण्डानासे रवाना होकर एक सप्ताहमे शाही सेना पूना पहुँची (१ मई), जहाँ सात माह तक वह ठहरी रही। सन् १७०३–४ ई०मे वहाँ बिलकुल ही वर्षा नही हुई, जिससे सारे महाराष्ट्रमे अकाल पड़ गया और महामारी फैल गई।

तब राजगढ़ पहुँचकर ३ दिसम्बर, १७०३को शाही सेनाने वहाँका घेरा डाला। आक्रमण कर उन्होंने ६ फरवरी, १७०४को किलेके पहिले फाटकपर अधिकार कर लिया। दुर्गरक्षक अब भीतरी किलेमें जा घुसे। अन्तमें शर्तें कर १६ फरवरीकी रातको किलेदार वहाँसे भाग खड़ा हुआ।

उसके बाद औरंगजेबने तोरणाका घेरा डाला। १० मार्चकी रातमें केवल २३ मावले पैदल सैनिकोंको साथ ले अमानुल्लाखाँने चुपचाप किलेकी दीवाल फाँदी और शत्रुपर आक्रमण कर दिया। किसी भी प्रकारकी रिश्वत दिए बिना केवल बलपूर्वक इस एक किलेको ही औरंगजेबने जीता था।

तोरणासे शाही पड़ाव खेड पहुँचा, जहाँसे २२ अक्तूबर, १७०४को औरंगजेबने अपने जीवन-कालकी अन्तिम चढ़ाईके लिए प्रस्थान किया।

९. बेरड जाति, उनका प्रदेश तथा उनका नायक

बीजापुर नगरसे पूर्वमें स्थित कृष्णा और भीमा नदियोंके बीचका प्रदेश बेरडोंका निवास-स्थान है। कन्नड़ आदिवासी जातिके लोग बेडर भी कहलाते हैं और हिन्दू जातियोंमें निम्नतर श्रेणीके अछूतोंमें उनकी गणना होती है। वे बहुत ही शक्तिपूर्ण तथा परिश्रमी होते हैं। वे प्रायः जंगली ही होते हैं और उच्च जातीय अति-सभ्य हिन्दुओंकी तरह ये शुद्धाचारी नहीं हो पाए हैं। वे बकरे, गाय, सूअर, मुर्गी आदिका मांस खाते हैं, और अत्यधिक मदिरापान भी करते हैं। उनका रंग साँवला, शरीर सुगठित, कद मझोला, चेहरा गोल, गाल चिपटे, होंठ पतले तथा बाल पतले या घुंघराले होते हैं। ये कठिनाइयाँ सहन कर जाते हैं, किन्तु किसी स्थायी उद्योग-धंधेमें लगना या शान्तिपूर्वक जीविका पैदा करना उनकी प्रकृतिके विपरीत है। उनके जातीय संगठनके अनुसार विभिन्न घरानोंके प्रमुखोंके नियन्त्रण तथा सारी जातिके मुखियाकी सर्वोच्च न्याय-व्यवस्थाके कारण उस जातिमें अनुशासन तथा एकता बनी रहती थी। ईसाकी १७वीं और १८वीं शताब्दियोंमें दक्षिणी भारतके सबसे अच्छे सिपाही प्रायः इसी जातिके होते थे। युद्धमें वीरता दिखाने तथा वहाँ लगनेवाले घावों तथा मृत्यु तककी पूर्ण उपेक्षाके लिए ये सुविख्यात थे। इसी तरह [illegible] और सुरंगें लगानेमें जैसी आशा की जा सकती है, वैसी ही [illegible] अचानक आक्रमण करने या अचानक छापा मारनेमें भी सिद्धहस्त थे, तथा उनकी यह विशेषता सर्वत्र मशहूर थी। उनके [illegible]

अलंकार द्वारा समकालीन इतिहासकार उन्हे 'वेडर' (निर्भीक) कहा करते थे।

कृष्णा और भीमाके बीचवाले शोरापुर प्रदेशके बेरड नायको या शासकोकी राजधानी सागर बीजापुरसे कोई ७२ मील पूर्वमे है। सन् १६८७ ई०मे जब मुगलोने सागरपर अधिकार कर लिया, तव नायकने सागरसे ही १२ मील दक्षिण पश्चिममे वागिनखेडा नामक नई राजधानी बनवाई। औरगज़ेबके शासन-कालके अन्तिम वर्षोंमे यह किला भी मुगलोने उससे छीन लिया, तब नायक अपनी राजधानीको वागिनखेडा-से चार मील ही दूर उसी पर्वत श्रेणीके पूर्वी ढालपर स्थित शोरापुर ले गया।

पाम नायकका भतीजा तथा उसका गोद लिया हुआ उत्तराधिकारी पीडिया नायक सन् १६८३मे शाही दरबारमे पहुँचा, औरगजेबकी सेवामे उपस्थित हुआ तब उसे शाही सेनामे मनसब भी मिल गया। मुगलोके सागर जीतने तथा उसके काकाकी मृत्युके बाद वह वागिनखेडाका किला बनाने और अपनी सेना सगठित करनेमे ही लगा रहा। अपनी ही जातिके कोई वारह हजार बहुत अच्छे निशानेबाज़ उसने एकत्र किए तथा धीरे-धीरे तोपें, गोला-बारूद और अन्य युद्ध-सामग्री भी इकट्ठा करता रहा। पीडिया नायक कुलबर्गा ज़िलेमे लूटमार भी करता था। अन्तमे उसकी यह लूटमार इतनी अधिक बढ गई कि उसके विरुद्ध कार्यवाही करना अनिवार्य हो गया।

१०. औरगजेबका वागिनखेडा जीतना, १७०५

सन् १७०४ ई० समाप्त होते-होते जब सारे ही महत्त्वपूर्ण मराठा किले जीते जा चुके, तब अन्तमे औरगज़ेब वागिनखेडाके लिए रवाना हुआ और ८ फरवरी, १७०५को उसका घेरा प्रारम्भ हुआ।

किलेके फाटकके सामने नीचे मैदानमे दक्षिणकी ओर 'तलवरखेडा' नामक एक गाँव है, जिसके चारो ओर मिट्टीकी दीवाल बनी हुई है। सारी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त करनेके लिए किलेमे रहनेवाले दुर्गरक्षकोंके वास्ते इस गाँवका वाजार ही एकमात्र स्थान है। इसीके पास घास-फूसकी बनी हुई झोपडियोका 'ढेडपुरा' नामक एक और गाँव है। साधारण गरीब वेरडोके कुटुम्ब यहाँ रहकर आसपासकी भूमिमे खेतीवाडी करते हैं।

इस सारे प्रदेशमें ये ही तीन स्थान हैं जहां मनुष्योंकी कोई बस्ती है। किन्तु किलेके पास ही पूर्व और उत्तरमें कई एक ऐसी पहाड़ियां हैं, जो घेरा डालनेवालोंके लिए बहुत ही उपयोगी हो सकती हैं। वहांकी लाल पत्थरोंके कारण उनमेंसे एक 'लाल टेकरी' कहलाती थी, जिसपरसे वागिनगेरा किलेके एक भागका भीतरी हिस्सा कुछ-कुछ देख पड़ता था। उस किलेकी सुरक्षाके लिए यह लाल टेकरी बहुत ही महत्वकी थी, किन्तु आसपासकी उन पहाड़ियोंपर भी छोटी-छोटी बुर्जें बना लेने या वहां कोई सुदृढ़ चौकियां स्थापित करनेकी बेरडोंने कभी नहीं सोची।

एक दिन प्रातःकालमें किलेकी आसपासके सब स्थानोंको खोजनेके लिए जब मुगल सेनापति देखभाल कर रहे थे तब उन्होंने एकाएक लाल टेकरीपर हमला कर दिया और उसके सिरपरके बेरड निशानेबाजोंको मार भगाया तथा उस टेकरीपर अधिकार कर लिया। चट्टानोंवाली उन पहाड़ीपर खाइयां खोदकर वहां अपनी स्थिति सुदृढ़ करना मुगलोंके लिए सर्वथा असम्भव था। तत्काल ही बेरडोंने अपने पैदल सैनिकोंके छोटे-छोटे दल भेजे, "चींटियों और टिड्डियोंकी तरह अनगिनत" इन बेरडोंने उस पहाड़ीको घेर लिया और पहाड़ीकी चोटीपर एकत्र हुए शाही सैनिकोंपर वे पत्थरों और बन्दूकोंकी गोलियोंके घातक निशाने लगाने लगे। बहुतसे मुगल सैनिक मारे गए और अन्तमें विवश होकर मुगलोंको यह पहाड़ी छोड़ देनी पड़ी।

किन्तु २६ मार्चको धना जादव और सन्ता घोरपड़ेके भाई हिन्दूरावके नेतृत्वमें पांच या ६ हजार मराठा घुड़सवारोंका एक दल उनके बेरड मित्रोंकी सहायतार्थ किलेके पास आया। कई मराठा सेनापतियोंके कुटुम्बोंने भी इस किलेमें शरण ली थी, अतएव उन्हें किलेसे निकालकर किसी सुरक्षित स्थानको पहुंचा देना ही मराठोंका पहला कार्य था। इस आगन्तुक मराठा सेनाके अग्रगामी दलने उस किलेके निकट पहुंचकर घेरा डालनेवाली मुगल सेनाओंके साथ युद्ध करनेका ढोंग दिखाया पर शाही सेनाको वहां उलझाए रखा, तब इसकी सहायतार्थ किलेकी दीवालोंपरसे भी इसी ओरसे गोलाबारी हुई। इसी समय कोई २००० मराठा घुड़सवारोंने वागिनगेराके किलेके पिछले दरवाजेसे मराठा स्त्रियों और बच्चोंको निकाल तथा घेरा डालनेवाली चौकियोंको चीरकर उन्हें सुरक्षित भगा ले गए। इस तरह इनसे कुछ आदमी बढ़ाकर पैदल सैनिकोंकी एक टुकड़ी किलेसे निकल आई।

जहाँ तक भी वे उसकी राजधानीकी रक्षामे उसको सहायता देंगे, तब तक कई हजार रुपये प्रति दिनके हिसाबसे मराठोको देते रहनेका पीडिया-ने वादा किया था। अतएव पास हीमे ठहकर मराठे बारम्बार मुगलोपर आक्रमण करने लगे। अब तो स्वय मुगल सेनाकी भी हालत घिरे हुओकी-सी हो गई। उनकी सारी गतिविधि ही रुक गई, अपने पडावकी सीमासे बाहर निकलना भी उनके लिए कठिन हो गया। पडावमे घास और दाना बिलकुल ही नही मिलता था। औरगजेबने अपने सेनापतियोकी भर्त्सना की, किन्तु उसका भी कोई प्रभाव नही हुआ।

अब पोडियाने औरगजेबके प्रति आत्मसमर्पणका प्रस्ताव किया। पास और दूरसे सारी ही सहायक सेनाको एकत्रित करनेके लिए पर्याप्त अव-काश प्राप्त करना ही उसकी इस बातचीतका वास्तविक उद्देश्य था।

अब्दुल गनी नामक एक मधुर-भाषी परन्तु झूठा कश्मीरी फेरीवाला पोडियाकी ओरसे सन्धिका प्रस्ताव लेकर एक दिन शाही गुप्तचर विभागके मुखिया हिदायत-केशके पास पहुँचा। औरगज़ेबने उस पत्रका अनुकूल उत्तर दिया। तब अगली बार पीडियाने अपने भाई सोमसिहको शाही पडावमे भेजा और जमीदारी, सारी जातिका मुखिया पद तथा शाही मनसब अपने उस भाईको दिए जानेपर किला भी मुगलोको सौप देनेका पीडियाने प्रस्ताव किया। शाही पडावमे ठहरकर सोमसिहने वहाँ खबर उडा दी कि पागल होकर पीडिया मराठोके साथ भाग गया था। अगली बार वही कश्मीरी बेरड मुखियाकी माँकी ओरसे एक सन्देशा लाया, जिसमे भी उसी खबरको दुहराया गया और सोमसिहको वापस लौटने देनेके लिए प्रार्थना की गई, जिससे कि सात दिनमे किला खाली किया जा सके। सम्राट्ने सोमसिहको वापस जाने देनेकी स्वीकृति दे दी और अब लड़ाई भी बन्द हो गई।

किन्तु यह सब झूठ कब तक चलता। शीघ्र ही भण्डा फूट गया। यह सब धोखेबाजी ही थी। पीडिया जीवित, सर्वथा स्वस्थ तथा तब भी किलेमे ही था। मुगलोको किला सौप देनेसे उसने इनकार कर दिया और अब मुगलोपर पुन. आक्रमण करने लगा। यह सब देखकर सम्राट् क्रोध और लज्जाके मारे पागल हो उठा।

अब औरगज़ेबने सब ओरसे अपने सारे ही योग्यतम सेनापतियोको वहाँ बुलवा लिया। नसरतजग २७ मार्चको वहाँ आया और दूसरे दिन शाही घुडसवारोको साथ लेकर वह तेज़ीसे लाल टेकरीके पास जा पहुँचा।

घेरेके प्रारम्भमें इसी टेकरीपर एक बार [illegible] अधिकार हो गया था, परन्तु बादमें देशद्रोहियोंने उन्हें वहांसे पीछे हटनेको विवश किया था। इस टेकरी-पर चढ़कर ननरलजनने वहांसे शत्रुओंको मार भगाया। तब वे दूर भागकर पहाड़ीके नीचे तम्बकरोडमें आ पहुंचे और वहांकी मिट्टीकी दीवारोंके पीछे आश्रय लेकर वहींसे गोलियां चलाने लगे। ज्वार टेकरीके इस आक्र-मणमें तथा उस गांवके बाहर बहुतसे राजपूत मारे गए। किन्तु ननरलजन ने कप्तान बुदलाको आदेश दिया कि पासकी एक और पहाड़ीपर अधिकार कर ले जो तब भी शत्रुओंके हाथमें थी। इस दूसरी पहाड़ीसे भागकर वे हेन्पुरामें पहुंचे। इतनी मारकाटके बाद पत्थरकोटेके पास ही ननरलजनने जो स्थान अपने अधिकारमें कर लिया था, उसे उसने अपने हाथसे निकलने नहीं दिया। पहाड़ीके पासके जिन कुओंसे शत्रु अपने लिए पानी ले जाते थे, कुछ दिनों बाद ननरलजनने उनपर भी अधिकार कर लिया। २७ अप्रेलको उसने तम्बकरोडपर आक्रमण किया। जिन सिपाहियोंने विरोध किया उनको मारते हुए मुगल पत्थरकोटेवाली उस पेठमें घुसे, तब बाकी बचे हुए शत्रु वहांसे भाग खड़े हुए।

अब आगे युद्ध करना पेशवोंको सर्वथा निस्सार देख पड़ा। तब रातके समय पिछले दरवाजेसे निकलकर पीढ़िया नायक 'दुर्दिनोंके अपने मराठा साथियोंके साथ' भाग गया। दूसरे दिन रात पड़नेके बाद जब किलेमेंसे बन्दूकें चलना बन्द हो गईं, तब मुगल सैनिक किलेमें गए और उन्होंने किलेको बिलकुल ही निर्जन पाया। अब वहां गड़बड़ी, लूटमार और आग लगानेका अजीब दृश्य उपस्थित हुआ। शत्रुओंने किलेको खाली कर दिया है, यह समाचार फैलते ही शाही सेनाके अनुयायी, साधारण सैनिक और उन पंजाबके सारे ही गुर्जर-लुटेरे किलेमें आ घुसे [illegible] भागे। किलेमें पहुंचकर वहांकी सारी सम्पत्तियों शाही अधिकारी कब्जा कर लें उससे पहिले ही लुटेरोंने [illegible] गई जो उस समयमें थे सब उठा ले गए। [illegible] कुछ हथिया लाग आसपास [illegible] जा पहुंची, जिससे [illegible] उस और लोगोंसे [illegible] गए। दो-तीन दिन बाद [illegible] किलेमें भी विस्फोट हुआ। [illegible] दिन किया गया, परन्तु [illegible] कोठि [illegible] था, [illegible] नहीं [illegible] लोगोंके लिए [illegible] था। वे इस [illegible] लोगोंकी [illegible] गाने [illegible] ही गई।

११. औरंगजेबके निरन्तर युद्धोंके कारण देशका उजड़ना एव सर्वत्र अराजकताका फैलना

अकबरने जिसे स्थापित किया तथा शाहजहाँके समय जिसकी समृद्धि और शान-शौकतकी प्रसिद्धि सारे ससारमे फैल गई थी, ईसाकी १७वी शताब्दीके अन्तमे वही साम्राज्य निराशापूर्ण ह्रासकी अवस्थामे पहुँच गया था। साम्राज्यका राज्य-शासन, सस्कृति, आर्थिक जीवन, सैनिक शक्ति, और सामाजिक सगठन, सब-कुछ ही बडी तेजीसे विशृखलित हो सर्वनाशकी ओर बढ रहे थे। इन पच्चीस वर्षोंके निरन्तर युद्धोमे साम्राज्यके जान-माल, आदिका भयकर अपव्यय हुआ। दक्षिण देश तो पूर्णतया बरबाद हो गया। समकालीन विदेशी दर्शक मनुचीने लिखा है, "औरग-जेब अहमदनगरको वापस लौट गया, और पीछे उन प्रान्तोके खेतोमे वृक्षो और फसलोका नामो-निशान भी नही रहा, उनके बजाय सर्वत्र मनुष्यो और पशुओकी हड्डियोंके ढेर पडे थे। हरियालीके स्थानपर सर्वत्र खाली जमीन वीरान पडी थी। उनकी सेनामे प्रति वर्ष कुल मिलाकर एक लाख मनुष्य मरते थे, सेनामे प्रति वर्ष मरनेवाले पशुओ, बारबर-दारीके बैल, ऊँट, हाथियो, आदिकी सख्या तो तीन लाखसे भी ऊपर पहुँच जाती थी। दक्षिणी प्रान्तोमे सन् १७०२से १७०४ तक निरन्तर महामारी (और अकाल) बने रहे। इन दो वर्षोंमे कोई २० लाखसे अधिक प्राणी मरे।"

वागिनखेडाके पाससे रवाना होकर जब वह वापस उत्तरकी ओर लौट पडा, तब ५०-६० हजार मराठोका एक बडा दल शाही सेनासे कुछ ही मील पीछे-पीछे सगर्व चला। खाद्य-सामग्रीको शाही सेना तक न पहुँचने देने तथा पिछड जानेवालोको पकड ले जानेका वे प्रयत्न करते रहे, और कभी-कभी शाही पडावपर भी आक्रमण कर देनेका आयोजन करते थे।

इस सारी परिस्थितिको आँखो देखनेवाला भीमसेन लिखता है—"पूरे राज्यमे सर्वत्र मराठोका पूर्ण प्राधान्य हो गया और उन्होने सारे ही रास्ते रोक दिए। लूटमार कर वे अपना दारिद्र्य दूर करते तथा बहुतसा धन भी एकत्र कर लेते थे। मैने सुना है कि वे हर हफ्ते मिठाई और द्रव्य दान कर सम्राट्की दीर्घायुके लिए प्रार्थना करते हैं, क्योकि वह (उनके लिए तो अवश्य ही) विश्वम्भर है। धान्यकी कीमत दिनो-

दिन बढ़ती ही जा रही थी। शाही पड़ावमें तो विशेष रूपसे बहुत अधिक आदमी भूखों ही मर जाते थे। बलपूर्वक अनुचित रूपया वसूल करनेके अनेकों अवैध तरीक़े और कारण वहाँ प्रचलित हो गए थे। हिन्दुस्तानके होनेके नाते ही सम्राट् किसी भी नगरमें नहीं रहे हैं किन्तु इन युद्धों तथा तत्सं कष्टपूर्ण यात्राएँ करते रहनेका ही मार्ग उन्होंने चुना है; जिससे उनके पड़ावके अनुचरोंने अपने कुटुम्बियोंसे होनेवाले दीर्घकालीन विछोहसे क्षुब्ध हो उन्हें भी पड़ावमें ही बुला लिया तथा वे सब तब वहाँ उनके साथ रहने लगे थे। (उन तम्बुओंमें ही) जो एक नई पीढ़ीका जन्म हुआ, वही शिशु युवा हुए और युवक बूढ़े हो गए, तथा वृद्धावस्था पार कर आगे देवताओंके उन परलोकोंको भी उन्होंने सवारी कर ली, किन्तु फिर भी उन्होंने कभी घरकी सूरत नहीं देखी और सदैव यही जाना कि सम्राट्से रहनेके लिए डेरेके अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रय स्थान नहीं है। जब कभी मराठे किसी स्थानपर आक्रमण करते हैं तब वहाँके प्रत्येक परगनेसे जितना भी वे चाहते हैं रुपया ले लेते हैं और वे अपने घोड़ोंसे खड़ी फसलें चिराते हैं या उनसे उन फसलोंको रौंदवा देते हैं। उनका पीछा करती हुई जो भी शाही सेना आती है, उन गाँवोंके (पुन:) आबाद किए जानेपर ही उनका वहाँ कुछ भी गुज़ारा हो सकता है। सारी शासन-व्यवस्था विलीन हो गई है।...... साम्राज्य वीरान हो गया है। रैयतने खेती करना छोड़ दिया है जागीरदारोंको अपनी जागीरोंसे एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती है। अपने अधिकारियोंको वेतन देनेकी मराठा शासनकी प्रथा भी उठ गई है। अतएव मराठा गवर्नरगण चोरी और लूटमार करके ही अपना पालन करने लगे हैं, और अपनी लूटसे प्राप्त मालका थोड़ा-सा ही भाग वे अपने राजाको भी देते हैं।"

१२. लूटमार तथा युद्ध करनेके मराठोंके तरीके

[illegible] भी मराठोंपर [illegible] प्रकाश डाला था। "जहाँ कहीं भी वे आक्रमणकारी फौज [illegible] थे, [illegible] आदि लूट [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

राहदार भी नियुक्त करते थे। सैनिकोका नायक ही उनका सूबेदार होता था, किसी भी बडे कारवाँके आनेकी सूचना मिलते ही वह (कोई) सात हज़ार घुडसवारोंके साथ उसे जा मिलाता और उसे लूट लेता था। चौथ वसूल करनेके लिए उन्होने सर्वत्र कमाविशदार नियुक्त कर दिए थे। जब कभी कोई सशक्त ज़मीदार या शाही फौजदार कमाविशदारका विरोध कर उसे वहाँसे चौथ वसूल नही करने देता, तब कमाविशदारकी मदद-के लिए सूबेदार वहाँ जा पहुँचता और वहाँकी वस्तीको घेरकर उसे वीरान कर देता था। मराठा राहदारका कार्य यह था—जब कभी कोई व्यापारी चाहता कि मराठोकी किसी भी बाधाके विना ही वह कहीकी यात्रा करे तब राहदार उससे प्रत्येक गाडी या वैलका कुछ रुपया लेकर उसके लिए वह रास्ता खुला कर देता था। शाही फौजदार जो राहदारी वसूल करता था उसका तीन या चार गुना रुपया मराठा राहदार यो हडप लेता था। प्रत्येक सूबेमे मराठोने एक या दो गढियाँ बनवाईं, जहाँ वे आश्रय ले सकें और जहाँसे चलकर वे आसपासके प्रदेशपर धावा मार सकें।" (खफीख़ाँ)।

सन् १७०३के बाद सारे दक्षिणमे तथा उत्तरी भारतके भी कुछ भागोमे मराठोका ही पूरा दौरदौरा था। मुगल अधिकारी बेवससे हो गए और आत्मरक्षा तथा बचावकी ही सोचने को बाध्य हुए। उनकी शक्ति बढनेके साथ ही मराठोकी चालो तथा गति-विधिमे भी परिवर्तन होने लगे। शिवाजी और शम्भूजीके समयमे जिस तरह चपल छापा-मार मराठे लूटमार कर भाग जाते थे, अरक्षित व्यापारियो और गाँवोको लूटते थे और मुगल सेनाके आनेकी सूचना मिलते ही तत्काल बिखर जाते थे, अब उनका यह सारा तरीका ही बदल गया, जिसे देखकर सन् १७०४मे मनुचीने लिखा था—"आजकल ये (मराठा) सेनानायक तथा उनके सैनिक पूर्ण आत्मविश्वासके साथ घूमते-फिरते हैं, क्योकि उन्होने मुगल सेनापतिओको त्रस्त कर दिया है और मुगल उनसे अव डरने भी लगे है। अब उनके पास तोपें, बन्दूकें, तीर-कमान, आदि सब-कुछ है और उनका माल-असबाव तथा तम्बुओको ढोनेके लिए उनके अपने हाथी और ऊँट भी हैं। साराश यह है कि अव मराठा सेना भी मुगल सेनाकी ही तरह सुसज्जित तथा उसीकी तरह प्रयाण भी करती है।"

औरंगज़ेबके राज्यकी भीतरी व्यवस्था भी पूर्णतया विश्रृंखलित हो गई थी। अधिकारी असाध्य भ्रष्टाचारी और बिलकुल ही अयोग्य हो गए

थे, शाही आज्ञाओंके विरुद्ध स्थानीय शासक सारे बन्द किए गए पर (अबवाब) पुन वसूल करने लगे, उनके कुटारोंमें [illegible] कर्मचारी औरंगजेबके आदेशोंका उल्लंघन करते थे, तथा सारे शासकी कार्यदक्षता ही नष्ट हो गई।

१३. औरंगजेबका अहमदनगरको लौटना, १७०५

२७ अप्रैल, १७०५के दिन वागिनगेडापर अधिकार हो जानेके बाद औरंगजेबने अपना पड़ाव वहाँसे उठा लिया। अब उस किलेसे छह मील दक्षिणमें कृष्णा नदीके किनारे देवापुर नामक एक शान्त हरे-भरे गाँवमें औरंगजेबने अपना पड़ाव किया। अब उसकी उम्र [illegible] से नब्बे वर्षकी हो गई थी, एवं इन पिछले दिनोंकी [illegible] मिहनतके कारण वह यहाँ बीमार पड़ गया।

सारे पड़ावमें निराशा छा गई। अत्यधिक दर्दके मारे वह बारम्बार बेसुध हो जाता था। इसी हालतमें उसने १०-१२ दिन निकाले, और तब बहुत ही धीरे-धीरे उसकी हालत सुधरने लगी, किन्तु फिर भी अत्यधिक दुर्बलता बनी ही रही।

२३ अक्तूबर, १७०५को उसने देवापुरसे पड़ाव उठा लिया, और पालकीमें बैठकर वह उत्तरकी ओर लौटा। छोटी-छोटी दूरीपर प्रति दिन पड़ाव करता हुआ वह [illegible] ७० [illegible], १७०६को अहमदनगर पहुँचा। दक्षिण-विजयके लिए जिस दिन वह यहाँसे गया था, उसके पूरे २३ वर्ष बाद वह यहाँ लौटा। इसी स्थानको उसने अपनी (जीवन-) यात्राका अन्तिम पड़ाव घोषित किया।

१४. औरंगजेबके अन्तिम वर्षोंके दुःख और निराशाएँ

औरंगजेबकी जिन्दगीके अन्तिम वर्ष [illegible] दिखाई देता है कि [illegible] दुःखके [illegible] अनेक वर्षोंका परिणाम [illegible] और सारे [illegible] और [illegible] जाने [illegible] औरंगजेबका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उसका [illegible]

असदखाँ ही उसका एकमात्र व्यक्तिगत साथी रह गया था, और वह भी उम्रमे औरगजेबसे पाँच वर्ष छोटा था। जब बूढा सम्राट् अपने शाही दरबारियोकी ओर दृष्टि डालता था, तब उसे अपने चारो ओर कम उम्रके ही व्यक्ति दिखाई पढते थे, जो स्वभावसे ही भीरु, चाटुकारी, जिम्मेवारी लेनेसे घबरानेवाले, सच बात कहते हिचकिचाने तथा अपने स्वार्थ और पारस्परिक द्वेषकी क्षुद्र भावनाओसे प्रेरित हो निरन्तर षड्यन्त्र करते रहनेवाले थे। उसके साथ अधिक आत्मीयता स्थापित करनेके लिए औरोका उत्साह उसके कट्टरतापूर्ण अतिसयमके कारण आप ही मन्द हो जाता था। सर्व-साधारणकी दृष्टिमे औरगजेब सासारिक हर्ष और विपाद तथा मानवीय दुर्बलताओ और करुणासे बहुत ही ऊपर था, साधारण मानवीय गुणोमेसे कदाचित् ही कोई उसमे पाया जाता था, तथा यहाँ रहते हुए भी वह इस लोकका प्राणी नही प्रतीत होता था, अतएव उनके हृदयोपर उसका ऐसा अलौकिक आतक छाया हुआ था कि वे उससे दूर ही रहते थे। साम्राज्यके निरन्तर बने रहनेवाले काम-काजसे जब कभी उसे कुछ अवकाश मिलता था तब दो ही व्यक्ति उसके सहचर होते थे, एक तो थी उसकी बेटी ज़ीनत्-उन्निसा, जो स्वय भी अब वढी हो चली थी, और दूसरी थी उसकी सबसे छोटी पत्नी पशुकी-सी मूर्ख अर्द्धांगी उदयपुरी बेगम, जिसके पुत्र कामवख्शकी मूर्खतापूर्ण सनको तथा व्यसनी स्वेच्छाचारने उसके शाही पिताकी सारी आशाओको भग कर दिया था। औरगज़ेबकी मरती हुई आँखोने अपने कई निकट सम्बन्धियोको एक-एक कर इस लोकसे विदा होते देखा, जिससे इन अन्तिम दिनोमे उसका गार्हस्थ्य जीवन दु ख और निराशाके अन्धकारसे पूर्णतया भर गया था।

१५. शाही प्रदेशोंमें मराठोंके उत्पात : १७०६-१७०७

अप्रेल या मई, १७०६मे अपने सारे बडे-बडे सेनापतियोंके नेतृत्वमे एक बडी मराठा सेना शाही पडावसे चार मीलकी दूरीपर आ धमकी और वहाँ आक्रमण करनेका भी उसने आयोजन किया। इस मराठा सेना-का सामना करनेके लिए औरगजेबने खान-इ-आलम तथा अन्य सेना-नायकोको भेजा। बहुत देर तक घमासान युद्ध करनेके बाद ही वे मराठो को वहाँसे दूर हटानेमे समर्थ हुए।

उधर गुजरातमे मुगलोपर एक भयकर आपत्ति आ गई। खानदेशका

नूगन्द नामक एक मराठा अब कुछ समयसे दिन-दहाड़े डकैती करने लगा था, अब उसने मराठा सेनापतियोंसे सम्बन्ध जोड़ा, और धन्ना जादव तथा उनकी सेनाके साथ लेकर उसने मार्च १७०६में गुजरातके धनी व्यापार-केन्द्र बड़ौदाके नगरको लूटा। वहाँके फौजदार नजरअलीको हरा-कर मराठोंने उसे तथा उसके सैनिकोंको कैद कर लिया।

इसी प्रकार धन्ना जादव और अन्य मराठा सेनापतियोंके नेतृत्वमें कई मराठा दल औरंगाबादके प्रान्तको बारम्बार लूटते रहते थे।

सितम्बर, १७०६में जब वर्षा ऋतु समाप्त हुई तब मराठोंके उपद्रव दस गुना हो गए। धन्ना जादवने मुगलोंके पुराने प्रदेश बरार और खान-देशपर धावा मारा, किन्तु मीरजाके अपने पड़ावसे चलकर नसरतजंगने उसका पीछा किया, तब बीजापुरकी ओर होता हुआ धन्ना कृष्णा नदीके पार भाग गया। उधर औरंगाबादसे शाही पड़ावको आनेवाले एक बहुत लम्बे काफिलेको अहमदनगरसे २८ मीलकी ही दूरीपर चाँदाके पास मराठों-ने लूट लिया और उनका सब-कुछ वे छीन ले गए।

१६. औरंगजेबके अन्तिम दिन

औरंगजेबकी सेनाओंके चारों ओर जब इस प्रकार अनेकों आपत्तियाँ बढ़ती जा रही थीं, तब शाही पड़ावकी आन्तरिक कठिनाइयोंके कारण वहाँकी परिस्थिति और भी अधिक कष्टपूर्ण हो गई थी। अपने अमीम अहंकार तथा महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित हो मुहम्मद आज़म उत्सुक था कि अपने सारे अन्य प्रतिद्वन्द्वियोंको अभीसे रास्तेसे हटाकर वह स्वयं औरंगजेब-का उत्तराधिकारी बने। इसी कारण उसने सम्राट्के [illegible] शाह-आलमके तीसरे बेटे मुहम्मद अजीमुश्शानको बंगालकी सूबेदारीसे वापस लौट आनेका आदेश भिजवा दिया था। [illegible] वजीर असदखाँ और कुछ अन्य अमीरोंको भी उसने अपने पक्षमें कर लिया था। जब यह [illegible] [illegible] था। [illegible] [illegible] (मीर बख्शी) [illegible] [illegible] हो गया।

फरवरी, १७०७के [illegible] [illegible] और

दौरा औरंगजेबको हो गया, इधर कुछ समयसे ऐसे दौरे अधिक जल्दी-जल्दी होने लगे थे। तब कुछ समयके लिए पुन उसका स्वास्थ्य सुधर-सा गया और वह सदैवके समान फिर अपना दरबार करने तथा राजकीय कार्यकी देखभाल करने लगा। किन्तु उसने अनुभव किया कि होनहार अब अधिक दूर न था। उधर आजमकी दिनोदिन बढनेवाली अधीरता और उसकी हिंसापूर्ण उच्चाकाक्षा किसी भी दिन मर्यादासे बाहर हो सकती थी, जिससे उस शाही पडावकी शान्ति तथा वहाँ एकत्र जन-समाजकी कुशलके लिए वे बहुत ही भयकारक हो गईं। अतएव औरंगजेबने कामबख़्शको बीजापुरका सूबेदार नियुक्त कर, एक बडी सेनाके साथ उसे ९ फरवरीके दिन अपने प्रान्तके लिए रवाना किया। चार दिन बाद १३ फरवरीको उसने मुहम्मद आजमको मालवाका सूबेदार बनाकर मालवा जानेके लिए उसे भी वहाँसे बिदा कर दिया, किन्तु वह चालाक शाहजादा जानता था कि उसके पिताकी मृत्यु अब निकट ही थी एव वह बहुत ही धीरे-धीरे चल रहा था और हर दूसरे दिन विश्राम भी करता जाता था।

अपने पाससे अपने सब बेटोको बिदा कर देनेके चार दिन बाद ही उस थके बूढे जर्जरित सम्राट्को तेज़ बुखार हो गया, फिर भी तीन दिन तक हठ कर वह बराबर दरबारमे आ औरोके साथ ही यथा समय दिनमे पाँच बार नमाज पढता रहा। इन दिनोमे वह भावी अनिष्ट-सूचक निम्न-लिखित दो पक्तियाँ प्राय दुहराया करता था —

"प्रति पल, प्रति क्षण, श्वास-श्वासमे,
यह नश्वर जगत होता परिवर्तित।"

अपने इन अन्तिम दिनोमे उसने अपने पुत्रो, आजम और कामबख़्शके नाम बहुत ही करुणापूर्ण दो पत्र लिखवाए, जिनके अनुवाद आगे परि-शिष्टमे दिए हैं। इनमे उसने सासारिक वस्तुओकी असारताकी ओर निर्देश कर आपसमे भ्रातृस्नेह बढाने तथा जीवनमे शान्ति और सयम प्राप्त करनेके लिए विशेष आग्रह किया।

शुक्रवार, २० फरवरी, १७०७के प्रात कालमे औरंगजेब अपने शय-नागारसे निकला, उसने सुबुहकी नमाज पढी और तब हाथमे माला लेकर जप करने तथा इस्लाम धर्मके मुख्य मन्त्रोको—ईश्वर एक है और मुहम्मद ही उसके एकमात्र सच्चे पैगम्बर हैं—वह दुहराने लगा। धीरे-धीरे उसपर बेहोशी छाने लगी, साँस रुक-रुक कर चलने लगी, किन्तु

अपने शरीरकी इन स्वाभाविक दुर्बलताओंपर भी उस दुर्दम आत्माका इतना पूर्ण आधिपत्य था कि आठ बजेके लगभग जब तक उसका शरीरान्त नहीं हो गया उसकी अँगुलियाँ निरन्तर माला फेरती ही रहीं और उसके ओठ 'कलमा' का जाप करते रहे। उसकी बड़ी इच्छा थी कि मुसलमानोंके लिए बहुत ही पवित्र दिन शुक्रवारको ही उसका शरीरान्त हो, और उस उदार परमात्माने अपने एक नम्र भक्तकी इस प्रार्थनाको भी स्वीकार किया।

२२ फरवरीको मुहम्मद आजम लौटकर पड़ावमें पहुँचा, और अपने पिताकी मृत्युपर मातम मनाकर तथा अपनी बहिन ज़ीनत्-उन्निसा बेगम-को सान्त्वना दे, उसने कुछ दूर तक अपने पिताके शवको कन्धा दिया और तब मुसलमान सन्त शेख़ ज़ैनुद्दीनकी समाधिकी चहारदीवारीमें ही गाड़े जानेके लिए उसे दौलताबादके पास खुल्दाबाद भेज दिया गया।

महान् मुगल सम्राटोंमें एकको छोड़ कर दूसरे सबसे महान् इस मुगल शासककी अस्थि, आदि अवशेषोंपर एक साधारण-सी सीधी-सादी कब्र बनी हुई है, यहाँ न तो नीचे कोई संगमरमरका चौतरा ही बना हुआ है और न ऊपर कोई सुन्दर सुडौल गुम्बज ही है; हाँ! दिल्लीके बाहर बनी हुई उसीकी बहिन जहाँनाराकी कब्रके समान औरंगज़ेबकी कब्रके ऊपर खुले गए घाट पर उसमें खुदी हुई गहराईमें भी हरी-हरी दूब उगानेके लिए मिट्टी भरी हुई है।

है उनसे मुझे खेदके अतिरिक्त कुछ नही मिला। न मैने साम्राज्य-पर ही कोई (सच्चा) शासन किया और न मै अपनी प्रजाका पालन ही कर पाया।

"ऐसा बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही बीत गया। मेरा स्वामी सदैव मेरे घरमे विद्यमान रहा है, किन्तु मेरी अधी आँखें उसके वैभवको नही देख सकती है। जीवन स्थायी नही होता है, गए बीते दिनोका कोई चिन्ह भी नहीं रह जाता है, और भविष्यसे कोई भी आशा नही की जा सकती है।

"मेरा ज्वर उतर गया है, और पीछे रह गए हैं केवल चमडी और यह ऊपरी भूसा। मेरा पुत्र कामबख्श, जो बीजापुर गया हे, मेरे पास ही है। और तुम तो उससे भी अधिक निकट हो। मेरे पुत्रोमेसे प्यारा शाहआलम ही सबसे अधिक दूर है। उस परमात्माकी ही इच्छानुसार पौत्र मुहम्मद अजीम (बगालसे लौटकर) हिन्दुस्तानके पास तक आ पहुँचा है।

मेरे सारे सैनिक भी मेरे समान ही असहाय हतबुद्धि और घबराए हुए हैं। अपने प्रभुको छोड देनेके कारण ही मैं पारेके समान चचल और उद्विग्न हूँ। वे (सैनिक) यह नही सोचते कि हमारा स्वामि परमपिता (सदैव हमारे) साथ है। मै अपने साथ (इस जगतमे) कुछ भी नही लाया था, और अब अपने पापोका भार मै अपने साथ ले जा रहा हूँ। मै नही जानता हूँ कि मुझे क्या दण्ड मिलनेवाला है। यद्यपि मुझे उसकी उदारता और दयाकी पूरी-पूरी आशा है, फिर भी अपने किए हुए कर्मोके कारण ही यह चिन्ता मुझे नही छोडती है। जब मै अपने आपसे ही विदा हो रहा हूँ तब दूसरा और कौन मेरे साथ रहेगा ?" (पद्य)

"हो कैसा भी वहाँ तूफान,
डाल रहा हूँ जलमे अपनी नौका मै अनजान।

"यद्यपि वह परम पालक अपने दासोको बचाता ही रहेगा, फिर भी बाहरी दुनियाकी दृष्टिसे तो मेरे पुत्रोका यह कर्तव्य है कि उसके (ईश्वरके) जीव और मुसलमान व्यर्थ ही नही मारे जावें।

"मेरे पौत्र बहादुरको (अर्थात् बेदारबख्तको) मेरे अन्तिम आशीर्वाद पहुँचा देना। विदाईके समय मै उसे नही देख सका हूँ, उससे मिलने-

की इच्छा रह गई। जैसा कि दिखाई देता है, बेगम दुःखके मारे गमगीन है, किन्तु ईश्वर सबके हृदयोंका स्वामी है। दृष्टि संकुचित हो जानेपर निराशाके अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं लगता।

"विदा! विदा! अलविदा!"

२. कामबख्शके नाम औरंगजेबका अंतिम पत्र

"मेरे पुत्र, मेरे कलेजे (के समान जो मेरे दिलके निकट है)! यद्यपि अपने प्रभुत्व-कालमें मैंने ईश्वरेच्छाके प्रति आत्मसमर्पण करनेकी सलाह दी, और जहां तक भी सम्भव हो सका अपनी शक्तिसे भी परे सर्व प्रयत्न किया, किन्तु ईश्वरको वह मंजूर नहीं था, और किसीने भी मेरी एक न सुनी। अब मैं मर रहा हूं एवं इस सम्बन्धमें मेरे कुछ भी कहनेसे कोई लाभ नहीं होगा। जो भी पाप और कुकर्म मैंने किए हैं उनका भार मैं अपने साथ ही ले जाऊँगा। कैसी विचित्र बात है कि मैं (जगतमें) अकेला ही आया था और (अब) अपने साथ इतना (बड़ा) काफिला लिए वापस लौट रहा हूं। जिस ओर भी मैं दृष्टि डालता हूं, वहां उस ईश्वरके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस काफिलेका नायक नहीं देख पाता हूं। सेना तथा दलानुयायियोंकी चिन्ताके मारे ही मेरा मस्तिष्क उद्विग्न हो गया है और इस अन्तिम समय भी उन्हींकी आशंकाएं मुझे सता रही हैं। यद्यपि ईश्वर अपने प्राणियोंकी सुरक्षाका भार उठायेगा, किन्तु नाते मेरे पुत्रों और मुसलमानोंका भी यह कर्तव्य है। जब मेरा शारीरिक बल भरपूर था, तब मैं यत्किंचित् भी इनकी सुरक्षा नहीं कर सका, और अब तो मैं अपने आपकी भी देख-रेख नहीं कर सकता हूं। मेरे अंगोंका हिलना-डुलना भी बन्द हो गया है। जो सांस निकल जाती है उसके वापस लौटनेकी भी कोई आशा नहीं रहती। ऐसी अवस्थामें सिवाय प्रार्थनाके और मैं कर ही क्या सकता हूं? मेरी बीमारीके समय तुम्हारी माता उदयपुरीने (बेगमने) मेरी सेवा-सुश्रूषा की और वह मेरे साथ (परलोकमें) चलनेको उत्सुक है। तुम्हें और तुम्हारे बाल-बच्चोंको मैं

१ [illegible] २१,२,४८ [illegible] [illegible] जाता है।

ईश्वरके भरोसे छोडता हूँ। मैं तो कॉंप रहा हूँ। तुमसे मै विदा लेता हूँ सासारिक लोग धोखा देते है (अक्षरश अर्थ होगा—गेहूँका नमूना दिखाकर वे जौ ही बेचते हैं), उनकी ईमानदारीपर विश्वास करके ही कोई काम न करो। सकेतो और लक्षणो द्वारा ही काम किया जाना चाहिए। दाराशिकोहने ठीक प्रबन्ध नही किया था, जिससे वह अपने ध्येय तक पहुँचनेमे असफल रहा। उसने अपने सैनिकोका वेतन पहिलेसे भी बहुत अधिक बढा दिया था, किन्तु जब आवश्यकता हुई तब उसके प्रति उनकी सेवाएँ दिनोदिन घटती ही गईं। इसी कारण वह दु खी था। अपनी शतरजीकी सीमाके भीतर ही पॉव रखो।

"जो कुछ भी मुझे तुम्हे कहना था वह यहाँ बता दिया है। अब मै बिदा लेता हूँ। इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रखो कि किसान और प्रजा व्यर्थ ही बरबाद न हो, और मुसलमान न मारे जावें, अन्यथा इस सबका दण्ड मुझे भुगतना पडेगा।" (इण्डिया आफिसमे सगृहीत, हस्तलिखित ग्रथ स० १३४४, प० २६ अ)।

३. औरगजेबका अन्तिम वसीयतनामा

(इण्डिया आफिस लायब्रेरीमे सगृहीत, हस्तलिखित ग्रन्थ स० १३४४, प० ४९ ब। कहा जाता है कि औरगजेबके ही हाथका लिखा हुआ यह कागज़ उसकी मृत्यु-शैय्याके तकियेके नीचे पडा मिला था।)

मैं (अपने जीवन भर) असहाय था, और अब वैसा ही निस्सहाय मैं यहाँसे विदा ले रहा हूँ। मेरे जिस किसी भी पुत्रको सम्राट् बननेका सौभाग्य प्राप्त हो उसे चाहिए कि यदि बीजापुर और हैदराबादके दो प्रान्त लेकर ही कामबख़्श सन्तुष्ट हो जावे तो उसको वह नही सतावे। असदखाँसे अच्छा वजीर न हुआ है और न (आगे भी कभी) होगा। दक्षिणका दीवान दयानतखाँ अन्य शाही अधिकारियोसे बेहतर है। अपने जीवनकालमे साम्राज्यके बँटवारेका मैने जो प्रस्ताव किया था, उसे स्वीकार कर लेनेके लिए मुहम्मद आजमशाहसे स्वामिभक्तिपूर्ण आग्रहके साथ प्रार्थना की जावे, अगर वह उनके लिए तैयार हो जावे तो विभिन्न सेनाओमे कोई युद्ध नही होगे और न मनुष्योकी हत्या ही होगी। मेरे वशपरम्परागत सेवकोको न तो नौकरीसे अलग किया जावे और न

उनको मनाया जावे। खिलाफतमन्द होनेवालेको दिल्ली और आगरेके सूबोंमेंसे कौनसा भी एक सूबा लेना चाहिए। जो कोई भी आगरा सूबा लेनेको तैयार हो उसे पुराने साम्राज्यके चार सूबे—आगरा, मालवा, गुजरात और अजमेर तथा उनके साथ सम्बद्ध जगहें भी—तथा दक्षिणके चार सूबे—खानदेश, बरार, औरंगाबाद और बीदर तथा उनके बन्दरगाह भी मिलेंगे। जो दिल्ली सूबा लेनेको सहमत होगा उसे पुराने साम्राज्यके ग्यारह सूबे—दिल्ली, पंजाब, काबुल, मुलतान, थत्ता, कश्मीर, बंगाल, उड़ीसा, बिहार, इलाहाबाद, और अवध मिलेंगे। (फ्रेजर कृत 'नादिरशाह', पृ० ३६-३७में इस बँटवारेका दूसरा पाठान्तर दिया है, अर्विन कृत 'लेटर मुगल्स', १, पृ० ६ भी देखो।)

हामिदुद्दीन खान बहादुर कृत 'अहकाम-इ-आलमगीरी' में औरंगजेबका कहा जानेवाला एक दूसरा वसीयतनामा दिया गया है। (इस ग्रन्थका मूल भाग तथा अनुवाद मैंने 'एनेकडोट्स आफ औरंगजेब' नामसे प्रकाशित किया है, देखो उसका अध्याय ८)। वह इस प्रकार है —

"मैं ईश्वरकी वन्दना करता हूँ। उसके जो सेवक (उसकी भक्तिमें लगकर) स्वयं पवित्र हो गए हैं, और जिनसे वह सन्तुष्ट है, उन्हें मैं आशीर्वाद देता हूँ।

मेरी अन्तिम वसीयत और मृत्युलेख (के रूपमें मेरे कुछ निर्देश यह) हैं :—

(१) अन्यायमें डूबे हुए इस पापीकी (अर्थात् मेरी) ओरसे हसनकी—परमात्मा उन्हें शान्ति प्रदान करे—पवित्र मजारको (चादर चढ़ाए गए कपड़ेसे) ढाँक देना, क्योंकि पापके सागरमें डूबे हुओंके लिए दया और क्षमाके उस द्वारका सहारा लेनेके अतिरिक्त उनको बचानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस महान् पुण्यात्मक कार्यको पूरा करनेके साधन मेरे पुत्र शाहजादे आलीजाहके (आजमके) पास हैं, वे उनसे प्राप्त करो।

(२) मेरी सी हुई टोपियोंकी कीमतसे प्राप्त रुपयोंमेंसे बचे हुए चार रुपये और दो आने महालदार आयाबेगके पास जमा हैं। उनसे मेरा कफन मोल इस असहाय प्राणीका कफन और मैयत खरीदी जावे। कुरान-शरीफ नकल करके कमाए गए तीन सौ पाँच रुपये मेरे व्यक्तिगत खर्चके लिए मेरे बटुएमें हैं। मेरी मृत्युके दिन उन्हें फकीरोंको बाँट देना। शिया मतके

कर कमाए हुए धनको शिया सम्प्रदायवाले आदरणीय समझते हैं,[1] अतएव उसे मेरे कफन आदि अन्य आवश्यकीय वस्तुओपर व्यय न करना।

(३) अन्य आवश्यक वस्तुएँ शाहज़ादे आलीजाहके कर्मचारीसे ले लेना, क्योकि मेरे पुत्रोमे वही मेरा निकटतम उत्तराधिकारी है, और (मुझे दफनाते समय) उचित या अनुचित (विधि)का सारा ही उत्तर-दायित्व उसीपर है, यह बेबस व्यक्ति (अर्थात् औरगज़ेव) उनके लिए जवाबदेह नही है, क्योकि मुर्दोका तो सब-कुछ ही पीछेवालोकी दयापर निर्भर रहता है।

(४) सच्चे मार्गसे बहककर दूर पथ-भ्रष्टोकी घाटीमे इस भटकने-वालेको खुले सिर ही गाड देना क्योकि जो कोई भी वरवाद पापी उस सम्राटो-के-सम्राट्के (ईश्वरके) सामने खुले सिर पहुँचता है, वह अवश्य ही उसकी दयाका पात्र वन जाता है।

(५) मेरी अर्थीपरके कफनको गाज़ी नामक सफेद मोटे कपडेसे ढॉकना। उसपर कोई तम्वू खडा नही किया जावे। गायको (के जुलूस) की-सी नई रस्मे न करना। पैगम्बरके मौलाद समान कोई उत्सव भी तव नही मनाया जावे।

(६) साम्राज्यके शासनके (अर्थात् मेरे उत्तराधिकारीके लिए) यह उचित होगा कि इस लज्जाविहीन प्राणीके साथ जो बेचारे सेवक मरु भूमि और (दक्षिणके) उजाड जगलोमे मारे-मारे फिरते रहे हैं, उनके प्रति दयापूर्ण वर्ताव करे। यदि उन्होने प्रकट रूपसे कोई अपराध किए हो, तव भी दयालुता दिखा (उनके अपराधोकी) उपेक्षा कर उदारतापूर्वक उन्हे क्षमा ही प्रदान करना।

(७) मुतसद्दीके कामके लिए ईरानियोसे वढकर दूसरी किसी जातिके व्यक्ति नही होते हैं। सम्राट् हुमायूँके समयसे लेकर अव तक युद्धमे भी इस जातिके किसीने भी युद्ध-क्षेत्रसे मुँह नही मोडा है, उनके सुदृढ पाँव कभी नही उखडे हैं। अपने स्वामीकी आज्ञाओका उल्लघन या उसके प्रति विश्वासघातका अपराध उनसे कभी नही हुआ है। किन्तु उन्होने

---

१ हस्तलिखित प्रति एन्-के पाठान्तरका यह भी अर्थ हो सकता है कि "कुरानकी नकलें कर प्राप्त किए गए धनको शिया सम्प्रदायवाले अवैध [प्रकारका धन] मानते हैं"।

इस बातपर सदैव जोर दिया है कि उनके प्रति विशेष आदरके साथ निर्वाह होना सदैव कठिन हो रहा है। किसी तरह उनका समाधान कर बड़ी ही चतुराईके साथ तुम्हें उनके प्रति व्यवहार करना चाहिए।

(८) तूरानी लोग सदैवसे सैनिक ही रहे हैं। आक्रमण करने, धावा मारने, रातके समय छापा मारने और शत्रुको पकड़नेमें ये बड़े ही चतुर होते हैं। युद्ध करते-करते वापस हटनेकी आज्ञा पाकर अर्थात् दूसरे शब्दोंमें चढ़े हुए तीरको पीछा उतार लेनेमें भी कोई आपत्ति, निराशा या लज्जाकी भावना उन्हें बिल्कुल ही नहीं सताती है। (युद्धमें) अपने स्थानसे न हटकर अपना सिर तक कटवानेकी हिन्दुस्तानियोंकी-सी घोर मूर्खतासे ये सैकड़ों कोस दूर हैं। इस जातिके प्रति तुम्हें हर तरहकी कृपा दिखानी चाहिए, क्योंकि कई एक अवसरोंपर ये जैसी महत्त्वपूर्ण आवश्यक सेवा कर सकते हैं वैसी दूसरे कोई नहीं कर सकते।

(९) बारहाके सैय्यद पूज्य हैं, एवं उनके प्रति तुम्हारा बर्ताव कुरानकी इस आयतके अनुसार होना चाहिए, "(पैगम्बरके) निकट सम्बन्धियोंको उनके अधिकारके अनुसार सब कुछ दो।' पुनः उनका आदर करने तथा उनके प्रति कृपा दिखानेमें कभी ढिलाई न करो। पवित्र वाक्यमें लिखा है, "मैं कहता हूँ कि इसके लिए बदलेमें (मेरे) सम्बन्धियोंके प्रति प्रेमके सिवाय मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहता', तदनुसार इस घरानेके प्रति स्नेह (मुहम्मद साहबकी) पैगम्बरीका उपहार-स्वरूप है एवं उनके प्रति यह प्रदर्शित करनेमें भूल न करो और उसका फल तुम्हें इस लोक तथा परलोक दोनोंमें मिलेगा। किन्तु बारहाके इन सैय्यदोंके साथ अपने व्यवहारमें तुम्हें फूँक-फूँकर सावधानी बरतनी चाहिए। हृदयसे उनके प्रति पूर्ण प्रेम रखो, किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे कभी उनको ऊँचा पद न दो। क्योंकि एक बार शासनमें पूर्ण शक्ति प्राप्त कर लेनेके बाद स्वयं सम्राट् बननेकी इच्छा होने लगती है। यदि कभी तुमने [illegible] भी उनके हाथमें शासन सौंपा तो उसका परिणाम तुम्हारा अपना ही अपमान होगा।

(१०) कभी भी किसी प्रकार [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] नहीं डालना चाहिए। क्योंकि एक

स्थानपर ठहरनेसे उसे ऊपरी तौरपर विश्राम मिलेगा, किन्तु वास्तवमे उससे हजारो आपदाएँ और कष्ट उसके सिरपर आ पडेगे।

(११) कभी जपने पुत्रोका विश्वास न करो, और न अपने जीवन-कालमे ही उनके साथ घनिष्ठताका वर्ताव करो। क्योकि यदि सम्राट् शाहजहाँने दाराशिकोहके साथ ऐसा वर्ताव नही किया होता तो उसका वह खेदजनक अन्त नही होता। सदैव इस कहावतको ध्यानमे रखो कि—"सम्राट्के शब्द सदैव निष्फल ही रहते है"।

(१२) साम्राज्यके समाचारोकी पूरी जानकारी रखना ही शासनका प्रधान आधार-स्तम्भ है। एक क्षणकी असावधानीके फलस्वरूप अनेको वर्षों तक अपमान भुगतना पडता है। मेरी ही लापरवाहीसे वह नराधम शिवा निकल भागा, और (उसका परिणाम यह हुआ कि) मुझे अपने जीवनके अन्त तक (मराठोके विरुद्ध) कडी मिहनत करनी पडी।

(सख्याओमे) बारह एक पवित्र सख्या है, अतएव मैने भी बारह आदेशोसे ही इसे समाप्त किया है। (पद्य)

यदि तुम इस (शिक्षाको) ग्रहण करोगे तो मै तुम्हारी बुद्धिको प्यार करूँगा।

यदि तुमने उसकी अवहेलना की तो अफसोस ! सद् अफसोस ! !

०

अध्याय १७

उत्तरी भारतका विवरण

१. मारवाड़में तीस-वर्षीय युद्ध

जून, १६८१ ई०में महाराणाके साथ सन्धि करके जब औरंगजेब स्वयं दक्षिण चला गया तब मेवाड़के साथ होनेवाला युद्ध समाप्त हो गया, किन्तु मारवाड़में यह राजपूत-युद्ध आगे भी चलता ही रहा। राठौरोंके राज्यके महत्त्वपूर्ण नगरों तथा सामरिक महत्त्वके स्थानोंपर तब भी मुगल सेनाओंका ही अधिकार था, और स्वामिभक्त राठौर विरोधी वर्ग उनके विरुद्ध युद्ध चलाए जा रहे थे। उन विरोधी राठौरोंने पहाड़ियों तथा मरु-भूमिपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। वहांसे खुले-खुले मैदानोंपर धावा कर व्यापारियोंके काफिलों या अन्य यात्रियोंके साथ लूटमार करते थे, और जिन मुगल चौकियोंकी सुरक्षाका प्रबन्ध समुचित नहीं होता था उन्हें घेर लेते थे। उनके ऐसे आक्रमणोंके कारण खेतोंका जोतना-बोना या शाही सैनिकोंके संरक्षणके बिना यात्रा करना भी असम्भव हो गया था। कोई आश्चर्य नहीं कि मारवाड़में सब नगर उजाड़ हो गए, और राठौरोंके ख्यातकारने लिखा कि इन वर्षोंमें "अकाल और तलवारने मिलकर खेतोंको पूरी तरह निर्जन बना दिया।"

लगातार युद्ध, स्थानोंको जीतने तथा उजाड़ [illegible] रहनेसे ही मारवाड़की यह पीड़ित [illegible]। [illegible] सैनिक परिस्थितिकी प्रतिक्रिया [illegible] रहती थी, जिनसे [illegible] अन्तिम राठौर [illegible]

जेबकी मृत्युके बाद तत्काल ही उनका राजा अपने वंशपरम्परागत सिंहासनपर पुन आरूढ हो सका।

सन् १६८१से १७०७ ई० तकके इन २७ वर्षोका मारवाडका इतिहास अलग-अलग विभागोमे बँट जाता है। सन् १६८१से १६८७ ई० तक वहाँ मारवाडकी प्रजाकी तरफसे युद्ध चलता रह, उनका राजा वालक था और उनका जातीय नेता दुर्गादास मारवाड छोडकर सुदूर महाराष्ट्रमे था। अपने-अपने अलग नेताओके नेतृत्वमे राठौड राजपूत लडते ही रहे, उनपर कोई भी एक केन्द्रीय सत्ता नही थी। जहाँ कही भी हो सके वहाँ मुगलोपर आक्रमण करनेके सिवाय शत्रुके विरुद्ध लडाईकी उनकी कोई एक सम्मिलित योजना नही थी। यदा-कदा होनेवाले इन छोटे-छोटे युद्धोमे राठौडोकी वीरता तथा स्वामिभक्तिके कई एक अपूर्व उदाहरण सामने आए।

सन् १६८७मे जब दुर्गादास दक्षिणसे लौट आया और अजीतसिंह अपने अज्ञातवाससे प्रगट हुआ, तब इस युद्धका दूसरा दौर शुरू हुआ। तब पहिले तो राठौडोको उल्लेखनीय सफलता मिली। बूदीके हाडोके साथ आ मिलनेपर उन्होने मुगलोको मारवाडके मैदानोसे निकाल बाहर किया, मालपुरा और पुर-माण्डलपर सन् १६८७मे आक्रमण किया, तथा तीन वर्ष बाद अजमेरके सूबेदारको भी पराजित किया और लूटमार करते हुए मेवात और दिल्लीके पश्चिम तक जा पहुँचे। तथापि वे अपने देशपर अपना आधिपत्य नही स्थापित कर सके। सन् १६८७मे जब अजीतसिंह और दुर्गादास इस स्वजातीय सेनाका नेतृत्व करने लगे थे, उसी वर्ष औरगजेबकी ओरसे शुजातखाँ नामक एक बहुत ही सुयोग्य और साहसी व्यक्तिको जोधपुरका अधिकारी नियुक्त किया गया। अगले चौदह वर्ष तक वह इस पदपर बना रहा और उस अरसेमे उसने मारवाडपर मुगलोका आधिपत्य बनाए रखा।

मारवाडका फौजदार शुजातखाँ गुजरातका सूबेदार भी था। अपने अनुयायी सैनिकोकी सख्या वह कदापि कम होने नही देता था और उसके घूमने-फिरनेमे बहुत ही तत्परता तथा फुर्ती थी। हर साल वह कमसे कम छ और कई बार आठ महीने भी मारवाडमे तथा बाकी रहे महीने गुजरातमे बिताता था। अतएव जब कभी युद्धका मौका आ जाता तब वह राठौडोको सफलतापूर्वक रोक सकता था, किन्तु सन् १६८८मे उसने राठौडोके साथ एक समझौता भी कर लिया था। राहपरसे गुज़रनेवाले

व्यापारियोंके साथ राठोड़ोंके कोई छेड़-छाड़ न करनेपर उनसे वसूल होने-वाली शाही चुंगीका चौथा भाग राठोड़ोंको दे दिया जाता था। यह तो एक प्रकारकी चौथ ही थी।

किन्तु ९ जुलाई, १७०१को शुजातखाँ मर गया, और तब उसके स्थानपर मारवाड़की फौजदारी शाहजादे मुहम्मद आजमको दी गई। आजमने पुनः अजीतके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया, और यों राजपूतोंके स्वातन्त्र्य-युद्धका तीसरा दौर प्रारम्भ हुआ। दोनों ही पक्षोंकी बहुत खून-खराबी तथा कई एक हारोंके बाद अन्तमें मुगलोंकी गौरवपूर्ण नीति बिलकुल ही विफल हुई और सन् १७०७में मारवाड़के जातीय राजवंशने उस राज्यपर पूर्ण अधिकार कर लिया।

मारवाड़की राजधानी तथा वहाँके अन्य नगरोंपर मुगलोंका अधिकार हो जानेके बाद राठोड़ोंने पहाड़ों तथा दुरूह स्थानोंमें आश्रय लिया। किन्तु उन खुले मैदानोंपर तो तब भी राठोड़ोंके घुड़सवार दलोंके आक्रमण होते रहते थे। मारवाड़पर अधिकार करनेवाली उन सेनाकी एक या दूसरी चौकीके पास दोनों विरोधी दलोंकी मुठभेड़ होती रहती थी, जिसमें कभी एक और कभी दूसरे पक्षकी हार होती थी। ईश्वर-दासने उस समयकी दशाका बहुत ही अच्छा वर्णन किया है, वह लिखता है—"सूर्यास्तके दो घड़ी पहिले ही नगरके सारे दरवाजे बन्द हो जाते थे। किलेपर मुसलमानोंका राज्य था, किन्तु मैदानोंमें तो अजीतकी ही आज्ञाका पालन होता था। · · · सारे रास्ते [illegible] बन्द थे।"

२. दुर्गादासका मारवाड़में लौट आना: १६८७-१६९८

महाराष्ट्रसे लौटकर सन् १६८७में दुर्गादासके वापस मारवाड़ आने-पर वहाँ राठोड़ोंके [illegible] और [illegible] इस समय उन्हें एक बहुत ही उपयोगी साथी मिल गया। [illegible]

वतकी बहिनसे विवाह किया। कोई एक हजार हाडा सवारोके साथ उसके आ मिलनेसे राठौडोकी जातीय सेनाकी शक्ति वढ गई।

राठौडो और हाडोकी इस सम्मिलित सेनाने मुगलोकी अधिकाश चौकियोके सैनिकोको या तो मार डाला या उन्हे वहाँसे खदेड दिया। तब उन्होने उत्तरमे शाही प्रदेशोपर एक साहसपूर्ण धावा किया और शाही राजधानी दिल्लीके पास तक जा धमके। वहाँसे लौटनेके वाद माण्डलके पास एक युद्धमे दुर्जनसाल खेत रहा।

सन् १६७० ई०मे दुर्गादासको एक उल्लेखनीय सफलता मिली। अजमेरके नए सूबेदार सफीखाँ मारवाडकी सीमापर ससैन्य जा डटा था, दुर्गादासने उसे वापस अजमेर तक खदेड दिया। मारवाडके जिन भागोपर तव भी मुगलोका अधिकार था, निरन्तर लूटमार कर वहाँ वह उपद्रव करता ही रहता था, जिससे वहाँके रास्तोपर यात्रियोका आना-जाना भी आपत्पूर्ण हो गया था। ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जानेपर शुजातखाँको स्वय यह मामला हाथमे लेना पडा। उसने बडी ही चतुराई-से कई एक राजपूत मुखियाओ, ठाकुरो और पट्टावतोको अपने पक्षमे कर उन्हे शाही सेवा करनेके लिए प्रोत्साहित किया।

सन् १६८१मे अकबरके भाग जानेके समयसे ही राठौडोने उसकी पुत्री सफियत्-उन्निसाको आश्रय दिया था, उसे वापस अपने पास ले आनेके लिए औरगजेव तवसे ही वहुत उत्सुक था। तदर्थ सन् १६९२मे राठौडोसे वातचीत की गई, किन्तु तव वह विफल ही रही। दो वर्ष वाद पुन यह वात छेडी गई और इस वार यह मामला सुयोग्य चतुर शुजात-खाँको सौपा गया। अहमदावादसे ६० मील उत्तर-पश्चिममे स्थित पाटण-के नागर ब्राह्मण फारसी भापामे इतिहास-लेखक ईश्वरदासको यह काम सौपा जो पहिले जोधपुरमे मालगुजारी वसूल करनेवाला अमीन रह चुका था।

ईश्वरदासके कई वार दुर्गादासके पास जानेके वाद अन्तमे अपने महाराजा तथा अपनी ओरसे औरगजेवके साथ समझौता करनेको दुर्गा-दास तैयार हो गया, और उसने शाहजादीको वापस औरगजेवको लौटा दिया। ईश्वरदास शाहजादीको शाही दरवारमे ले आया।

अकवरका पुत्र वुलन्दअख्तर अव भी राठौडोके ही पास था, एव अव उसे वापस लानेके लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए। किन्तु इस वार दुर्गादासने

अजीतसिंहको जोधपुर वापस दिए जानेकी माँग की, जिससे इस मामलेके तय होनेमें दो वर्ष लग गए।

सन् १६९८में औरंगजेब भीमाके तटपर इस्लामपुरीमें था। बुलन्द-अख्तरको साथ लेकर दुर्गादास शाही पड़ावमें वहाँ पहुँचा। जन्मकालसे ही उस बेचारे शाहजादेका सारा जीवन अकवड़ राजपूत सिपाहियोंमें बीता था, उसने न तो कभी कोई नगर देखा था और न कोई राजदरबार ही; किसी सुसंस्कृत आदमीसे बात करनेका भी उसे मौका नहीं मिला था। साफ सुथरी आदरपूर्ण हिन्दुस्तानी भी वह नहीं बोल सकता था। यह देखकर कि सम्राट्का यह पौत्र केवल राजस्थानी बोली ही बोल सकता था, स्वयं सम्राट्को बहुत ही धक्का पहुँचा, परन्तु उसके दरबारी तो मनोरंजित हुए। किसी बड़े सुसभ्य नगरमें एकाएक पहुँच जानेवाले देहाती गँवारके समान बुलन्दअख्तर भी बहुत ही भयभीत-सा हो गया। पुनः उन प्रारम्भिक दिनोंमें उसके राजपूत साथियोंने उसके दिलमें यह बात कूट-कूट कर भर दी थी कि औरंगजेब एक भयानक दानव है जो बुलन्द-अख्तरके पिता शाहजादे अकबर तथा उसके कुटुम्बियोंका कट्टर शत्रु है। जब उसने देखा कि उसके बाल्यकालके उन रक्षकों तथा सेनापतिके उन साथियोंसे दूर किया जाकर वह उसी भयप्रद औरंगजेबको सौंप दिया गया था। ऐसी हालतमें मुँह न खोलकर गूँगा बना रहना ही उसे सबसे ठीक जान पड़ा। उसे धीरे-धीरे पढ़ाया जाकर सुसभ्य बनाया गया, जिससे आगे चलकर सम्राट्के साथ रह कर शाही मोहर सम्हालनेका भार भी उसे सौंपा गया। दुर्गादासको पुरस्कार-स्वरूप तीन हजारीका मनसब देकर पाटणका फौजदार बनाया गया।

३. अजीत और दुर्गादासः १७०१-१७०७

दुर्गादासके साथ यह समझौता सन्, १६९८में हो गया था, किन्तु सन् १७०१-२में फिर लौटकर उसने दूसरी बार पुनः सम्राट्के विरुद्ध विद्रोह किया। सच बात यह थी कि इन समझौतोंके बाद भी, अजीत और दुर्गादास, दोनोंके दिलोंमें मुगल साम्राज्यके प्रति पूर्ण अविश्वास बना रहा जिससे वे सदा शाही स्थानसे दूर ही रहे।

[illegible] मिलेकी खबर जब दुर्गादास पुनः [illegible] पहुँचा,

तब सन् १७०२ ई०मे खुले-आम विद्रोही बनकर अजीतसिंह भी उमसे जा मिला और मुगलोपर कुछ आक्रमण भी किए। किन्तु मिलकर भी वे दोनो इस बार कुछ भी न कर सके। मारवाडकी आर्थिक हालत पूरी तरह बिगड चुकी थी, पूरे पच्चीस वर्ष तक निरन्तर छापा-मार युद्ध करते-करते राठौड भी बहुत थक गए थे। अब अजीत और दुर्गादासमे भी अनबन हो गई, जिससे तो मारवाडकी परिस्थिति और भी विगड गई। औरगजेबने इस सबसे लाभ उठाया। दूसरोकी सलाह सुननेका अजीतको धीरज न था, वह बहुत ही उद्धत स्वभावका था। मारवाडके मत्रियो एव प्रमुख अधिकारियोपर दुर्गादासका जो प्रभाव था और राठौडोमे दुर्गादास जितना लोक-प्रिय था उसे देखकर अजीतको बहुत ही ईर्ष्या होती थी। ऐसे समय जब सारी परिस्थिति ही औरगजेबके विरुद्ध होती जा रही थी, तब राठौड नेताओके इस आपसी विरोधसे औरगजेबको बहुत सहायता मिली, और अगले पॉच वर्षों तक उसने अजीतको उसके राज्य तथा राजधानीसे बाहर ही रखा।

सब ओर बढते हुए अपने शत्रु-दलको देख औरगजेबने अन्तमे अपनी विवशताको स्वीकार कर सन् १७०४मे अजीतको मेडताकी जागीर दी और यो उससे एक प्रकारकी सधि कर ली। बिना किसी लाभवाली अपनी उस स्वतन्त्रताको बनाए रखना कठिन देखकर नवम्बर, १७०५मे दुर्गादास-ने भी शाहजादे आजमके द्वारा औरगज़ेबकी अधीनता जब पुन स्वीकार कर ली, तब उसका पुराना मनसब तथा गुजरातमे पाटणकी वह फौजदारी उसे वापस मिल गए।

औरगजेबके शासन-कालके अतिम वर्ष सन् १७०६मे मराठोने गुज-रातपर आक्रमण कर रतनपुरमे मुगलोको बुरी तरहसे पराजित किया था। तब तीसरी बार विद्रोही बनकर अजीतने पुन सिर उठाया। दुर्गा-दास भी शाही पडावसे फिर भाग खडा हुआ, और अजीतके साथ सम्पर्क स्थापित कर थेराड तथा अन्य स्थानोमे विद्रोह करवाने लगा। किन्तु इस समय शाहजादा बेदारबख्त गुजरातका सूबेदार था एव उसने दुर्गा-दासके विरुद्ध सेना भेजी, तब दुर्गादास भागकर सूरतमे दक्षिणमे कोलि-योके जगलोवाले पहाडी देशमे जा पहुँचा। इधर कुछ समयसे अजीतसिह भी विद्रोह कर रहा था। नागोरका मुहकमसिंह औरगज़ेबके पक्षमे था, एव दुनाडामे मुहकमसिंहके साथ अजीतका युद्ध हुआ, जिसमे विजयी

होनेपर अजीतकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ गई। इसी समय अहमदनगरसे औरंगजेबके मरनेके समाचार मारवाड़ पहुँचे, और तब ७ मार्च, १७०७को घोड़ेपर सवार होकर अजीतने जोधपुरकी राह पकड़ी और उस नगरसे नायब फौजदार जाफरकुलीको वहांसे निकाल बाहर किया तथा अपने पिताकी राजधानीपर अजीतने अधिकार कर लिया। मुहकमसिंहने मेड़ता भी खाली कर दिया और घायल हो नागौरको भाग गया। सोजत और पालीको भी अजीतने जीत लिया। गंगा-जल और तुलसी-दलसे जोधपुरके किलेको शुद्ध किया गया। दुर्गादासके जीवनका ध्येय भी सफलता-पूर्ण पूरा हुआ।

४. आगराके पास जाटोंके उपद्रव

अपनी मृत्यु पर्यन्त चलनेवाले जिन अनन्त युद्धोंमें औरंगजेब सन् १६७९ ई०में उलझ गया था, उनका धीरे-धीरे उत्तरी भारतकी राजनैतिक परिस्थितिपर भी प्रभाव पड़ने लगा। दक्षिणी युद्धोंसे होनेवाली क्षतिके कारण वहां धन तथा सैनिकोंका निरन्तर अभाव ही बना रहता था, जिसकी पूर्तिके लिए कम-ज्यादा द्रव्य और नया सैनिक उत्तरी भारतसे प्रति वर्ष वहां भेजे जाते थे। वर्षपर वर्ष बीतते गए, और तब भी न तो सम्राट् ही अपनी राजधानीको लौटा और न कोई शाहजादा ही वापस वहां आया। नर्मदासे उत्तरके सारे ही सूबे [illegible] ही साधारण योग्यतावाले अमीरोंको सौंपे गए थे और उनके साथ सेना भी बहुत ही थोड़ी थी। इसके साथ ही व्यापारियोंके [illegible], मालगुजारीकी आमदनीका रुपया, सेनाके लिए अस्त्रशस्त्र, युद्ध-सामग्री, और अमीरोंके कुटुम्बी तथा साज-सामानको लेकर सुदूर दक्षिणको जानेवाले लम्बे-लम्बे काफिले उत्तरी भारतके राजमार्गोंपर निरन्तर चलते रहते थे और उनकी सुरक्षाके लिए आवश्यक सैनिक भी उनके साथ नहीं होते थे, जिससे मार्गमें पड़नेवाली स्थानीय शक्तियोंको लूट-खसोट करनेका बहुत ही सौभाग्यपूर्ण मौका मिल जाता था। दिल्लीसे आगरा और तब धौलपुर जानेवाले राजमार्गका [illegible] जाटोंके ही प्रदेशमें होकर गुजरती थी। इस ओर [illegible] सड़कोंको सुरक्षित रखनेके लिए [illegible] ही [illegible] था।

औरगजेबके दक्षिणपर चढाई कर देनेसे उत्तरी भारतमे जाटोको जो मौका मिला, उससे सन् १६८५मे राजाराम तथा रामचेहरा नामक दो नए जाट नेताओने पूरा लाभ उठाया। सनसनी और सोगरके ये जमीदार पहिले तो अपने स्वजातियोको एकत्रित कर उन्हे सैनिक सगठन तथा आमने-सामनेके युद्धोकी शिक्षा देते रहे। प्रत्येक जाट किसानको लाठी और तलवार चलाना पहिले ही आता था, अब उन्हे सैनिक दलोमे सगठित कर अपने ऊपरी अधिकारियोकी आज्ञा माननेकी शिक्षा दी गई, जिससे उन्हे बन्दूके देते ही वह जाट सेना तैयार हो जानेवाली थी। सडक-रास्तोसे बहुत दूर जगलोमे उन्होने कई एक छोटी-छोटी गढियाँ बना ली थी, अपने इन सैनिक अड्डोसे निकलकर जाट बाहर लूटमार करते थे, हार जानेपर उनके मुखिया यही आश्रय लेते थे और उनकी लूटका माल भी यही जमा किया जाता था। इन गढियोके चारो ओर उन्होने मिट्टीकी मोटी-मोटी दीवालें बनाकर उन्हे बहुत सुदृढ बना लिया था क्योकि इन दीवालोपर गोला-बारीका भी कोई असर नही हो पाता था। तब वे शाही सडकपर धावे करने लगे और आगराके बाहरी उप-नगरो तक लूटमार भी मचाई।

आगराका सूबेदार सफीखाँ राजारामके इन उपद्रवोको दबा नही सका। जाटोके दलोने राहगीरोका सडकपर आना-जाना भी बन्द कर दिया और इस जिलेके कई गाँव भी उन्होने लूटे। कुछ ही दिनो बाद धौलपुरके पास सुप्रसिद्ध तूरानी सेनानायक अगरखाँपर आक्रमण कर राजारामने उसे मार डाला। अगरखाँ इस समय बीजापुरके पास पडे शाही पडावसे चलकर काबुल जा रहा था। राजारामकी इस धृष्टतापूर्ण सफलतासे औरगजेब विचलित हुआ और दिसम्बर, १६८७मे उसने जाटोके विरुद्ध चलनेवाले युद्धका सचालन करनेके लिए वहाँका प्रधान सेनापति बनाकर शाहजादे बेदारबख्तको भेजा।

किन्तु शाहजादेके पहुँचनेसे पहिले ही उस जाट नायकने कई एक अत्याचार कर डाले। पजाबकी सूबेदारी सभालनेके लिए जानेवाले हैदराबादके मीर इब्राहीमपर, जो अब महाबतखाँ कहलाने लगा था, सन् १६८८के प्रारम्भमे उसने आक्रमण किया। इसके कुछ ही समय बाद उसने सिकन्दरामे बने हुए अकबरके मकबरेको लूटा। उसे तोड़-फोड़ कर

वहाँके कालीन, सोने-चाँदीके बरतन तथा कन्दीलें, आदि सब कुछ उठा ले गए।¹

वहां पहुँचते ही बेदारबख्त बड़ी ही तत्परताके साथ मुगल सेनाका सचालन करने लगा। उधर इस प्रदेशमें दो विभिन्न राजपूत जातियोंमें चलनेवाले आपसी युद्धमें सम्मिलित हो जानेसे विरोधी दलवालोंने राजारामको ४ जुलाई, १६८८के दिन गोलीसे मार दिया।

आम्बेर (जयपुर)के नए राजा विशनसिंह कछवाहको मथुराका फौजदार बनाकर औरंगजेबने उसे जाटोंके इस उपद्रवको जड़से उखाड़ फेंकने तथा तब सनसनीके परगनेको अपनी जागीरमें सम्मिलित कर लेनेका विशेष कार्य सौंपा था। किन्तु जाट-प्रदेशके उन दुर्गम जंगलोंमें पानी और खाद्य सामग्रीके अभावके कारण आक्रमणकारी सेनाको बड़ा अनेक कष्टोंका सामना करना पड़ता था। तथापि सनसनीका घेरा डालनेवाले दृढ़तापूर्वक वहां ही डटे रहे। जनवरी, १६९०में एक सुरंगके ठीक तरहसे चल जानेसे उस किलेकी दीवाल टूट गई, जहांपर मुगल सेनाने आक्रमण किया। तीन घण्टो तक बराबर डटकर सामना करनेके बाद जाटोंकी पराजय हुई और किलेपर मुगलोंका अधिकार हो गया। उस युद्धमें जाटोंके कोई १५०० सैनिक मारे गए और शाही पक्षके भी २०० मुगल तथा ७०० राजपूत घायल हुए या खेत रहे। अगले वर्ष २१ मई १६९१को एकाएक आक्रमण कर राजा विशनसिंहने जाटोंके दूसरे सुदृढ़ किले सोगरको भी जीत लिया।

मुगलोंकी इन सारी चढ़ाइयोंका परिणाम यह हुआ कि जाटोंका नया नेता ऐसे अज्ञात कोनों और दुर्गम स्थानोंमें जा छिपा जिनका शाही सेनानायकोंको पता तक न था। तब अगले कुछ वर्षों तक उस परगनेमें पूरी शान्ति रही। राजारामके भाई भज्जाका बेटा चूड़ामन ही अब जाटोंका नया नेता था। सुसंगठन करने और गुजरनेवाले पृथक्-पृथक् [illegible] दलोंको

¹ [illegible], प० १३३ ब। मनूची लिखता है [illegible] (२, पृ० २२०)।

अद्भुत चतुराई चूडामनमे थी, जिससे उसने एक राजघरानेकी स्थापना की जो अब तक भरतपुरपर राज्य करता रहा था। "उसने सैनिकोकी सख्या ही नही बढाई, परन्तु अपनी सेनाको अधिक शक्तिशाली बनानेके लिए उसने बन्दूकचियो और घुडसवारोके दल भी सगठित किए जिन्हे उसने कुछ ही दिनो बाद पुन पैदल सैनिक बना दिया। राहपरसे गुजरनेवाले कई शाही मत्रियो और अधिकारियोको लूटनेके बाद अब वह प्रान्तोंसे दक्षिण भेजे जानेवाले शाही खजाने तथा सम्राट्की खास वस्तुओको भी लूटने लगा।" किन्तु चूडामनकी शक्तिका पूर्ण उत्थान औरगजेबकी मृत्युके बाद ही हुआ। सन् १७०४के लगभग उसने सनसनीको पुन मुगलोके अधिकारसे छीन लिया। किन्तु आगराके सूबेदार मुख्तारखाँने ९ अक्तूबर, १७०५के दिन फिर सनसनीपर मुगल आधिपत्य स्थापित किया।

५. पहाडसिंह गौड और उसके पुत्रोंके मालवामें उपद्रव; १६८५ ई०

पश्चिमी बुन्देलखण्डमे स्थित इन्दरखीका जमीदार पहाडसिह गौड मालवामे शाहबाद धधेराका शाही फौजदार था। लालसिह खीची चौहान-पक्ष लेकर सन् १६८५के प्रारम्भमे उसने बूँदीके हाडा अनिरुद्धसिहको हराया तथा उसका सारा पडाव और माल-असबाब उसने लूट लिया। तब पहाडसिह मालवाके गाँवोमे लूटमार करने लगा। इस समय मालवा सूबेकी देखभाल राय मुलूकचन्द कर रहा था, एव उसने आक्रमण कर दिसम्बर, १६८६मे पहाडसिहको मार डाला। किन्तु पहाडसिहका पुत्र भगवन्त इस विद्रोहको चलाए गया। मार्च, १६८६मे भगवन्तको भी शाही अधिकारियोने मार डाला। तब भी यह विद्रोह कई वर्ष तक चलता गया। अन्तमे इन गौड विद्रोहियोने आत्मसमर्पण किया। सन् १६९२के बाद उनके पुन शाही सेनामे नियुक्त किए जानेका विवरण मिलता है।

६. बिहारमें गगाराम तथा मालवामें गोपालसिंह चन्द्रावतके विद्रोह

गगाराम नामक एक दरिद्री गुजराती नागर ब्राह्मण इलाहाबाद और बिहारमे स्थित खान-इ-जहाँ बहादुरकी जागीरोका दीवान था। गगाराम-की अनुपस्थितिमे खानके दूसरे नौकरोने उसके विरुद्ध खानके कान भर

दिए थे। खानने गंगारामको बुला भेजा। अपने जीवन और सम्मानकी अब गंगारामको कोई आशा न रही एवं वह विद्रोही हो गया। कुछ दिन तक इधर-उधर लूटमार करनेके बाद अन्तमें गंगाराम मालवामें जा पहुँचा और अक्तूबर, १६८४में उसने सिरोंजको लूटा। कुछ ही दिनों बाद वह उज्जैनमें मर गया।

मालवामें स्थित रामपुराकी अपनी जमींदारीको सँभालनेके लिए वहाँके जमींदार राव गोपालसिंह चन्द्रावतने अपने पुत्र रत्नसिंहको राम-पुरा भेज दिया था। वह दुष्ट युवक मुसलमान बन गया और औरंगजेबका कृपापात्र बन अपनी वंशपरम्परागत उस जमींदारीको अपने नाम लिखा लिया, जिसका नाम अब बदलकर इस्लामपुरा रखा गया था। जब इसकी सूचना गोपालसिंहको मिली तब बिना आज्ञा लिए ही शाही सेना छोड़-कर वह रामपुरा पहुँचा और जून, १७००में उसे अपने पुत्रके अधिकारसे छीन लेनेका प्रयत्न किया। परन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली तब निराश होकर उसने औरंगजेबके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया। किन्तु जब उसकी आयका दूसरा कोई जरिया नहीं रह गया, तब सन् १७०६के प्रारम्भमें वह मराठोंके साथ जा मिला, और इसी वर्ष जब साठ सहस्र मराठोंने बड़ौदाको लूटा तब उनके साथ ही गोपालसिंह भी गुजरात गया था।

७. बंगालमें अंग्रेजी व्यापार

अंग्रेजोंने सन् १६१२में अपनी पहली कोठी सूरतमें स्थापित की थी और व्यापारकी अपनी वस्तुएँ स्थल मार्गसे आगरा तथा दिल्ली भेजते थे और बदलेमें वहाँकी वस्तुएँ मँगवाते थे। सन् १६२० तथा बादमें पुनः १६३२में उन्होंने आगरासे बिहार प्रान्तमें पटना तक व्यापार करनेका भी प्रयत्न किया, किन्तु सूरतसे वहाँ तक स्थल मार्गसे [illegible] जैसी थी। आकार-प्रकारकी वस्तुएँ भेजनेमें उतना अधिक व्यय होता था कि यह आयोजन अन्तमें छोड़ देना पड़ा। गोलकुण्डा राज्यके बन्दर-गाह मसूलीपट्टममें भी अंग्रेज व्यापारियोंकी एक शाखा थी।

सन् १६३३में अंग्रेजोंने अपनी एक कोठी बालासोरमें तथा दूसरी कोठी महानदीसे २५ मील दक्षिण-पश्चिममें स्थित हरिहरपुरमें खोली। इसके बाद सन् १६४०में मद्रासमें सेंट जार्ज किलेको बनाना प्रारम्भ किया।

विजयनगर राजघरानेके हिन्दू राजासे धरतीका कुछ भाग मोल लेकर वहाँ यह किला बनाया जा रहा था, यो अग्रेजोने "भारतमे अपना सर्वप्रथम स्वतन्त्र केन्द्र स्थापित किया"। यह स्थान मुगल साम्राज्यकी सीमाओसे बाहर था। सन् १६५१मे अग्रेजोने बगालमे कलकत्तासे २४ मील उत्तरमे गगाके किनारे हुगली स्थानपर अपना पहला व्यापार-केन्द्र स्थापित किया। पटनासे उत्तरमे सिंधिया या लालगजमे नावोमे डालकर वे प्रधानतया शोरा लाते थे। रेशम और शक्कर भी मोल लेकर वे ले जाते थे। तब शाहज़ादा शुजा बगालका सूबेदार था, सन् १६५२मे उसने अपनी ओरसे लिखकर एक निशान (शाहजादेका विशेष आदेश) उन्हे दे दिया था कि सब तरहकी चुगी और अन्य करोके बदले प्रति वर्ष उनके तीन हजार रुपये देते रहनेपर अग्रेजोको बगालमे व्यापार करने दिया जावे। यूरोपसे आने-जानेवाले सारे ही जहाजोका माल कई वर्षों तक बालासोरमे ही उतारा-चढाया जाता रहा।

सन् १६५८मे इगलैण्डके अधिकारियोने भारतमे सब अग्रेजी कोठियोकी व्यवस्थाको सुसगठित किया। अग्रेजी कम्पनीके ये सारी कोठियाँ सूरतमे नियुक्त अध्यक्ष और उसकी परिषदके अधीन कर दी गई, हुगली और मद्रासमे अवश्य प्रधान एजन्सियाँ रहने दी गई।

बगालमे अग्रेजोका व्यापार सन् १६५८मे बहुत ही अच्छी तरह चल रहा था। कच्चा रेशम बहुतायतसे मिल जाता था, तरह-तरहके बहुत ही सुन्दर रेशमी कपडे मिलते थे, अच्छी किस्मका शोरा भी बहुत ही सस्ता था, उधर इगलैण्डसे भेजे गए सोने-चाँदीको भारतीय बडी ही तत्परताके साथ मोल लेते थे।

सन् १६६१ई०मे अग्रेजोको इन भारतीय कोठियोकी शासन-व्यवस्थामे कुछ और फेरफार किए गए। मद्रासमे भी एक स्वतन्त्र अध्यक्षकी नियुक्ति की जाकर वहाँके उस केन्द्रको सूरतकी ही बराबरीका पद दिया गया, तथा बगालमे नियुक्त अधिकारियोको अब मद्रासके अध्यक्षके अधीन कर दिया गया। बगालमे अग्रेजोका व्यापार बडी ही तेजीसे बढता जा रहा था, सन् १६६८मे कम्पनीने बगालसे ३४,००० पाउण्ड कीमतका माल खरीदकर यूरप भेजा, सन् १६७५मे भेजे गए मालकी कीमत ८५,००० पाउण्ड तक हो गई, बढते-बढते सन् १६७७ ई०मे १,००,००० पाउण्ड कीमतका माल तथा सन् १६८०मे १,५०,००० पाउण्ड मूल्यका माल बगालसे बाहर भेजा गया। हुगली केन्द्रकी अधीनतामे सन् १६६८मे

ढाका तथा सन् १६७६मे मालदाकी नई कोठियाँ खोली गईं। स्थानीय कारखानोंमे वे बहुतसा माल मोल लेते थे, परन्तु वहाँ मोल लिए गए रेशमकी रंगाईको सुधारनेके लिए अंग्रेजोंने युरोपीय रंगरेजोंको बंगाल भेजा। समुद्रके मुहानेसे लेकर हुगली तक गंगामे जहाजोंके आने-जानेकी ठीक-ठीक व्यवस्था करनेके लिए सन् १६६८मे अंग्रेजोंने बंगाल नाविक-दलकी (पायलेट सर्विसकी) स्थापना की। बंगालको [illegible] होता हुआ पहला अंग्रेजी जहाज सन् १६९७मे गंगामे ऊपर तक गया।

८. बंगालके मुगल अधिकारियों और अंग्रेज व्यापारियोंमें अनबन

बंगालके स्थानीय मुगल अधिकारी अंग्रेजोंसे नियम-विरुद्ध बहुतसा रुपया वसूल करते थे, और उनके व्यापारमें बाधा भी डालते थे, जिससे उनमें अनबन बढ़ती जा रही थी, होते-होते यह मामला तूल पकड़ गया। स्थानीय अधिकारी अंग्रेज कम्पनीकी नावोंको रोककर उनमें रखा हुआ सारा माल जब्त करते रहे। चुंगी चुकानेसे छुटकारा पानेके लिए इंग्लैंडने शायेस्ताखांको बहुत-सा रुपया देनेका प्रस्ताव भी किया, किन्तु उससे कोई भी नतीजा नहीं निकला। अन्तमें अंग्रेज व्यापारियोंका धीरज टूट गया। भारतीय शासकोंके भरोसे न रहकर अपनी शक्ति द्वारा ही अपनी रक्षा करनेको वे उद्यत हुए। भारतीय तटपर ही किसी अच्छे सुविधाजनक स्थानको जीतकर वहां अपना स्वतन्त्र किला बनानेकी वे सोचने लगे, जिससे उनके व्यापारमें किसी भी प्रकारकी छेड़-छाड़ या बाधा नहीं डाली जा सके। सन् १६८६में जाकर यह युद्ध सचमुच छिड़ गया।

मुगल साम्राज्यके स्थानीय अधिकारियोंके विरुद्ध अंग्रेज व्यापारियोंकी ये तीन शिकायतें थी,—

(१) शाहजादा शुजा जब बंगालका सूबेदार था, तब केवल (रु० ३,०००) वार्षिक देते रहनेपर अंग्रेज व्यापारियोंको चुंगी तथा अन्य करोंसे माफी दे दी गई थी तथा भविष्यमें चुंगीसे [illegible] भी तब वादा किया गया था। किन्तु अब [illegible] लाए हुए सारे मालपर चुंगी वसूल की जा रही थी। [illegible] दावा था कि १५ मार्च, १६८०को दिए गए औरंगजेबके [illegible] सारे भारतमें [illegible] के लिए [illegible] सारे मुगल साम्राज्यमें [illegible]

व्यापार करनेका पूरा अधिकार था, और तब कही भी अन्यत्र उनसे कोई भी चुगी या कर वसूल नही किया जा सकता था।

(२) राहदारी, पेशकश और मुशीके मेहनतानेके नामसे स्थानीय अधिकारी रुपया वसूल करते थे, और फरमाइश कर प्रान्तीय सूबेदार जो माल मगवाता था उसका भी मूल्य नही चुकाया जाता था।

(३) बगालके सूबेदार शायेस्ताखाँ और शाहज़ादा अजीमुश्शान तथा अन्य उच्चाधिकारी वहाँसे गुजरनेवाले मालके बन्द पार्सलोको खोलकर उनमेसे अपनी पसन्दका माल निकाल लेते थे और अपनी इच्छानुसार उचितसे बहुत ही कम उनका मूल्य चुकाते थे। स्थानीय फौजदार भी कई बार ऐसी ही मनमानी करते थे। कुछ सूबेदार तो, जिनमे शाहज़ादे अज़ीमुश्शानका नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय था, यो बलपूर्वक कम कीमतमे माल लेकर उसे बाजारमे पूरी कीमतपर बेचकर रुपया कमाते थे। इस प्रथाको 'सौदा-इ-ख़ास' कहते थे।

१० अप्रैल, १६६५को औरगजेबने आदेश दिया कि भविष्यमे बाहरसे लाए जानेवाले मालपर चुगी दो निश्चित दरोके अनुसार वसूल की जावेगी, मुसलमानोसे २½% और हिन्दुओसे ५%। हिन्दुओके समान यूरोपीयोपर भी प्रत्येक व्यक्तिकी गणनाके अनुसार जजिया कर लगाकर उसे वसूल करनेमे मुगल शासकोने कठिनाईका अनुभव किया, एव जजियाके बदलेमे आनेवाले उनके मालपर वसूल की जानेवाली चुगीकी दरको बढाकर ३½% कर देनेका प्रस्ताव मार्च, १६८०मे किया गया था।

बगालमे अग्रेजोने दो बातका दावा किया था (१) शुजा द्वारा सन् १६५२मे निश्चित कुल मिलाकर केवल रु० ३,०००) देकर ही लाए हुए सारे मालकी असल कीमतपरसे चुगी देनेसे छूटकारा पाना। (२) औरगजेबके सन् १६८०के फरमानके अनुसार सूरतके बन्दरगाहमे एक बार चुँगी चुका देनेके बाद भारतके अन्य किसी भी भागमे बिना कोई कर या चुँगी दिए बेरोक-टोक व्यापार करना। किन्तु उनकी ये दोनो ही माँगे बिलकुल सारहीन तथा निराधार थी, किसी भी प्रकार उनका समर्थन नही किया जा सकता था।

शुजा केवल एक प्रान्तीय सूबेदार था। अपनी सूबेदारीके समय यदि उसने किसी एक व्यापारी-वर्गके प्रति पक्षपात किया और थोडासा रुपया लेकर ही उन्हे विशेष सुविधाएँ दी, तो उसके बाद होनेवाले सूबेदारोके

लिए मुगलोंका यह निशान तब तक मान्य नहीं हो सकता था जब तक कि उसमें दी गई छूटें सम्राट् द्वारा स्वीकृत होकर शाही फरमानके रूपमें नहीं जारी की जायें। औरंगजेबके सन् १६८०के फरमानका जो अर्थ अंग्रेजोंने लगाया था, वह भी सर्वथा गलत था। सूरतमें उतारे गए मालपर चुंगी देनेसे ही इस फरमानके आधारपर हुगली या [illegible] सूरत न होकर सीधे बंगाल आनेवाले दूसरे मालपर भी चुंगी न देनेकी छूटकी मांग करना किसी भी प्रकारकी चतुराईपूर्ण दलीलोंसे भी न्याय-संगत प्रमाणित नहीं किया जा सकता, क्योंकि सूरत होकर नहीं आनेके कारण उतारे सूरतमें कोई भी चुंगी वसूल नहीं की जा सकती थी।

दूसरी दो शिकायतोंमें अंग्रेजोंने जिन दुर्व्यवहारों और असुविधाओंका उल्लेख किया था, उनका अन्त कर देनेके लिए औरंगजेबने कई बार पहिले ही आदेश दे दिए थे, और शाही आज्ञाओंका उल्लंघन करनेकी अब तक वे आदी बन गए थे।

०. औरंगजेबके साथ बंगालमें अंग्रेजोंका युद्ध: १६८६–८९

स्थानीय फौजदारकी आज्ञाओंका उल्लंघन कर २८ अक्तूबर १६८६ को तीन अंग्रेज सिपाहियोंने हुगलीके मुगल बाजारमें [illegible] प्रारम्भ किया, जिससे वे घायल हुए और बादमें उन्हें कैद कर कोतवालके सुपुर्द कर दिया गया। तब उन्होंने उन्हें छुड़ानेका प्रयत्न किया, परन्तु कुछ सैनिकोंके मारे जानेके बाद उन्हें असफल हो वापस लौटना पड़ा। किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजोंकी तात्कालिक सैनिक सहायता निकलकर बढ़ चली और फौजदारके मकान तथा उसके आसपासके मकानोंको उन्होंने जला डाला। उसी दिन सन्ध्याके समय अंग्रेजोंके जहाज भी वहाँ तक आ पहुँचे और उन्होंने वहाँकी [illegible] अधिकार कर लिया। फौजदार तो वेश बदलकर वहाँसे भाग गया।

यूरोपीय अंग्रेजोंके इस प्रकार आक्रमण करनेका विवरण जब [illegible] स्थानोंमें पहुँचा तो उसने शान्ति [illegible] अंग्रेजोंको [illegible] निश्चय किया। [illegible] १० [illegible] और [illegible] से बन [illegible] और [illegible] उन्हीं [illegible] हुआ है।

फरवरी, १६८७में लड़ाई फिर छिड़ गई। [illegible]

कर दिया और जहाजो बेडेमे समुद्री तटका चक्कर लगाकर सारे ही भारतीय जहाजोपर उसने अधिकार कर लिया।

इसके जवाबमे मुगलोने सूरतमे पकडे गए सारे अग्रेज कैदियोके पैरोमे बेडियाँ डाल दी, उसी बुरी हालतमे उन अग्रेजोने पूरे सोलह महीने (दिसम्बर, १६८८से अप्रेल, १६९० तक) बिताए। साथ ही मई, १६८९मे मुगल जल-सेनाके नायक जजीराके सिद्दीने बम्बईपर आक्रमण किया और शाही सेनाने उस टापूपर उतरकर वहाँके बाहरी भागोपर अधिकार कर लिया। उस टापूकी सुरक्षाके लिए वहाँ नियुक्त अग्रेज सैनिक दलको बम्बईके किलेमे आश्रय लेना पडा, और वहाँ निरन्तर बढते हुए मुसलमानोके सैनिक दलने उस किलेको घेर लिया। तब विवश होकर अग्रेज गवर्नर चाइल्डने १० दिसम्बर, १६८९ के दिन जो० वेल्डन और अब्राहम नेवारोको औरगजेबकी सेवामे भेजा और दया कर क्षमा प्रदान करनेके लिए प्रार्थना की। २५ दिसम्बर, १६८९के अपने शाही हुक्म द्वारा औरगजेबने अग्रेजोको क्षमा कर दिया। डेढ लाख रुपया जुर्माना देने तथा भारतीय जहाजोसे लूटे गए सारे मालको लौटानेपर अग्रेजोको पुन पहिलेके समान भारतमे व्यापार करते रहनेकी आज्ञा मिल गई।

११. सत्रहवीं शताब्दीमें भारतीय सागरों के युरोपीय समुद्री डाकू

पन्द्रहवी शताब्दीमे वास्को द गामाके भारत पहुँचनेके साथ ही हिन्द महासागरमे भी युरोपीय समुद्री डाकुओका प्रवेश हो गया था। सोलहवी और सत्रहवी शताब्दियोमे युरोपके सब ही देशो तथा सारे ही वर्गोके व्यापारी तथा साहसिक भारतीय सागरोमे एकत्र होने लगे तथा भारतीय व्यापारकी वृद्धिके साथ ही विभिन्न युरोपीय देशवालोकी समुद्री डकैती भी बढती ही गई।

सन् १६३५मे कावने तथा तीन वर्ष बाद सर विलियम कोर्टनने भारतीय जहाजोको लूटा। इन अग्रेजोकी लूटमारका नतीजा सूरतकी कोठीके उनके देशवासी निरपराध व्यापारियोको भुगतना पडा। अग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके ये कर्मचारी दो माह तक कैद रहे और हर्जानेके रूपमे रु० १,७०,०००) देनेपर ही वे छूट पाए।

सत्रहवी सदीके पिछले पचास वर्षोमे अनगिनित समुद्री डाकू हिन्द

कैद कर लिए गए थे। कैदमे बैठे-बैठे ही एनरले हमेशा औरगजेबको प्रार्थना-पत्र भेजता रहा, जिनमे उसने 'गज-इ-सवाई' पर किए गए इस आक्रमणमे अग्रेज कम्पनीके कर्मचारियोका कोई भी हाथ न होनेकी बात निश्चयपूर्वक कही, और निर्दोष होनेके कारण उन सबको कैदसे मुक्त किए जानेके लिए माँग की। बम्बई का गवर्नर सर जान गायर भी बडे जोरोसे लिखा-पढी करने लगा। अपने देशवासियोके यो कैद किए जाने-का उसने तीव्र विरोध किया और इस मामलेमे न्याय करनेकी उसने प्रार्थना की।

१२ यूरोपीय व्यापारियोंके प्रति औरगजेबकी नीति

अपने शाही झण्डेवाले जहाजके लटे जाने तथा अपने स्वधर्मियोके प्रति किए गए अत्याचारोको सुनकर औरगजेब बहुत ही क्रुद्ध हुआ। किन्तु उस जैसा चतुर व्यक्ति यो जल्दी ही विचलित होनेवाला नही था। सबसे अधिक वह चाहता था कि तीर्थ-यात्रियोको लेकर मक्का जाने-वाले जहाजोकी सुरक्षाके लिए युरोपीय युद्ध-पोतोको उनके साथ भेजे जानेका समुचित प्रबन्ध करवा दे। युरोपीय व्यापारपर रोक लगानेमे भी उसका यही उद्देश्य था कि इस तरह युरोपीयोको दबाकर वह अपना काम कम खर्चमे सफलतापूर्वक कर सके।

डच लोगोने प्रस्ताव किया कि बिना किसी तरहकी चुगी या कर दिए सारे साम्राज्यमे व्यापार करनेका एकाधिकार यदि उन्हे दिया जावे तो वे भारतीय सागरोसे सारे समुद्री डाकुओको मार भगावेगे और साथ ही अरब जानेवाले तीर्थ-यात्रियोकी सुरक्षाका भार भी वे उठा लेगे। किन्तु औरगजेबने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उधर एनस्लेने भी लिख भेजा था कि यदि मुगल साम्राज्य अग्रेजोको प्रति वर्ष चार लाख रुपये दे तो वे अरब सागरमेसे गुजरनेवाले भारतीय जहाजोकी सुरक्षाके लिए उनके साथ अपने युद्ध-पोत भेज देगे या उनकी सुरक्षाकी जिम्मेदारी उठा लेगे। अग्रेजो द्वारा माँगे गए रुपयेकी रकमको घटानेके लिए औरगजेबने बहुत कहा-सुनी की। अन्तमे एनस्लेने सुरक्षार्थ जहाज देनेके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर कर दिए और तब २७ जून, १६९६, को अग्रेज कैदी छोड दिए गए।

सन् १६९६मे अग्रेज अमीरोके एक दलने 'एडवेंचर' नामक एक जहाज तैयार करवाकर उसे सुसज्जित किया। फरासीसियोसे लडनेके साथ ही

इगलैण्डके बादशाहका राजदूत बनाकर इगलैण्डसे मुगलशाही दरबारमे भेजा गया, किन्तु यह राजदूत इस कम्पनीके लिए कोई भी लाभदायक विशेपाधिकार नही प्राप्त कर सका। उधर औरगजेबने उससे यह माँग की कि भारतीय सागरोसे समुद्री डाकुओका नामनिशान मिटा देनेका वादा वह कर ले। किन्तु नारिस जानता था कि यह एक सर्वथा असम्भव कार्य था।

इसी समय बेटने पड्यन्त्र कर फरवरी, १७०१मे सर जान गायरको अमानतखाँ द्वारा सूरतमे कैद करवा दिया था। यदा-कदा मिलनेवाली कुछ स्वतन्त्रताके अतिरिक्त छ वर्ष तक वह यो कैदमे ही रखा गया।

२८ अगस्त, १७०३को सूरतके जहाजोको सूरतके पास ही समुद्री डाकुओने पकड लिया। इस घटनाके समाचार ३१ अगस्तको सूरत पहुँचे। सूरतके फौजदार इतबारखाँने युरोपीय कम्पनियोंके सारे ही भारतीय दलालोको पकड लिया और पुरानी अग्रेजी कम्पनीके दलालोसे तीन लाख रुपये बलपूर्वक वसूल किए, डच कम्पनीके दलालोसे भी उसने और तीन लाख रुपये लिए। यह सारा विवरण सुनकर औरगजेबने इतबारखाँकी कार्यवाहीकी निन्दा की, और फरवरी, १६९९मे दबाकर करवाए गए समझौतेको उसने रद कर दिया।

किन्तु वास्तवमे युरोपीयोके लिए यहाँ किसी भी प्रकारकी शान्ति सम्भव नही थी। जुलाई, १७०४मे जो शाही आदेश प्राप्त हुए उनके अनुसार भी सर जान गायर और उसकी परिपद्के सब सदस्य केद ही रहे, जहाँ उन्हे उपयुक्त सुविधाएँ और छूट अवश्य मिलती रहती थी। मक्कासे लौटनेवाले भारतीय तीर्थ-यात्रियोको वापस लानेवाले एक धनपूर्ण जहाजपर अधिकार कर डच लोगोने मुगल साम्राज्यसे बदला लिया। अन्तमे औरगजेबने साफ तौरपर अनुभव किया कि समुद्रपर कुछ भी कर सकना उसके लिए सर्वथा असम्भव था। अतएव अपनी प्रजाको मक्काकी तीर्थ-यात्रा कर सकनेका अवसर देनेके लिए युरोपीयोसे बिना किसी शर्तके समझौता करना अनिवार्य हो गया था। उसने नेतावतखाँको आदेश दिया कि जिस किसी भी प्रकार हो सके डचो द्वारा कैद किए गए तीर्थ-यात्रियोको, जिनमे नूर-उल्-हक तथा फख्र-उल्-इस्लाम नामक दो साधु भी थे, वह छुडावे। समुद्री डकैतियोसे होनेवाले नुकसानका हरजाना भरने सम्बन्धी प्रतिज्ञा-पत्र भविष्यमे युरोपियोसे लिखवानेको मनाही भी औरगजेबने कर दी थी।

अध्याय १८

औरंगज़ेबके शासन-कालमें कुछ प्रान्त

१. बंगाल : वहाँकी प्राकृतिक समृद्धि तथा मुगलों द्वारा स्थापित शांतिसे उसमें वृद्धि

मुगल साम्राज्यके सारे प्रान्तोंमें बंगाल ही ऐसा था जिसे प्रकृतिने भी सब तरहसे अनुगृहीत किया है। यहां इतनी अधिक वर्षा होती है कि कृत्रिम सिंचाईके लिए परिश्रम करना बिलकुल ही अनावश्यक हो जाता है। खेतोंसे प्राप्त धान्यके सिवाय यहांकी अनगिनित मछलियोंसे भरपूर नदियों और तालाबोंसे तथा फलोंसे लदे हुए उपवनोंसे भी इस प्रान्तके निवासियोंको कई गुना अधिक खाद्य सामग्री प्राप्त होती है। यहांका तो केवल जलवायु ही खराब है। इसी कारण औरंगज़ेब इस प्रान्तको "रोटीसे परिपूर्ण नरक" कहता था। ऐसे प्रदेशमें समृद्धि और जनसंख्याकी वृद्धिके लिए यहां केवल शान्ति-स्थापनाकी ही आवश्यकता थी। सत्रहवीं शताब्दी भर मुगल साम्राज्यकी छत्रछायामें बंगालमें इसकी ऐसी शान्ति बनी रही और यहांका शासन-प्रबन्ध भी ठीक तरह होता रहा।

ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें बंगालमें निरन्तर अराजकता और बर-बादी बनी रही, प्रान्तका [illegible] था, और [illegible] थे। [illegible] थी, [illegible] अराजकता के [illegible] प्रान्तकी समृद्धि तथा [illegible] होती जा रही थी। [illegible]

१ [illegible]

पतनके बाद अकबर द्वारा उसका जीता जाना प्रान्तके लिए बहुत ही हितकर प्रमाणित हुआ। किन्तु अकबरके राज्यकालमे बगालका शासन ठीक तरहसे सुसगठित नही किया जा सका था, एव वह विजेताओ द्वारा किए गए सशस्त्र सैनिक अधिकारके समान ही था। प्रान्तके पुराने स्वाधीन अफगान शासको और हिन्दू जमीदारोसे नाम-मात्रके लिए बादशाहका आधिपत्य स्वीकार करवानेके अतिरिक्त वहाँ सूबेदार अधिक कुछ भी नही कर सका था। उनसे टाँका वसूल करके ही अकबरके समयके सूबेदारोको सतोष करना पडता था। सूबेकी राजधानी तथा सैनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण समझे जानेवाले जिन नगरोमे मुगल फौजदार नियुक्त थे, उन सबके आसपासके जिलोमे ही वहाँकी जनताके साथ मुगलोका कुछ-कुछ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सका था, प्रान्तमे अन्यत्र बगालकी जनता वहाँके अमीरो या ज़मीदारोके अधीन थी। विभिन्न जमीदारोंके अपने-अपने स्वतन्त्र सैनिक दल थे। सिंहासनारूढ होनेके बाद जहाँगीरने इस्लामखाँको बगालका सूबेदार बनाया था। मई १६०८से लेकर ११ अगस्त, १६१३ तक वह बगालका सूबेदार रहा। इस्लामखाँ बहुत ही महत्त्वाकाक्षी, कर्मठ उत्साही अमीर था। बारम्बार चढाई कर उसने धीरे-धीरे बगालके स्वतन्त्र ज़मीदारोको दबा दिया और मैमनसिंह, सिलहट एव उडीसामे अफगान शासकोकी रही-सही शक्तिको भी मिटा दिया। तब बगालके सब ही भागोमे शाति तथा मुगल शासकोके साथ वहाँ की जनताका सीधा सम्बन्ध स्थापित किया। तदनन्तर कोई डेढ शताब्दी तक बगालमे सर्वत्र बहुत-कुछ आन्तरिक शान्ति बनी रही, जिससे उस प्रान्तकी समृद्धि तथा आबादी पुन बढने लगी। वहाँका व्यापार बडी ही तेजीके साथ फैलने लगा, उद्योगधन्धे बढने लगे और वैष्णव पन्थियोने प्रान्तीय भाषामे महत्त्वपूर्ण साहित्यकी रचना कर उसकी बहुत उन्नति की। पूर्वी बगालके नदी किनारेवाले जिलोमे अराकानियो और बादमे उन्हीके साथी चटगाँवके पुर्तगाली फिरगी समुद्री डाकुओका उपद्रव बहुत बढा, किन्तु औरगजेबके शासन-कालके प्रारम्भमे सन् १६६६मे ही शायेस्ताखाँने उसका अत कर दिया था। सत्रहवी शताब्दीके उत्तरार्द्धमे अग्रेजो और डचोका व्यापार बगालमे दिनोदिन बढने लगा। वे निरन्तर भारतीय माल मोल लेते रहते थे और उनकी स्थानीय कोठियाँ भी व्यापारको बढावा देती थी, जिससे प्रान्तमे मालका उत्पादन और उसके साथ वहाँकी समृद्धि भी दिनोदिन बढते ही गए।

२. औरंगजेबके राज्य-कालमें बंगालके सूबेदार

सन् १६६४में शायस्ताखाँ पहली बार बंगालका सूबेदार नियुक्त हुआ था और तब वह चौदह वर्षों तक उसी पदपर बना रहा। अपनी इस बहुत ही दीर्घकालीन सूबेदारीमें उसने पहिले चटगाँवके समुद्री डाकुओंके अड्डोंको नष्ट कर बंगालकी नदियों तथा बंगालके समुद्री तटको उनके उपद्रवोंसे सुरक्षित कर दिया, तब फिरंगी समुद्री डाकुओंको अपने पक्षमें कर उन्हें ढाकाके आसपास बसा दिया। प्रान्तके आन्तरिक शासन-सम्बन्धी उसकी नीति भी बहुत ही धीमी, उदार तथा लाभदायक थी। मीर जुमलाकी मृत्युके बादके वर्षोंमें स्थानीय अधिकारी पहिलेसे माफ किए गए लगानवाली भूमिको जब्त करने लगे थे, शायस्ताखाँने आते ही ऐसी सब कार्यवाहीको बन्द कर दिया।

प्रेम था। न तो वह दृढ-प्रतिज्ञ ही था और न कडी मेहनत ही कर सकता था, एव उसने सारे मामलोमे ढील दे दी, जिससे अन्तमे सारी शासन-व्यवस्थाका अन्त हो गया और प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छाचारी हो गया। न्याय-शासन वह स्वय करता था। लालच एव अस्थिरता उसमे नाम-मात्रको भी न थी। उसने खेती-बाडी तथा व्यापारकी वडी उन्नति की। बगाल पहुँचते ही सबसे पहिले उसने अग्रेजोके साथ सन्धि की, और उसने समझा-बुझाकर पुन बगालमे बसनेके लिए उन्हे प्रेरित किया।

किन्तु १७वी शताब्दीके पिछले अर्द्धांशका बगाल एक पुस्तक-प्रेमी शासकके लिए सर्वथा अनुपयुक्त स्थान था। इब्राहीमखाँके ढीलेढाले नरम शासन तथा उसके आलसी युद्ध-विरत स्वभावसे उन प्रान्तके उपद्रवकारियोने पूरा लाभ उठाया। मेदिनीपुर जिलेके चटवा-वर्दा स्थानके जमीदार शोभासिहने विद्रोह किया, और उडीसाके अफगानोके मुखिया रहीमखाँके साथ मिलकर वह अपने पडोसी वर्धमान जिलेके बडे तहसीलदार राजा कृष्णरामकी ज़मीदारीको लूटने लगा। थोडीसी सेना लेकर कृष्णराम उनका सामना करनेको आगे बढा, परन्तु उसकी हार हुई और वह मारा गया। तब कृष्णरामकी पत्नी, उसकी पुत्रियाँ और उसकी सारी सम्पत्ति विद्रोहियोके हाथ पडी तथा वर्धमानके शहर-पर उनका अधिकार हो गया। पश्चिमी बगालका फौजदार नूरुल्लाखाँ डरके मारे दरवाजे बन्द किए हुगलीके किलेमे ही घुसा बैठा रहा, एव विद्रोहियोने उस किलेको जा घेरा। तब एक रात वह बडी मुश्किलसे अपनी जान बचाकर उस किलेसे निकल भागा, परन्तु उसकी सारी सम्पत्ति तथा वह किला शोभासिहके हाथ लगे।

वहाँ विद्रोह आरम्भ होनेपर बगालमे रहनेवाले तीनो युरोपीय राष्ट्रो-के व्यापारियोने अपनी-अपनी सम्पत्तिकी रक्षाके लिए देशी सैनिक नौकर रख लिए थे, और कलकत्ता, चन्द्रनगर और चिनसुराकी अपनी-अपनी कोठियोके चारो ओर आवश्यक किले-बन्दी करनेके लिए भी उन्होने सूबेदारसे आज्ञा ले ली थी। अतएव जब बगालमे सब दूर उपद्रव और अराजकता फैली हुई थी, तब विदेशी व्यापारियोंके इन किलोमे शान्ति बनी हुई थी और वहाँ सुरक्षाके साधन भी थे जिससे वहाँ शरण लेनेके लिए सब इच्छुक थे। डचोने हुगलीका क़िला जीतकर उसे वापस मुगलोको सौंप दिया।

अब शोभासिंह स्वयं तो अपने प्रमुख स्थान वर्धमानको लौट आया, किन्तु नदिया और मुर्शिदाबादके सुसमृद्ध नगरों पर अधिकार करनेके लिए उसने सेनानायक रहीमखांको ससैन्य उधर भेजा। वर्धमानमें राजा कृष्णरामकी पुत्रीने छुरा भोंककर शोभासिंहको मार डाला। तब विद्रोही सेनाने रहीमखांको अपना नेता चुना और अब रहीमशाहके नामसे उसका राज्याभिषेक हुआ। इब्राहीमखां अब भी ढाकामें निश्चेष्ट बैठा था, और इधर गंगाके पश्चिमके सारे बंगाल प्रदेशपर विद्रोहियोंका अधिकार हो गया था। रहीमखांने अपनी सेना बढ़ाकर १०,००० घुड़सवारों और ६०,००० पैदलोंकी कर ली थी। उसने मुर्शिदाबाद, मालदा और राज-महलके धनपूर्ण नगरोंको लूटा।

बंगालके इस विद्रोह तथा इब्राहीमखांकी असमर्थताके पूरे समाचार सुनते ही औरंगजेबने उसको बंगालकी सूबेदारीसे अलग कर दिया और १६९७ ई० आधा बीतते-बीतते अपने पौत्र शाहज़ादे अज़ीमुश्शानको उसने उस पदपर नियुक्त किया। शाहज़ादा तब दक्षिणमें था। उसके बंगाल पहुँचनेसे पहिले ही इब्राहीमखांके पुत्र जबरदस्तखांने, जो तब वर्धमानका फौजदार था, राजमहल और मालदापर पुनः अधिकार कर लिया। इसके बाद जबरदस्तखांने भगवानगोलामें विद्रोहियोंपर आक्रमण किया और दो दिनके युद्धके बाद मई, १६९७में उसने विद्रोहियोंको मुर्शिदाबाद और वर्धमानसे खदेड़कर निकाल बाहर किया। तब रहीम-खांने जंगलोंकी शरण ली।

नवम्बरमें शाहज़ादा वर्धमान पहुँचा और वहीं [illegible] रहा। जबरदस्तखांके इस प्रान्तसे चले जानेसे [illegible] विद्रोहियोंने फिर सिर उठाया और चारों ओर वे पुनः उपद्रव मचाने लगे। हुगली और [illegible] जिलोंमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] किन्तु इस युद्धमें [illegible] [illegible]। इसके बाद [illegible] विद्रोही सेना छिन्न-भिन्न हो गई।

[illegible] १६९८ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

उसने बहुत ही सावधानीके साथ अपने कर्मचारियोको चुना। उनके द्वारा उसने धरतीकी पैदावार तथा चुँगीकी आमदनीमे बढ सकनेकी पूरी-पूरी गुँजाइशका ठीक-ठीक पता लगाया। इनकी वसूलीका काम उसने अपने हाथमे लिया और ज़मीदार एव जागीरदार जो कुछ भी बीचमे ही गबन कर लेते थे उसको बिलकुल बन्द कर दिया, जिससे शाही वार्षिक आय बहुत बढ गई।

मुर्शिदकुलीखाँ शाहज़ादे अज़ीमुश्शानको माल-सम्बन्धी मामलोमे किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप नही करने देता था। एव दीवानकी हत्या करनेके लिए उस मूर्ख शाहज़ादेने षड्यन्त्र रचा, परन्तु मुर्शिदकुलीखाँकी युक्ति, बुद्धिमत्ता एव साहसके कारण वह विफल हुआ। भविष्यमे पुन ऐसे घातक फदोसे बचनेके लिए शाहज़ादा सूबेदारके निवास-स्थान ढाका-को छोडकर मुर्शिदकुलीखाँ अपना माली दफ्तर मकसूदाबाद नामक अधिक केन्द्रीय गाँवसे ले गया, जिसका नाम उसने बदल दिया और अपने ही नामपर मुर्शिदाबाद रखा। आगे चलकर १८वी शताब्दीके प्रारम्भिक पचास वर्षों तक बगालकी राजधानी इसी नगरमे बनी रही। इस पडयन्त्र का विवरण सुनकर औरगज़ेब बहुत ही क्रुद्ध हुआ, और उसने शाहज़ादे-को बिहार चले जानेका आदेश दिया। जनवरी, १७०३ ई०से बिहार प्रान्तकी सूबेदारी भी इसी शाहज़ादेको दे दी गई थी एव अगले तीन वर्षो तक (१७०४से १७०७ तक) अज़ीमुश्शान पटनामे रहा। उसके प्रार्थना करनेपर पटना नगरका नाम पलटकर शाहज़ादेके नाम पर अजीमाबाद रखनेकी स्वीकृति औरगज़ेबने दे दी।

बगाल प्रान्तकी आयमेसे बचे हुए करोड़ो रुपये मुर्शिदकुलीखाँ हर साल औरगजेबकी सेवामे भेजता रहता था। मराठोके साथ कभी समाप्त नही होनेवाले युद्धोमे अन्य साधनोसे प्राप्त सारी आमदनी व्यय हो जाती थी, एव बगालसे प्राप्त होनेवाले इस द्रव्यसे औरगज़ेबको बहुत ही समयो-चित सहायता मिलती थी। मुर्शिदकुलीखाँके सामने कालमे सबको इस बातका अनुभव हो गया कि प्रान्तका शासन सुदृढ सुयोग्य हाथोमे है। अपने ही आदमियोके द्वारा वह सारी वसूली सीधे ही कर लेता था और यो दलालो या जमीदारोके अपने निजी लाभकी सारी रकम आप ही बच रहती थी। मुर्शिदकुलीखाँकी आज्ञाएँ इतनी अटल होती थी कि बडेसे बडे विद्रोही भी उसके सामने काँपते थे, और चुपचाप उसकी आज्ञाओका

धर्मोंका पालन करते थे। इस्लामके भी [illegible] पर स्थान ही [illegible] करता था। वह मामलोंको किसी निष्पक्षतासे निपटाता था, और [illegible] फलतः किसी ताकत अपने धर्मोंका पालन करवाता था कि हिन्दुओंको भी [illegible] पर अत्याचार करनेका साहस नहीं होता था।

औरंगजेबकी मृत्युके कुछ ही वर्ष बाद [illegible] दिल्लीके केन्द्रीय सत्ताका पूर्ण पतन होने लगा तब मुर्शिद कुली खाँ [illegible] बंगालका स्वाधीन शासक बन बैठे। उसके शासन-कालमें बंगालमें पूर्ण शान्ति छा गई और वहाँ की समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

३. मालवा; मुगल कालमें उसका महत्त्व

मालवाका मुगल-कालीन प्रान्त उत्तरमें यमुना नदीसे लेकर दक्षिणमें नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। उसके पश्चिममें [illegible] राजपूताना था, तथा पूर्वमें स्थित बुन्देलखण्ड [illegible] पश्चिमी सीमाको चम्बल नदी निर्धारित करती थी। [illegible] बातोंमें [illegible] ही सबसे प्रमुख है जो [illegible] या [illegible] [illegible] [illegible] समान यहाँ विभिन्न पर्वतोंके [illegible] किन्तु [illegible] मालवामें [illegible] न तो [illegible] है और न [illegible] इतना अधिक है कि [illegible] कारण कि उनमें [illegible] [illegible] दक्षिणपूर्वी भागमें [illegible] लोगोंके अतिरिक्त कुछ विभिन्न [illegible] शासनका पतन भी अस्थिर है, [illegible] [illegible] आदिवासी [illegible] थे।

[illegible]

धानियाँ आगरा और दिल्लीसे दक्षिण भारतको जानेवाले सारे सैनिक मार्ग इसी प्रान्तमे होकर गुजरते थे, जिससे भी उस कालमे मालवाका विशेष महत्त्व था।

जहाँ वीर योद्धा राजपूत भी बसते हो ऐसे प्रधानतया हिन्दू प्रान्त मालवामे औरगजेबकी मन्दिर-ध्वसक नीतिका विरोध न होना तथा हिन्दुओपर लगनेवाले जजिया करका भार सिर झुकाकर चुपचाप स्वीकार कर लेना सर्वथा अनहोनी बातें थी। अपने पूज्य धार्मिक स्थानोकी रक्षा करनेके लिए वे इस्लामके प्रतिनिधियोका सामना करते थे। यह सब-कुछ होते हुए भी औरगजेबके शासन-कालके पूर्वार्धमे मालवामे विद्रोह बहुत ही कम हुए और वे भी कुछ क्षेत्रो तक ही सीमित रहे। छत्रसाल बुन्देला और बख्तबुलन्द गोण्डके आक्रमणोके अतिरिक्त मालवामे १७वी शताब्दी-के अन्त तक शान्ति बनी रही और वहाँका शासकीय इतिहास महत्त्वपूर्ण घटनाओंसे विहीन रहा। किन्तु राजारामके जिजीसे लौटकर महाराष्ट्र वापस आनेके बाद वहाँ एक ऐसा नया दौर प्रारम्भ हुआ जिससे अगले पचास वर्षोंमे मालवाके राजनैतिक इतिहासमे युगान्तरकारी उलट-फेर हो गए।

४. मालवापर मराठोंके आक्रमण; १६९९-१७०६

नवम्बर, १६९९मे मराठोका एक दल लेकर कृष्णा सावत प्रथम बार नर्मदा नदी पार कर मालवामे धामुनीके पास तक जा पहुँचा। इस प्रकार जो रास्ता खुला वह आगे चलकर भी किसी प्रकार बन्द नही किया जा सका और अन्तमे १८वी शताब्दीके पूर्वार्द्धकी समाप्ति तक मालवापर मराठोका पूर्ण आधिपत्य हो गया। जनवरी, १७०३मे मराठोने पुन नर्मदाको पार किया और उज्जैनके आसपास तक उपद्रव किया। अक्तूबर, १७०३मे नीमा सिन्धिया बरारमे जा धमका, फिरोज़जगके नायब सूबेदार रुस्तमखाँको हराकर उसे कैद कर लिया, तब नीमाने हुशगाबाद जिलेपर आक्रमण किया और छत्रसाल बुन्देलाके आमत्रणपर उसने नर्मदा नदी पार की और मालवामे जा पहुँचा। कई गाँव और नगर लूटनेके बाद अन्तमे उसने सिरोजको जा घेरा। इसी समय एक दूसरे मराठे दलका पीछा करता हुआ फिरोजजग बरारमे आया हुआ था, अपना भारी सामान और तोपें आदि उसने पीछे छोड दी और अच्छे

शासन करते रहे तथा १७वी शताब्दीके मध्य तक वे सर्वथा नगण्य हो गए थे।

अब गोण्डोमे देवगढका शासक ही सबसे प्रमुख माना जाता था। उधर चाँदामे एक दूसरा गोण्ड राजा शासन करता था, जो देवगढके गोण्ड राजघरानेका कट्टर प्रतिद्वन्द्वी तथा घोर शत्रु था। इन गोण्ड राजाओके पास बहुतसा धन संचित था, उसी प्रदेशमेसे खोदकर निकाले गए रत्न भी उनके पास बहुतायतसे थे और साथ ही उनके पास हाथियो-के बडे-बडे झुण्ड भी थे। इन सबको हथियानेके लिए मुगल लालायित हो उठे। सन् १६३७ई०मे एक मुगल सेनाने उस प्रदेशमे पहुँचकर वहाँके उन शासकोको टाँका देते रहनेकी शर्त माननेके लिए बाध्य किया था। किन्तु यह टाँका ठीक समयपर नही चुकाया जा सका और यो वाकी रहे टाँकेकी रकम बढते-बढते सन् १६६६के अन्त तक १५ लाख रुपये हो गई।

मुगल सेना लेकर जनवरी, १६६७मे जब दिलेरखाँ गोडवानामे पहुँचा, तब चाँदाके राजाने मुगलोकी पूर्ण अधीनता स्वीकार कर ली और कुल मिलाकर एक करोड रुपये देनेका वादा किया। दो महीने तक वहाँ ठहर कर दिलेरखाँने चाँदाके राजासे कोई ७७ लाख रुपये वसूल किए। तब तो देवगढके राजा कुर्कासिहने भी अधीनता स्वीकार कर ली और निश्चित समयमे १८ लाख रुपये देनेके सिवाय जुर्मानेके रूपमे ६ लाख रुपये और देनेको वह राजी हो गया। किन्तु वह अपने वादेके अनुसार यह सब रुपया नही चुका सका। तब मुगलोने देवगढपर चढाई कर वहाँ आधिपत्य कर लिया। तब तो अपना राज्य वापस पानेके लिए अपने दो भाइयो और एक बहिनके साथ वह राजा मुसलमान बन गया। परन्तु इस्लाम धर्म स्वीकार करनेके बाद भी यह गोण्ड राजा पूर्णतया आज्ञाकारी नही बन सका। तब उस राज्यके एक दूसरे हकदारको मुसल-मान बनाकर राजा वख्तबुलन्द नामसे उसे देवगढकी गद्दीपर बैठाया।

चाँदाके राजा रामसिहको अक्तूबर, १६८३मे गद्दीसे उतार कर उसके स्थानपर किशनसिहको वह राज्य दे दिया गया। एक मुगल सेनाके साथ एतकादखाँ उस राज्यकी राजधानीमे २ नवम्बरको जा पहुँचा और वहाँ किशनसिहको गद्दीपर बैठा दिया। किशनसिहके बाद जुलाई, १६९६मे उसका बडा लडका वीरसिह गद्दीपर बैठा।

८. देवगढ़के गोण्ड राजा बख्तबुलन्दका स्वाधीन होना

पुन, १६९१में औरंगजेबने बख्तबुलन्दको देवगढ़की गद्दीसे उतार कर यह राज्य उसके ही किसी मुसलमान गोण्डको दे दिया। कुछ वर्ष तक नज़रबन्द रखनेके बाद भविष्यमें ठीक तरह आचरण करनेकी ज़मानत देनेपर अगस्त, १६९५में उसे छोड़ दिया गया। किन्तु इसके कुछ ही समय बाद देवगढ़में गड़बड़ होने लगी। अपना राज्य वापस मिलनेकी अब बख्तबुलन्दको कोई आशा नहीं रह गई थी। इस समय देवगढ़ और चान्दा दोनों ही राज्योंके शासक कम उम्रवाले लड़के थे, इस [illegible] कार्यवाही पर स्वयं लाभ उठानेके लिए उसे यह अवसर [illegible] ही उपयुक्त जान पड़ा। एक दिन शाही सेनाके [illegible] शिविरसे भागा और सीधा देवगढ़ पहुँचा तथा वहाँ मेहनत, युक्ति तथा [illegible] साथ उसने वहाँ विद्रोहका झण्डा खड़ा किया। अपने पड़ोसी [illegible] प्रान्तमें भी [illegible] लूट-मार करने लगा। तब सम्राट्ने उसका सामना कर [illegible] फिरोजजंगने उसे हरा दिया और जून, १६९८में देवगढ़पर अधिकार कर लिया। [illegible] बुलन्द वहाँसे भी बच निकला और [illegible] सेनाके साथ जा [illegible] जा पहुँचा। तदनन्तर [illegible] अधिकार [illegible] उसने [illegible] पुन उसके पूर्वजोंकी गद्दीपर बैठाया।

उसके सैनिक [illegible] पीछे भी औरंगजेबका [illegible] देवगढ़ आनेके लिए [illegible] बख्तबुलन्दके [illegible] राजाओंके पास [illegible] भेजे। किन्तु [illegible] १७०१में [illegible] बख्तबुलन्दको [illegible] लिए, किन्तु [illegible] कर [illegible]।

[illegible]

जानेके बाद देवगढका सारा गौरव विलीन हो गया और तब नागपुरके मराठा राजघरानेने उसपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

९. मुगलोंकी अधीनतामें कश्मीरकी परिस्थिति

मुगल सम्राट् कश्मीरको अपने आमोद-प्रमोदके लिए एक सुन्दर स्थानसे अधिक कुछ नही समझते थे। उस प्रदेशकी धरती या वहाँके निवासियोकी हालतको यत्किंचित् भी सुधारनेके लिए उन्होने कभी कोई प्रयत्न नही किया।

कश्मीरकी सर्वसाधारण जनता पूर्ण अज्ञान तथा वहुत अधिक दारिद्रयके गहरे गर्तमे डूबी हुई थी। गाँवोमे रहनेवाले अधिकाश लोग आदिमवासियोका-सा बिलकुल ही सादा जीवन बिताते थे, और आवश्यक कपडोके अभावमे प्राय नगे ही घूमते-फिरते थे तथा सर्दीसे अपना बचाव करनेके लिए केवल एक कम्बल अपने शरीरपर लपेट लेते थे। कश्मीर प्रदेशकी सारी बस्तियाँ बहुत दूर-दूर बसी हुई थी और उन्हे एक दूसरेसे मिला सकनेवाली सडके भी वहाँ बिलकुल ही नही थी, जिससे बाहरी देशोंसे कुछ भी अनाज वहाँ ले जाना सर्वथा असम्भव था, हरेक घाटीवालोको अपनी आवश्यक खाद्य सामग्री अपने यहाँ ही उत्पन्न करनी होती थी। बाढ या अधिक बर्फ पड जानेके समान प्राकृतिक दैवी आपत्तियोके कारण जब कभी वहाँसे आना-जाना बिलकुल बन्द हो जाता था तब हज़ारो कश्मीर-निवासी बेवस हो अकालके कारण मर जाते थे। सभ्य ससारके आम रास्तोंसे यह प्रान्त बहुत दूर पडता था। ले जानेकी कठिनाइयोंके कारण बाजारमे पहुँचते-पहुँचते कश्मीरमे पैदा होनेवाली या वहाँ बनाई जानेवाली वस्तुओका मूल्य बहुत बढ जाता था। इस प्रान्तका अपना कोई विशेष उद्योग-धन्धा नही था और वहाँ बननेवाले शालोके धन्धेपर भी शाही अधिकार था और वह काम करनेवाले मजदूर भी शाही कारखानोंसे अपना नियुक्त दैनिक वेतन-मात्र पाते थे। कश्मीरमे बननेवाला सुन्दर कागज़ भी केवल शाही दरबारमे काममे आता था और वहाँके आदेशानुसार ही बनता था।

कश्मीरके निवासी इतने अधिक पिछडे हुए और सभ्यतासे अनभिज्ञ थे कि वहाँके समाजकी उच्च श्रेणीवालोको भी औरगज़ेबके शासन-कालके अन्त तक शाही मनसब पानेके योग्य नही समझा जाता था। कश्मीरके

सूबेदारकी विशेष सिफारिशपर ही सन् १६९९में प्रथम बार औरंगजेबने कश्मीर-निवासियोंको शाही सनद [illegible] बड़ी कठिनाईसे स्वीकृति दी थी। किसी भी कश्मीरी हिन्दूको मुगल साम्राज्यमें कोई पद नहीं दिया गया। वहाँके ग्राम निवासी गरीब मुसलमानोंको [illegible] उनकी नजरसे [illegible] जाता था, तथा वहाँके शहर-निवासी मुसलमान [illegible] कश्मीरी [illegible] पर [illegible] समझे जाते थे। अतएव मुगलकालीन भारतमें मोटी-मोटी बातें कहनेवाले [illegible] ही कश्मीरी कहे जाते थे। कश्मीरकी जनता बिल्कुल ही अपढ़ और बहुत दरिद्री थी तथा उनपर कठोर शासन लादा जाता था, जिससे साधारण कश्मीरियोंमें [illegible] भावना इतनी भर गई थी कि वे अपनी बहू-बेटियोंको उज्ज्वल वेशमें भी [illegible] नहीं दिखाते थे।

कश्मीर-निवासियोंके अन्य विभाग उनके जमानेमें किसी भी प्रकार कम नहीं थे। उस युगके अन्यायपूर्ण मुसलमान शासकों और उनके सैनिकोंके [illegible] दिनों-दिन बढ़ते जा रहे थे और [illegible] लोगोंमें अनुचित लाभ उठाकर [illegible] समृद्ध होते जा रहे थे। कश्मीरके नगरोंमें शिया-सुन्नियोंका आपसी धार्मिक विरोध प्रायः [illegible] आपसी युद्ध तकमें परिणत हो जाता था। ऐसे समय यदि कोई सूबेदार यदि उन आपसी झगड़ोंमें दूर रहनेवाला हुआ तब ही यहाँ [illegible] तथा कुछ शान्ति बनाए रखा जाता था। किंतु धार्मिक विरोधियोंका आपसी मनमुटाव भी बहुत ही [illegible] सार्वजनिक झगड़ोंमें बदल जाता था। [illegible] प्रेमी और सुन्नी लोग, शिया लोगोंके लड़के, उनके घरोंको जलाने तथा और कोई भी शिया [illegible] जो मिले उन्हें मारने तक लगते थे। झगड़ोंमें [illegible] उन बस्तियोंके साथ कई बार सूबेदारकी शाही सेनाको भी लड़ाई लड़नी होती थी। [illegible] सूबेदार [illegible] किसी [illegible] सुन्नी [illegible] सूबेदारके [illegible] भी [illegible] किये जाते थे।

यहाँके निवासी [illegible] दरिद्री थे और [illegible] करते थे। ये [illegible] और [illegible] भावना [illegible] नहीं थी। [illegible] कोई अधिक

सुखमय नही थी । वहाँकी झीलमे यदा-कदा आकस्मिक हानिकारक बाढ भी आ जाती थी एव वहाँके निवासियोको बरवस नदी या झील के किनारेसे दूर पहाडीके ऊपरवाले सकडे भागमे ही अपने सब मकान बनाने पडते थे । भूकम्प भी कभी-कभी हो जाता था एव मकान हलकी लकडीके ही बनाए जाते थे । वहाँ सरदी इतनी अधिक पडती है कि प्रत्येक घरमे दिन-रात आग जलाए रखना आवश्यक हो जाता है । इन सारी अनिवार्य बातोके फलस्वरूप वहाँके नगरोमे आग लगना एक बिलकुल साधारण बात थी । जब कभी वहाँ आग लगती थी तो लकडी और घासके बने हुए मनुष्योके वे सारे छोटे-छोटे घर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक एक साथ ही जलकर साफ हो जाते थे ।

१०. कश्मीरमें औरगजेबके सूबेदार और उनकी कार्यवाहियाँ

औरगजेबके शासन-कालके ४८ वर्षोंमे कुल बारह सूबेदारोने कश्मीरपर शासन किया । एकके बाद आनेवाले दूसरे सूबेदारकी निजी विभिन्नताके अनुसार प्रान्तके जीवनमे भी फेर-बदल होता जाता था । इतमादखाँ और फाजिलखाँके-से कुछ सूबेदार विद्वानोका आदर करते थे और बडे ही सोच-विचारके साथ वे न्याय-शासन करते थे । सैफखाँके समान कई दूसरे स्वय अधिकाधिक धन एकत्र करनेके लिए निरन्तर नये-नये अवैधानिक कर लगाकर कडाई के साथ उन्हे वसूल करते रहते थे ।

अर्द्ध शताब्दी लम्बे औरगजेबके शासन कालमे कश्मीरमे प्राकृतिक विपत्तियाँ भी कई आई, जिनमे विशेष रूपेण उल्लेखनीय थी—(जून, १६६९ और १६८१के) दो भूकम्प, (१६७३ और १६७८मे) दो बार राजधानीमे आग लगना, (१६८१ की) बाढ और १६८८मे अकाल पडना । सन् १६६३मे औरगजेब स्वय कश्मीर गया था । इस कश्मीर-यात्राका आँखो-देखा विस्तृत विवरण बर्नियरने लिखा है, यद्यपि इस यात्राके सन्-सवत् देनेमे उसने भूल की है । पुन १६६६मे तिब्बतके बाहरी भागको भी जीत लिया गया था । फारसी इतिहास-ग्रन्थोमे वहाँके शासकका नाम दलदल नजमल दिया है, जिसने औरगजेबकी अधीनता स्वीकार कर ली थी । कश्मीरके तत्कालीन इतिहासकी यही दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ थी ।

सन् १६८४मे कश्मीरमे शिया और सुन्नियोमे भयकर विरोध उठ

१६९८-९ ई०के लगभग कश्मीरमे एक ऐसी घटना घटी, जिससे वहाँके मुसलमानोकी धार्मिक भावना वहुत अधिक उमड उठी थी। ख्वाजा नूरुद्दीनने पैगम्बर मुहम्मद साहबका एक सुप्रसिद्ध पूजनीय वाल बीजापुर-मे कहीसे प्राप्त किया था। ख्वाजाकी मृत्युके बाद ख्वाजाका शव कश्मीर भेजा गया और उनके साथ ही पैगम्बर साहबका वह बाल भी कश्मीर लाया गया। उस बालको देखने तथा उस पूजनीय स्मृति-चिह्नको छूनेके लिए नगरकी गलियो और चौकोमे वहाँके सारे मुसलमान एकत्र हुए थे।

मई १६९२मे एक दूसरी घटना घटी, जो कश्मीरकी जनताके पूर्ण अन्धविश्वासको स्पष्टतया चित्रित करती है। रमज़ानका महीना था जब मुसलमान रोजे रखते हैं। कुछ अच्छी स्थिति वाले मीर हुसैन नामक एक विदेशीने कश्मीर आकर तख्त-इ-सुलेमान पहाडीके पास एक कुटिया बनाई और वही अपना डेरा डाला। रमज़ानके महीनेमे उस ऋतुके उपलक्षमे दिये जलाकर उसने वडा उत्सव मनाया। अपने मनोरजन तथा इस दृश्यको देखनेके लिए श्रीनगरके बहुतसे लोग वहाँ गए। तब दिनके तीसरे पहर वहाँ बडे जोरोंसे आँधी आई, बिजलियाँ चमकने लगी, पानी बरसने लगा और सारे नगरमे रात्रिका-सा अधेरा हो गया। कुछ समय तक यह सब चलता रहा, और यह सोचकर कि सूरज डूब चुका है लोगोंने अपना रोजा खोल दिया। किन्तु दो-तीन घण्टेके इस आंधी-तूफानके बाद जब सूरज फिर देख पडा तब बेवकूफ बनकर यो अपमानित होनेपर सारे निवासी हक्के-वक्केसे रह गए, क्योंकि रमजान महीनेमे दिनके समय कुछ भी खाना-पीना मुसलमानके लिए सबसे अधिक पापपूर्ण कार्य माना है। कश्मीरकी राजधानीके सारे ही छोटे-बडे लोगोने इस आश्चर्यजनक प्राकृतिक घटनाको उस विदेशी फकीरकी जादूगरीको ही करामात समझा, जिससे उन सब लोगोकी बुद्धि तथा उनमे शिक्षाके पूर्ण अभावका ही प्रदर्शन होता है। "धर्म-रक्षक और सत्यके पूर्ण ज्ञाता" बादशाह औरग-जेबने भी जनताके इस विश्वासको ही ठीक माना और उस जादूगरको वहाँसे निकाल बाहर किया।

११. गुजरात, उसकी सुविधापूर्ण स्थिति तथा वहाँकी नानाविध आबादी

वहाँके घरेलू धधो और व्यापारके कारण ही गुजरात सुसमृद्ध रहा

है। राजस्थानवाले राज्यों या उनके आसपास बसे हुए, गुजराती गाँवोंमें ही ये रहते चले आते थे। [illegible] हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वभावतया भारतके अन्य सब प्रान्तवासियोंसे कहीं अधिक व्यापारकुशल हैं, साथ ही उनकी विशिष्ट भौगोलिक स्थितिके कारण भी गुजरातको व्यापार-सम्बन्धी अनेकानेक लाभ और सुविधाएँ प्राप्त है। खानदेश, बरार और मालवा जैसे समृद्धिपूर्ण भीतरी प्रान्तों तथा उत्तरी भारतके अन्य भागोंका भी व्यापारका माल बाहर विदेशोंको भेजे जानेके हेतु गुजरातके मार्ग जानेके लिए बाध्य ही होता था। भारतके श्रेष्ठ बन्दर, जिनमें खम्भात, भड़ौच और [illegible] सूरत, इसी प्रान्तमें समुद्रतटपर थे। भारतसे अन्यान्य देशोंमें व्यापार चलाते रहनेके लिए मुगल कालमें गुजरात ही भारतका प्रमुख द्वार था। अरबके पवित्र तीर्थस्थानोंको जानेवाले हजारों मुसलमान यात्री मक्का और मदीनाके पवित्र स्थानोंकी यात्रा करनेवाले विना अपवाद इस गुजरातके मार्ग ही जाते थे। उनके भारतको पश्चिमी देशोंसे यानी, अरबको और मिस्र तथा ईरान, अरब, टर्की, मिस्र, [illegible] और तुर्किस्तान तथा [illegible] समुद्री मार्ग द्वारा इसी गुजरातके बन्दरगाहोंसे भारतमें प्रवेश करते थे। इस समुद्री मार्गसे भारत आनेमें समय कम लगता था और यह अधिक सुरक्षित भी था एवं इन ओरसे आनेवाले यात्री भी सब गुजरात और [illegible] पश्चिमी तटके पास-पास आनेवाले बन्दरगाहोंको छोड़कर इसी समुद्री मार्गसे ही उतरते थे।

अपनी विशेष भौगोलिक परिस्थितिके कारण गुजरातका इतिहास [illegible]

[illegible]

बिताना जिनके लिए सर्वथा असम्भव था। दक्षिणी गुजरातमे कोली थे, बगलानेके दक्षिण-पूर्वी प्रदेशमे भील बसे हुए थे और पूर्वी सीमापर जगली राजपूत या राजपूत-मिश्रित अन्य जातियोका ज़ोर था, पश्चिममे काठी थे, और इन सबके अतिरिक्त गिरासिये तो सारे ही प्रान्तोमे यत्र-तत्र फैले हुए थे। प्रदेशकी शान्तिको भग करनेके लिए ये गिरासिये सदैव तत्पर रहते थे। औरगजेबके शासन-कालमे वहाँ उपद्रव करनेको इन गिरासियोके साथ मराठे भी जा मिले, जिससे आगे चलकर अन्तमे मराठोने उस प्रान्तमे मुगल शासनकी इति-श्री ही कर दी।

१२. औरंगजेबके समयमें गुजरातमें दैवी आपत्तियाँ एव आक्रमण

मध्यकालमे गुजरातमे अकाल प्राय पडते ही रहते थे, और औरगजेबके शासन-कालमे यह परिस्थिति किसी भी प्रकार नही सुधरी थी। सन् १६८१, १६८४, १६९०-१, १६९५-६ और १६९८मे गुजरातमे अकाल पडनेका विवरण हमे मिलता है। १६९६मे तो ऐसा भयकर अकाल पडा था कि 'पाटलसे लेकर जोधपुर तक कही भी पानीकी बूँद या घासका एक तिनका देखनेको नही मिल सकता था'। इन दैवी विपत्तियोके साथ ही महामारी भी कई वर्षोतक कई नगरोमे निरन्तर बनी रही, जिससे वे नगर वीरान हो गए। जब मुगल-राजपूत युद्ध चल रहा था तब महाराणा राजसिहके पुत्र भीमसिहने १६८०मे गुजरातपर भी हमला किया और बडनगर, विशालनगर तथा अन्य कई समृद्ध नगरोको लूटा। प्रान्तकी शान्तिको तब भग करनेवाली यही एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

१३. गुजरातपर मराठोंका आक्रमण

सन् १७०६के प्रारम्भमे मराठोने शाही मुगल सेनाको बहुत बुरी तरहसे हराया था। शाहज़ादा आज़म (२५ नवम्बर, १७०५को) अहमदाबाद नगरसे रवाना हो गया था और बेदारबख्त ३० जुलाई १७०६को ही वहाँ पहुँचा। इसी बीचमे यह भयकर पराजय मुगल सेनाको सहनी पडी। तब प्रान्तकी सुरक्षाका ठीक प्रबन्ध नही था, एव उस स्थितिसे लाभ उठाकर धन्ना जादव मराठोके दल लेकर वहाँ जा पहुँचा। राजपीपल्यामे रतनपुर नामक स्थानपर धन्नाने एक-एक कर मुगल सेनाओके दो दलोको बुरी तरह हराया। उन सेनाओके सफदरखाँ और नजरअली-

खां नामक सेनानायकोंको मराठोंने कैद कर लिया और उनके छुटकारेके लिए द्रव्यकी मांग की। मराठोंने शाही सेनाओंके पड़ावोंको भी जी भर कर लूटा। इस युद्धमें हजारों मुसलमान मारे गए या कैद हुए (१५ मार्च १७०६)।

जब प्रान्तके शाहजादे मुहम्मद-बेदारबख्तने अब्दुल हमीदखां नामक एक सेनापतिको मराठोंका सामना करनेको भेजा, तब विजयी मराठोंने उसकी दोनोंही सेनाओंको बाबा प्यारेके घाटके पास हरा दिया। शाहजादेके [illegible] सारे शाही सेनानायकोंको मराठोंने कैद कर लिया तथा शाही सेनाके पड़ाव और सारे माल-असबाबको उन्होंने लूट लिया। तब मराठोंने आसपासके पड़ोसी प्रदेशोंमें चौथ वसूल की और जिन नगरों या गांवोंने चौथ नहीं दी उन्हें लूटते हुए वे वापस लौट गए। मराठोंके इस [illegible] लाभ उठानेके लिए कोली भी विद्रोही हो गए और उन्होंने [illegible] धनवान् [illegible] को दिन रात लूटा।

१४. बोहरों और खोजाओंपर धार्मिक अत्याचार

इस्माइलिया फिरकेके धार्मिक गुरु कुतुबको औरंगजेबके शासन-कालमें [illegible] प्राणदण्डकी शाही आज्ञा [illegible] दिया गया था। सन् १७०५में औरंगजेबने सुना कि कुतुबके उत्तराधिकारी [illegible], जो इस इस्माइलिया फिरकेका धार्मिक गुरु बन गया था, अपने [illegible] (मिस्टिसिज्म) [illegible] [illegible] [illegible] और आर्थिक [illegible] हैं। तब औरंगजेबने हुक्म दिया कि उस [illegible] तथा उस फिरकेके कुछ और नेताओंको कैद कर लिया जावे, और उन्होंने जो [illegible] [illegible] धार्मिक [illegible] हैं।

[illegible] ([illegible]) और [illegible]

लानेवाले अन्य मुसलमान फिरके भी थे, जिनमेसे वहुतसे पहिले हिन्दू थे और सैय्यद इमामुद्दीन नामक एक मुसलमान सन्तने उन्हे मुसलमान बनाया था। अहमदाबादसे ९ मील बाहर करमता नामक स्थानपर इसी सन्तकी कब्र है, जो इन दोनो फिरकेवालोका प्रमुख तीर्थ-स्थान है। अपने धार्मिक गुरुकी जिस प्रकार वे पूजा करते थे, वह किसी भी प्रकार मूर्ति-पूजासे कम नही थी। वे उसके पैरकी अँगुलियाँ चूमते थे और उसके पैरोमे ढेरो चाँदी-सोना चढाते थे। वह धर्मगुरु स्वय शाही ठाठ-वाठके साथ पडदेमे रहता था। अपनी वार्षिक-आयका दसवाँ हिस्सा वे स्वय ही करके रूपमे उसको भेट करते थे जिससे उसका सारा कारोवार चलता रहता था। औरगजेबने हुक्म दिया कि सैय्यद शाहजी नामक उनके इस धर्म-गुरुको कैद किया जावे। राहमे ही विष खाकर शाहजीने आत्म-हत्या कर ली, तब उसका वारह-वर्षीय लडका औरगजेबके पास भेजा गया। तव तो गुजरातमे उसके सारे अनुयायी विद्रोही हो गए और यह कहकर कि गुजरातके सूबेदारने ही उनके धर्मगुरुकी हत्या की थी उससे अपना वदला लेनेके लिए वे उतारू हो गए। उन्होने भडौचके फौजदारका सामना कर उसे मार डाला और उस नगरपर अधिकार कर लिया और ४,००० व्यक्तियोका उनका दल उस नगरपर आधिपत्य किए वहाँ डटा रहा। बहुत दिनो तक उस नगरका घेरा डाले रहनेके बाद ही कही सूबेदार पुन उस नगरपर अधिकार कर सका। तब उस नगरमे जो भी धर्मान्ध व्यक्ति पकडे जा सके उन सवको उसने मरवा डाला।

अध्याय १०.

औरंगज़ेबका चरित्र और उसके शासनका परिणाम

१ भारतकी समृद्धिका मूल कारण—शांति

सास्कृतिक उन्नति भी कर सकते हैं। अकबर, उसके पुत्र और पौत्रके एक शताब्दी तक चलनेवाले सुदृढ बुद्धिमत्तापूर्ण शासनोमे भारतके आधेसे भी अधिक भागमे पूर्ण शान्ति बनी रही। मुगलो द्वारा शासित भारतके इस अधिक सुसमृद्ध और आबाद भागमे उन्नति तथा विकासकी प्रेरणा दिनोदिन बढती ही गई। पानीपतके दूसरे युद्धके बाद निरन्तर होनेवाली सैकडो मुगल विजयोने भारतीयोमे यह सुदृढ विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि मुगल सेना अजेय थी और मुगल प्रदेशपर किसीका भी आक्रमण कर सकना बिलकुल अनहोनी बात थी। किन्तु इस विश्वासको शिवाजीने मिथ्या प्रमाणित कर दिया। भारतमे मुगलो द्वारा स्थापित शान्ति और सुव्यवस्था ही उनके साम्राज्यके आगे भी बने रहनेका एकमात्र कारण हो सकती थी, परन्तु औरगज़ेबकी मृत्युके समय वह शान्ति और सुव्यवस्था नाममात्रको भी भारतमे नही रह गई थी।

भारतके समान कृषि-प्रधान देशमे खेती करनेवाले किसान ही एकमात्र राष्ट्रीय समृद्धिके कारण होते हैं। सीधे या परोक्ष रूपसे ही क्यो न हो, धरती ही देशकी राष्ट्रीय समृद्धिको प्रति वर्ष बढाती है। उद्योग-धधेवालोको भी अपना माल बेचनेके लिए किसानो या धरतीकी आमदनी-से धन प्राप्त करनेवालोपर ही निर्भर रहना पडता है, एव यदि उनके पास बेचनेको अधिक अन्न न हो तो वे कोई भी दूसरी वस्तुएँ मोल नही ले सकते हैं। अतएव भारतमे तो किसानोकी दुर्दशाके फलस्वरूप किसानो-के साथ ही अन्य दूसरे सब लोगोकी भी दुर्गति हो जाती है। फ्रासकी कहावत 'किसान दरिद्री तो राज्य भी दरिद्री' भारतके लिए तो अत्यधिक उपयुक्त है। सार्वजनिक शान्ति और सम्पत्तिकी सुरक्षा किसानोके लिए जितनी आवश्यक है, उससे भी कही अधिक वे उद्योग-धन्धेवालो तथा व्यापारियोको जरूरी होती है क्योकि लाभदायक व्यापारक्षेत्रकी खोजमे उन्हे अपना माल दूर-दूरके देशमे ले जाना पडता है और आवश्यकता पडनेपर लम्बे समयके लिए उधारखाते भी खोलने पडते हैं। किसानो द्वारा पैदा किए गए मालके अतिरिक्त भागकी बचतसे ही आगे चलकर कुछ भी सम्पत्ति एकत्र की जा सकती है। अतएव उसकी सम्पत्तिके लिए खतरा उत्पन्न होनेके कारण जब कभी किसानकी पैदावार घटने लगती है या अपनी आमदनीमेसे कुछ बचा रखनेके लिए किसानको कोई प्रोत्सा-हन नही रह जाता है तब राष्ट्रीय मूलधनमे वृद्धि होना भी बन्द हो जाता

है, और इससे देशकी आर्थिक स्थितिको गहरा आघात लगता है। सार्वजनिक अशान्ति, अव्यवस्था तथा अस्थायी परिस्थितियोंके उत्पन्न हो जानेसे भारतमें जो देशव्यापी तथा बहुत समय तक बना रहनेवाला प्रभाव पड़ता है उसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें औरंगजेबके शासनकालमें देखनेको मिलता है। उन्हीं घटनाओंसे कारण सिद्धान्तोंकी सत्यता भी पूर्णतया प्रमाणित हो जाती है।

२. औरंगजेबके लगातार युद्धोंके आर्थिक दुष्परिणाम

सास्कृतिक उन्नति भी कर सकते हैं। अकबर, उसके पुत्र और पौत्रके एक शताब्दी तक चलनेवाले सुदृढ बुद्धिमत्तापूर्ण शासनोमे भारतके आधेसे भी अधिक भागमे पूर्ण शान्ति बनी रही। मुगलो द्वारा शासित भारतके इस अधिक सुसमृद्ध और आबाद भागमे उन्नति तथा विकासकी प्रेरणा दिनोदिन बढती ही गई। पानीपतके दूसरे युद्धके बाद निरन्तर होनेवाली सैकडो मुगल विजयोने भारतीयोमे यह सुदृढ विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि मुगल सेना अजेय थी और मुगल प्रदेशपर किसीका भी आक्रमण कर सकना बिलकुल अनहोनी बात थी। किन्तु इस विश्वासको शिवाजीने मिथ्या प्रमाणित कर दिया। भारतमे मुगलो द्वारा स्थापित शान्ति और सुव्यवस्था ही उनके साम्राज्यके आगे भी बने रहनेका एकमात्र कारण हो सकती थी, परन्तु औरगज़ेबकी मृत्युके समय वह शान्ति और सुव्यवस्था नाममात्रको भी भारतमे नही रह गई थी।

भारतके समान कृषि-प्रधान देशमे खेती करनेवाले किसान ही एकमात्र राष्ट्रीय समृद्धिके कारण होते हैं। सीधे या परोक्ष रूपसे ही क्यो न हो, धरती ही देशकी राष्ट्रीय समृद्धिको प्रति वर्ष बढाती है। उद्योग-धधेवालोको भी अपना माल बेचनेके लिए किसानो या धरतीकी आमदनीसे धन प्राप्त करनेवालोपर ही निर्भर रहना पडता है, एव यदि उनके पास बेचनेको अधिक अन्न न हो तो वे कोई भी दूसरी वस्तुएँ मोल नही ले सकते हैं। अतएव भारतमे तो किसानोकी दुर्दशाके फलस्वरूप किसानोके साथ ही अन्य दूसरे सब लोगोकी भी दुर्गति हो जाती है। फ्रासकी कहावत 'किसान दरिद्री तो राज्य भी दरिद्री' भारतके लिए तो अत्यधिक उपयुक्त है। सार्वजनिक शान्ति और सम्पत्तिकी सुरक्षा किसानोके लिए जितनी आवश्यक है, उससे भी कही अधिक वे उद्योग-धन्धेवालो तथा व्यापारियोको जरूरी होती है क्योकि लाभदायक व्यापारक्षेत्रकी खोजमे उन्हे अपना माल दूर-दूरके देशमे ले जाना पडता है और आवश्यकता पडनेपर लम्बे समयके लिए उधारखाते भी खोलने पडते हैं। किसानो द्वारा पैदा किए गए मालके अतिरिक्त भागकी बचतसे ही आगे चलकर कुछ भी सम्पत्ति एकत्र की जा सकती है। अतएव उसकी सम्पत्तिके लिए खतरा उत्पन्न होनेके कारण जब कभी किसानकी पैदावार घटने लगती है या अपनी आमदनीमेसे कुछ बचा रखनेके लिए किसानको कोई प्रोत्साहन नही रह जाता है तब राष्ट्रीय मूलधनमे वृद्धि होना भी बन्द हो जाता

है, और उससे देशकी आर्थिक स्थितिको गहरा आघात लगता है। सार्वजनिक अशान्ति, अव्यवस्था तथा अरक्षाकी परिस्थितिके उत्पन्न हो जानेसे भारतमे जो देशव्यापी तथा बहुत समय तक बना रहनेवाला प्रभाव पड़ता है उसका सबसे अच्छा उदाहरण हमे औरगजेबके शासन-कालमे देखनेको मिलता है। तबकी घटनाओसे ऊपर लिखी बातोकी सत्यता भी पूर्णतया प्रमाणित हो जाती है।

२. औरगजेबके लगातार युद्धोंके आर्थिक दुष्परिणाम

पूरे पच्चीस वर्ष तक निरन्तर दक्षिणमे औरगजेबके युद्ध चलते रहे, जिनके फलस्वरूप साम्राज्य और देशकी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड गई, उसका देशपर सर्वव्यापी भयकर प्रभाव पडा, जो बहुत समय तक बना रहा। शाही सेनाकी चढाइयो तथा विशेषतया उसके अनेकानेक घेरोंके कारण उन प्रदेशोंके पेड और घास बिल्कुल ही बरबाद हो गए। शाही कागज-पत्रोंके अनुसार तब शाही सेनामे कोई १,७०,००० सैनिक थे, और सभवत उनके साथ पडावके नौकरोकी सख्या इनकी दस गुनी हो जाती थी। अतएव जहां कही भी यह शाही सेना पहुँच जाती थी, कुछ ही दिनोमे वहाँ कोई भी हरियाली बाकी बचती न थी। इधर जो कुछ भी वे अपने साथ नही उठा ले जा सकते थे, मराठे आक्रमणकारी उस सबको नष्ट कर देते थे। पुन वे खडी फसलें अपने घोड़ोको खिला देते थे तथा लूटमारके बाद मकान और पीछे छोडी जानेवाली सारी सम्पत्तिको वे जला देते थे। अतएव यह पढकर आश्चर्य नही होता है कि अपनी अन्तिम चढाईके बाद जब सन् १७०५मे औरगजेब वापस लौटा तब तक सारा देश बरबाद होकर पूर्णतया वीरान हो चुका था। "इन प्रातोंके खेतोमे न तो फसलें रही थीं और न कोई वृक्ष ही, उनके स्थानपर वहां सब ओर मनुष्यो और ढोरोकी हड्डियां बिखरी पडी थी" (मनुची)। यो इस प्रदेशमे दूर-दूर तकके जगलोंके बिल्कुल ही कट जानेसे वहांकी खेतीपर बहुत ही बुरा प्रभाव पडा। युगो तक निरन्तर चलनेवाले इन युद्धोंसे साम्राज्यका कोष बिल्कुल ही खाली हो गया तथा वहांके अन्य नागरिक भी दरिद्री हो गए, अतएव आवश्यक द्रव्यके अभावसे बहुत अधिक समय बीतनेपर भी मकानो या सडकोकी दुरुस्ती नही हो सकती थी।

साधारण मजदूरोंको एकाएक बेगार और भूखसे व्याप्त तो सामना

करना पडता ही था, साथ ही ऐसी चढाइयोंके समय प्राय फैलनेवाली महामारी आदि भयकर बीमारियाँ भी उन्हे पीड़ित करती थी। शाही पडावमे अधिक सुविधाएँ, सुरक्षा तथा सुव्यवस्थाका होना स्वाभाविक ही था, परन्तु तथापि वहाँ दक्षिणकी इन लडाइयोके कारण प्रति वर्प एक लाख मनुष्य तथा हाथी, घोडे, ऊँट, वैल आदि मिलाकर तीन लाख जानवर मरते रहते थे। गोलकुण्डाके घेरेके समय सन् १६८७मे अकाल पडा। "हैदराबाद नगरके घर, नदियाँ और मैदान, सब जगह मुर्दे भर गए। शाही पडावमे भी यही हालत थी। ७७ कोसो तक मुर्दोंके ढेर ही देख पडते थे। निरन्तर बरसातसे उन शवोका मास और चमडी गल गई। कुछ महीनोके बाद जब वरसातका अन्त हुआ तब हड्डियोंके वे ढेर दूरसे हिमाच्छादित पहाडियोंके समान दिखाई पडते थे।" जिन प्रदेशोमे तब तक शान्ति और समृद्धि बनी हुई थी वहाँ भी अब ऐसी ही बरबादी होने लगी। बडी ही बारीकीके साथ देखनेवाला इतिहासकार भीमसेन पूर्वी कर्नाटकके विषयमे लिखता है—"बीजापुर, गोलकुण्डा और तैलङ्गके (राजघरानोके) शासनके समय इस प्रदेशके बहुतसे भागोमे खेती होती थी। किन्तु शाही सेनाओंके आते-जाते रहनेके कारण वहाँके लोगोको अब जो कठिनाइयाँ तथा अत्याचार सहन करने पडे उनके फलस्वरूप वहाँके अनेको स्थान बिलकुल ही उजड गए हैं।" यही हालत उसने बरारमे भी देखी थी।

सन् १६८८ ई०मे बीजापुरमे भयकर महामारी (प्लेग) फैली, जिसमे तीन महीनेमे कोई एक लाख स्त्री-पुरुप मर गए। अगस्त, १६९४मे शाहजादे आजमके पडावमे भी प्लेगके फैलनेका उल्लेख मिलता है। सूरतके अंग्रेज व्यापारियोके विवरणोमे भी सन् १६९४ तथा १६९६मे सारे पश्चिमी भारतमे ऐसी ही घातक महामारियोके फैलनेका वर्णन मिलता है। सन् १६९६मे कोई १५,००० स्त्री-पुरुप मरे। एक पीढी तक युद्धकी यह परिस्थिति चलती रही, जिसके फलस्वरूप जन-साधारणके पास कोई सम्पत्ति नही बच रही, और अब कोई विरोध करने या किसी भी सकटका सामना कर सकनेकी भी शक्ति उनमे नही रह गई। जो कुछ भी उन्होने पैदा किया था या जितना भी पिछली पीढियोसे उनके पास बच रहा था वह सब-कुछ दोनो विरोधी दल लूट ले गए, और उसके बाद जब कभी अकाल पडा या अनावृष्टि हुई तब किसान और बिना धरतीवाले मजदूर सब ही बेबस हो मक्खियोकी तरह मरने लगते थे। शाही पडावमे धान्य,

आदि वस्तुओंका प्रति दिन अभाव रहता था और प्राय वह अकालकी हद तक भी पहुँच जाता था।

३. युद्ध, उपद्रवों तथा शाही करोंके भारसे व्यापार और उद्योग-धन्धोंको हानि पहुँचना

भारतके कई एक भागोंमें खेती कर सकनेके लिए आवश्यक शान्ति और सुरक्षाके न रहनेके कारण वहाँके किसान भूखों मरने लगे, तथा अन्तमें क्षुब्ध हो अपनी पेट-भराईके लिए राह चलतोंको लूटने तथा डाके डालने लगे। दक्षिणके किसानोंने घोडे और शस्त्र एकत्र कर लिए और अब वे आक्रमण करनेवाले मराठोंका साथ देने लगे। अब स्थान-स्थानपर आक्रमणकारियोंके दल भी बनने लगे, जिससे अनेकों गांव-निवासी इन काम-धन्धेमें लग गए और उनमेंसे वीर और साहसी लोगोंको यश और धन कमानेका भी अवसर मिलने लगा। इन दुःखपूर्ण २५ वर्षोंमें व्यापार बिलकुल ही बन्द हो गया था। नर्मदाके दक्षिणमें सही सलामत आगे बढ़नेके लिए काफिलोंके साथ हथियारबन्द शक्तिशाली सैनिक दलोंका होना सर्वथा अनिवार्य हो गया। अतएव अपने निर्दिष्ट स्थानपर सुरक्षित जा पहुँचनेके लिए इन काफिलोंको अनेक बार सुदृढ़ शहरपनाहवाले शहरोंमें महीनों तक ठहरा रहना पड़ता था। नर्मदासे दक्षिणके शाही मार्गोंपर होनेवाले मराठोंके उपद्रवोंके कारण शाही डाक तथा सम्राट्के भोजनके लिए भेजे जानेवाले फलोंके टोकरे भी कई बार हफ्तों तक नर्मदाके उत्तरी तीरपर ही रुके रहते थे, एक बार तो उनके पूरे पांच महीने तक यों रुके रहनेका उल्लेख मिलता है।

बंगालके समान जिन प्रान्तोंमें कोई युद्ध नहीं हो रहा था, केन्द्रीय शासनमें कमजोरी आ जानेके कारण अब वहां भी शाही निषेधोंकी उपेक्षा कर प्रान्तीय सूबेदार व्यापारियोंसे उनका माल बहुत ही कम दामोंमें बल-पूर्वक स्वय मोल ले लेते थे और तब उसे पूरे दामोंपर बाजारमें बेचकर पैसा कमाते थे। उद्योग-धन्धेवाले कारीगरों तथा व्यापारियोंसे भी वे कई एक ऐसे कर वसूल करते थे, जिनको न वसूल करनेका शाही आदेश हो चुका था। (देखो मेरा अंग्रेजी ग्रन्थ "मुगल एडमिनिस्ट्रेशन", तीसरा अध्याय)। इस प्रकार भारतमें आर्थिक दिवालियापनका एक भयंकर संकट प्रारम्भ हुआ, जिससे 'राष्ट्रीय सम्पत्ति' दिनोंदिन घटने लगी और साथ

ही कारीगरोके कौशलकी कमी भी होने लगी तथा सास्कृतिक दर्जा भी नीचे गिरने लगा। देशके कई बडे भागोसे तो कला-कौशल तथा सस्कृति विलकुल ही लोप हो गयी।

राहसे गुज़रनेवाले मुगल सैनिक उधरकी फसलोको रौद देते थे, एव वहाँके किसानोको उनके इस नुकसानकी (पायमाली-इ-जरायतकी) उचित पूर्तिके लिए सम्राट्ने विशेष अधिकारियोका एक दल नियुक्त किया था, परन्तु तदर्थ आवश्यक धनके अभावके कारण प्राय इस दयालु शाही आदेशकी उपेक्षा ही की जाती थी। शाही सेनाके पीछे-पीछे नौकरो, मजदूरो, दरवेशो आदि कई एक अन्य विविध प्रकारके लोगोका वहुत बडा दल चलता था जो औरगजेबके 'इस घूमते हुए तम्बुओंके नगर'का अनुसरण इसी आशासे करता था कि शाही दरबार और सेनाकी उस भीड द्वारा गिराए गए रोटीके टुकडोको एकत्र कर वे उससे ही अपनी उदरपूर्ति करले। शाही सेनाके पीछे-पीछे चलनेवाला यह दल गरीब किसानोपर सबसे अधिक अत्याचार करता था। शाही सेनाको अपने ऊँट किराए देनेवाले बलूची और नौकरी या काम-धन्धेकी खोजमे रहनेवाले बेकार अफगान देहातवालोको बडी ही बेदर्दीसे पीटते और उनको लूटते थे। धानको इधर-उधर ले जाकर उसका व्यापार करनेवाले घुमक्कड बनजारे अनाजसे लदे हुए बैल अपने साथ लिये बडी-बडी टोलियोमे घूमते रहते थे और कई बार एक-एक दलमे पॉच हजारसे भी अधिक बनजारे होते थे। वनजारो के ये दल वहुत शक्तिशाली होते थे और वे छोटे-छोटे शासकीय अधिकारियोको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। वे भी कई बार राहमे पडनेवाले लोगोको लूट लेते थे, खेतोमे खडी फसलें अपने ढोरोको चरा देते थे और फिर भी उन्हे कोई दण्ड नही दिया जाता था। मराठा सैनिकोके पीछे अब बेरडो और पिण्डारियोके भी दल चलने लगे, और बेरड तथा पिण्डारी, ये दोनो ही निरे डाकू और केवल लुटेरे थे।

इनके सिवाय गाँववालोको वहाँके पुराने और नए दोनो परस्परविरोधी जागीरदारोके वहाँके गुमाश्तोके आपसी झगडोका भार भी उठाना पडता। लगानकी कभी पूरी न चुकनेवाली रकममे वाकी रहा रुपया वसूल करनेके बहाने पुराने जागीरदारका गुमाश्ता वहाँसे चल देनेसे पहिले जो कुछ भी हो सकता था बलपूर्वक ले लेनेका प्रयत्न करता था, और कई बार नये जागीरदारके गुमाश्तेके आनेके वाद भी वाकी वसूल करनेके

लिए कई महीनों तक उस गांवमें टिका रहता था। उधर नया तहसील-दार भी अपनी उदर-पूर्तिके लिए भूखे अधमरे किसानोंसे अपने खातेके बहुत-कुछ रुपये वसूल करनेमें जुट जाता था।

४. मुगल शासनका दिवाला

अंग्रेजोंने ठहर-ठहरकर ही क्रमश भारतको जीता था, लगातार आक्रमण करके उन्होंने एकबारगी यह सफलता नहीं प्राप्त की थी। प्रत्येक आक्रमणकारी गवर्नर जनरलके बाद आनेवाले गवर्नर जनरलकी नीति शान्तिपूर्ण तथा भारतके देशी राज्योंमें हस्तक्षेप न करनेकी ही रहती थी, तथा व्ययमें कमी करनेकी ओर भी वह पूरा ध्यान देता था। वेलेज़लीकी विजयोंकी आवेशपूर्ण नीतिसे जो आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया था वह शान्त तथा धीमी नीतिवाले बार्लो और मिण्टोके शासन-कालोंमें दूर हो गया। युद्ध-प्रिय लार्ड हेस्टिंग्ज़ और एमहर्स्टके समय जो खज़ाना खाली हो गया था उसे शान्ति-प्रिय बेण्टिकने पुन परिपूर्ण कर दिया। परन्तु औरंगज़ेबके समयमें यह नहीं हुआ। मारवाड़ राज्यपर आधिपत्य करनेके लिए उसने १६७९में जो युद्ध प्रारम्भ किया वह उसके शासन-कालके अन्त तक लगातार चलता ही गया। बीच-बीचमें कुछ ठहरकर पुन शान्ति-पूर्ण नीति अपनाने तथा सैनिक व्ययको घटानेकी बड़ी आवश्यकताको उसने कभी नहीं समझा, जिससे कि उसकी प्रजाको कुछ अवकाश मिल जाता और पिछले युद्धमें जो हानि हुई थी उसको पूरा कर भावी युद्धोंके लिए आवश्यक सामग्री आदिको वे एकत्र कर सकते। अपने शासन कालकी एकत्रित बचत, सन् १६७९में हिन्दुओंपर लगाए गए नये जज़िया करसे होनेवाली नई आमदनी तथा आगरा और दिल्लीके तलघरोंमें पीढ़ियोंसे संचित सारी सम्पत्तिको भी कुछ ही वर्षोंमें औरंगज़ेबने खर्च कर डाले।

इस प्रकार साम्राज्यका अन्तिम संचित कोष भी समाप्त हो गया और तब शासकीय सत्ताका दिवाला निकलना सर्वथा अनिवार्य हो गया। सैनिकों तथा शासकीय अधिकारियोंके पिछले तीन-तीन वर्षोंके वेतन भी तब तक चुकाए न जा सके थे। वेतन नहीं मिल रहा था और बनिया आगे उधार देनेको तैयार नहीं था, जिससे लोगोंके भूखों मरनेकी नौबत आ जाती थी और वे कई बार शाही दरबारमें भी धरना देकर उपद्रव

खडा कर देते थे तथा अपने सेनानायकके दीवानको गालियाँ देकर कभी-कभी उसको मार-पीट भी देते थे। तनख्वाहके पेटे दी जानेवाली जागीरो सम्वन्धी हुक्मोका जारी किए जानेके वाद भी कई वार वरसो तक पालन नही होता था, क्योकि जिसको वह जागीर दी जाती थी उसको वे गाँव वास्तवमे सिपुर्द नही किए जा सकते थे। जागीर दिए जानेके लिए हुक्म होनेके वाद वह जागीर उसके सिपुर्द होनेमे कई वार इतनी अधिक देरी हो जाती थी कि व्यगपूर्वक लोग कहा करते थे कि तब तक एक वालक सफेद वालोवाला बूढा हो जाता था। वहाँके किलेदारको घूस देकर एक छोटेसे मराठा किलेपर भी अधिकार करनेमे रु० ४५,००० नकदके लगभग खर्चा हो जाता था। इतना रुपया प्रत्येक किलेपर व्यय करके मराठोके सारे किलोपर अधिकार करना औरगजेबके लिए सर्वथा असम्भव था। तथापि घूस देकर या उसका घेरा डालकर एकके वाद दूसरे किलेको लेनेमे औरगजेव हठपूर्वक बरावर लगा ही रहा। घेरा डालकर किलेपर अधिकार करनेमे तो कोई दस गुना अधिक रुपया व्यय होता था।

अन्तमे दक्षिणमे लडनेवाली मुगल सेनाका उत्साह और हिम्मत विलकुल ही टूट गए। इस अनन्त निरर्थक युद्धसे सैनिक हैरान हो गए,[1] किन्तु फिर भी औरगजेव न तो किसीके विरोधकी ओर ध्यान देता था और न किसीकी हितकर सलाह ही सुनता था।

५. शासनमें शिथिलता और सार्वजनिक उपद्रव

वढे हुए खर्चों तथा दक्षिणमे चलनेवाले इस निरन्तर युद्धकी उत्तरी भारतकी स्थितिपर भी अहितकर प्रतिक्रिया हुई। साम्राज्यके उन पुराने सुव्यवस्थित शान्तिपूर्ण सुसमृद्ध प्रान्तोंसे भी वहाँके युवा पुरुष, वहाँकी सञ्चित सम्पत्ति तथा सुयोग्य व्यक्ति सुदूर दक्षिणको खिंचे चले गए। वहाँके श्रेष्ठ सैनिक, सर्वोच्च अधिकारी और वहाँ एकत्रित सारी आमदनी दक्षिणमे भेज दी गई। हिन्दुस्तानके इन सूबोका शासन निम्नकोटिके अधिकारी ही चलाने लगे। उनके साथ अव वहुत ही थोडी सेना रहती

---

१ औरगजेबने मुअज्जमको लिखा था कि "रेगिस्तान और जगलोमे मेरे साथ घूमते रहनेके कारण अव मेरे अधिकारी यह चाहने लगे है कि मेरी मृत्यु हो जावे।" (एनेक्डोट्स—स० ११)।

थी तथा प्रान्तीय आमदनीका इतना थोड़ा भाग पीछे रहने दिया जाता था कि केवल उतनेमें ही अपना गौरव बनाए रखना सूबेदारके लिए असम्भव-सा हो जाता था। दक्षिणकी ही तरह कुछ समय बाद उत्तरमें भी अब कभी-कभी सब तरहके उपद्रवी लोग सिर उठाने लगे। इन उत्तरी सूबेदारोंकी बाकी रही आमदनी पहिले ही समुचित नहीं थी, और वास्तवमें अब वह भी दिनोदिन घटने लगी। देश-व्यापी अशान्तिके कारण किसानोंसे लगान भी पूरा वसूल नहीं होता था। किसानोंको पूरी तरह बरबाद कर देनेवाली मुगल जागीरोंकी वास्तविक शासन-प्रबन्ध-व्यवस्थाकी अपेक्षा साम्राज्यके लिए अधिक हानिकारक वस्तु ढूँढे नहीं मिलती। एकके बाद नियुक्त होनेवाले दूसरे जागीरदारके या एक ही जागीरदारके एक ही साथ दो परस्पर-विरोधी गुमाश्तोंमें उस जागीरके किसानोंका सब कुछ ले लेनेकी होड़-सी लग जाती थी। शाही खालसा प्रदेशमें भी ऐसी ही बरबादी करनेवाली नीति बरती जाती थी और हर एक जिलेका प्रत्येक तहसीलदार किसानोंसे भरसक सब-कुछ चूसनेका प्रयत्न करता था।

यों मुगल शासन एक विषम चक्करमें जा फँसा था, राजनैतिक उपद्रवों तथा माली शासनके गलत तरीकोंके कारण जागीरोंसे वसूल होनेवाला रुपया दिनों-दिन कम ही होता जा रहा था। आमदनीके निरन्तर घटते रहनेके कारण सूबेदारको भी विवश होकर अपने पास रखे जानेवाले सैनिकोंमें बारम्बार कमी करनी पड़ती थी। सशस्त्र सैनिकोंकी संख्या घटनेसे प्रान्तके उपद्रवी लोग अधिकाधिक सिर उठाते थे, जिससे किसानोंकी दुर्दशा बढ़ती ही थी और यों माली आमदनी में और भी अधिक कमी हो जाती थी।

राजपूत तथा स्वयको क्षत्रिय जातिका बतानेवाले सब हिन्दुओंका एकमात्र उद्योग तथा पेशा था युद्ध करना। जब मुगलोंने सारे उत्तरी भारतपर अपना एकछत्र शासन स्थापित किया तब पश्चिमसे भारतीय सीमापर होनेवाले युद्धों या सुदूर दक्षिणमें तब तक स्वाधीन रहे प्रदेशोंको जीतनेमें राजपूतोंको लगाया गया। मुगल सेनामें सम्मिलित हो राजपूत पहिले मुगल सल्तनतके नीचे मध्य एशिया और कन्धारमें लड़े थे। परन्तु औरंगजेबके शासन-कालमें मुगलोंकी यह सैनिक कार्यवाही भारतीय सीमाओंमें ही सीमित हो गई। दक्षिणके बाकी रहे राज्योंको औरंगजेब

द्वारा जीत लिए जानेके बाद दो विभिन्न कारणोंसे राजपूतोमे बेकारी बढ गई। प्रथम तो उन जीते गए राज्योकी सेनाओके स्वामी-विहीन स्थानीय सैनिकोको भी नौकर रखना आवश्यक हो गया। दूसरे अब जीते जानेको बहुत ही थोडा प्रदेश रह गया था। ऐसी परिस्थितिमे राजपूत घरानेके महत्त्वाकाक्षी नवयुवकोके लिए केवल दो ही रास्ते रह गए थे, या तो अपने पैत्रक राज्य या जागीरपर अधिकार करनेके लिए वे अपने ही घरानेवालोसे लडे या लूटमार करने लगे।

६. औरंगजेबके शासन-कालमें भारतीय सभ्यताका पतन : उसके कारण तथा लक्षण

औरगज़ेबके शासन-कालमे मध्यकालीन भारतीय सभ्यताके पतनके सुस्पष्ट लक्षण कई एक बातोमे देख पडे। ललित कलाओका ह्रास हो गया था, साथ ही तबकी नई पीढीके लोगोका बौद्धिक स्तर भी पहिले-वालोसे बहुत ही नीचा था। अकबर और शाहजहाँके समयकी पौरुपत्व-पूर्ण परम्पराओमे बडे हुए लोगोमे स्वतन्त्र विचारकी वुद्धि अधिक थी तथा अधिक जिम्मेदारी सभालने और पूरी-पूरी सूझ-बूझसे काम करनेकी योग्यता उनमे बहुतायतसे पाई जाती थी। ज्यो-ज्यो १७वी शताब्दी बीतती गई उस प्रकारके वे सारे पुराने उच्चाधिकारी एक-एक कर मरते गए। अब उनके स्थानपर जो अधिकारी आए उनमे पहिलेवालोकी-सी उदारता, क्षमता और हिम्मत न थी। सदैव सशक रहनेवाला औरगज़ेब स्वय उन्हे समुचित साधन और अवसर नही देता था, एव ये अधिकारी जिम्मेदारी उठाने या अपनी सूझ-बूझ और प्रेरणासे कुछ भी काम करने से हिचकिचाते थे, और अपनी निजी उन्नति के लिए भी चाटुकारिता तथा अपने सरक्षकोकी सिफारिशसे ही काम निकालते थे। अपने बहुत ही लम्बे जीवन-कालमे औरगजेबकी जानकारी तथा उसका अनुभव दिनो-दिन बढते ही गए, जिससे उसके समयकी नवयुवा पीढी औरगजेबकी तुलनामे बौद्धिक दृष्टिसे स्वयको बहुत ही हीन और छोटा अनुभव करती थी। ज्यो-ज्यो उसकी उम्र बढती गई औरगज़ेब अधिकाधिक हठी होता गया और तब वह दूसरोकी बातपर ध्यान न देकर अपनी ही मनमानी अधिक करता था। उसकी मृत्यु पर्यन्त किसीको भी यह साहस नही होता था कि वह औरगजेबकी बातको काटे या उसका विरोध करे।

कोई भी उसे निष्कपट सलाह नही देता था और न कोई अप्रिय सत्य बात ही उसे कह सकता था। सुदूर दक्षिणमे चलनेवाले निरन्तर युद्धोंसे उसे अवकाश ही नही मिलता था तथा वहांके पडावोंके कठोर जीवनमे समुचित वातावरणका भी पूर्ण अभाव था एव उच्चवर्गीय समाजकी राजसी सभ्यता निरन्तर गिरती ही गई। तब ये अमीर और सरदार ही समाजके कर्णधार होते थे, एव सारे भारतीय समाजके बौद्धिक वर्गका भी धरातल धीरे-धीरे नीचा होता गया। अब विशुद्ध साहित्यिक फैजीके स्थानपर जफर जतली जैसे अनगढ कविकी कृतियोंसे ही उनका मनोरजन होता था।

निरन्तर बिगडती हुई भारतकी इस बदली हुई दुर्दशापूर्ण हालतको देखकर इतिहासकार भीमसेन और खफीखाँको बहुत ही खेद होता था, तथा वे अकबर और शाहजहांके समयके व्यक्तियोंके गुणों और उनके गौरवको ओर बडी ही लालसा भरी दृष्टिसे देखते थे। औरगजेब स्वय भी भविष्यकी आशकाओंसे ग्रस्त होकर निराशाके साथ दु खपूर्वक सिर हिलाता था और अपनी मृत्युके बाद पूर्ण सर्वनाश होनेकी ही भविष्य-वाणी करता था।

औरगजेबके शासन-कालके पिछले वर्षोंमे और उसके उत्तराधिकारियोंके समय भी सुयोग्य व्यक्तियोंको कभी पूर्ण प्रोत्साहन नही दिया गया, और उसकी निजी योग्यताके आधारपर ही किसीकी उन्नति नही की गई। पतित व्यक्तियो, चापलूसो, नवरे हुए दभी लोगो, बडे अमीरोंके सम्बन्धियो या पुराने अधिकारी वर्गके घरानोंके भाई-बेटोंको सन्तुष्ट करनेके लिए ही साम्राज्यके विभिन्न पद उन्हे दिए जाते थे, उन पदोंके साथ अनिवार्य रूपसे सम्बद्ध आवश्यक जन-सेवाके पवित्र उत्तरदायित्व-की ओर कोई भी ध्यान नही देता था। औरगजेबके शासन-कालमे मुसलमानी धर्मान्धता तथा सकीर्ण दृष्टिकोण और पिछले मुगलोंके समयमे विलासिता तथा आलस्यके कारण ही साम्राज्यका शासन बरबाद हो गया और पतनोन्मुख साम्राज्य अपने साथ ही भारतीय जन-समाजको भी पतनके गहरे गड्ढेमे खींच ले गया।

७. मुगल कुलीन वर्गका नैतिक पतन

अमीरोंके घरानोंमे नैतिक पतनके चिह्न सुस्पष्ट रूपमे देख पडने

लगे थे और इससे ही मुगल साम्राज्यको सबसे अधिक हानि पहुँची। पुराने अमीर घरानोके आचार-विचार १७वी शताब्दीके पिछले वर्षोमे बहुत ही निन्दनीय हो गए थे। उन घरानोके वशज स्वय बहुत ही निकम्मे और सर्वथा अयोग्य हो गए थे, तथापि निम्न श्रेणीके जिस किसी भी सुयोग्य व्यक्तिको उच्च शासकीय पदोपर काम करनेके लिए आगे वढाया जाता था उसके प्रति वे ईर्ष्या करते थे उसके प्रति नीच व्यवहार कर उसका अपमान करते थे और उसकी उन्नतिमे वाधा डालनेका भरसक प्रयत्न करते रहते थे। मुगल अमीरोके नैतिक पतनका एक वहुत ही अर्थपूर्ण उदाहरण हमे वजीरके पौत्र मिर्ज़ा तफख्खुरके चरित्रमे मिलता है। अपने साथी गुण्डोको लेकर वह दिल्लीमे अपने महलमे निकलता और तव वाजारमे दूकानोको लूटता तथा डोलियोमे बैठकर नगरकी आम सडकोपरसे निकलनेवाली या यमुना नदीकी ओर जानेवाली हिन्दू स्त्रियोको उडाकर उनके साथ व्यभिचार करता था, फिर भी न तो वहाँ कोई ऐसा शक्तिशाली या साहसी न्यायाधीश ही था जो उसे दण्ड दे सकता और न ऐसे अत्याचारोको रोकनेके लिए वहाँ पुलिसका कोई समुचित प्रवन्ध ही था। "जव कभी अखबारो या अधिकारियोकी सूचनाओ द्वारा इन घटनाओकी ओर सम्राट्का ध्यान आकर्षित किया जाता था, वह स्वय कुछ भी नही करता था और उन मामलोको वज़ीरके ही सिपुर्द कर देता था।"

सबसे उपजाऊ प्रान्तोमे ज़मीनकी पैदावारके सारे अतिरिक्त भागको समेटकर मुगल अमीर अपने निजी भडारोमे ले जाते थे, जिससे भारतके इन मुगल अमीरोका भी रहन-सहन ऐसा ऐश्वर्य और सुखपूर्ण हो गया था जिसका ईरानके स्वय शाह या मध्य एशियाके सुलतान भी सपना नही देख सकते थे। अतएव दिल्लीके अमीरोके महलोमे विषय-भोग अपनी चरम सीमाको पहुँच गए थे। उनके हरम सदैव अनेकानेक देशो और अनगिनत विभिन्न जातियोकी नाना विधिके ढग, चरित्र तथा वुद्धिवाली अनेको स्त्रियोसे भरे रहते थे। मुसलमानी कानूनके अनुसार ऐसी रखेलियोसे होनेवाले पुत्रोको भी विवाहित स्त्रियोसे उत्पन्न पुत्रोके ही बरावर पैतृक सम्पत्तिका भाग मिलता है। समाजमे भी इन दासीपुत्रोका स्थान किसी प्रकार हीन नही होता है। उन अमीरोके हरमोमे जो कुछ भी होता था उसे देख-सुनकर विवाहित स्त्रियोसे उत्पन्न पुत्र भी कम उमरमे ही उन सव दुर्गुणोको सीख लेते थे। नीच कुलकी व्यभि-

चारी प्रवृत्तिवाली नवयुवा सुन्दर स्त्रियां उनकी माताओकी प्रतिद्वन्द्वी बनकर उन महलोमे रहती थी और उनके बडे हुए ठाटबाट और प्रभावके कारण उनकी माताओको अपमानित होना पडता था।

मुगल अमीर और सरदारोंके पुत्रो की शिक्षाका कोई ठीक प्रबन्ध नही था और न उन्हे किसी बातकी व्यवहारिक शिक्षा ही मिल पाती थी। हिजडो और दासियोंके लाड-प्यारमे ही उनका लालन-पालन होता था। जन्मसे लेकर युवा होने तक उनका जीवन पूर्ण सरंक्षण मे ही बीतता था और उनकी राहके सारे कांटे उनके नौकर ही दूर कर देते थे। छुटपनसे ही कुकर्मोंमे परिचित हो जाते थे; विलासपूर्ण जीवनके कारण उनका शरीर सुकोमल बन जाता था, और उसपर भी उन्हे अपनी श्रेष्ठता तथा अपने धनके अत्यधिक महत्त्वका पाठ पढाया जाता था। इन बालकोको घरपर पढानेवाले शिक्षकोकी स्थिति बहुत ही दयनीय थी; जहां तक स्वय उनके छात्रकी इच्छा न हो वे कोई भी अच्छी बात नही कर सकते थे। इसी कारण मुगल अमीरोंके पुत्रोका नैतिक पतन हताश कर देनेवाली अबाध तेजीसे हो रहा था। इनमेसे अधिकाश और शाहआलम एव कामबख्श जैसे औरगजेबके पुत्र भी उस हद तक पहुँच गए थे कि तब उनका कुछ भी सुधार हो सकना सभव नही रहा। औरगजेब बारम्बार उन्हे आदेश देता रहता था, परन्तु उसकी कोई सुनता न था, जिसने अन्तमे निराश होकर उसने कहा—"लगातार कहते-कहते मैं तो पागल हो गया, किन्तु तुममेंसे किसीने मेरी बातोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।"

अनियन्त्रित व्यभिचार, चोरी-छिपे मदिरा-पान और जुआखोरीके दुर्गुणोंके साथ ही अमीर धनाढ्यो तथा मध्यमवर्गके भी पुरुषोमे अप्राकृतिक व्यभिचारकी लत प्राय पाई जाती थी। कहे जानेवाले कई संत भी इस पापाचरणसे नही बच सके थे। इसपर भी रोक लगानेके लिए औरगजेबके सारे आदेश और जनतामे सदाचार बढानेके लिए नियुक्त अधिकारियोंके अनवरत प्रयत्न भी मुगल अमीरोको मदिरा पीनेसे रोकनेमे सफल नही हुए। इतिहासकारोंके समकालीन विवरणोंमे कई अमीरोंके आमोद-प्रमोदके विचित्र तरीको तथा उनकी सर्वथा अनोखी रुचिका उल्लेख मिलता है। (मनूची, ४, पृ० २५८–९, २६२)।

८. लोकप्रचलित अन्धविश्वास

सभी वर्ग और जातिके लोग घोर अन्धविश्वासोमे पूरी तरह फँसे हुए थे। दरिद्री और धनवान सभीके जीवनका प्रत्येक कार्य ज्योतिषीकी सलाहके बिना नही हो सकता था। कट्टर औरंगजेबने भी 'पैगम्बर मुहम्मदके झूठ-मूठ चरण-चिह्नो और बालोकी (असार-इ-शरीफकी) परिक्रमा ऐसी श्रद्धा तथा आदरके साथ की थी मानो वे ईश्वरके साक्षात् प्रतीक ही हो। उनके प्रति औरंगजेबकी इस भावना और पत्थरपर बने विष्णुके पद-चिह्नोकी हिन्दुओ द्वारा पूजामे किसी भी प्रकारकी विभिन्नता ढूँढ निकालना कठिन ही है। निम्न कोटिकी मानव-पूजाके कारण जन-साधारणका चरित्र बहुत ही पतित हो गया था। जिस प्रकार हिन्दू और सिक्ख गुरुओ और महन्तोकी पूजा करते थे, उसी प्रकार इन दोनो धर्मो-को माननेवालोके साथ ही, मुसलमान भी सतो, पीरो और फकीरोको पूजते थे, और चमत्कार दिखाने, तावीज देने, जादू-टोना करने तथा अचूक दवा देनेके लिए उनसे प्रार्थना करते थे। इन बातोमे ढोगी जादू-गरोकी खूब चलती थी, अपने पास पारस मणि होनेका भी वे दिखावा करते थे, और यो अमीर और गरीब सभी उनसे कुछ पानेको इच्छुक रहते थे। कीमिआगिरी द्वारा सोना बना सकनेकी विद्यापर सर्व-साधारण-का पूर्ण विश्वास था, और उच्च वर्ग के पढे-लिखे लोग भी इस विद्याके जाननेवालोकी सहायता कर उन्हे प्रोत्साहन देते थे और उन्हे सम्राट्के दरबारमे पेश करनेके लिए वादा करते थे।

इस प्रकारके अज्ञान और अहकारका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सब ही वर्गके लोग विदेशियोको उपेक्षा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे थे। यह सत्य है कि कई धनी मानी भारतीय अमीर तोपें ढालनेवाले युरोपीय मिस्त्रियो, युरोपीय तोपचियो तथा कुछ युरोपीय चिकित्सकोको भी आश्रय देते थे, क्योकि उनकी सफलताप्रद विशेष निपुणताको अपनी आँखोसे देख कर उन्हे उनकी योग्यतापर विश्वास हो गया था। यूरपमे बनी हुई विलास-साधनकी वस्तुएँ भी वे बडी ही उत्सुकताके साथ मोल लेते थे। तथापि किसी भी भारतीय अमीर या विद्वान्ने युरोपीय भाषाओ,[1] कला-कौशल्य अथवा युद्ध-विद्याको सीखनेका

---

१ फारसी जाननेवाले युरोपीय या अरमेनियन लोग ही मुगलोके शाही दरबारमें पहुँचनेवाले युरोपीय यात्रियोके लिए दुभाषिएका काम करते थे। सन् १७०३

कोई प्रयत्न नही किया। सोलहवी और सत्रहवी सदियोंके मुगल सम्राट् और भारतीय अमीर कितने स्वार्थान्ध तथा स्वेच्छाचारी थे, इस बातका पूरा पता किसी भी आधुनिक भारतीय देश-भक्तको इसी बातसे लग जावेगा कि जहाँ वे प्रति वर्ष लाखो रुपये खर्च कर युरोपमे बनी हुई सुख-भोग और कलाकी अनेको वस्तुएँ मोल लेते थे, वहाँ जनसाधारणकी शिक्षा या सार्वजनिक धन्धेके लिए उन्होने एक भी छापाखाने या लियो-का पत्थर तक मँगवानेकी कभी नही सोची।

दासोकी अधिकता होनेके कारण भारतीय समाजका नैतिक और बौद्धिक धरातल बहुत ही गिर गया था। युद्धके कैदियो तथा हारे हुए घरानोंके लोग दास बनाए जाते थे, उसके अतिरिक्त अकालके समयमे या अपने कर्जेके चुकानेके लिए भी स्त्री-पुरुषोको उनके माता-पिता बेच देते थे। हिन्दुओ और मुसलमानो, दोनोंमे ही यह एक प्राचीन कानूनी तरीका था कि लिया हुआ ऋण समयपर न चुका सकनेकी हालतमें कर्ज देनेवाला ऋणीको सकुटुम्ब बिकवा सकता था। कुछ अपराधोंका दण्ड यही होता था कि उनके अपराधियोंको दास बनाकर उन्हे खुले-आम बेच दिया जावे। इस प्रकारकी दासियोके बेचे जानेके उल्लेख पेशवाओंके रोजनामचोंमे मिलते हैं। अंगेज़ोके अधीन पूर्णिया ज़िलेमे भी यह दास-प्रथा १९वी शताब्दीके चतुर्थांश तक थोड़ी-बहुत चलती रही।

९. अधिकारियोंमें घूसखोरी; अधिकारी वर्गका जीवन और उसका चरित्र

इने-गिने हकीम और वैद्यो तथा प्रतिष्ठित पुरोहित या धर्माधिकारी घरानोको छोडनेपर बाकी रहे सारे पढे-लिखे मध्यम वर्गके सब ही लोग नौकरी-पेशा ही थे। व्यापारियो और छोटे-छोटे जमीदारोंमे ऐसे बहुतसे

ई०के लगभग औरंगजेबके पासमें अंग्रेजी भाषा जाननेवाले केवल एक ही मुसलमानका (मुअज्जमका) उल्लेख मिलता है। गोवा प्रदेशके कुछ लोगोंको ब्राह्मण पुर्तगाली भाषा जानते थे, और दक्षिणमें रहनेवाले अंग्रेजोंके लिए वे ही मराठी पत्रोंका अनुवाद पुर्तगाली भाषामें करते थे। मद्रासके अंग्रेज और फ्रांसीसी कोठियोंवाले ब्राह्मण दुभाषिये नौकर रखते थे, जो इन भाषाओंके अतिरिक्त 'मूरों'की (अर्थात् फ़ारसी) भाषा भी जानते थे।

थे जो अपनी धन-समृद्धिके हिसाबसे मध्यम वर्गमे गिने जा सकते थे, परन्तु विद्यामे उनसे वे बहुत पीछे थे और उन्हे साहित्यसे भी कोई रुचि नही होती थी। सैनिक तथा दूसरा सब शासन चलानेके लिए अनगिनित कर्मचारियो और हिसाब जाननेवालोकी भी आवश्यकता होती है।

इगलैण्डके ट्यूडर और स्टुअर्ट बादशाहोके शासन-कालकी ही तरह भारतमे भी सरकारी दफ्तरोसे अपना काम निकलवानेवालोंसे खुले-आम विशेष शुल्क या अपना पुरस्कार लेकर उनका काम कर देनेकी सुज्ञात और सर्वमान्य प्रथा थी। इसके अतिरिक्त बडेसे लेकर 'छोटे तक कई एक अधिकारी घूस लेकर अनुचित पक्षपात या न्याय-शासनमे मनचाहा हेर-फेर भी कर देते थे। पदाधिकारियोका यो घूस लेना समाजमे निन्दनीय समझा जाता था और अधिकारी गुप्त रूपसे छिपाकर ही रिश्वत लेते थे। औरगजेबके शासन-कालमे भी ऐसे कई अधिकारी थे जो कभी घूस नही लेते थे। परन्तु अधिकार-प्राप्त व्यक्तियोका भेंटें लेने या भेंटे माँगना भी एक सुप्रचलित और सर्वसाधारण द्वारा मान्य प्रथा थी।[1]

सम्राट्की निजी सेवामे रहनेवाले मन्त्रियो और प्रभावशाली दरबारियोको तो धन एकत्र करनेका बहुत ही सुवर्ण अवसर मिलता था। बादशाहकी व्यक्तिगत सेवाके लिए एकान्तमे (तकर्रुबमे) उपस्थित होनेके समय सुअवसरपर प्रार्थियोका निवेदन सम्राट् तक पहुँचा देने तथा उपयुक्त सिफारिश कर देनेके लिए वे बहुत-कुछ रुपया ले लेते थे। अपनेसे ऊपरवाली श्रेणीको भेटके रूपमे जो कुछ भी देना पडता था, उसे वे अपनेसे नीचेवाली श्रेणीसे वसूल कर लेते थे, और यो वह दबाव ऊपर सम्राट्से चलकर नीचे किसानो तक जा पहुँच जाता था और अन्तमे

---

१ नूरजहाँका पिता जहाँगीरका प्रधान-मन्त्री बनकर भी बडी ही निर्लज्जतापूर्वक भेंटें माँगता था। औरगजेबके प्रारम्भिक वजीरोमेसे जाफरखाँका भी यही हाल था। उसे दक्षिणकी सूबेदारीपर बना रहने देनेके लिए सम्राट्से प्रार्थना करनेके हेतु जयसिहने वजीरको रु० ३०,०००) की थैली भेंट की थी। निम्न श्रेणीके साधारण पदको भी पाने या उसपर बने रहनेके लिए उसे शाही दरबारमे प्रत्येकको कुछ न कुछ देना पडा, जिसपर भीमसेनने बहुत ही दुःख और अरुचि प्रगट की है। घूस ले-लेकर कई काजी भी बहुत धनी हो गए थे, जिनमें सबसे अधिक बदनाम अब्दुलवहाब था। यही हाल कई सरदारोका भी था।

उसका भार धरती जोतनेवाले किसानो तथा व्यापारियोंको ही उठाना पडता था।

कायस्थ और खत्री दोनो ही जातियोंके मुंशियोंमें मदिरापानकी कुप्रथा बहुत पाई जाती थी। राजपूत सैनिक भी इस दुर्व्यसनके शिकार थे। कुरानमें की गई रोकके होते हुए भी मुसलमान अमीरो और सैनिक या अन्य पदाधिकारियोंमें बहुतसे इसके आदी थे। विशेषतया तुर्की तो इस बारेमें बहुत बदनाम थे। अपने घरोंसे बहुत दूर स्थानोंपर नियुक्त श्रेणीके अधिकारी कुछ स्थानीय स्त्रियोंको रखेलीके रूपमें अपने हरममें एकत्र कर लेते थे।

१०. जन-साधारणके जीवनकी पवित्रता और उनके सीधे-सादे आमोद-प्रमोद

मुगल कालीन भारतके सामाजिक जीवनका ऊपर दिया हुआ चित्र बहुत ही अन्धकारपूर्ण देख पडता है, किन्तु यदि हम उनके कई अन्य पहलुओंपर ध्यान नही देंगे तो यह बिल्कुल ही अधूरा तथा तदर्थ असत्य ही समझा जावेगा। अनिवार्य रूपसे यह तो स्वीकार करना पड़ता है कि तब भी करोडो भारतीयोंका गृहस्थ जीवन पवित्रतामय और सीधी-सादी चञ्चलता तथा हँसी-खुशीसे भरपूर था। इसी सदाचारने भारतीय जन-समाजको पिछले साम्राज्यके पतित शासक लोगोंके-से पूर्ण सर्वनाशके दुर्भाग्यपूर्ण अन्तसे बचा लिया। पीडित मानव-हृदयको सान्त्वना देने, वीरतापूर्ण धैर्य धरनेका पाठ पढाने तथा अपढ जन-समाजके हृदयोंमें आवश्यक सहृदयता और सरसता भर देनेके लिए हमारे यहां अनेकों लोक-गीत, वीर काव्य तथा कहानियाँ प्रचलित थीं। तुलसीदास कृत महाकाव्य "रामचरितमानस' ने हमारे करोडो स्त्री-पुरुषोंमें कर्तव्य-निष्ठा, संयम और आत्म-त्यागकी भावना भर दी, तथा सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवनके लिए आवश्यक व्यवहार-बुद्धिकी उन्हें पूरी पूरी शिक्षा दी। हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंके नगरों और कस्बोंमें आज भी लोग प्रति वर्ष उसकी कथाका अभिनय करते हैं, तथा प्रत्येक हिन्दू घरमें उसका पाठ होता है।

बंगाल, तिरहुत, उडीसा, आसाम तथा देशके कई एक अन्य भागोंमें

शकरदेव और चैतन्य द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्मने वहाँके लोगोमे एक अनोखी नम्रता और आस्था भर दी थी, जिससे वहाँ पहिले प्रचलित पशुपतिकी और तान्त्रिक उपासनाका निर्लज्ज किन्तु पौरुषपूर्ण अनाचार बहुत कम हो गया। १७वी शताब्दीमे यह नया वैष्णव धर्म विकसित होकर बहुत फैला, और उसके फलस्वरूप जनताके जातीय जीवनमे अनेको नई विशेषताएँ आ गईं, जिनमेसे कुछ थी—व्यक्तिगत भक्तिका बाहुल्य, बालको और असहायोके प्रति सहानुभूति तथा दया, सस्कृतके साथ ही जन-समाजकी साधारण बोलचालकी भाषाओके साहित्यकी उन्नति, नाच-गानका विशेष प्रचार, और दरिद्रियो तकके दैनिक जीवनमे शृगार एव प्रेमकी समधुरताका सचार। विभिन्न वर्गीय व्यक्तियोमे जो सामाजिक भेद-भाव पाए जाते थे, उनको भी दूर कर उनमे भावनाकी समानतासे उत्पन्न होनेवाली एकताको यह स्थापित करती थी। इस लोकप्रिय धार्मिक साहित्यके सिवाय देशके विभिन्न भागोमे पजाबके हीर-राझा जैसे जनताके हृदयोको लुभानेवाले लोकगीत भी जनसाधारणमे प्रचलित थे[1] जिनसे कडी मिहनत तथा राजनैतिक पीडनके भयकर भारको कुछ समयके लिए भुलाकर वे अपना मनोरजन कर लेते थे। उत्तर और दक्षिण, भारतमे सर्वत्र धार्मिक उपदेशो, व्याख्यानो तथा गभीर साहित्यके स्थानपर अब कीर्तनोका प्रचार बढा। इन पद्यात्मक धार्मिक कथानकोमे यत्र-तत्र गीत भी होते थे और कथा सुनानेवालेके साथ ही श्रोतागण भी सुर मिलाकर साथ-साथ गाते थे। इस प्रकार ये कीर्तन बहुत ही लोक-प्रिय हो गए।

हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशोको छोडते हुए अन्य प्रदेशोमे बसनेवाले उस समयके साधारण मुसलमानोके लिए देश भाषामे कोई धार्मिक काव्य साहित्य था ही नही। किन्तु विभिन्न मुसलमान सन्तोकी कब्रोपर प्रति वर्ष उर्स मनाए जाते थे, जहाँ दूर-दूरसे हजारो यात्री तीर्थ-यात्रा करने आते थे। ऐसे अवसरपर वहाँ जो मेले लगते थे उनमे प्रत्येक धर्म और जातिके स्त्री-पुरुष सम्मिलित होते थे। इसके सिवाय नगरोमे रहने-

---

१ देशी भाषाओके लोक-प्रिय धार्मिक और प्रेमकाव्यका ही यहाँ उल्लेख किया है। उच्च वर्गोमे प्रचलित होनेवाली एक और देशी भाषाके साहित्यका प्रारम्भ औरगजेबके बाद ही हुआ। उसकी मृत्युके दस वर्ष बाद औरगाबादके वलीसे इसका आरम्भ होता है। रेख्ता = उर्दू।

वाले स्त्री-पुरुष, बूढ़े और बच्चे सभी सैर करनेके लिए हर हफ्ते अपने पासके उपनगरमें स्थित सन्तकी समाधिके उपवनमें चले जाया करते थे। किन्तु ऐसे अवसरोंपर धर्माचरणकी ओर कोई ध्यान नहीं देता था और वे सारा समय आमोद-प्रमोदमें ही बिताते। इस प्रकार अनाचार बहुत बढ़ने लगा तब फिरोजशाह तुगलककी तरह औरंगजेबने भी इस प्रथाको बन्द करनेके लिए शाही हुक्म दिया। किन्तु यह प्रथा इतनी अधिक प्रचलित और लोक-प्रिय हो गई थी कि उसको यों बन्द नहीं किया जा सकता था। समय-समयपर भरनेवाले ऐसे मेलों और तीर्थ-स्थानोंमें जाना ही तब भारतीय ग्राम-निवासियोंके दिल-बहलावका एकमात्र तरीका था एवं वहाँ जानेके लिए स्त्री-पुरुष सब ही लालायित रहते थे। मुसलमानोंके लिए अजमेर, कुलबर्गा, निजामुद्दीन औलिया और बुरहानपुर, तथा हिन्दुओंके लिए मथुरा, प्रयाग, बनारस, नासिक, मदुरा और तंजोर जैसे तीर्थ स्थानोंका विशेष सांस्कृतिक महत्त्व था। यहींसे भारतीय संस्कृतिका प्रसार होता था और प्रान्तीय विभिन्नताएँ तथा मानसिक दृष्टिकोणकी संकीर्णता भी यहीं दूर होती थी।

११. औरंगजेबका चरित्र

औरंगजेब बहुत अधिक साहसी और असाधारणतया वीर था। यों तो उसके अयोग्य निकम्मे प्रपौत्रोंसे पहिलेके तैमूर घरानेके सारे ही वंशजोंमें व्यक्तिगत वीरता पाई जाती थी, परन्तु औरंगजेबमें इन गुणोंके साथ कई और विशेषताएँ थीं, जिनके लिए हमें अब तक यही कहा गया है कि वे उत्तरी यूरोपकी जातियोंमें ही खास तौरपर वंशपरम्परागत आई हैं। औरंगजेबमें व्यक्तिगत वीरताके साथ ही ठण्डे दिमागसे नाप-तौलकर ही काम करनेका स्वाभाविक गुण पाया जाता था। पन्द्रह वर्षकी उम्रमें उसने बिना किसी साथीके अकेले ही मदमस्त युद्ध हाथीका सामना किया था। तबसे लेकर ८७ वर्षकी अवस्थामें वागिनगेराका घेरा लगाने-वाले मोर्चों की खाइयोंमें निर्भीक खड़े होने तक उसने निरन्तर अपनी व्यक्तिगत निडरता तथा साहसका परिचय दिया। उसका शान्त आत्म-संयम, निकटतम संकटमें भी उसका उत्साहवर्धक बने रहना, तथा बलख और बदख्शांके युद्धोंमें उसका मृत्यु तककी पूर्ण उपेक्षा करना, भारतीय इतिहासकी सुप्रसिद्ध अमर घटनाएँ हैं।

व्यक्तिगत साहस और अनोखी शान्त दृढता उसे प्राप्त थी ही। पुन अपने जीवनके प्रारम्भसे ही औरगज़ेबने सम्राट् बननेके सकटपूर्ण और कडी मिहनतवाले जीवन-ध्येयको प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया था, तथा उस महान् पदके उपयुक्त स्वयको बनानेके लिए उसने स्वाभिमान, आत्मगौरव, स्वाध्याय और आत्मसयमके गुणोको प्राप्त करनेका विशेष रूपसे भरसक प्रयत्न किया। अन्य शाहजादोसे सर्वथा विपरीत औरगजेब-का अध्ययन बहुत ही विस्तृत, सूक्ष्म और साथ ही गम्भीर भी था। पुस्तकोंके प्रति उसका प्रेम मरते दम तक बराबर बना रहा। अरबी और फारसीके सिवाय वह तुर्की और हिन्दी भी बडी ही सरलताके साथ बोल सकता था। उसीकी प्रेरणा और प्रोत्साहनके फलस्वरूप मुसलमानी कानूनका सबसे बडा सग्रह-ग्रन्थ "फतवा-इ-आलमगीरी" भारतमे ही तैयार हुआ। इस ग्रथके द्वारा भारतमे मुसलमानी कानूनकी सही और सरल व्याख्या आगेके लिए कर दी गई थी, एव इस ग्रन्थके साथ औरग-ज़ेबका नाम सम्बद्ध किया जाना सर्वथा उपयुक्त था।

ग्रन्थोके अध्ययनके अतिरिक्त औरगजेबने बाल्यकालसे ही सोच-समझकर बोलने तथा काम करने और दूसरोके साथ व्यवहारमे पूरी चतुराई बरतनेका अभ्यास कर लिया था। जब वह शाहज़ादा था, तब अपनी व्यवहार-कुशलता, चतुराई और नम्रतासे उसने अपने पिताके शाही दरबारके सर्वोच्च अमीरोको अपना मित्र बना लिया था। सम्राट् हो जानेपर भी उसने अपने ये गुण नही छोडे और उन्हे इतना व्यक्त किया कि किसी साधारण प्रजाजनमे भी उनका उतना पाया जाना एक विशेषता होती। इन्ही सारी बातोसे उसके समसामयिक लोग उसे "शाही पोशाकमे एक दरवेश" ही कहा करते थे।

औरगजेबकी पोशाक, उसका खानपान, मनोरजन आदि उसका सारा व्यक्तिगत जीवन बहुत ही सादा और सुनियमित था। उसमे कोई दुर्गुण नही थे और धनवान् आलसी लोगोके निष्पाप आमोद-प्रमोदोसे भी वह बहुत दूर रहता था। उसकी पत्नियोकी सख्या कुरान द्वारा निश्चित चारसे सदैव कम ही रही।[1] अपनी पत्नियोके प्रति वह सदैव पूरी तरह सच्चा

---

१ दिलरस बानू १६५७ ई०मे मर गई। नवाबबाईको सन् १६६०के बाद दिल्लीमे एकान्त जीवन बिताना पडा। औरगाबादी सन् १६८५मे अपनी मृत्यु तक अवश्य औरगजेबके साथ रही। उदयपुरीके साथ औरगजेबका विवाह सन्

और अनुरक्त रहा। यह पढकर हँसी आए विना नही रहती कि औरगज़ेबको केवल दो ही वातोका शौक था, करौंदे खाने और 'खडडली' नामक मुख-सुवासक चवाते रहनेका। शासन-प्रवन्धकी देख-रेखमे वह आश्चर्यजनक मेहनत करता था। वह प्रतिदिन नियमित रूपसे राजदरवार करता था, और कभी-कभी दरवार दिनमे दो-दो वार भी लगाता था। प्रत्येक वुधवारको न्याय-शासन सम्वन्धी मामलोको सुनता था। इस सवके सिवाय पेश किए गए सभी पत्रो और प्रार्थनापत्रोपर अपने हाथसे ही वह आदेश लिखता था तथा शाही दफ्तरसे दिए जानेवाले जवावोको भी वह पूराका पूरा लिखवा देता था। २१ मार्च, १६९५के शाही दरवारका इटालियन चिकित्सक गेमेली करेरीने इस प्रकार वर्णन लिखा है—"उसका (औरगज़ेवका) कद ठिगना, नाक लम्वा, शरीर दुवला और वृद्धावस्थाके कारण झुका हुआ था। उसकी गेंहुआ रगकी चमडीपर गोल डाढीकी सफेदी और भी अधिक चमकती थी। विभिन्न काम-धधोंके वारेमे उसे पेश किए गए प्रार्थना-पत्रोपर उसे अपने हाथसे स्वय आवश्यक हुक्म लिखते देखकर मेरे हृदयमे उसके प्रति विशेष आदर उत्पन्न हो जाता था। यह लिखा-पढी करते समय वह चश्मा नही लगाता था और उसके सुप्रसन्न चेहरेको देखकर यही प्रतीत होता था कि उसे अपना यह काम वहुत ही रुचिकर है।"

इतिहासकारोने लिखा है कि यद्यपि मृत्युके समय उसकी उमर कोई ९० वर्षकी थी, अन्त समय तक उसकी मन शक्ति तथा इन्द्रियां ज्योंकी-त्यो काम करती थी। उसकी स्मरणशक्ति तो सचमुच ही अद्भुत थी। जिस किसीको भी उसने एक वार देख लिया या जो कोई भी वात उसने एक वार सुन ली उसे वह जीवन भर कभी भूलता न था।" बुढापेके कारण पिछले वर्षोंमे वह कुछ ऊँचा सुनने लगा था, पुन. दुर्घटनासे उखडे हुए उसके दाहिने घुटनेका उसके हकीम ठीक-ठीक इलाज नही कर सके थे, जिससे उसका वह पाँव कुछ लगडाने लगा था। इन दो अपवादोंके सिवाय मृत्यु-समय तक उसकी सारी शारीरिक शक्तियाँ यथावत् ही वनी रही।

१६६० ई०के लगभग हुआ था और औरंगावादीकी मृत्युके वाद उसके शासन-कालके पिछले वर्षोंमें यह उदयपुरी ही औरंगज़ेवकी एकमात्र जीवन-संगिनी रही।

१२. अत्यधिक केन्द्रीकरण करनेकी उसकी भयकर भूल; शासन-व्यवस्थापर उसके दारुण दुष्परिणाम

किन्तु इतने लम्बे समय तककी उसकी सारी आत्म-शिक्षा और उसकी यह अनोखी कार्यशक्ति ही एक प्रकारसे उसकी विफलताका प्रधान कारण बन गई। इनके फलस्वरूप औरगजेबके मनमे अगाध आत्मविश्वास और दूसरोके प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जानास्वाभाविक ही था। प्रत्येक कार्यमे अपने निजो विचारोके अनुसार सर्वांग सम्पूर्णता प्राप्त करनेके लिए भरसक प्रयत्न करनेका वह आदी हो गया था। यही कारण था कि शासन और युद्ध दोनोकी ही छोटीसे-छोटी बातो तककी स्वय व्यवस्था करने तथा आप ही उनका निरीक्षण भी करनेमे वह सदैव लगा रहता था। राज्यके सर्वोच्च शासकके इन अत्यधिक हस्तक्षेपोके कारण विभिन्न सूबेदार, सेनापति तथा सुदूर प्रदेशोके स्थानीय शासक भी हर बातके लिए सदैव उसका ही मुँह ताकने लगे, उनमे उत्तरदायित्व-की भावना रह ही नही गई थी, एव बदली हुई परिस्थितियोके अनुसार स्वयको तत्परतासे उनके अनुरूप बना लेनेकी योग्यता और आवश्यक प्रेरणा-शक्तिका उनमे उत्पन्न हो सकना असम्भव हो गया था। वे दिनो-दिन जीवनविहीन कठपुतलियोके समान बनते गए जो राजधानीमे स्थित अपने सम्राट् द्वारा धागे खीचे जानेपर ही किसी तरह कार्यके लिए प्रेरित होते थे। भारतके समान विस्तृत तथा विभिन्नतामय साम्राज्यके शासनको अध पतित करनेके लिए इससे अधिकसुनिश्चित दूसरा कोई उपाय हो ही नही सकता था। बारम्बार रोके जानेके कारण साहसी, प्रतिभाशाली और ओजस्वी अधिकारियोका भी सारा उत्साह भग हो जाता था और वे विवश होकर उदासीन और अकर्मण्य बन जाते थे।

ऐसे सम्राट्को अनोखी राजनैतिक या शासकीय प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति कदापि नही कहा जा सकता है। उसमे तो केवल ईमानदारीके साथ निरन्तर मेहनत करते रहनेकी शक्ति थी। किसी वडे महकमेके अधिकारीके पदके लिए वह सर्वथा सुयोग्य और पूर्णतया उपयुक्त था। परन्तु उसमे वह प्रतिभा न थी कि आगे जन्म लेनेवाली भावी पीढियोके जीवन और विचारोको नूतन ढाँचेमे ढालनेके लिए आवश्यक नई नीति तथा नए नियमोको पहिलेसे ही निश्चित कर उनको आरम्भ कर सकने

योग्य वुद्धिवाला दूरदर्शी राजमर्मज्ञ वह वन सकता। यद्यपि अकवर निरक्षर था और यदा-कदा उसका स्वभाव अत्यधिक उग्र भी हो जाता था, भारतके मुगल सम्राटोमें केवल उसीमे ऐसे राजमर्मज्ञके लिए अत्यावश्यक असाधारण वुद्धि पाई जाती थी।

औरगजेव सतोका-सा कठोर जीवन विताता था और उन्हींके समान वह अपनेमें सदैव नम्र दीनता भी दिखाया करता था, तथा अपने सारे धार्मिक कृत्योको, कुछ वाह्याडम्वरके साथ ही क्यो न हो, प्रति दिन ठीक समयपर विधिवत् पूरा करता था। अपने चरित्रकी वास्तविक त्रुटियोंसे पूर्णतया अनभिज्ञ औरगजेव अपने कर्त्तव्यके इन सकीर्ण आदर्शोंसे ही प्रेरित होता था, मनुचीके सुझावके विपरीत उसके इस धर्माचरणका आधार राजनैतिक धूर्तता कदापि न थी। अपने साम्राज्यकी मुसलमान प्रजाके लिए तो वह यो एक आदर्श व्यक्ति वन गया था। वे उसे 'आलमगीर जिन्दा पीर' कहते थे और उन्हे पूरा विश्वास था कि वह चमत्कार कर सकनेवाला पीर है। औरगजेवको भी यह वात पसन्द थी ऐसा उसके कार्योंसे स्पष्ट हो जाता है। अतएव उसमे सारे गुणोके होते हुए भी राजनैतिक दृष्टिसे औरगजेव पूर्णतया विफल रहा। परन्तु उसका व्यक्तिगत चरित्र ही उसके शासनकी इस पूर्ण विफलताका एकमात्र कारण नही था, उसके तो अन्य कई गहन कारण थे। यह कहना कदापि ठीक नही कि केवल औरगजेवके ही कारण मुगल साम्राज्यका पतन हुआ। आते हुए इस पतनको रोकनेके लिए उसने निस्सन्देह कोई प्रयत्न नही किया, प्रत्युत समूचे देशमे पहिलेसे ही चल रही कई एक विनाशकारी प्रवृत्तियोको उसने वहुत उत्तेजित किया जिसकी विवेचना आगे की जाती है।

१३. मुगल शासनका वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य

मुगल साम्राज्यसे भारतको अनेको लाभ पहुँचे, परन्तु न तो वह यहांके सारे लोगोको एक राष्ट्रके रूपमे सुसगठित कर सका और न उसके समयमे यहां एक सुदृढ सजक स्थायी शासनका निर्माण ही हो पाया।

ताजमहल और तख्तताऊसके रत्नो और सोने-चांदीसे ही चमत्कृत होकर मुगल भारतके साधारण मानवकी दुर्दशाकी ओर से दृष्टि

नही मोड लेनी चाहिए। तब मानवकी स्थिति अधम दाससे किसी प्रकार अधिक अच्छी न थी। यदि उनपर अत्याचार करनेवाला व्यक्ति कोई अमीर, उच्च अधिकारी या जमीदार होता, तब तो उसके विरुद्ध जन-साधारणको न तो कोई आर्थिक स्वतन्त्रता ही थी और न कोई व्यक्तिगत स्वाधीनता ही, अपनी दाद-फरियाद सुनाकर न्याय पानेका कोई अपरिहार्य अधिकार जन-साधारणको तब प्राप्त नही था। राजनैतिक अधिकारोके सपने भी कोई नही देख सकता था। समूचे देशकी सारी प्रजाको मानवीय भेडोके समान ही समझा जाता था, परन्तु एक सशक्त चतुर सम्राट्के शासन-कालमे अमीरोकी दशा भी उससे किसी प्रकार अच्छी न थी। अमीरोको कोई भी सुनिश्चित कानूनी अधिकार नही प्राप्त थे, क्योकि राज्य-शासनका कोई विधान था ही नही। अपनी भौतिक सम्पत्ति और मालमत्तेपर भी उन्हे पूर्ण अधिकार प्राप्त नही थे। सिहासनपर बैठनेवाले निरकुश शासककी इच्छापर ही सब कुछ निर्भर रहता था। वास्तवमे तबका राज्य-शासन तो विद्रोहो या विप्लवकी आशकासे सयत तानाशाही ही थी। देशकी सारी शक्ति और साधनोसे राजदरबारका उद्भव होता था, तथा उस राजदरबारका एकमात्र केन्द्र था वहाँका सम्राट्, इस प्रकार समूचे देशकी सम्मिलित शक्तियो और जीवनका अन्तिम फल होता था केवल शासकको समृद्धि तथा उसकी सतोषपूर्ण आत्मनिर्भरता।

अन्य निरकुश राजतत्रोके समान ही मुगल-कालीन भारतमे भी सर्वश्रेष्ठ सम्राट्के शासनमे सारे जन-साधारणका सुख बहुत ही अस्थायी बना रहता था, क्योकि वह सब बिलकुल केवल एक ही व्यक्तिके चरित्रपर निर्भर रहता था। "पढाई-लिखाई और अन्य शिक्षाकी मुगल-कालीन पद्धति ऐसी ठीक तथा सपूर्ण न थी कि उससे सुयोग्य उत्तराधिकारियोकी परम्परा बराबर चलती ही जाती। अपनी आपसी ईर्ष्या और द्वेषके कारण विभिन्न बेगमे युवा हो जानेपर भी अपने शाहज़ादोको राजधानीके राजनैतिक मामलोमे कुछ भी भाग लेनेसे सदैव रोकती रहती थी। यदि कोई शाहज़ादा राज्यके मामलोमे ठीक तरह भाग लेता था तो उसके सम्बन्धमे अपने पिताके विरुद्ध षड्यन्त्र करनेकी आशका की जाने लगती थी। जहाँ शासनकी ज़िम्मेदारी एक मन्त्री-मण्डलपर हो, वहाँ ही वशपरम्परागत राजतत्र किसी प्रकार स्थायी हो सकता है, क्योकि राजसिहासनपर बैठनेवालेके दुराचारो या उसकी अयोग्यतापर

ऐसा ज़िम्मेदार मन्त्री-मण्डल ही परदा डाल सकता है।" "मुगल सम्राट् ऐसा मत्री-मण्डल कभी सगठित नही कर सके। अपने शाही दरबारमें बहुतायतसे आ जुटनेवाले ऐसे साहसिकोंके दलपर ही सम्राट्को निर्भर रहना पडता था, जिनका प्रमुख उद्देश्य तथा कार्य अपने सम्राट्का मनोरजन करना ही होता था, वे किसी भी प्रकार आधुनिक ढगके (केबिनेट) मन्त्री-मण्डलकी तरह कार्य नहीं कर सकते थे। "वश-परम्परागत कुलीन उच्च घरानोको उन्नत करते रहनेकी नीतिको मुगलोंने कभी नही अपनाया।"

कुरानके अनुसार मुसलमानी शासन-व्यवस्था सैनिक शासन ही है, राज्यके सब मनुष्य इस्लाम धर्मके सच्चे सैनिक होते हैं और सम्राट् (खलीफा) उनका सेनापति होता है। सेनामें साधारण सैनिकोंके साथ अन्य अफसरोको भी कोई अधिकार नहीं होता है कि वे अपने सर्वोच्च सेनानायकसे कुछ भी पूछें-ताछें या किसी मामलेपर उससे विवाद कर सकें। खलीफा बादशाह ईश्वरकी ही प्रतिच्छाया (ज़िल्ला-इ-सुभानी) होता है, और ईश्वरके दरबारमें "क्यो या कैसे" पूछनेकी बात ही नही होती है। बादशाहका दरबार ईश्वरके दरबारका ही प्रतिरूप (नमूना-इ-दरबार-इ-इलाही) होता है, एव बादशाहके शासनमें भी वही सब कुछ होना चाहिए। मुसलमानी शासन-व्यवस्थाके मूल तत्त्वोंके अनुसार हिन्दुओ तथा अन्य गैर-मुसलमान भी राष्ट्रके रूपमें सगठित सैनिक भ्रातृत्व अथवा सैनिकोका एक स्थायी पडाव ही था।

१४. रहन-सहन तथा आदर्शोंकी विभिन्नताके कारण हिन्दुओं और मुसलमानोंका एकीकरण असम्भव हो गया

मुसलमानी राजनीतिके मूल सिद्धान्तोंके अनुसार अल्पसंख्यकोंको कोई राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो ही नहीं सकते। राजकीय सत्ता बहु-सख्यक प्रमुख जातिको ही प्राप्त होनी चाहिए तथा सारे विभिन्न धर्मों, मतों तथा रहन-सहनको पूर्णतया दबा समान धर्म तथा सामाजिक जीवन-की स्थापना कर उस राज्यमें एकान्वित जातिकी सृष्टि की जानी चाहिए। ऐसी परिस्थितिमें केवल राजनैतिक आधारपर ही कोई सगठन बननेकी न तो कोई सोच सकता था और न तब वैसा सम्भव ही हो सकता था।

राजनैतिक कारणोसे दलित तथा शासकीय दृष्टिसे वेहूदा मानी जानेवाली जातियाँ भारतमे तो अत्यधिक बहुसख्यक थी और प्रमुख शासक जातिकी सख्याकी तुलनामे उनका अनुपात तीन गुनेसे भी अधिक हो जाता था, साथ ही आर्थिक दृष्टिसे वे अपने शासकोसे कही अधिक सुयोग्य, समृद्ध तथा धन पैदा करनेवाले होते थे, और शारीरिक शक्ति या बुद्धिमे भी वे मुसलमानोसे किसी प्रकार कम नही थे।

कई सदियोके बीत जानेपर भी इन दोनो जातियोमे किसी प्रकारका समन्वय हो सकना सम्भव नही हो पाया, क्योकि दोनोके आदर्श तथा रहन-सहन एक दूसरेसे सर्वथा विपरीत थे। हिन्दू एकान्तप्रिय, सहिष्णु और अध्यात्मबादी होता है, अपने व्यक्तिगत प्रयत्नो, अप्रकट साधना तथा एकाकी तपके द्वारा आत्म-साक्षात्कार कर स्वय मोक्ष-प्राप्ति करना ही उसका सर्वोच्च ध्येय रहता है। उसकी दृष्टिमे जन्म एक अभिशाप तथा उसके सारे मानव सगी-साथी उसे अपने सच्चे ध्येयसे भ्रमित करनेवाले कारण-मात्र है। उसके विचारानुसार जीवनका सच्चा सुख प्राप्त करनेके लिए ईश्वरदत्त उपहारोके उपभोगके स्थानपर उनका परित्याग तथा अपने भावोके उल्लासपूर्ण विकासकी अपेक्षा उनका पूर्ण दमन ही अत्यावश्यक होता है। इसके विपरीत प्रत्येक मुसलमानको यह सिखाया जाता है कि यदि वह इस्लाम धर्मकी सशक्त लडाकू सेनाका सैनिक नही बन सका तो उसका जीवन ही व्यर्थ है। ईश्वरोपासना भी उसे दूसरोके साथ दलबद्ध होकर ही करनी चाहिए। जिहाद द्वारा अन्य लोगोमे अपने धर्मके प्रचार और उसमे उनके काफिरी धर्मका नाश करनेके लिए तत्परतापूर्वक प्रयत्न करके उसे अपने धर्ममे अपनी दृढ आस्थाका सुस्पष्ट प्रमाण देना चाहिए। वह एक धर्म-प्रचारक है, एव अपने पडोसियोकी आत्माओके कल्याणकी ओरसे वह कदापि उदासीन नही रह सकता है, प्रत्युत जो भी भौतिक तथा आध्यात्मिक साधन उसे प्राप्य हो उन सबका प्रयोग कर अपने पडोसियोके कल्याणके लिए उसे अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। पुन इस्लाम धर्ममे इस बातका सुस्पष्ट रूपसे प्रतिपादन किया गया है कि इस ससारमे जन्म लेना सर्वथा अच्छा है और उनके उपयोगके लिए ही ईश्वरने यह जगत् अपने सच्चे धर्मानुयायियोको उत्तराधिकारमे दिया है।

उनमे पाए जानेवाले व्यावहारिक दृष्टिकोण और सामाजिक एकताके

कारण ही मुसलमान साहित्यके अतिरिक्त अपनी कलाओ और सस्कृतिको हिन्दुओसे कही अधिक विकसित तथा समुन्नत कर सके थे। मुसलमानोके मनोरजनके साधनोमे अधिक सरसता और विभिन्नता पाई जाती है। मुगल-कालमे हिन्दू राजा-रईस भी ऐश्वर्य-विलासकी ओर झुके थे, परन्तु उनका यह प्रयत्न मुसलमान अमीरोकी बहुत ही भद्दी नकलसे अधिक नही बन सका। भिखमगो और मेहनत-मजदूरी करनेवालोके सिवाय अधिकतर मुसलमान जनताका आचरण विशेष सभ्य और उनका रहन-सहन अधिक खर्चीला होता है, इसके विपरीत उसी सामाजिक स्तरके हिन्दू अधिक धनी होते हुए भी मुसलमानोकी अपेक्षा कही अशिष्ट और असस्कृत होते है। निम्न श्रेणीके हिन्दू निस्सन्देह उसी वर्गके मुसलमानो-से अधिक स्वच्छ और बुद्धिमान् होते है।

१७. औरंगजेबके शासन-कालमें हिन्दुओंपर राजनैतिक दमन तथा उनका पददलित किया जाना

सहभोज सम्बन्धी रोकटोकके साथ ही धार्मिक सिद्धान्तो और कृत्योंमे विभिन्नता, आपसमे शादी-ब्याह करनेका निषेध, तथा सासारिक जीवन सम्बन्धी दृष्टि-कोणमे विपरीतताके कारण भी हिन्दू-मुसलमानोमें एका-न्वय होना सर्वथा असम्भव था। पुन कुरानमे दिए आदेशोंके अनुसार चलाए जानेवाले कट्टर मुसलमानी शासनमे हिन्दुओका जीवन ही सर्वथा असम्भव और भार स्वरूप हो जाता था। ईश्वरके सर्वोच्च सेवक होनेके ाते अपने कर्तव्यको पूरा-पूरा समझकर उसे कार्य-रूपमे परिणत करते मय, अनुकरणीय सच्चरित्रता तथा धार्मिक जोशवाला कोई बादशाह, सी भी शिक्षक या किसीके प्रति विशेष कृपा दिखाए बिना, यदि अपनी तिको तर्कसम्मत चरम सीमा तक ले जाता है, तब उस राजनीतिका न्तिम परिणाम क्या होता है, उसका सबसे अच्छा उदाहरण हमें औरग-मे देखनेको मिलता है। जिन पाठशालाओंमे हिन्दू शास्त्रोंका पठन-न होता था, उन्हे उसने बन्द करवा दिया। हिन्दुओंके मन्दिर गिरवा गए। हिन्दुओंके मेलोंपर रोक लगा दी गई। अपने रहन-सहन उन्हे अपने दलित होनेका सार्वजनिक रूपसे प्रदर्शन करना पडता नाथ ही विशेष करो द्वारा उनपर आर्थिक भार भी बहुत अधिक दिया गया था। आठवें अध्यायमे पहिले ही बताया जा चुका है कि व सरकारी नौकरी भी नहीं मिल सकती थी।

हिन्दुओको अपना जीवन अज्ञानके
दे न तो अपने धर्मसे कोई सान्त्वना
और न उनका अपना कोई सामाजिक सगठन ही बन
सार्वजनिक आमोद-प्रमोद भी उनके लिए निषिद्ध थे। राज्य-
स्वार्जित धन भी उनके पास नही रहने देते थे।
सामाजिक गति-विधिसे तथा समुचित सुयोगोके प्राप्त होते
होनेवाला मानवीय आत्म-विश्वास भी उनमे नही रहने
था। सक्षेपमे उन्हे जीवन भर सार्वजनिक अपमान और
असमर्थताओका निरन्तर सामना करना पडता था। जहाँ
रहता था, वहाँ तक स्वर्ग और पृथ्वी दोनोके द्वार
बन्द थे। अतएव औरगजेबके शासनका परिणाम
निरन्तर विद्रोह करनेके लिए उत्तेजित होते गए।
बुद्धि, उनके सगठन और उनके आर्थिक साधन,
तथा साम्राज्यकी दो-तिहाई आबादीके इस
अशक्त हो गया।

मुसलमानोंका पतन; उसके कारण

से मुसलमान जनताको भी कोई लाभ नही
कारण था। तुर्क केवल सैनिक ही बन
नही आता — एव सारे वयस्क
ही था, उनका एकमात्र
तार गार्हस्थ्य
। मुग वाले शासक
भी प्रधान-
तथा सैनिक समाज बहुत-
कुछ सैनिको मुगल-
कालीन मुस मुसल-
मान नागरि रहनेवाले
सैनिकोका-सा

भारतमे
बौद्धिक पतन

रूपसे बस गए थे। उनमेंसे कई तो वास्तवमे भारतीय ही थे। तब तक सब हीकी शकल-सूरत, उनके आचार-विचार, रीति-रस्मे, आदि भी भारतीय बन चुके थे। तथापि उनके धार्मिक गुरु उन्हे प्राचीन अरबकी ही ओर आकर्पित करते थे, और मानसिक भोजनके लिए पैगम्बरके सदियो पुराने गए-बीते युगका ही आसरा लेनेके लिए उन्हे कहते थे। उनकी धार्मिक भाषा अरबी ही हो सकती थी, किन्तु भारतके मुसलमानो-मे एक फी सदी भी अच्छी तरह अरबी नही जानते थे। उधर उनकी सास्कृतिक भाषा फारसी थी, जिसे कुछ अधिक मुसलमानोंने कठिनाईके साथ सीख ली थी और उसे बहुत ही अशुद्ध बोलते थे, जिसे सुनकर ईरानमे पैदा हुए लोग हँसी उड़ाकर उनका तिरस्कार भी करते थे। साहित्यिक लिखा-पढीके लिए भारतीय भाषाओको काममे लेना १८वी शताब्दीके बाद तक भारतीय मुसलमान अपने लिए अपमानजनक समझते थे। अतएव इस जातिके अत्यधिक लोगोंके लिए उनका अपना कोई साहित्य था ही नही। बहुत ही थोडे लोग आसानीसे फारसी बोल या लिख-पढ सकते थे, एव उनके सिवाय दूसरोंकी शिक्षा इसी कारण रुक रुक जाती थी और अपने व्यक्तिगत जीवनमे भी उन्हे कोई बौद्धिक आनन्द नही प्राप्त हो सकता था। निरन्तर बढनेवाला सजीव धार्मिक साहित्य भी उन्हे नही प्राप्त हो सकता था। हिन्दुस्तानीमें लिखी गई प्रेम सम्बन्धी गजलो या भक्तिपूर्ण गीतो और फारसीमें लिखे गए सूफी काव्य-से ही न तो सारी जातिके सर्वव्यापी अज्ञानको दूर किया जा सकता है और न उनसे समाजमें सस्कृतिका प्रसार ही हो सकता, इस प्रकारके कामोंके लिए वे सर्वथा अनुपयुक्त थे।

यो प्रत्येक कट्टर मुसलमानने सदैव यही अनुभव किया कि वह भारत-मे रहता अवश्य था, परन्तु वह भारतका नही था। अपनी इस जन्मभूमि भारतके साथ अपना कोई भी सम्बन्ध स्थापित करनेका उसे साहस भी नही हो सकता था, क्योंकि उसे यही सिखाया गया था कि ऐसा करनेसे उसकी आत्माका नाश हो जावेगा। इस देशकी परम्पराओ-को, यहांकी भाषा तथा सांस्कृतिक विशेषताओंको उसे कदापि नहीं अप-नाना चाहिए, ये सारी बातें उसे ईरान और अरबसे ही लेनी चाहिए। अपने दीवानी और फौजदारी कानूनके लिए भी उसे बगदाद तथा काहिराके न्यायशोंके ग्रन्थ तथा वहांके न्यायाधीशोंके निर्णयोंका ही

आसरा लेना चाहिए। भारतमे रहनेवाला मुसलमान बौद्धिक दृष्टिसे सर्वथा विदेशी था, वह अपने आपको यहाँके वातावरणके उपयुक्त नही बना सका। सभ्य समाजके निर्देशन तथा मानव जीवनकी व्यवस्थाके लिए कुरानमे दिए गए आदेश खानाबदोशका जीवन वितानेवाले मनुष्यो-के समाजके उपयुक्त गए-बीते युगके थे। अकबर जैसे बुद्धिवादीने तभी यह तर्क किया था कि जिस देशकी अरबसे कोई भी समानता नही थी, वहाँ १६वी और १७वी शताब्दियोमे रहनेवालोके लिए कुरानके ये आदेश अवश्य पालनीय बनाना सर्वथा अनुचित था।

इस विदेशीय और बिलकुल ही अव्यावहारिक आदर्शके लिए यो अस्वाभाविक परिश्रम करनेसे भारतीय मुसलमानोमे जो बौद्धिक शून्यता आ गई थी, उससे उनकी मानसिक और सामाजिक उन्नति ही नही रुक गई, परन्तु उससे कई एक अहितकर कुरीतियोका उनके हृदयोमे उत्पन्न होना और वहाँ उनका जड जमा लेना एक अवश्यम्भावी बात हो गई। अपने व्यक्तिगत धर्म तथा एक जीवित ज्वलन्त विश्वासके लिए मानव हृदयमे चिरकालसे जो तीव्र उत्कण्ठा चली आ रही है, उसको शान्त करनेके लिए प्रति दिन अरबी पुस्तकका केवल पाठ कर लेना (हिफ्ज़-इ-कलाम-अल्लाह) या जमैयतके साथ नमाज़ पढनेकी वही उबानेवाली शारीरिक कसरत प्रतिदिन पाँच बार करना ही किसी प्रकार काफी नही होता है। अतएव वे प्यासी आत्माएँ कुछ भी ख्यातिवाले अपने पडोसी जीवित सन्तो या भूतकालीन सुप्रसिद्ध सन्तोकी कब्रोकी देखभाल करने-वाले उनके लोभी उत्तराधिकारियोके पास पहुँची, क्योकि उन दोनोके ही बारेमे यह विश्वास किया जाता था कि वे चमत्कार कर सकते थे।

कुरान और सुन्नियोके धर्म-शास्त्रकी व्यवस्था यहूदी जातिके लोगोने की थी, जिनका जातीय जीवन और चाल-चलन भारतीयोसे स्पष्टतया विभिन्न है, एव केवल इसी कारण कि भारतीय जातिके कुछ लोगोने अरबोके इस धर्मको स्वीकार कर लिया था, उनमे पाए जानेवाले ये जातीय भेद किसी भी प्रकार दूर नही हो सकते थे। भारतमे प्रचलित इस्लाम धर्मकी ये कभी न पूरी हो सकनेवाली कमियाँ थी।

१७. हिन्दू समाजकी अवनति और उसकी स्वभावगत कमजोरियाँ

मध्यकालीन हिन्दुओकी दशा भी इतनी ही दु खद थी। उनका एक

राष्ट्रके रूपमे सगठित होना तो दूर रहा, वे अपना सुगठित सम्प्रदाय भी नही बना सकते थे। जनेऊ पहनने, वेद पाठ कर सकने, सार्वजनिक जलाशयो और मन्दिरोमे प्रवेश पाने, छुआछूत और सुदूर दक्षिणमे सामने आने तककी योग्यताको लेकर निरन्तर चलनेवाले जातीय झगड़ोके कारण सारा हिन्दू समाज अनगिनित छोटी-छोटी पूर्णतया विभिन्न जातियोमे बँटा हुआ था एव हिन्दुओमे मुसल्मानोकी-सी सामाजिक एकता होना एक बिलकुल ही अनहोनी बात थी। समय और सम्पन्नताके साथ हिन्दुओके ये भीतरी भेद-भाव बराबर बढते ही गए। मुसल्मानी शासन-कालमे अनेकानेक भीतरी प्रवृत्तियोके फलस्वरूप प्रत्येक जातिमे निरन्तर बननेवाली नई-नई उपजातियोसे हिन्दू समाज और भी अधिक अशक्त हो गया।

हिन्दुओके उद्धारके लिए इस समय कोई भी ज्ञान-सम्पन्न देश-प्रेमी धर्माचार्य नही पैदा हुआ। छिन्न-भिन्न कर देनेकी यह प्रवृत्ति समाजके साथ ही हिन्दू धर्ममे भी पाई जाती है। मोक्ष-मार्ग सम्बन्धी हिन्दू-धर्मके मूल सिद्धान्त ऐसे हैं कि उनके कारण हिन्दू धार्मिक समाजमे न तो धर्माचार्योका कोई सशक्त दल बन सकता है, और न ईसाई धार्मिक सगठनके समान यहाँ किसी एकीभूत शासकीय धार्मिक सत्ताका सगठन ही किया जा सकता है। अपना-अपना रास्ता लेनेवाले ये असगठित धर्म-जिज्ञासु सरलतापूर्वक झूठे ढोगियो और विषयासक्त रगे-सियारोके पजोमे जा फँसते हैं। वल्लभाचार्य सम्प्रदाय की धार्मिक प्रक्रियाओमे अन्तत जाकर जिस प्रकार मानव-पूजाको अपनाया गया था, या कर्ताभज और अन्य सम्प्रदायवाले जैसे गुरु-पूजा करते है, या मन्दिरोमे देवदासियो तथा मुरलियोके रहनेसे वहाँ जो अनाचार फैलता है, इन सब बातो तथा अन्य निन्दनीय आचारवाले छोटे-छोटे सम्प्रदायोकी भी उपेक्षा करके यदि हम करोड़ो साधारण मूर्ति-पूजकोकी ओर दृष्टि डालें तो हमे देख पड़ता है कि हिन्दू पण्डे पुजारी इन पूज्य मूर्तियोका ऐसा प्रदर्शन करते है, जिनसे अनेक आस्थावान् भक्त पूजकोमे बुद्धिका विकास नही होने पाता है। ये मूर्तियाँ भोजन करती है, सोती है, (जगन्नाथ जैसी मूर्तियाँ प्रति वर्ष एक सप्ताह तक) ज्वर पीड़ित भी रहती है, और ऐसे-ऐसे कामुकतामय नृत्य देखती है जिन्हे देखकर अवधके नवाबको भी ईर्ष्या होती और अपने हरममे जिनका अनुकरण करवानेको कुतुबशाह भी लालायित हो उठता। जन-साधारण द्वारा माने जानेवाले सामान्य हिन्दू धर्ममे कोई सुधार

ही जाना है। युरोपमे वरावर उन्नति होती जा रही थी, परन्तु इधर उसकी तुलनामे प्रगति विहीन पूर्वी देश निन्तर पिछडते ही जा रहे थे। यो प्रत्येक बीते हुए वर्षके साथ एशिया और यूरोपके ज्ञान, सगठन, सचित साधनो और प्राप्त योग्यतामे दूरी अधिकाधिक वढती ही गई, जिससे युरोपीय लोगोका मुकावला करना एशियाई लोगोके लिए दिनो-दिन अधिक कठिन होता गया। अपने ही समाजमे जिस प्रकार अकर्मण्य आत्म सतुष्ट घरानोको पीछे ढकेलकर साहसी और उद्योगी घराने स्वय उसके नेता बन जाते हैं, उसी प्रकार ससारमे भी प्रगतिशील जातियाँ पुरातनप्रेमी जातियोको निकाल बाहर कर उनका स्थान स्वय ग्रहण करती हैं। अतएव अग्रेज़ोका मुगल साम्राज्यको जीतना समूचे अफ्रीका और एशियापर यूरोपीय जातियोके अवश्यम्भावी आधिपत्यकी प्रक्रियाका ही एक पहलू-मात्र था।"

(मेरा ग्रन्थ, 'मुगल एडमिनिस्ट्रेशन', तीसरा सस्करण, पृष्ठ २५५-६)।

२०. औरगजेबके शासन-कालका महत्त्व : किस प्रकार भारतीय राष्ट्र सगठित हो सकता है ?

पचास वर्ष लम्बे इस उद्योगपूर्ण शासन-कालके सविस्तार अध्ययनसे एक ही सत्य हमारे सामने सुस्पष्ट हो जाता है। यदि भारत कभी एक सगठित राष्ट्रकी जन्म-भूमि बनकर भीतरी शान्ति वनाए रखना, अपनी वाहरी सीमाओकी ठीक तरह सुरक्षा करना, अपने आर्थिक साधनोकी पूरी-पूरी उन्नति तथा अपने साहित्य, कला एव विज्ञानका समुचित विकास करना चाहता है तो हिन्दू और इस्लाम दोनो ही धर्मोका पुवर्जन्म अत्यावश्यक होगा। हर एक धर्मको नव-जागरण और साधनाकी बहुत ही कडी तपस्याएँ करनी होगी, तथा तर्क एव विज्ञानके आदेशानुसार उनका अत्यावश्यक कायाकल्प करवाना होगा। स्मर्नाके विजेता कमालपाशाने इसी शताब्दीके प्रारम्भिक युगोमे यह वात करके दिखा दी कि इस्लाम धर्मका पुनर्जन्म सर्वथा असम्भव नही है। गाज़ी मुस्तफा कमालपाशाने यह प्रमाणित कर दिया है कि अपने समयका सबसे वडा मुसलमानी राज्य भी अपने सविधानको धर्म-निरपेक्ष बना सकता है, बहु-विवाह और स्त्रियोको वलपूर्वक पर्देमे रखनेकी प्रथाओका अन्त कर

सकता है, सब धर्मावलम्बियोको समान राजनैतिक अधिकार दे सकता है और फिर भी वह देश मुसलमानोका ही राज्य बना रह सकता है।

औरंगज़ेबकी प्रजा उनसे कही अधिक सम्मिश्रित थी, सारे भारतीय ससारपर अकेले औरगजेबका ही एकाधिपत्य था और उसके इस साम्रा-ज्यपर अधिकार करनेके लिए लालायित युरोपीय राष्ट्र भी तब वहां नाक लगाए नही बैठे थे, तथापि औरगजेबने कमालपाशाके इस आदर्श-को कार्य-रूपमे परिणत करनेका कोई प्रयत्न नही किया। राज्यारूढ होनेके समय औरगजेबको कई विशेष सुविधाएँ प्राप्त थी, और उसकी प्रारम्भिक सुशिक्षा एव उसके उच्च नैतिक चरित्रने औरगजेबको एक आदर्श मुसलमान बना दिया था, तथापि औरगजेब एक विफल शासक ही रहा, जिससे ससारको इस शाश्वत सत्यका सुस्पष्ट प्रमाण मिल गया कि किसी देशकी जनताके महान् हुए बिना वह साम्राज्य न तो महान् बन सकता है और न किसी प्रकार स्थायी ही। किसी भी देशकी जनताके महान् बननेके लिए यह अत्यावश्यक है कि वह अपने यहांकी सब जाति-योवालोको समान अधिकार और समान साधन तथा सुविधाएं दे और
यो एक सुसगठित राष्ट्रका निर्माण करे। ऐसे राष्ट्रके सारे ही अंगोमे
क-जातीयताकी भावना होनी चाहिए, जीवन और विचारोकी सारी
ख्य बातोमे उनमे मतभेद नही होना चाहिए और साथ ही दूसरी छोटी-
टी बातो या घरेलू जीवनमे पाई जानेवाली व्यक्तिगत विभिन्नताएं
सहर्ष सहन की जाती हो और यो व्यक्तिगत स्वाधीनताके आधारपर
विभिन्न जातियोकी स्वाधीनता स्वीकृति की गई हो। राष्ट्रीय हितोको
आगे बढाना ऐसे राष्ट्रके शासनका एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए,
के विरोधमे किन्ही स्थानीय या साम्प्रदायिक हितोकी पूर्ण उपेक्षा ही
चाहिए। ऐसे राष्ट्रके समाजके लिए यह अत्यावश्यक है कि बिना
डर या आशकाके तथा बिना किसी प्रकारकी रोक या बाधाके
ो विकसित करनेके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहे। साधुता,
ण और सत्यकी उन विशुद्ध ज्योतियो अपनानेसे ही भारतीय राष्ट्रो-
पूर्ण विकास हो सकता है।

रूपमे प्रमाण रूप या अधिक-से-अधिक जो कुछ भी वसूल हो सकता था उसकी कुल रकम इतनी होती थी, परन्तु यह पूरी रकम कभी वसूल नही होती थी और वास्तवमे असल आमदनो कम हो होती थी। ऊपर दी हुई आयमे केवल मालगुजारीकी ही आमदनी गिनी गई है, ज़कात, जज़िया, आदि करोसे प्राप्त होनेवाली सारी आमदनी इसके सिवाय ही थी। ज़कात करके रूपमे केवल मुसलमानोंसे उनकी वार्षिक आमदनीका ४० वाँ हिस्सा अर्थात् ढाई रुपया सैकडा वसूल होता था, उसकी सारी आय केवल धार्मिक दान-पुण्य, आदिमे ही व्यय की जाती थी। औरंगजेबके शासन-कालमे विभिन्न करोसे गुजरात प्रान्तमे होनेवाली सरकारी आमदनीके आँकडोसे तुलनात्मक अनुपातका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है,—मालगुज़ारी—११३ लाख रुपये, जजिया—५ लाख रुपये, केवल सूरतके बन्दरगाहपर बाहरसे आनेवाले सामानपर लिए गए महसूलसे—१२ लाख रुपये। (मुगल साम्राज्यके दूसरे बन्दरगाहोंके द्वारा बहुत ही कम विदेशी व्यापार होता था, शासन-कालके पिछले वर्षोंमे अवश्य हुगली और मछलीपट्टमके बन्दरगाहोका विदेशी व्यापार बढ गया था)। प्रान्तकी कितनी धरती 'खालसा शरीफ'मे थी और कितनी मनसबदारोको जागीरमे दी हुई थी इसका भी सन् १६९० ई०के लगभगकी सारे साम्राज्यकी मालगुजारी, आदिके इन आँकडोसे कुछ अन्दाज़ा लग सकता है,—जागीरोको निर्धारित मालगुजारी—२७.६४ करोड, और खालसा भागकी निर्धारित मालगुजारी—५.८१ करोड रुपये।

२. साम्राज्यके अमीर और राजा

मुगल साम्राज्यका शासन-प्रबन्ध तथा सारी सैनिक-व्यवस्था ऐसे अधिकारियो द्वारा होती थी, जिनके नाम मुगल सेनाके मनसबदारोकी सूचीमे उनके मनसबके अनुसार क्रमश लिखे रहते थे। इस सूचीमे नाममात्रके बीस हज़ार घुडसवारोके मनसबसे लेकर केवल बीस (अकबरके समयमे दस) घुडसवारो तकके मनसबवालोके नाम रहते थे। इनमेंसे तीन हज़ारीसे अधिकके मनसबवाले 'उमरा-इ-आज़म' अर्थात् बडे सेनानायक कहलाते थे। तीन हजारीसे कम मनसबवाले केवल 'मनसबदार' कहलाते थे।

	सन् १५९५ के लगभग	सन् १६२० के लगभग	सन् १६७४मे	सन् १६९० के लगभग
उमरा (तीन हजारी-से अधिक मनसब-वाले जिनमे शाह-जादे भी सम्मिलित है) —	६३	११२	९९	–
कुल सख्या, उमरा और मनसबदार सब मिलाकर—	१,८०३	२,९४५	८,०००	१४,४४९

इन आँकड़ोसे ही यह स्पष्ट हो जावेगा कि औरगजेबके समय मनसबदारोकी यह सूची कितनी अधिक बढ गई थी और उससे कितना ज्यादा आर्थिक भार पडता होगा।

औरगजेबके समय इन १४,४४९ मनसबदारोमेसे ७,०००के लगभग जागीरदार थे और ७,४५० नकदी, जिन्हे मनसबका वेतन नकद सिक्कोमे मिलता था, ये दोनो प्रकारके मनसबदारोकी सख्या लगभग आधी-आधी थी। (शाहजहांके शासनकालमे प्रचलित किए गए नियमोके अनुसार यह आवश्यक होता था कि प्रत्येक मनसबदार निश्चित सख्याके एक चौथाई सैनिक अवश्य ही रखे। ऐसे रखे जानेवाले सैनिकोका वेतन शामिल करते हुए विभिन्न मनसबदारोको उनका वेतन आदि मिलाकर प्रति वर्ष नीचे लिखे अनुसार रुपया मिलता था।

७–हजारी	—	३५ लाख रुपये।
५–हजारी	—	२.५ लाख रुपये।
हजारी	—	५० हजार रुपये।
२०का मनसबदार—		एक हजार रुपये।

सन् १६४७मे साम्राज्यके सैनिकोंकी वास्तविक सख्या इस प्रकार थी :—

२ लाख घुडसवार एकत्र हुए और जिनके घोडे दागे गए,
८ हजार मनसबदार,
७ हजार अहदी और बरकंदाज,

१,८५,००० ताबईन या शाहजादो, उमराओ और मनसवदारोके और घुडसवार,—और

४०,००० पैदल बन्दूकची, गोलदाज, आदि।

औरगज़ेबके समय ज्यो ज्यो नए युद्ध छिडते गए और जब दक्षिणको भी साम्राज्यमे सम्मिलित कर लिया गया, त्यो-त्यो मुगल सैनिकोकी सख्या बढती ही गई, यहाँ तक कि सेनाके व्ययका भार उसकी आयके लिए असहनीय हो गया, और तब सैनिकोको समयपर वेतन भी नही मिलता था।

मुगल-साम्राज्यमे यह प्रथा प्रचलित थी कि शाही सेवा करते हुए जो कोई भी मर जाता था, उसकी सारी सम्पत्ति सम्राट् जब्त कर लेता था। इसके अनुसार अमीरोकी अपनी कोई वशपरम्पगत सम्पत्ति थी ही नही। इस तरह सारी सम्पत्ति जब्त किए जानेकी प्रथाका राजनैतिक परिणाम बहुत ही हानिकारक हुआ। इसी प्रथाके कारण भारतमे तब स्वाधीन वशपरम्परागत सामन्त वर्गकी स्थापना नही हो पाई और यो यहाँके सम्राटोकी निरकुशतापर लग सकनेवाली सबसे शक्तिशाली रोक भी न रही। सामन्त वर्गके वशपरम्परागत होनेकी हालतमे प्रत्येक पीढी को अपनी पदवी और घरानेकी सम्पत्तिके लिए एकमात्र सम्राट्की कृपापर ही निर्भर नही रहना पडता, और तब वे साहसपूर्वक सम्राट्के अत्याचारोका विरोध भी कर सकते थे। इसी प्रथाके कारण मुगल अमीर बहुत ही स्वार्थी हो गए और उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धो या विदेशियोके आक्रमणके समय वे विजयी पक्षके साथ जा मिलनेमे बडी ही तत्परता दिखाते थे, क्योकि वे जानते थे कि उनके अधिकारकी धरती तथा उनकी निजी सम्पत्तिपर उनका हक कानून द्वारा भी किसी प्रकार सुनिश्चित तथा सुरक्षित नही था, किन्तु वे भी केवल उस समयके वास्तविक शासककी इच्छापर निर्भर रहते थे। मध्यकालीन भारतमे न तो कोई स्वाधीन अमीर या राजा ही थे और न प्रभावशाली सशक्त व्यापारी वर्ग ही कि वे तत्कालीन शासन-व्यवस्थामे सबसे ऊपर सर्वशक्तिमान सम्राट् और सबसे नीचे अनगिनित दरिद्री किसानो एव मजदूरोके बीचमे अत्यावश्यक रुकावटोका काम दे सकते। ऐसी परिस्थितिमे इन साम्राज्योकी शासन-व्यवस्था अस्थायी तथा दोषपूर्ण ही रही।

३. उद्योग-धंधे और व्यापार

भारतमे अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीके व्यापार प्रारम्भ करनेके बाद पहले साठ वर्षोके (१६१२-१६७२) भारतसे बाहर जानेवाले भारतीय मालके मूल्यका औसत एक लाख पाउण्ड अथवा आठ लाख रुपये प्रति वर्षसे अधिकाशका नही था। सन् १६८१ ई०मे यह बढ गया और केवल बगालसे ही २,३०,००० पाउण्डका माल बाहर गया। भारतसे व्यापार करनेवाली डच कम्पनीका व्यापार भी (१६९०मे) बहुत करके अगेजी कम्पनीके बराबर था, पुर्तगालियोका व्यापार अवश्य ही इन दोनोसे कम था। समुद्र मार्ग द्वारा भारतीय भी बाहरी देशोसे विशेष मात्रामे व्यापार करते थे इसका कोई प्रमाण नही मिलता है। थल मार्गसे ईरान, तुर्की और तिब्बतके साथ भी थोडा-बहुत व्यापार चलता ही रहता था। सोने-चांदी, जैसे बहुमूल्य धातुओ तथा धनिकोके ऐश्वर्य-विलासकी कुछ वस्तुओके अतिरिक्त विदेशोसे बहुत ही थोडा माल तब भारतमे आता था, और इन सबके बदलेमे यहांसे भेजा जाता था सूती कपडा तथा काली मिर्च, नील और शोरे, जैसी इनी-गिनी किस्मोका कच्चा माल। यो आर्थिक दृष्टिसे भारतकी हालत ठीक थी और वह बहुत-कुछ आत्म-निर्भर ही था। (सी० जे० हैमिल्टन, ३२-३३)।

सत्रहवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे अग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनीका पूर्वीय देशोके साथका व्यापार प्रधानतया पांच तरहके माल तक ही सीमित था। इगलैण्डके बाजारमे मलाया प्रायद्वीप और पूर्वी द्वीपोके गरम मसालो, ईरानके कच्चे रेशम और भारतके शोरे और नीलकी बहुत मांग रहती थी। बहुत-सा पतला सूती कपडा और कुछ बना-बनाया रेशमी माल भी इगलैण्ड अवश्य जाता था, किन्तु अग्रेजी कम्पनी जितना भी सूती माल भारतसे मोल लेती थी वह सारा ही इगलैण्डके लिए नही होता था, किन्तु उसका बहुत बडा भाग सुदूर-पूर्व तथा ईरान ले जाकर उसे वहां बेचती थी। विदेशी बाजारोमे बना-बनाया सूती कपडा केवल भारतसे ही पहुँचता था, किन्तु रेशमी मालके बारेमे भारतकी यह स्थिति नही थी। बहुत ही थोडा रेशमी माल यहांसे बाहर जाता था। इगलैण्डमे कच्चा रेशम प्रधानतया ईरान और चीनसे ही आता था। १७वी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे चीनके साथ इगलैण्डका व्यापार बहुत कम

गया और तब इगलैण्डमे आनेवाले बने बनाए रेशमी मालका अधिकतर हिस्सा चीनसे ही आने लगा। (सी० जे० हेमिल्टन, पृ० ३१-३२)।

'मुगल कालमे विदेशोंसे भारतमे प्रधानतया बहुमूल्य धातु, चाँदी और सोना, ही आते थे, थोडा बहुत ताँबा और शीशा भी आ जाता था। इन सब धातुओंके लिए भारतको विदेशोपर ही निर्भर रहना पडता था। लोहा और इस्पात भारतमे प्राप्य थे, परन्तु विदेशोसे यहाँ आनेवाले ये धातु सस्ते पडते थे एव उनकी भी माँग यहाँ बनी रहती थी। भारतमे सारा बढिया ऊनी कपडा यूरप और विशेषकर फ्रांससे आता था, जिसे सकरलात कहते थे। विदेशोंसे आनेवाला बहुत-सा दोहरा कपडा तथा अन्य ऊनी माल भारतके शाही दरबार और यहाँके धनिकोमे बिक जाता था। बाहरसे आनेवाली वस्तुओमे घोडे भी कम महत्त्वके न थे। वे विशेषतया ईरानकी खाडीसे समुद्रकी राह, या खुरासन, मध्य एशिया और काबुलसे थल मार्ग द्वारा उत्तर-पश्चिमी घाटियोमेसे होकर भारत आते थे। पहाडी टट्टू, जिन्हे टॉगन या गुण्ट कहते हैं, पूर्वी हिमालयके राज्यो, तिब्बत और भूटानसे बगाल, कूचबिहार, मोरग और अवध होते हुए आते थे। सर्दी के दिनोमे ताजे और गर्मीके दिनोमे सूखे फल उत्तरी भारतमे बहुतायतसे पाए जाते थे, अतएव बहुत अधिक परिमाणमे वे मध्य एशिया, अफगानिस्तान और ईरानसे आते थे। गरम मसाले—लौग, जायफल, दाल चीनी और इलायची—डच लोग हिन्द एशियाके पूर्वी टापुओंसे लाकर यहाँ बेचते थे, ये मसाले उन्ही टापुओंसे आते थे। भोग-विलास और वैभवकी वस्तुएँ अनेकानेक विदेशोंसे आती थी, कस्तूरी और चीनीके बर्तन चीनसे, मोती ईरानकी खाडीमे बहरीन और लकासे, हाथी लका और पेगूसे, बढिया किस्मकी तम्बाकू अमेरिकासे, कॉचके बर्तन शराब और अनेकानेक कौतूहलोत्पादक वस्तुएँ यूरपसे, और दास अबीसीनियासे आते थे, किन्तु इन सबकी माँग बहुत कम और मूल्य बहुत अधिक होता था, जिससे वे बहुत ही कम परिमाणमे यहाँ आती थी। स्थानीय शासकोको एकाएक आवश्यकता पडनेपर युरोपीय व्यापारी कभी-कभी उन्हे कुछ तोपे और गोला-बारूद भी बेच देते थे। परन्तु इनका कोई नियमित व्यापार नही होता था, गैर-कानूनी होनेके कारण ये इने-गिने सौदे प्राय बहुत ही गुप्त रूपसे किए जाते थे। हिमालय प्रदेशसे पहिले अवध होकर और बादमे पटनाकी राहसे व्यापारी-यात्रियोके कुछ काफिले भारतमे आ जाया करते थे, टट्टुओ और भेडो-

पर (!) लादे वे अपने साथ थोडे-थोडे परिमाणमे सोना, ताँबा, कस्तूरी और यकाकी पूँछें (जो पखो या चँवरीके तौरपर काममे आती थीं), तथा बेचनेको कुछ खाली पहाडी टट्टू भी ले आते थे। इनके बदलेमे वे यहाँसे नमक, रूई, काँचके बर्तन, आदि अपने साथ ले जाते थे। पुर्तगाली ही पहिले-पहल यूरपमे बना हुआ कागज भारतमें लाए, एव बादमे डच लोग भी उसे लाने लगे (फिर भी अब तक उसे साधारणतया बोलचालमे 'पुर्तगाली कागज' ही कहते हैं), इस युरोपीय कागजकी खपत दक्षिणके स्वाधीन राज्योंमे बहुत होती थी। परन्तु उनके निजी उपयोगके लिए बहुत ही बढिया कागज बनानेके लिए कश्मीर तथा कुछ अन्य स्थानोंमे मुगल सम्राटोंके राजकीय कारखाने थे, उसी किस्मका कागज आज भी यूरपमे 'इण्डिया पेपर' कहलाता है। दफ्तरोंके साधारण काम तथा दूसरे लोगोंके निजी कार्यके लिए कागजी कहलानेवाले मुसलमान लोग आवश्यक कागज बना देते थे। प्रत्येक नगरमे कागजियोका यह उद्योग-धंधा चलता रहता था और सूबोंके केन्द्रोमे तो शहरसे लगा हुआ उनका अपना अलग पुरा ही होता था।

भारतसे उन दिनो विदेशोमे जानेवाली वस्तुओंमे सबसे महत्त्वपूर्ण था साधारण सूती कपड़ा, जिसे 'केलिको' कहते थे, यह या तो सादा होता था या छापा हुआ, जिसे 'छींट' कहते थे। पूर्वी टापुओंमे इन छींटो-की बहुत खपत होती थी, और १७वीं शताब्दीके अन्त तक इंगलैण्डमे भी इनकी मांग बहुत बढने लगी थी। महीन सूती कपड़ा 'मलमल' भी भारतसे ही जाता था। इनके अतिरिक्त शोरे, नील, रेशम और भोजन बनानेमें उपयोगी कुछ और मसालोंके साथ ही काली मिर्च जैसा कच्चा माल भारतसे ले जाते थे। हुगलीसे सफेद शक्कर, मछलीपट्टम् होकर हीरे और माणक, बंगाल और मद्राससे दान, और इंगलैण्डमें मोमबत्तियाँ बनानेके लिए सूतका धागा भी थोड़े-थोडे परिमाणमें बाहर जाता था। १७वीं शताब्दीका अन्त होते-होते रेशमी ताफ्ता और कलाबत्तूके कामके रेशमी कपडे बहुतायतसे बाहर जाने लगे और अंग्रेजी कम्पनीके प्रयत्नोंसे बंगालमें रेशमकी रंगाई एवं बुनाईके काममें बहुत सुधार हो गए। मछलीपट्टम्से लेकर पांडीचेरी तकके मद्रासके सारे समुद्र तटपर और उनके बाद, यद्यपि वह प्रदेश इससे बहुत पीछे था, हुबलीसे लेकर कार-वारके सारे कन्नड़ देशमें भी तब भारतके सबसे अधिक माल पैदा करने-

वाले सूतके उद्योग-धधे थे। किन्तु गोलकुण्डा राज्यका अन्त होने तथा मराठोके उत्थानके वाद इस प्रदेशमे जो युद्ध प्रारम्भ हुए उनसे यह सारा प्रदेश बरबाद हो गया और १८वी शताब्दीके प्रारम्भमे वगाल ही सूतके उद्योग-धधोका प्रमुख केन्द्र वन गया।

४. मुगल साम्राज्यकी शासन-पद्धति

मुसलमानी राज्य वास्तवमे सैनिक शासन होता था, और अपने अस्तित्वके लिए उसे वादशाहकी निरकुश सत्तापर ही निर्भर रहना पडता था क्योकि युद्धके समय वादशाह ही मुसलमानोका सर्वोच्च सेना-पति होता था। उसके कोई नियमित मन्त्रि-मण्डल नही होता था। सम्राट्के वाद वज़ीर या दीवान ही राज्यका सवसे वडा अधिकारी होता था, दूसरे मन्त्री किसी भी तरह वज़ीर या दीवानके साथी नही माने जा सकते थे क्योकि उनका पद निश्चित रूपसे उससे हीन होता था। दूसरे मन्त्रियोकी जानकारीके विना ही कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नोको सम्राट् और वज़ीर ही मिलकर तय कर डालते थे। साधारण मन्त्रियोकी वात तो दूर रही वज़ीर स्वय भी सम्राट्के आदेशोपर किसी प्रकारकी रोक नही लगा सकता था, सम्राट्की इच्छापर ही उन पदोपर उनका वना रहना निर्भर था। अतएव उस समयके मन्त्रीगण किसी भी प्रकार आधुनिक ढगका मन्त्रीमण्डल (केवीनेट) नही वना सकते थे। यथार्थ मूल सिद्धान्तोके अनुसार प्रत्येक मुसलमान वादशाह धर्म और राज्य दोनोका ही समान रूपसे एकमात्र मुखिया होता है, अपनी प्रजाके लिए तो वह उस समयका ख़लीफा ही है।

मुगल शासनमे ये प्रधान महकमे होते थे —

१—साम्राज्यका कोष और माली विभाग, जिनका प्रवन्ध, 'दीवान' के हाथमे रहता था।

२—शाही दरवार और महलोका विभाग, जिसकी देखभाल 'खान-इ-सामान' करता था।

३—वेतन चुकाने और हिसाव दफ्तरका विभाग, जिसे 'वख्शी' सम्हालता था।

४—धार्मिक कानून, जिसका भार काजियोका काजी उठाता था।

५—धार्मिक वृत्तियों और दान-पुण्यका विभाग, जिसका प्रवन्ध सदरके हाथमे था।

६—सार्वजनिक आचारोको कुरानके अनुसार नियन्त्रित करनेका विभाग, जिसके अधिकार मुहतसिवको थे।

इनसे कुछ निम्नतर श्रेणीके परन्तु ऐसे ही महकमोंके समान थे :—

७—तोपखाना, जिसका प्रधान मीर आतिश (या दारोगा-ए-तोपखाना) होता था, और

८—खवरो और डाकका विभाग, जो डाक-चौकियोंके दारोगाकी देख-रेखमे रहता था।

माली मामलो सम्वन्धी सारी लिखा-पटी, सूवोंसे तथा युद्ध-क्षेत्रपर गई हुई सेनाओंसे आनेवाले सारे सरकारी कागज-पत्र शाही दीवानके पास ही पहुँचते थे, और जमावन्दी निश्चित करने या मालगुजारी वसूल करने सम्वन्धी सारे प्रश्नोको भी वही तय करता था। विभिन्न सूवोंके दीवानोकी नियुक्ति तथा उनका नियन्त्रण भी उसीके हाथमे रहता था। कोई भी रुपया चुकाने सम्वन्धी सारे आदेशोपर उसके हस्ताक्षर होने आवश्यक थे। सम्राट्के आदेशोकी सूचना देनेके लिए वह स्वय 'हस्व-उल्-हुक्म' (सम्राट्के आदेशसे लिखे गए पत्र) लिखता था, और कई वार महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो या विदेशी राज्योंके वादशाहोंके नाम लिखे जाने-वाले शाही पत्रोंके मसौदे भी वह वनाता था।

सेनासे सम्वद्ध या दूसरे महकमोंमे नियुक्त सभी शाही अधिकारी शाही मनसवदार होते थे, एव उन सवके वेतनका हिसाव वख्शी ही करता था और तव उनको चुकानेकी स्वीकृति भी वख्शीको देनी होती थी। चढाईपर गई हुई सेनाको वेतन चुकानेका काम भी वख्शीके विभाग-को करना पडता था। साम्राज्यके वहुत वढ जानेसे औरंगजेवके शासन-कालके अन्तिम दिनोमे एक मुख्य वख्शी होता था, जो पहला वख्शी कहलाता था, और उसके हाथके नीचे तीन सहकारी होते थे जो क्रमश दूसरा, तीसरा और चौथा वख्शी कहलाते थे। चढाईपर जानेवाली प्रत्येक सेनापर उस वारके लिए एक प्रधान सेनापति नियुक्त किया जाता था। कई वार कुछ अधिकारियोंको 'सिपहसालार'का खिताव दिया गया, परन्तु यह एक विशेष आदर-सूचक पदवी ही थी, सारी मुगल सेनाके

प्रधान सेनापतिका अधिकार उन लोगोको कभी सौपा नही गया। समस्त मुगल सेनाका प्रधान सेनापति एकमात्र सम्राट् ही था।

शाही राजभवन-विभागका प्रमुख अधिकारी 'खान-इ-सामान' होता था। सम्राट्के निजी नौकरोकी देख-रेख, सम्राट्के दैनिक व्यय, भोजन, भण्डार आदिका सारा प्रबन्ध वही करता था। यात्राओंके समय वह सदैव सम्राट्के साथ जाता था। शाही कारखानो अथवा उद्योग-धधोका प्रबन्ध एव उनके वेतन आदिका व्यय चुकानेका काम भी इसी विभागसे होता था।

सिद्धान्तत बादशाह ही सारे साम्राज्यका सर्वोच्च न्यायाधीश भी था, और हर एक बुधवारको वह स्वय मुकद्दमो मामलोकी सुनवाई करता था। किन्तु उसके इस न्यायालयमे किसी मामलेकी प्रारम्भिक सुनवाई नही होती थी। यह तो अपीले सुनने या दूसरे न्यायाधीशो द्वारा दिए गए फैसलोपर पुनर्विचारका ही सर्वोच्च न्यायालय था। मुसलमानोके सारेके सारे फौजदारी मामलो तथा बहुतसे दीवानी मुकद्दमोकी सुनवाई प्रधान न्यायाधीशके रूपमे काजी करता था। मुसलमानी कानूनके अनुसार ही यह कार्यवाही चलती थी। काज़ीकी सहायताके लिए एक मुफ्ती रहता था, जो न्याय-शास्त्रपर अरबीमे लिखी गई पुस्तकोको पढ-पढाकर उस मामलेके उपपुक्त आवश्यक कानूनी सिद्धान्तोंके सारको काज़ीके सम्मुख रख देता था, तब उन सब बातोपर विचार कर काज़ी अपना फैसला देता था।

शाही काजी 'काज़ी-उल्-कज़ात' कहलाता था। वह सदैव सम्राट्के साथ रहा करता था। प्रत्येक सूबेके नगरो या बडे-बडे गाँवोके स्थानीय काजियोको वही नियुक्त या पदच्युत करता था।

मुख्य सदर 'सद्र-उस्-सदूर' कहलाता था। सम्राट् और शाहजादो द्वारा धार्मिक लोगो, विद्वानो तथा फकीरोके निर्वाहका प्रबन्ध करनेके लिए धर्मार्थ दी हुई धरतीका प्रबन्ध तथा आवश्यक देख-रेख करनेका काम उसके विभागका था। धर्मार्थ दिया हुआ द्रव्य समुचित रूपसे काममे आ रहा है या नही यह देखना उसका कर्तव्य होता था। दान-पुण्य या निर्वाहके लिए नए प्रार्थियोके निवेदनोकी जाँच और उनके सम्बन्धमे निर्णय करनेका काम भी उसीका था। सम्राट्की ओरसे खैरात भी वही बाँटता था और साम्राज्यका धर्मादा विभाग भी उसीके जिम्मे

रहता था। सूबेके सदरोंकी नियुक्ति और उनकी देख-रेख भी वही करता था।

जन-साधारणका जीवन कुरानके नियमोंके अनुसार ठीक तौरपर चल रहा है या नहीं, यह देख-भाल कर उसको उचित रूपमें नियमित करते रहनेका काम मुहतसिबका था। पैगम्बरके आदेशोंके अनुसार सब तरहकी शराबें, भांग और अन्य नशीली वस्तुओंके सेवनको सख्तीके साथ रोकना, खुले-आम जुआ न खेलने देना तथा सार्वजनिक रूपसे वेश्यावृत्ति नहीं चलने देना भी उसका कर्त्तव्य था। इस्लाममें नहीं विश्वास करनेवालों-को, पैगम्बरके निन्दकों, प्रति दिन नियमित रूपसे पांच वार नमाज नहीं पढनेवालों तथा रमजानके महीनोंमें उपवास न रखनेवालोंको उपयुक्त दण्ड देना भी उसके अधिकारकी बात थी। नए बने हुए मन्दिरोंको तुडवानेका काम भी उसे ही सौंपा गया था।

(मुगल साम्राज्यके सूबोंका प्रान्तीय शासन केन्द्रीय व्यवस्थाका ही छोटा नमूना-मात्र होता था। प्रान्तके सर्वोच्च अधिकारीको शासकीय तौरपर 'नाज़िम' कहते थे, परन्तु वह प्राय 'सूबेदार' ही कहलाता था। उसके नीचे दीवान, बख्शी, काज़ी, सदर, शाही मालका संरक्षक और मुहतसिब होते थे। सूबोंमें 'खान-इ-सामान' अवश्य ही नहीं होता था। अपने-अपने प्रान्तमें प्रत्येक सूबेदार सम्राट्के समान ही व्यवहार करता था।

प्रान्तीय शासन-व्यवस्था सूबेके मुख्य नगरमें ही केन्द्रित रहती थी। सूबेके अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों या परगनोंमें फ़ौजदार रहते थे जो वहां शान्ति बनाए रखते थे, विद्रोहियों और अपराधियोंको दण्ड देते थे और मालगुजारी वसूल न होनेकी हालतमें माली अधिकारियोंकी भी सहायता करते थे। गांवोंकी ओर तो कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता था। अपनी अयोग्यताके कारण या गांवोंके प्रति उनकी तिरस्कार-भावना-से ही क्यों न हो शाही अधिकारी गांवोंमें चलते जानेवाले जीवनमें कोई छेड-छाड नहीं करते थे और गांवोंके लोग अपनी स्वय-शासित पंचायतों द्वारा अपना काम आप ही निबटा लेते थे।

बड़े शहरोंमें कोतवाल रहता था। वहां शान्ति और सुव्यवस्था बनाए रखनेके अतिरिक्त उसे कई अन्य कार्य भी सम्हालने पडते थे। शहरकी सफाई, बाजारमें वजन-तोल और भावोंका नियन्त्रण, और

कुरानके आदेशोंके अनुसार सदाचारिता बनाए रखना भी उसका कर्त्तव्य था।

देशके भिन्न-भिन्न भागोमे क्या हो रहा है इसकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए केन्द्रीय अधिकारी गुप्तचर और सूचना देनेवाले नियुक्त करते थे, इनमेसे कईकी नियुक्ति गुप्त भी रहती थी। तदर्थ नियुक्त किए गए प्रतिनिधि चार प्रकारके होते थे, वाकया-नवीस, सवानह-निगार, खुफिया-(गुप्त पत्र-लेखक) और हरकारा (गुप्तचर और पत्रवाहक)। उन्हे निश्चित समयपर नियमित रूपसे सूचनाएँ भेजनी पडती थी। प्रत्येक राजकीय अधिकारीके साथ एक-एक 'अखबार-नवीस' रहता था, जो प्रति दिनकी घटनाओका विवरण सक्षेपमे लिख लेता था। साम्राज्यके सब भागोसे आनेवाली ये सारी सूचनाएँ दारोगा-इ-डाक-चौकीके द्वारा सम्राट्के पास पहुँचती थी।

सम्राटोके बारम्बार निषेध करनेपर भी बहुतसे स्थानीय अधिकारी और सूबेदार तक कई अवैध महसूल, जिन्हे 'अबवाब' कहते थे, वसूल कर लेते थे। कई विभिन्न नामोसे ये महसूल सब तरहके कारीगरो, व्यापारियो, मजदूरो और साधारण लोगोसे वसूल किए जाते थे। कुछ सूबेदारोके अत्याचारका एक दूसरा तरीका यह था कि उनके सूबेमे होकर जाते हुए मालको वे बलात् छीन लेते थे, और या तो व्यापारियोको उनके उस मालका मूल्य चुकाया ही नही जाता था, और यदि उसके बदलेमे वे उन्हे कुछ द्रव्य देते भी थे तो वह बहुत ही कम होता था। तब उस छीने हुए मालमेसे अपनी पसन्दकी वस्तुएँ वे अपने काममे लेते थे या उन्हे खुले बाजारमे पूरी कीमतपर बेचकर स्वय नफा कमाते थे। सूबेदारोके ऐसे अत्याचारोको एक सशक्त जागरूक कडा सम्राट् ही बन्द कर सकता था।

०

घटनावली

[इस ग्रंथकी सारी ईसवी तारीखें इंगलेण्डमे १७५२ ई० तक प्रचलित पुराने असंशोधित ईसाई पंचांगके अनुसार हैं। उन्हे संशोधित नए ग्रेगरी पंचांगकी तारीखोंमे परिणत करनेके लिए दस और कहीं-कहीं ग्यारह दिन जोडने चाहिए। तदर्थ स्वामी कन्नू पिल्लाई कृत 'इण्डियन एफीमेरीज़' देखो।]

१६१८—२४ अक्तूबर—औरंगजेबका जन्म।

१६२७—१० अप्रेल—शिवाजीका जन्म।

१६२८—४ फरवरी—शाहजहांका स्वयको सम्राट् घोषित करना, (२९ अक्तूबर, १६२७को जहांगीरकी मृत्यु हुई)।

१६३३—२८ मई—औरंगजेबको हाथीसे मुठभेड।

१६३५—सितम्बर-दिसम्बर—बुन्देला युद्धमे औरंगजेबका प्रथम सेनापतित्व।

१६३६—मई—शाहजहां और आदिलशाहमे बँटवारेकी सन्धि।
अक्तूबर—मुगलोंके हाथों शाहजी भोंसलेकी पूर्ण पराजय, शाहजीका बीजापुरकी नौकरीमे प्रविष्ट होना।

१६३७—८ मई—औरंगजेबका दिल्रसबानूसे विवाह, (उसकी मृत्यु ७ अक्तूबर, १६५७को हुई)।

१६३८—१५ फरवरी—औरंगजेबकी ज्येष्ठ सन्तान जेबुन्निसाका जन्म; (मृत्यु हुई—२६ मई, १७०२)।
जून—बगलाना प्रदेशपर औरंगजेबका अधिकार करना।

१६३९—१९ दिसम्बर—मुहम्मद सुल्तानका जन्म, (मृत्यु—३ दिसम्बर, १६७६)।

१६४३—४ अक्तूबर—मुअज्जमका (शाहआलम प्रथमका) जन्म।

१६४४—मई औरंगजेबके प्रति शाहजहांकी अप्रसन्नता तथा उसका दक्षिणकी सूबेदारीसे पदच्युत किया जाना।
नवम्बर—औरंगजेबको पुनः गुजरात मिलना।

१६४५—फरवरी जनवरी, १६४७—औरगज़ेबका गुजरातकी सूबेदारी करना।

१६४७—७ मार्च—दादाजी कोण्डदेवकी मृत्यु, शिवाजीका स्वाधीन होकर आदिलशाही किलोपर अधिकार करने लगना।

२५ मई—औरगज़ेबका बलख नगरमे पहुँचकर अक्तूबरमे वहाँसे वापस लौटना।

१६४८—मार्चसे जुलाई, १६५२—औरगज़ेबका मुलतान और सिन्धकी सूबेदारी करना।

१६४९—१४ मई–५ सितम्बर—औरगज़ेब द्वारा कन्धारका पहला घेरा।

१६५२—२ मई–९ जुलाई—औरगज़ेब द्वारा कन्धारका दूसरा घेरा।

१६५२—१६५८ तक—औरगजेबका दूसरी बार दक्षिणकी सूबेदारी करना।

१६५५—२१ नवम्बर—कुतुबशाहका मीरजुमलाके पुत्रको कैद करना।

१६५६—१५ जनवरी—शिवाजीका जावली जीतना, और ६ अप्रेलको रायगढका किला लेना।

जनवरी—औरगजेबका गोलकुण्डापर आक्रमण, २३ जनवरीको मुगलोका हैदराबादपर अधिकार करना।

७ फरवरीसे ३० मार्च—औरगजेबका गोलकुण्डाका घेरा डालना, अप्रेलमे सन्धि हो गई।

जुलाई—मीरजुमलाका दिल्ली पहुंचना और वहाँ उसका मुगल साम्राज्यका वज़ीर नियुक्त होना।

४ नवम्बर—मुहम्मद आदिलशाहकी मृत्यु, अली द्वितीयका राज्यारोहण।

१६५७—औरगज़ेबका बीजापुरपर आक्रमण।

२से २९ मार्च—बीदरका घेरा डालकर अन्तमे औरगज़ेबका उसे जीत लेना।

४ मई–९ अगस्त—कल्याणीके किलेका घेरा डालना तथा उसे जीतना।

४ अक्तूबर—औरगज़ेबका इस चढाईसे वापस लौटना।

६ सितम्बर—दिल्लीमे शाहजहाँका बीमार होना, और २६ अक्तूबरको उसका आगरा पहुँचना।

नवम्बर—बगालमे शुजाका स्वय ही सिहासनारूढ होना।

५ दिसम्बर—मुरादका गुजरातमे स्वत राज्याभिषेक करना।

२० दिसम्बर—सूरतपर अधिकार करके मुरादका उसे लूटना।

१६५८—५ फरवरी—राज्याधिकारके हेतु युद्धके लिए औरंगजेबका औरंगाबादसे रवाना होना।

१४ फरवरी—सुलेमान शिकोहका बहादुरपुरके युद्धमे शुजाको हराना।

१५ अप्रेल—धरमतके युद्धमे औरंगजेब और मुरादका जसवन्त-को हराना।

२३ मई—शाही आज्ञा द्वारा निश्चित औरंगजेबके राज्यकालके प्रथम वर्षका आरम्भ।

२९ मई—सामूगढमें दाराकी हार।

८ जून—आगराके किलेमे शाहजहांका कैद किया जाना।

२५ जून—औरंगजेबका मुरादको कैद करना, (जिसको ४ दिसम्बर, १६६१को मार डाला गया)।

२१ जुलाई—औरंगजेबका प्रथम राज्याभिषेक।

१६५९—५ जनवरी—खजवाके युद्धमे शुजाकी हार।

१३ मार्च—दो राईके युद्धमे औरंगजेबके हाथो दाराकी आखिरी पराजय।

५ जून—औरंगजेबके द्वितीय विधिवत् राज्याभिषेकका समारोह।

९ जून—दारा और सिपहरशिकोहका कैद होना।

३० अगस्त—दाराको मृत्यु-दण्ड।

१० नवम्बर—शिवाजीका अफजलखांको मारना।

१६६०—६ मई—शुजाका ढाकासे भागना और तब मीरजुमलाका वहां अधिकार करना, (फरवरी, १६६१मे शुजाका अराकानमें अन्त)।

९ मई—पूनापर शायेस्ताखांका अधिकार होना और १५ अगस्त-को चाकणपर अधिकार करना।

२७ दिसम्बर—सुलेमान शिकोहका कैदी बनाकर दिल्ली लाया जाना, (मई, १६६२मे उसका मारा जाना)।

१६६१—३ फरवरी—उम्बरखिण्डमें शिवाजीका कारतलबखांको हराना।

मई—मुगलोंका शिवाजीसे कल्याण ले लेना।

२२ मई—ईरानके राजदूत बुदागबेगकी औरंगजेबसे भेंट।

१६६८—फरवरी—औरंगजेबका शाही दरबारमें संगीत बन्द करना। औरंगजेबका शिवाजीको राजा मान लेना।

१६६९—९ अप्रेल—सारे मुगल साम्राज्यमें मन्दिर तोड़नेके लिए औरंगजेबका हुक्म देना। अगस्तमें बनारसका विश्वनाथ मन्दिर तोड़ा गया। अगली जनवरीमें मथुराके केशवरायके मन्दिरका ध्वंस हुआ।

१६७०—१ जनवरीके लगभग—शिवाजीका मुगलोंसे फिर युद्ध आरम्भ करना, अपने किलोंको वापिस लेना और मुग़ल-प्रदेशपर दूर-दूर तक आक्रमण करना।

३-५ अक्तूबर—शिवाजीका दूसरी बार सूरत लूटना।

१७ अक्तूबर—डिंडोरीके युद्धमें शिवाजीका दाऊदखाँको हराना।

दिसम्बर—शिवाजीका खानदेश और बरारको लूटना।

१६७१—जनवरी—माल महकमेंसे औरंगजेबका सारे हिन्दू कर्मचारियोंको हटाना। बुन्देलखण्डमें औरंगजेबके विरुद्ध छत्रसालके युद्धका आरम्भ, (राजा बनकर १७३१में उसकी मृत्यु हुई)।

१६७२—अकमलखाँके नेतृत्वमें अफरीदियोंका विद्रोह।

मार्च—सतनामियोंका विद्रोह।

२१ अप्रेल—अब्दुल्ला कुतुबशाहकी मृत्यु, अबुलहसनका राज्यारूढ होना।

२४ नवम्बर—अली आदिलशाह द्वितीयकी मृत्यु, सिकन्दरका राज्यारोहण। खवासखाँका बीजापुरमें वजीर बनना, (११ नवम्बर, १६७५को वह अधिकारच्युत किया गया)।

१६७३—शिवाजीका ६ मार्चको पन्हाला, १ अप्रेलको पार्ली, और २८ जुलाईको सताराका क़िला जीतना।

१६७४—२४ फरवरी—नेसरीमें प्रतापरावके मारे जानेपर हम्बीररावको सेनापति बनाना।

७ अप्रेल—औरंगजेबका हसन अब्दालके लिए दिल्लीसे रवाना होना और दिसम्बर, १६७५ तक औरंगजेबका वहीं रहना।

६ जून—शिवाजीका राज्याभिषेक।

१८ जून—जीजाबाईकी मृत्यु।

१९ दिसम्बर—मीरजुमलाका कूचविहार नगरपर अधिकार करना।

१६६२—१७ मार्च आसामकी राजधानी गढ़गाँवपर मीरजुमलाका अधिकार करना।

१२ मई—औरंगज़ेबका बीमार पड़ना, २४ जूनको वह पूर्णतया निरोग हो गया।

१६६३—१ जनवरी—मीरजुमलाके साथ आसामके राजाका सन्धि करना, १० जनवरीको मीरजुमला वापिस लौट पड़ा, और ३१ मार्चको वह मर गया।

५ अप्रेल—रातके समय शायेस्ताखाँके डेरेपर शिवाजीका आक्रमण।

१४ मई–१६ अगस्त—औरंगजेबकी कश्मीर-यात्रा।

१६६४—६ से १० जनवरी—शिवाजीका पहली वार सूरत वन्दरको लूटना।

२३ जनवरी—शाहजी भोसलेकी मृत्यु।

१६६५—३० मार्च—जयसिंहका पुरन्दर किलेका घेरा डालना।

११ जून—शिवाजीकी जयसिंहसे भेट।

१३ जून—पुरन्दरकी सन्धि।

१० अप्रेल—हिन्दुओंपर लगनेवाली चुगीको औरंगजेबका दुगुनी कर देना।

२० नवम्बर—जयसिंहका बीजापुरपर आक्रमण, वहाँसे ५ जनवरी, १६६६को लौटना और २८ अगस्त, १६६७को बुरहानपुरमे उसकी मृत्यु।

१६६६—२२ जनवरी—शाहजहाँकी मृत्यु।

२६ जनवरी—शायेस्ताखाँका चटगाँवको जीतना।

१२ मई—औरंगजेबके शाही दरबारमे शिवाजीका उपस्थित होना।

१९ अगस्त—शिवाजीका आगरासे भाग निकलना, १२ सितम्बरको शिवाजीका रायगढ पहुँचना, अप्रेल, १६६७ ई०मे शिवाजीका औरंगज़ेबकी अधीनता स्वीकार करना।

१६६७—२८ फरवरी—कामबख़्शका जन्म।

मार्च—पेशावरमे यूसुफज़ाइयोंका विद्रोह।

८—फरवरी—औरगजेबका शाही दरबारमे सगीत बन्द करना। औरगजेबका शिवाजीको राजा मान लेना।

९—९ अप्रेल—सारे मुगल साम्राज्यमे मन्दिर तोडनेके लिए औरगजेबका हुक्म देना। अगस्तमे बनारसका विश्वनाथ मन्दिर तोडा गया। अगली जनवरीमे मथुराके केशवरायके मन्दिरका ध्वस हुआ।

०—१ जनवरीके लगभग—शिवाजीका मुगलोंसे फिर युद्ध आरम्भ करना, अपने किलोंको वापिस लेना और मुग़ल-प्रदेशपर दूर-दूर तक आक्रमण करना।

३-५ अक्तूबर—शिवाजीका दूसरी बार सूरत लूटना।

१७ अक्तूबर—डिडोरीके युद्धमें शिवाजीका दाऊदखाँको हराना।

दिसम्बर—शिवाजीका खानदेश और बरारको लूटना।

७१—जनवरी—माल महकमेंसे औरगजेबका सारे हिन्दू कर्मचारियोंको हटाना। बुन्देलखण्डमे औरगजेबके विरुद्ध छत्रसालके युद्धका आरम्भ, (राजा बनकर १७३१में उसकी मृत्यु हुई)।

७२—अकमलखाँके नेतृत्वमे अफरीदियोंका विद्रोह।

मार्च—सतनामियोंका विद्रोह।

२१ अप्रेल—अब्दुल्ला कुतुबशाहकी मृत्यु, अबुलहसनका राज्यारूढ होना।

२४ नवम्बर—अली आदिलशाह द्वितीयकी मृत्यु, सिकन्दरका राज्यारोहण। खवासखाँका बीजापुरमें वज़ीर बनना, (११ नवम्बर, १६७५को वह अधिकारच्युत किया गया)।

६७३—शिवाजीका ६ मार्चको पन्हाला, १ अप्रेलको पार्ली, और २७ जुलाईको सताराका क़िला जीतना।

६७४—२४ फरवरी—नेसरीमें प्रतापरावके मारे जानेपर हम्बीररावको सेनापति बनाना।

७ अप्रेल—औरगजेबका हसन अब्दालके लिए दिल्लीसे रवाना होना और दिसम्बर, १६७५ तक औरगजेबका वहां ठहरना।

६ जून—शिवाजीका राज्याभिषेक।

१८ जून—जीजाबाईकी मृत्यु।

आका खुसरो ११ अक्तूबर, १६८४को मर गया।

१० दिसम्बर—जमरूदमें जसवन्तसिंहकी मृत्यु।

१३ दिसम्बर—शम्भूजीका भागकर दिलेरखांसे मिलना; ४ दिसम्बर, १६७९के लगभग शम्भूजी वापस पन्हाला लौटे।

१६७९—१९ फरवरी—औरंगज़ेबका अजमेर पहुँचना; मारवाड़पर मुग़ल आक्रमण और २६ मईके दिन इन्द्रसिंहको मारवाड़ देना।

२ अप्रेल—इस्लामके अतिरिक्त अन्य सारे धर्मावलम्बियोंपर औरंगज़ेबका जज़िया कर लगाना।

१५—जुलाई दुर्गादासका बालक अजीतको दिल्लीसे निकाल ले जाना।

२५ सितम्बर—औरंगज़ेबका दूसरी बार अजमेर पहुँचना; अक्तूबरमें मारवाड़को मुग़ल साम्राज्यमें सम्मिलित करना।

७ अक्तूबर—१४ नवम्बर—दिलेरखांका बीजापुर क़िलेपर चढ़ाई करना तथा बादमें आसपासके प्रदेशमें उसका लूटमार करना।

८ नवम्बर—शिवाजीका मुग़लोंपर आक्रमण कर १५-१८ नवम्बरको जालनाको लूटना, परन्तु रणमस्तखां द्वारा हराए जानेपर २१ नवम्बरके लगभग शिवाजीका पट्टाको वापस लौटना।

१६८०—२३ जनवरी—औरंगज़ेबका उदयपुर नगरमें प्रवेश, २३ फरवरीको चित्तौड़ होते हुए २२ मार्चको उसका वापस अजमेर जा पहुँचना।

८ अप्रेल—शिवाजीकी मृत्यु।

१८ जून—मराठोंके राजा बनकर शम्भूजीका रायगढ़में प्रवेश।

२२ अक्तूबर—महाराणा राजसिंहकी मृत्यु, जयसिंहका महाराणा बनना। शायस्ताखांका दूसरी बार बंगालका सूबेदार नियुक्त किया जाना।

१६८१—१ जनवरी—शाहज़ादे अकबरका स्वयंको सम्राट् घोषित करना।

१६ जनवरी—विद्रोहके असफल होनेपर शाहज़ादे अकबरका दोराईके युद्ध-क्षेत्रसे भागना। तब १ जूनको महाराष्ट्रमें पाली नामक स्थानपर शम्भूजीके आश्रयमें अकबरका आ पहुँचना।

३० जनवरी—१ फरवरी—मराठोंका बुरहानपुरके उपनगरोंको लूटना।

१६९१—१६ दिसम्बर—असदखां और कामबख्शका जिंजी पहुँचना।

१६९२—१३ दिसम्बर—सन्ता घोरपडेका कांजीवरम्के फौजदार अली-मर्दानखाको पकड़ना।

१६ दिसम्बर—धन्ना जादवका जिंजीसे बाहर इस्माइलखां मका-को कैद करना।

२० दिसम्बरके लगभग—असदखांका कामबख्शको कैद करना।

१६९३—२३ जनवरी—जुल्फिकारखांका जिंजीका घेरा उठाकर वाडि-वाशको भागना।

मातबरखांका उत्तरी कोकणके पुर्तगालियोंपर धावा।

१६९४—फरवरी-मई—जुल्फिकारखांका तंजोरसे वसूल करना और दक्षिणी अर्काट जिलेको जीतना।

सितम्बर—जुल्फिकारखांका पुनः जिंजीका घेरा डालना, दिसम्बर, १६९५में घेरेको उठाकर जनवरी, १६९६से मार्च, १६९७ तक उसका अर्काटमें पड़ाव डाले रहना। अकबरकी पुत्रीको दुर्गादासका औरंगजेबके पास पहुंचा देना।

१६९५—२१ मईसे १९ अक्तूबर, १६९९—औरंगजेबका इस्लामपुरीमें पड़ाव।

मई—शाहआलमका कैदसे छूटनेपर पंजाबका सूबेदार बनाया जाना।

८ सितम्बर—गंज-इ-सवाई जहाजकी समुद्री लूट।

अक्तूबर—मुगलोंका वेलोरका घेरा डालना; १४ अगस्त १७०२-को वेलोरपर मुगलोंका अधिकार हुआ।

नवम्बर—सन्ता घोरपडेका दुडेरीमें कासिमखांको घेरना; वहीं कासिमखांकी मृत्यु हुई।

१६९६—२० जनवरी—बसवापट्टणमें सन्ताका हिम्मतखांको मारना।

मार्च—सन्ताका पूर्वी कर्नाटक पहुँचना, नवम्बर-दिसम्बरके मध्य मैसूरपर आक्रमण।

मई—शोभासिंह और रहीमखांका बंगालमें विद्रोह। देवगढ़में बख्तबुलन्द गोंडका युद्ध आरम्भ करना।

१६९७—मार्च—सतारामें धन्नाका सन्ताको हराना।

डालना और ७ जूनको उसपर अधिकार कर लेना। दुर्गादास और अजीतका औरंगजेबके विरुद्ध पुन विद्रोह करना।
२७ दिसम्बर—औरंगजेबका कोण्डानाके किलेको घेरकर ८ अप्रैल, १७०३के दिन उसे जीत लेना।

१७०३—अक्तूबर—नीमा सिन्धियाका मालवा और बरारपर आक्रमण।
२ दिसम्बर—औरंगजेब रायगढके किलेका घेरा लगा कर १६ फरवरी १७०४को उसपर अधिकार कर लेना।

१७०४—२६ फरवरी—औरंगजेब तोरणाके किलेका घेरा डालकर १० मार्चको जीत लेना।

१७०५—८ फरवरी—औरंगजेबका वागिनखेडाको घेरकर २७ अप्रैलके दिन उसपर अधिकार कर लेना।
मई—अक्तूबर—देवापुरमे औरंगजेबका ठहरना और वहां उसका बीमार पड जाना।
नवम्बर—दुर्गादासका फिरसे आत्मसमर्पण कर अगले अप्रैलमे उसका पुन विद्रोह करना।

१७०६—२० जनवरी—औरंगजेबका अहमदनगर पहुँचना।
मार्च—मराठोका गुजरातपर आक्रमण, रतनपुरके युद्धमे १५ मार्चको एव बावा प्याराके घाटेके युद्धमे भी मुगलोंकी करारी हारें, मराठोका वडौदाको लूटना।

१७०७—९ फरवरी—औरंगजेब कामबख्शको बीजापुर जानेके लिए विदा करना, १३ फरवरी—मालवा जानेके लिए आजमको रवाना करना, १७ फरवरीको औरंगजेबका बीमार पडकर २० फरवरी-को उसकी मृत्यु होना।
८ मार्च—जोधपुर पर बन. अजीतसिंहका अधिकार कर लेना।